महाशक्ति-साहित्य-मन्दिर-ग्रन्थमाला संख्या •

आहार-विज्ञान

लेखक—

हनूमानप्रसाद शर्म्मा, वैद्यशास्त्री

रथयात्रा, सम्वत् १९८८ वि०

प्रथम संस्करण]

[मूल्य २)

प्रकाशक—
नागेश्वरप्रसाद मिश्र, "भारती"
महाशक्ति-साहित्य-मन्दिर,
बुलानाला, बनारस सिटी

मुद्रक—
बजरंगबली विशारद
श्रीसीताराम प्रेस,
बनारस सिटी

स्वर्गीय पण्डित छन्नूलालजी

राजवैद्य "भिषग्रत्न"

स्वर्गीय पण्डित छन्नूलालजी
राजवैद्य "मिपमल"

"समर्पण"

श्रद्धेय मातामह, गुरुवर, राजवैद्य,

"भिषग्रत्न" पण्डित हन्नूलालजी;

पूज्यवर !

आपकी पवित्रात्मा स्वर्गलोक में अवश्य यह जानना
चाहती होगी कि आप के दिए हुए ज्ञान का
उपयोग आपका अबोध दौहित्र किस
प्रकार कर रहा है। अतः यह
पुष्पाञ्जलि, जो आप ही की
लगाई हुई फुलवाड़ी
के फूल हैं,
आपको ही
समर्पित करने की धृष्टता करता हूँ।

सेवक—

हनूमानप्रसाद

आहार वही होता है, जो या तो अपनी प्राकृतिक अवस्था और स्वरूप में हो, या उसकी उस अवस्था और स्वरूप में यथा साध्य कम-से-कम परिवर्तन हुआ हो; आजकल घी, चीनी और तरह तरह के मसालों आदि के योग से खाद्य पदार्थों का वास्तविक स्वरूप इतना अधिक बदल दिया जाता है कि उनका पहचानना भी कठिन हो जाता है। एक तो अपनी प्राकृतिक अवस्था से बहुत दूर जा पड़ने के कारण और दूसरे अनेक प्रकार के अन्यान्य पदार्थों के योग से प्रस्तुत किया हुआ वह खाद्य पदार्थ बहुत कुछ गरिष्ठ और दुष्पाच्य हो जाता है और परिणाम स्वरूप अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करता है। पशुओं और पक्षियों को देखिये। उनका भोजन प्राय सादा और अपने प्राकृतिक रूप में हुआ करता है, इसीलिये वे मनुष्य की अपेक्षा बहुत कम बीमार पड़ते हैं, हमारे यहाँ का प्राचीन पाकशास्त्र मुख्यत इसी सिद्धान्त पर बना था और उसमें पदार्थों का स्वरूप बहुत ही कम परिवर्तित किया जाता था। एक बात और है। जहाँ तक हो सके, खाद्य पदार्थ ताजे होने चाहिएँ। वे जितने ही बासी होते हैं, उनमें उतने ही अधिक विकार आ जाते हैं और वे शरीर को व्याधि-मन्दिर बनाये रखने में सहायक होते हैं। परन्तु आजकल की नई सभ्यता इन सब बातों का बहुत कम ध्यान रखती है। उनमें खाद्य पदार्थों का स्वरूप बदलने की भी बहुत अधिक प्रवृत्ति है और उन्हें बासी करके खाने की भी। पश्चात्य देशों के अधिकांश भोजन तो महीनों बल्कि कभी-कभी बरसों के बने हुए होते हैं। यह ठीक है कि

उनको ऐसे वैज्ञानिक ढंग से डब्बे आदि में बन्द किया जाता है कि वे सड़न और खराब न होने पावें। फिर भी उन्हें सुरक्षित और ठीक रखने के लिये जो उपाय किए जाते हैं, उनमें सदा ही धोखा नहीं दिया जा सकता। हम तो निःसंकोच भाव से यहाँ तक कह सकते हैं कि हमारे भारतवर्ष में प्राचीन काल में रोगों की संख्या बहुत ही कम होती थी, उसका मुख्य कारण यही था कि हमारे पूर्वज खाद्य पदार्थों का स्वरूप अधिक विकृत नहीं करते थे। और आजकल पाश्चात्य देशों में तथा उनके सहारे से पौर्वात्य देशों में भी जो रोगों और रोगियों की संख्या इतनी अधिक बढ़ गई है, उसका मुख्य कारण आजकल के ढङ्ग के खाद्य पदार्थ हैं। हमारे देशवासी इन सब बातों को जितना ही अधिक हृदयङ्गम कर सकेंगे, उनके शारीरिक सुख तथा स्वास्थ्य के लिये उतना ही अच्छा होगा।

हमारे यहाँ श्री क्षेमशर्मा नाम के एक बड़े वैद्य हो गये हैं, जिन्होंने "क्षेमकुतूहलम" नाम का एक बहुत सुन्दर ग्रन्थ लिखा है। उसमें अन्यान्य अनेक उपयोगी बातों के साथ-साथ यह भी बतलाया गया है कि पाकशाला कैसी होनी चाहिए, भोजन बनाने के पात्र कैसे होने चाहिएँ, किस प्रकार के पदार्थ कैसे पात्रों में रखने चाहिएँ, किस प्रकार बैठकर और किस विधि से भोजन करना चाहिए, आदि आदि। इसमें बतलाया गया है कि भोजन पकाने के लिये सबसे अच्छा बरतन मिट्टी का होता है। और यह ठीक भी है। धातु के बरतनों का प्राय कुछ-न-कुछ असर पकाये हुए

भोजन में भी आ ही जाता है। इसके अतिरिक्त उसमें यह भी बत लाया है कि भिन्न-भिन्न धातुओं के पात्रों में भोजन पकाने से उनमें क्या दोष अथवा गुण आते हैं। और इस दृष्टि से मिट्टी के बाद सोने और चाँदी के बरतन सबसे अच्छे कहे गये हैं, पर वे सबके लिये सुलभ नहीं हैं। पका चुकने के उपरान्त किस प्रकार के भोजन कैसे पात्र में रखने चाहिएँ, इसका भी उसमें बहुत विवेचन है। यह भी बतलाया गया है कि किस ऋतु में किस प्रकार का भोजन करना चाहिए और कूएँ, नदी या तालाब आदि में से कहाँ का जल पीना चाहिए। इस प्रकार की और भी अनेक उपयोगी बातें अन्यान्य अनेक वैद्यक ग्रन्थों में भी पाई जाती हैं। हमारे कहने का तात्पर्य केवल यही है कि जो लोग यह सम झते हैं कि सब प्रकार के ज्ञानों और विज्ञानों का भाण्डार केवल पाश्चात्य देश ही हैं, वे भूल करते हैं। हमारे यहाँ भी सब विषयों के शास्त्र हैं और उनमें सब बातों का बहुत अच्छा विवेचन है। हाँ, दुर्भाग्यवश हम उनकी उपेक्षा करते हैं और आँखें बन्द करके दूसरों का अनुकरण करने के लिये दौड़ पड़ते हैं, जिससे अन्त में ठोकर खाकर गिरते हैं।

हर्ष का विषय है कि काशी के सुप्रसिद्ध लेखक और सद्वैद्य श्रीयुत पण्डित हनूमानप्रसादजी शर्मा, वैद्यशास्त्री महोदय ने "आहार विज्ञान" नामक पुस्तक प्रस्तुत करके इस सम्बन्ध में एक बहुत ही स्तुत्य प्रयत्न किया है। आपने वैद्यक शास्त्र से आहार आदि के सबध के अनेक सूत्र एकत्र करके हिन्दी-भाषी जनता को

सेवा का विशेष प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। आहार के सम्बन्ध में हमारे यहाँ के प्राचीन शास्त्रों में जो काम की बातें आई हैं, उनमें से बहुतेरी इस पुस्तक में संगृहीत हैं और इस विचार से यह पुस्तक बहुत ही उपादेय हुई है। आपकी पुस्तक पढ़ने से ज्ञात होता है कि आधुनिक उन्नति के समय भी व्यक्तिगत स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध की बहुत सी बातें प्राचीन आयुर्वेद से जानी जा सकती हैं। हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक जिस उद्देश्य से लिखी गई है, वह उद्देश्य अवश्य सिद्ध होगा; और हिन्दी प्रेमी इस पुस्तक से बहुत कुछ लाभ उठा सकेंगे। एवमस्तु।

प्रताप प्रासाद,
बनारस हिन्दू-यूनिवर्सिटी

रसायनाचार्य,
कविराज प्रतापसिंह
सुपरिन्टेन्डेन्ट आयुर्वेदिक-फार्मेसी
काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय

शुभ-सम्मतियाँ

"आहार विज्ञान" पर कुछ विद्वान एवं लब्धप्रतिष्ठ सज्जनों की शुभ सम्मतियाँ पढ़िए।

"हमारे शरीर की रचना" जैसी पुस्तक के रचयिता, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन द्वारा मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्तकर्ता एवं धुरन्धर विद्वान, श्रीयुत डाक्टर त्रिलोकीनाथजी वर्म्मा, बी० एस-सी; एम० बी० बी० एस०, एफ० आर० एफ० पी० एस० (ग्लासगो); डी० टी० एम० (लीवरपूल); एल० एम० (डबलिन); फेलो रायल सोसायटी आफ् ट्रोपिकल मेडिसिन एण्ड हाइजीन लण्डन; भूतपूर्व प्रोफेसर किंगजार्ज मेडिकल कॉलेज, लखनऊ लिखते हैं—

"जिसे अंग्रेजी में Dietetics (डायेटेटिक्स) कहते हैं, वही विषय इस पुस्तक में वैद्यक के अनुसार सरल भाषा में लिखा गया है। भोजन सम्बन्धी सभी बातें समझाई गई हैं। एक सौ छियालिस खाने-पीने की चीजों का विस्तृत वर्णन है। हरएक चीजों के नाम अँग्रेजी, लैटिन एवं भारतीय अन्य भाषाओं में भी दिए गए हैं। उस पदार्थ का विशेष विवरण, गुण और उपयोग भी बताए गए हैं। ××× पुस्तक के आद्योपान्त पढ़ने के पश्चात हम निःसकोच कह सकते हैं कि वैद्यों के अतिरिक्त सर्वसाधारण के लिए भी यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। हमें आशा है कि हरएक गृहस्थ पुस्तक की एक प्रति अपने पास रखकर लाभ उठाएगा।"

हिन्दी के यशस्वी लेखक, अनेक ग्रन्थों के प्रणेता, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के चीफ मेडिकल ऑफिसर, श्रीयुत डाक्टर सुरेन्द्र स्वरूपजी शर्मा, बी० एस-सी, एम० बी० बी० एस० लिखते हैं—

"मैंने पण्डित हनुमानप्रसादजी शर्मा, वैद्यशास्त्री कृत "आहार विज्ञान" नामक पुस्तक का अवलोकन किया है। पुस्तक बड़े परिश्रम के साथ लिखी गई है। और साधारण जनता के लिए बहुत उपयोगी है। विषय के विवेचन में लेखक को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। वास्तव में इस पुस्तक से हिन्दी के आयुर्वेदिक साहित्य के एक विशेष अङ्ग की पूर्ति हुई है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जनता इस पुस्तक से उचित लाभ उठाएगी।"

Pandit Gopinath Kaviraj, M A
Principal Govt Sanskrit College
Benares, Writes —

I have read with much pleasure Pt Hanuman Prasad Sharma, Vaidya Shastri's Hindi work named 'Ahar Vijnana' It is a valuable compilation intended to bring to the knowledge of laymen the importance and utility of ordinary articles of daily consumption as food from the medical point of view Some of the prescriptions noted are known to be very efficacious and useful I hope the book will be appreciated by those for whom it is meant.

गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज काशी के प्रिंसिपल, सुप्रसिद्ध विद्वान, श्रीयुत पण्डित गोपीनाथजी कविराज, एम० ए० लिखते हैं—

"मैंने पण्डित हनूमानप्रसाद शर्म्मा, वैद्यशास्त्री की लिखी हुई "आहार विज्ञान" नाम की हिन्दी पुस्तक बहुत ही आनन्दपूर्वक पढ़ी। यह एक बहुत मूल्यवान रचना है और यह सर्वसाधारण को इस बात का ज्ञान प्राप्त कराने के लिये लिखी गई है कि मनुष्य के दैनिक व्यवहार में आनेवाले साधारण खाद्य पदार्थों का कितना महत्व और क्या उपयोगिता है। इसमें कुछ प्रयोग तो ऐसे दिए गए हैं, जो बहुत ही गुणकारी तथा उपयोगी प्रसिद्ध हैं। मैं आशा करता हूँ कि जिन लोगों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है, वे इसका उचित आदर करेंगे।"

महामहोपाध्याय, विद्वद्वर, श्रीयुत डाक्टर गंगानाथजी झा, एम० ए०, डी० लिट०, एल० एल० डी०, वायस-चान्सलर प्रयाग विश्वविद्यालय, लिखते हैं—

"आहार-विज्ञान" नामक पुस्तक मैंने देखा, बड़ी उपयोगी है।"

"वैद्य सम्मेलन-पत्रिका" के भूतपूर्व सम्पादक, आयुर्वेदिक कॉलेज काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, प्रसिद्ध विद्वान, आयुर्वेदाचार्य, श्रीयुत पण्डित जगन्नाथप्रसादजी बाजपेयी, लिखते हैं—

"आहार विज्ञान" लिखकर श्रीयुत हनूमानप्रसाद शर्म्मा, वैद्यशास्त्री ने एक बड़ी भारी कमी की पूर्ति की है। × × × आहार के साधारण नियमों के साथ प्रत्येक आहारोपयोगी द्रव्य के गुण, दोष तथा भिन्न-भिन्न

रोगों में सेवन विधि लिखी गई है। पुस्तक अपने ढंग की सर्वथा नवीन है। विद्वानों के साथ ही साधारण हिन्दी जानने वाले भी एक लाभ उठा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थ का इसे स्वयं पढ़ना और बालकों एवं गृहदेवियों को पढ़ने के लिए उत्साहित करना चाहिए।"

प्रो० एन० मेहता सत्यव्रत पानेन प्रकाशक के प्रिंसिपल, हिन्दी के यशस्वी लेखक, काव्यतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य, श्रीयुत पण्डित हरिनारायणजी शर्मा, लिखते हैं—

"आहार विज्ञान" पुस्तक बड़े महत्व की है। लेखन शैली सुन्दर सरल, और प्रौढ़ है। भोजन से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातें इसमें अच्छे ढंग से वर्णित हैं। × × × × × इसमें लिखी विधि के अनुसार भोजन करने से मनुष्य आरोग्य तथा दीर्घजीवन प्राप्त कर सकता है। ग्रन्थों का विशेष उपयोग गृहस्थ एवं नवीन चिकित्सकों के बड़े काम की चीज है। ऐसी उपयोगी पुस्तक लिखने के लिए आपको धन्यवाद है।"

इन्दौरनगरस्यास्थान्ये राजवैद्ये विद्वद्वरे, श्रीयुतपण्डितकन्याली-रामजीद्विवेदि महोदयैर्लिख्यते—

"वाराणसी नगरवास्तव्यैः वैद्यवरैः हनूमानप्रसादशर्ममहोदयैः भाषायां विरचितः "आहार विज्ञान" नामग्रन्थो मया समग्रोऽप्यवलोकितः। वैद्यवर्यैः महाशयैः सर्वायुर्वेदीयाहार सम्बन्धि शास्त्रप्रोक्तेषु विविध विषय विवेचन सम्पादितमिति मन्ये। आयुर्वेदशास्त्र सदभ्यासकाम तथा ग्रन्थपि पना पुस्तक ऐकमवेऽपगृह्याः। विद्यालये, वाचनालये चोपयोगितरोऽस्य

गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज काशी के प्रिंसिपल, सुप्रसिद्ध विद्वान, श्रीयुत पण्डित गोपीनाथजी कविराज, एम० ए० लिखते हैं—

"मैंने पण्डित हनूमानप्रसाद शर्म्मा, वैद्यशास्त्री की लिखी हुई "आहार विज्ञान" नाम की हिन्दी पुस्तक बहुत ही आनन्दपूर्वक पढ़ी। यह एक बहुत मूल्यवान रचना है और यह सर्वसाधारण को इस बात का ज्ञान प्राप्त कराने के लिखी गई है कि मनुष्य के दैनिक व्यवहार में आनेवाले साधारण खाद्य पदार्थों का कितना महत्व और क्या उपयोगिता है। इसमें कुछ प्रयोग तो ऐसे दिए गए हैं, जो बहुत ही गुणकारी तथा उपयोगी प्रसिद्ध हैं। मैं आशा करता हूँ कि जिन लोगों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है, वे इसका उचित आदर करेंगे।"

महामहोपाध्याय, विद्वद्वर, श्रीयुत डाक्टर गंगानाथजी झा, एम० ए०, डी० लिट०, एल० एल० डी०, वायस-चान्सलर प्रयाग विश्वविद्यालय, लिखते हैं—

"आहार विज्ञान" नामक पुस्तक मैंने देखा, बड़ी उपयोगी है।"

"वैद्य सम्मेलन-पत्रिका" के भूतपूर्व सम्पादक, आयुर्वेदिक कॉलेज काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, प्रसिद्ध विद्वान, आयुर्वेदाचार्य, श्रीयुत पण्डित जगन्नाथप्रसादजी बाजपेयी, लिखते हैं—

"आहार विज्ञान" लिखकर श्रीयुत हनूमानप्रसाद शर्म्मा, वैद्यशास्त्री ने एक बड़ी भारी कमी की पूर्ति की है। × × × आहार के साधारण नियमों के साथ प्रत्येक आहारोपयोगी द्रव्य के गुण, दोष तथा भिन्न-भिन्न

रोगों में सेवन विधि लिखी गई है। पुस्तक अपने ढंग की सर्वथा नवीन है। विद्वानों के साथ ही साधारण हिन्दी जानने वाले भी इससे लाभ उठा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थ को इसे स्वयं पढ़ना और अपने बच्चों एवं गृहदेवियों को पढ़ने के लिए उत्साहित करना चाहिए।"

बी० एन० मेहता संस्कृत कालेज प्रतापगढ़ के प्रिंसपल, हिन्दी के यशस्वी लेखक, काव्यतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य, श्रीयुत पण्डित हरि नारायणजी शर्म्मा, लिखते हैं—

"आहार-विज्ञान" पुस्तक बड़े महत्व की है। लेखन शैली शुद्ध, सरल, और प्रौढ़ है। भोजन से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातें इसमें अच्छे ढंग से अंकित हैं। × × × × × इसमें लिखी विधि के अनुसार भोजन करने से मनुष्य आरोग्य तथा दीर्घजीवन प्राप्त कर सकता है। ग्रन्थों का विशेष उपयोग गृहस्थ एवं नवीन चिकित्सकों के बड़े काम का होगा है। ऐसी उपयोगी पुस्तक लिखने के लिए आपको धन्यवाद है।"

इन्दौरनगरवास्तव्यै राजवैद्यै विद्वद्वरै, श्रीयुतपण्डितदयालो- रामजीद्विवेदि महोदयैर्लिख्यते—

"वाराणसी नगरवास्तव्यैः वैद्यशास्त्रि हनूमानप्रसादशर्म्ममहोदयै र्भाषायां विरचितः "आहार विज्ञान" नामाग्रन्थः मया सम्प्रोऽवलोकितः। वैद्यशास्त्रि महाशयैः सर्वायुर्वेदीयाहार सम्बन्धि सप्रामण्यैर्विविध विषय विवेचन सम्पादितमितिमन्ये। आयुर्वेदाध्यायिनां तदभ्यासकाम तथा न्येऽपि जनाः पुस्तक मेतदवश्यमपेक्षयाः। विद्यालये, पाठशालये चोपयोगितरोऽय

गवर्नमेंट संस्कृत कॉलिज काशी के प्रिंसिपल, सुप्रसिद्ध विद्वान, श्रीयुत पण्डित गोपीनाथजी कविराज, एम० ए० लिखते हैं—

"मैंने पण्डित हनूमानप्रसाद शर्म्मा, वैद्यशास्त्री की लिखी हुई "आहार विज्ञान" नाम की हिन्दी पुस्तक बहुत ही आनन्दपूर्वक पढ़ी। यह एक बहुत मूल्यवान रचना है और यह सर्वसाधारण को इस बात का ज्ञान प्राप्त कराने के लिये लिखी गई है कि मनुष्य के दैनिक व्यवहार में आनेवाले साधारण खाद्य पदार्थों का कितना महत्व और क्या उपयोगिता है। इसमें कुछ प्रयोग तो ऐसे दिए गए हैं, जो बहुत ही गुणकारी तथा उपयोगी प्रसिद्ध हैं। मैं आशा करता हूँ कि जिन लोगों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है, वे इसका उचित आदर करेंगे।"

महामहोपाध्याय, विद्वद्वर, श्रीयुत डाक्टर गंगानाथजी झा, एम० ए०, डी० लिट०, एल० एल० डी०, वायस-चान्सलर प्रयाग विश्वविद्यालय, लिखते हैं—

"आहार विज्ञान" नामक पुस्तक मैंने देखा, बड़ी उपयोगी है।"

"वैद्य सम्मेलन-पत्रिका" के भूतपूर्व सम्पादक, आयुर्वेदिक कॉलिज काशी-हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, प्रसिद्ध विद्वान, आयुर्वेदाचार्य, श्रीयुत पण्डित जगन्नाथप्रसादजी बाजपेयी, लिखते हैं—

"आहार विज्ञान" लिखकर श्रीयुत हनूमानप्रसाद शर्म्मा, वैद्यशास्त्री ने एक बड़ी भारी कमी की पूर्ति की है। × × × आहार के साधारण नियमों के साथ प्रत्येक आहारोपयोगी द्रव्य के गुण, दोष तथा भिन्न-भिन्न

रोगों में सेवन विधि लिखी गई है। पुस्तक अपने ढंग की सर्वथा नवीन है। विद्वानों के साथ ही साधारण हिन्दी जाननेवाले भी पूरा लाभ उठा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थ को इसे स्वयं पढ़ना और बालकों एवं गृहदेवियों को पढ़ने के लिए उत्साहित करना चाहिए।'

पी० एन० मेहता आयुर्वेद कालेज अहमदाबाद के प्रिंसिपल, हिन्दी के यशस्वी लेखक, काव्यतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य, श्रीयुत पण्डित हरि नारायणजी शर्म्मा, लिखते हैं—

"आहार विज्ञान" पुस्तक बड़े महत्व की है। इसकी शैली सुन्दर, सरल, और प्रौढ़ है। भोजन से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातें इसमें अच्छे ढंग से अंकित हैं। × × × × × इसमें लिखी विधि के अनुसार भोजन करने से मनुष्य आरोग्य तथा दीर्घजीवन प्राप्त कर सकता है। ग्रन्थों का विशेष उपयोग गृहस्थ एवं नवीन चिकित्सकों के बड़े काम की चीज है। ऐसी उपयोगी पुस्तक लिखने के लिए आपको धन्यवाद है।"

इन्दौरनगरवास्तव्यैः राजवैद्यविशारदैः, श्रीयुतपण्डितग्यालीरामजीद्विवेदि महोदयैर्लिख्यते—

"वाराणसी नगरवास्तव्यैः वैद्यराज हनूमानप्रसादशर्म्ममहोदयैः भाषायां विरचितः "आहार विज्ञान" नामाग्रन्थो मया समग्रोऽवलोकितः। वैद्यराज महाशयैः सर्वायुर्वेदीयाहार सम्बन्धि सदाचारादि विविध विषय विवेचनं सम्पादितमिति मन्ये। आयुर्वेदज्ञानां तदभ्यासकानां तथा अन्येऽपि जनाः पुस्तक [illegible]। विद्यालये, पाठनाय चोपयोगितास्य

ग्रन्थ इति मे मतिः । अथवा वैद्यानामिह महोदयानां कार्यमभिनन्दनीयमिति । एवमयसारमाकांक्षते ।"

आयुर्वेदिक कॉलेज, काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, हिन्दी के सुयोग्य लेखक, आयुर्वेद-विशारद, श्रीयुत डाक्टर भास्कर गोविन्दजी घाणेकर, बी० एस-सी, एम० बी० बी० एस० लिखते हैं-

"शरीर आहार से बनता है । इसलिए खाद्यद्रव्यों का ज्ञान प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक है । "आहार विज्ञान" में ग्रन्थकार ने इस बात का यथाशक्य सब के आहार पदार्थों का सयोग विचार किया है । ग्रन्थ के आरम्भ में आहार सम्बन्धी सामान्य विवरण अत्यन्त महत्त्व का है । × × × बाकी खण्डों में आहार पदार्थों—धान्यवर्ग, शाकवर्ग इत्यादि—का विभाग करके प्रत्येक पदार्थ के गुण, धर्म तथा रोगावस्था में उपयोग बतलाए गए हैं । × × × × × पुस्तक जन साधारण तथा वैद्यों के लिए विशेष उपयोगी है । मुझे आशा है कि हिन्दी-भाषी जनता पुस्तक का आदर कर ग्रन्थकार के गौरव को बढ़ाएगी ।"

हिन्दी के प्रतिभाशाली विद्वान, उदीयमान लेखक, "वैद्य" जैसे पत्र के सम्पादक, श्रीयुत शंकरलालजी वैद्य, लिखते हैं—

"पुस्तक अच्छी है । विशेष परिश्रम के साथ लिखी गई है । इसमें आहार सम्बन्धी नियमों के सिवाय भोजन के काम में आनेवाले शाक, अन्न, दूध, दही आदि पदार्थों के गुण दोष का भी वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है । हिन्दी में ऐसी पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी ।××।"

काशी के सुयोग्य चिकित्सक, सेन्ट्रल-हिन्दू-हाईस्कूल के ऑनरेरी मेडिकल ऑफिसर, श्रीयुत डाक्टर अचलबिहारीजी सेठ, एम० बी० बी० एस० लिखते हैं—

"आहार-विज्ञान" नाम की पुस्तक श्रीमान् पण्डित हनुमानप्रसाद शर्म्मा, वैद्यशास्त्री ने बड़े परिश्रम से लिखी है। हिंदी संसार में अभी तक इस विषय की यह एक निराली पुस्तक है। इसकी लेखन शैली अनूठी और भाषा सरल है। इसमें खाद्य पदार्थों का वर्गीकरण, प्रत्येक चीज़ों का भिन्न-भिन्न रोगों पर उपयोग, बड़े परिश्रम और बहुत से प्राचीन और नवीन ग्रंथों का मथन करके लिखा गया है। आरम्भ की सूचियों से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। ऐसी उपयोगी पुस्तक से हिंदी जाननेवाली समस्त जनता को लाभ उठाना चाहिए।"

हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्यसेवी, पूज्यवर, आचार्य पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी, लिखते हैं—

"आहार विज्ञान" में प्रायः समस्त भक्ष्य पदार्थ—धान्य, फल, फूल, मूल, शाक, तरकारी और घी-दूध दही आदि—के नाम, गुण और दोष इत्यादि के सिवा यह भी सरल हिंदी में बताया गया है कि किस रोग या विकार में किस वस्तु का उपयोग किस प्रकार करने से लाभ पहुँचता है। आरम्भ में भोजन विषयक अनेक हितकर सूचनाएँ भी हैं। पुस्तक सर्वसाधारण जनों ही के लिए नहीं, वैद्यों के लिए भी संग्रहणीय है।'

अनेक ग्रन्थों के रचयिता, ब्रजभाषा के धुरन्धर कवि, हिन्दी के प्रतिभाशाली लेखक, कविवर, श्रीयुत पण्डित शिवरत्नजी शुक्ल, "साहित्य-रत्न" लिखते हैं—

> करत नित्य आहार, तासु व्यवहार न जानत।
> विविध व्याधि तनु उपज, भोग्य भोगिहु दुख मानत॥
> मन्द देत धरि दाप, कन्द की कथा सुनावैं।
> तन महँ तेज न ओज, रोज वैद्यन ढिग धावैं॥
> तिन हेत भली रचना भई, यहि "अहार विज्ञान" की।
> करि सुखी रहैं सयम सदा, पढ़ि कल-कृति "हनुमान" की॥

ट्रेनिंग कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वायस प्रिंसिपल, हिन्दी के धुरन्धर विद्वान, श्रीयुत पण्डित चन्द्रमौलिजी सुकुल, एम० ए०, एल० टी० लिखते हैं—

"पण्डित हनूमानप्रसाद शर्म्मा, वैद्यशास्त्री ने "आहार-विज्ञान" नामक नई पुस्तक लिखी है। भोजन के विषय में प्रायः सभी जानने योग्य बातें आ गई हैं। धान्यों, फलों, शाकों और दुग्धादिकों का बहुत ही उपयोगी वर्णन किया गया है। अन्य निघण्टु ग्रन्थों की तरह द्रव्य का गुण लिखकर ही नहीं छोड़ा गया है, किन्तु उसके व्यवहार की पूर्ण रीति बता दी है। भोज्य पदार्थों से ही अनेकानेक प्रचलित रोगों के दूरीकरण का उपाय बताया है। सर्वसाधारण ही के लिए नहीं, किन्तु वैद्यों के लिए भी यह पुस्तक अत्यन्त हितकर है। हिन्दी में इस विषय पर इस प्रकार की पुस्तक लिखने का यह नया प्रयास है। मेरी सम्मति में

लेखक को इस प्रकार में सफलता हुई है। इसके लिए उन्हें साधुवाद। घर में पुस्तक की एक प्रति रहने से समय पर बड़ा काम दे सकती है। क्या ही अच्छा हो, यदि माताएँ इस पुस्तक का मनन कर सकें और अपने कुटुम्बियों के स्वास्थ्य की रक्षा सुगमता से कर सकें।"

वयोवृद्ध साहित्य सेवी, "सुधानिधि" सम्पादक, आयुर्वेद पंचानन, भिषक्मणि, श्रीयुत पण्डित जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल, राजवैद्य, लिखते हैं—

"मैंने पण्डित हनूमानप्रसाद शर्म्मा, वैद्यशास्त्री रचित "आहार विज्ञान" पुस्तक देखी। आहार विषयों की जानकारी इसमें अच्छी तरह दी गई है। इसमें आहार के उपयोगों में आनेवाली चीजों का वर्णन है। ×××पुस्तक आहार विषयक ही नहीं चिकित्सा विषयक ज्ञान बढ़ाने में भी उपयोगी है। पुस्तक-लेखक का परिश्रम प्रशंसनीय है। आशा है प्रत्येक गृहस्थी में इसका आदर होगा।

—o—

निवेदन

आयुर्वेद अथर्ववेद का एक अङ्ग है। कोई-कोई आचार्य इसे पचमवेद भी कहते हैं। भारतीय आर्य महर्षियों ने इसकी रचना सस्कृत में की है। एक तो आयुर्वेद शास्त्र यों ही गहन है, तिस पर सस्कृत जैसी क्लिष्ट भाषा में होने से यह अधिक दुरूह और अगम्य हो गया है। काल के परिवर्त्तन से सस्कृत का अध्ययन व्यापक नहीं रह गया, अत आयुर्वेद शास्त्र की गहनता और अनेक स्थलों की जटिलता के कारण सर्वसाधारण इससे लाभा न्वित नहीं हो सकते; उनकी बुद्धि के लिए यह दुर्भेद्य है। कोई क्लिष्ट विषय कभी लोक-प्रिय नहीं हो सकता, अत ऐसे शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए इने-गिने लोग ही उद्यत होते हैं। वर्तमान समय में सस्कृत भाषा मृतप्राय हो गई है और हिन्दी जैसी सरल भाषाओं का प्रचार दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। परन्तु हमें उन पूर्व आचार्यो का कृतज्ञ होना चाहिए, जिन्होंने सस्कृत जैसी जटिल भाषा में आयुर्वेद विषयक अत्यन्त सुन्दर और सजीव साहित्य निर्माण किया है। आधुनिक शल्य चिकित्सा का निर्माण तो प्राचीन आयुर्वेद के आधार पर ही हुआ है, इसके लिए यूरोप भारत का ऋणी है।

आजकल सस्कृत भाषा की जटिलता ने आयुर्वेद की महत्ता और उपयोगिता को कुछ परिमित कर दिया है। इसलिए मैंने इस

पुस्तक को भारत की उन्नतिशील और सर्वसाधारण के बोल-चाल की भाषा हिन्दी में लिखने का प्रयास किया है। यह कहना कि हिन्दी में स्वास्थ्य विषयक साहित्य बहुत कम है, पिष्टपेषण मात्र है। हिन्दी साहित्य का यह अङ्ग निरी शैशवावस्था में है। परन्तु किसी विषय के अभाव से ही हृदय में उसके पूर्ति की इच्छा उत्पन्न होती है। इस कमी की पुकार मचाना हमारा कर्तव्य नहीं है। हमारा कर्तव्य है, इस कमी की पूर्त्ति करने की चेष्टा करना। यही उद्देश्य सम्मुख रखकर मैंने एकमात्र स्वास्थ्य विषयक साहित्य का ही निर्माण करना निश्चित किया है।

प्रायः आज से दस वर्ष पूर्व जिस समय मुझे अपने मातामह, पूज्य, स्वर्गीय पण्डित छन्नूलालजी, राजवैद्य, "भिषग्रत्न" से आयुर्वेद शास्त्र की शिक्षा मिल रही थी, मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि आयुर्वेद शास्त्र इतना विशाल होते हुए भी चिकित्सा सम्बन्धी पदार्थों के उपयोगों के वर्णन से प्रायः रहित ही है। कुछ ही गिने गिनाए कल्प इत्यादि हैं, परन्तु वे भी नगण्य ही हैं। उन्हें कोई विशेष महत्व या स्थान नहीं दिया जा सकता। उसी समय से मेरी यह उत्कट अभिलाषा रही है कि हिन्दी में एक ऐसी पुस्तक तैयार की जाय, जिसमें यह अभाव दूर हो। यह सभी जानते हैं कि गेहूँ से पेट भरता है। इसके अनेक खाद्य पदार्थ बनते हैं, किन्तु मेरा खयाल है कि साधारण चिकित्सक पूर्णतया यह न जानता होगा कि हर समय सुगमता से प्राप्य इस गेहूँ से सहज ही कितनी व्याधियाँ दूर की जा सकती हैं। प्रस्तुत पुस्तक

में अत्यन्त सरल भाषा और सुगम रीति से उन विषयों को समझाने की चेष्टा की गई है और इस विषय का ज्ञान मैंने स्वाध्याय, स्वर्गीय पूज्य माताामहजी एवं अन्य विज्ञ और विद्वान चिकित्सकों से प्राप्त किया है।

मैं किसी एक चिकित्सा-प्रणाली का कायल नहीं हूँ। पर अन्य चिकित्सा-प्रणालियों की अपेक्षा आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति को भारतीय जनता के लिए विशेष हितकर और पूर्ण समझता हूँ। चिकित्सा का लाभकारी होना बहुधा जल वायु पर अवलम्बित होता है। मानवीय जीवन पर जल वायु का बहुत प्रभाव होता है। जिस देश में मनुष्य का जन्म, पालन-पोषण और निवास होता है, वहाँ का जल-वायु उसके अङ्ग-अङ्ग में सन्निविष्ट होकर उसे परिपुष्ट करता है। किसी देश के प्राकृतिक तत्वों तथा वहाँ के निवासियों के शारीरिक परमाणु में बहुत घनिष्ट सम्बन्ध होता है। अतः देश में उत्पन्न वनस्पतियों की बनी हुई औषधियों का जितना चमत्कारिक प्रभाव रोगियों पर पड़ता है, उतना अन्य देश की उत्पन्न जड़ी-बूटियों आदि से और विदेशी प्रणालियों से निर्मित औषधियों से कदापि नहीं हो सकता। अतः आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली ही हमारे देश वासियों के लिए अधिक उपयोगी है। इस देश में होनेवाली जड़ियों-बूटियों और वनस्पतियों बिना मूल्य, इतनी सरलता और सुगमता से प्राप्त हो जाती हैं कि सर्वसाधारण सहज ही इसका उपयोग करके लाभ उठा सकते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली में त्रुटियाँ नहीं

है। अवश्य हैं। पर इसका कारण आयुर्वेद की अपूर्णता नहीं है। जिस पाश्चात्य सर्जरी या शस्त्र-चिकित्सा पर आज यूरोप तथा अमेरिका के चिकित्सक गर्व करते हैं, उन्हें सुश्रुत-वर्णित उन चिकित्सा यन्त्रों ने चकित तथा स्तम्भित कर दिया है, जो भारतीय पुरा-तत्त्व विभाग द्वारा नालन्द विश्व विद्यालय और सिंध की खुदाई में निकले हैं। इन आविष्कारों ने सभ्य-संसार के समक्ष सम्यक रीति से यह प्रामाणित कर दिया है कि आज से लगभग चार सहस्र वर्ष पूर्व भी हमारी शस्त्र-चिकित्सा-प्रणाली कितनी उन्नता-वस्था में थी। हाँ, विदेशी सरकार की तटस्थता, धन-कुबेरों के संरक्षण के अभाव तथा हमारे आयुर्वेद के आधुनिक चिकित्सकों की दीर्घ-सूत्रता से भारतीय समाज इन नए आविष्कारों से लाभ नहीं उठा सका है। हमारी यह दृढ़ आशा है कि देश का नवीन चिकित्सक-समाज नए-नए उपकरणों का आविष्कार करके आयुर्वैदिक शास्त्र में शीघ्र क्रान्ति उत्पन्न करके इस उन्नत वैज्ञानिक युग के पाश्चात्य-चिकित्सकों को मुग्ध और चकित कर देगा। हमारे आयुर्वेद शास्त्र का इस प्रकार उपेक्षित होना, देश का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। मेरा विश्वास है कि आयुर्वेद तत्वों और प्रयोगों की विवेचना जितनी ही स्पष्ट, सरल और सुबोध रीति से की जायगी, यह शास्त्र उतना ही अधिक लोक-प्रिय होगा। उतनी ही अधिक आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली सर्व साधारण में आदरणीय होकर उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक में वर्णित विषयों का क्रम मैंने यथासाध्य ऐसा रखा है, जिसमें पाठक सहज ही

यथेष्ट लाभ उठा सकें और उनका जी भी न घबराए।

भारतीय आयुर्वेदिक शिक्षा प्रणाली निर्विवाद रूप से दूषित है। देश की अधिकांश पाठशालाओं में केवल आयुर्वेद शास्त्र और उसकी चिकित्सा प्रणाली की ही शिक्षा दी जाती है। इन पाठशालाओं के विद्यार्थी केवल पाठ्य पुस्तकें ही पढ़ते हैं। इनके अतिरिक्त उन्हें चिकित्सा विषयक मान्य पुस्तकों के पढ़ने का अवकाश ही नहीं मिलता। अध्यापक गण भी पाठ्य पुस्तकों के साथ साथ आयुर्वेद शास्त्र पर लिखी गई ऐसी पुस्तकों को सरसरी तौर पर छात्रों को पढ़ाने की अनिवार्य आवश्यकता का अनुभव नहीं करते, जो पाठ्य-पुस्तकों के ज्ञान को अधिक पूर्ण और पुष्टकर सकें। अत' वे छात्र जिस समय विद्यालय से उपाधि प्राप्तकर सांसारिक जीवन में प्रवेश करते हैं, उस समय उन्हें चिकित्सा ज्ञान के अभाव से जो कठिनता प्रतीत होती है, उसका मार्मिक तथा कटु अनुभव वे ही करते हैं।

अँग्रेजी भाषा में आहार-विधान सम्बन्धी बहुत सी पुस्तकें समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं, पर उनका उपयोग पाश्चात्य चिकित्सा प्रेमी सज्जन ही कर सकते हैं। उन्हें अपना खान-पान, रहन-सहन, आचार विचार सब पश्चिमी ही ढंग पर रखना पड़ता है। सर्वसाधारण इससे उपकृत नहीं हो सकता। अत' मैंने इस पुस्तक में जीवन की सर्व सुलभ खाद्य वस्तुओं के गुण-दोषों पर आयुर्वेद सम्मतपूर्ण विवेचन करके उन खाद्य पदार्थों द्वारा अनेक कष्ट साध्य रोगों से उन्मुक्त होने की विधियों

बतलाने की चेष्टा की है।

कोई चार वर्ष हुए जब मैंने इस पुस्तक का लिखना आरम्भ किया था; किन्तु अनेक विघ्न-बाधाओं के कारण इतने दिनों बाद आज मैं इसे इस रूप में लेकर जनता के समक्ष उपस्थित हो रहा हूँ। जिस समय पुस्तक लिखी जा रही थी, उस समय अनेक साहित्यिक कृपालु सज्जन पुस्तक की उपयोगिता देखकर इसे पूर्ण करने के लिए समय-समय पर विशेष उत्साहित किया करते थे; अतएव उन सज्जनों की कृपा का ऋणी मैं आजन्म रहूँगा।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सभी निघण्टुओं से पूर्ण सहायता मिली है। साथ ही स्वर्गीय शंकरदाजी शास्त्री पदे महोदय के मराठी "आर्यभिषक्" के गुजराती अनुवाद से भी विशेष सहायता मिली है। अतएव मैं स्वर्गीय शास्त्रीजी महोदय का विशेष कृतज्ञ हूँ। गुजराती भाषा के अनुवाद की विशेष सहायता मुझे श्रीयुत बाबू मुकुन्ददासजी गुप्त, बी० ए० और बाबू पन्ना लालजी गुप्त की कृपा से मिली है। एतदर्थ मैं उक्त दोनों महानु भावों का चिर आभारी रहूँगा।

पुस्तक पूरी लिख गई थी; किन्तु कुछ अन्य भाषाओं के द्रव्य नामों का संशोधन अनिवार्य था। इस विषय में मैंने कई विद्वान सज्जनों से परामर्श किया, किन्तु किसी ने सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दिया। एक दिन इसी तरह बातों के सिलसिले में मैंने सेन्ट्रल हिन्दू हाईस्कूल, काशी के ऑनरेरी मेडिकल ऑफिसर, श्रीयुत डाक्टर अयोध्याविहारीजी सेठ, एम० बी० बी० एस० से मिल

किया; तो इन्होंने इसके लिए एक पुस्तक दी। मैंने गुर्जर और वङ्ग भाषा का अन्य कई पुस्तकें देकर संशोधन का भार काशी के सुयोग्य चिकित्सक, सुहृद्वर, श्रीयुत डाक्टर भूमिरानजी शर्म्मा को दिया। डाक्टर शर्म्मा महोदय ने विशेष परिश्रम के साथ इसे शीघ्र ही ठीक कर दिया। अतएव दोनों डाक्टर महोदयों का भी मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ।

अन्त में मैं उन सभी शस्त्रविशारदों को जिन्होंने अपनी अमूल्य सम्मति प्रदान की है, धन्यवाद देता हूँ और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की आयुर्वेदिक फार्मेसी के सुपरिन्टेन्डेन्ट, सर सुन्दर-लाल चिकित्सालय के प्रधान चिकित्सक, ललितहरि कॉलेज, पीलीभीत के भूतपूर्व प्रिंसिपल, भिषङ्मणि, रसायनाचार्य, कविराज, श्रीयुत प्रतापसिंहजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर भूमिका लिखने का कष्ट किया।

यह सम्भव नहीं कि इस पुस्तक में त्रुटियाँ न हों। इसलिए मैं विद्वान समालोचकों और चिकित्सकों से प्रार्थना करता हूँ कि जो त्रुटियाँ उन्हें दिखाई पड़ें, उसे मुझे सूचित करने का कष्ट करें। जिससे वे अगले संस्करण में यथा सम्भव दूर की जा सकें। किमधिकम्।

महाशक्ति औषधालय,
महाशक्ति भवन, काशी
ता० १–८–३१

निवेदक—
हनूमानप्रसाद शर्म्मा

संकेताक्षरों का विवरण

ग्रन्थ-नामों के प्रत्येक भाषा के संकेताक्षरों का परिचय।

सं०—संस्कृत,
हि०—हिन्दी,
ब०—बङ्गाली,
म०—मराठी,
गु०—गुजराती,
क०—कर्णाटकी,
तै०—तैलङ्गी,

ता०—तामिल्ली,
द्रा०—द्राविडी,
अ०—अरबी,
फा०—फारसी,
अँ०—अँग्रेजी
लै०—लैटिन।

विषय-सूची

आरम्भ	१
भोजन क्यों करना चाहिए ?	२
आहार का परिमाण	५
हानिकारक और संयोग विरुद्ध	७
अन्नाहार, फलाहार और मांसाहार	९
भोजन करने का समय	१४
भोजन का स्थान	१७
भोजन के पदार्थ और खाने की विधि	१८
भोजन के साथ जलपान	२२
भोजन के समय मानसिक विचार	२४
भोजन के पश्चात	२६

पदार्थों की सूची

धान्यवर्ग

अरहर	४२	ज्वार	५
अलसी	७३	तिल	६
उड़द	४१	चीनी	६
कँगुनी	५३	बाजरा	५
कुलथी	५१	मक्का	५९
कुसुम	६२	मटर	४६
कोदो	५६	मसूर	५
खेसारी	५८	मूँग	३९
गेहूँ	३३	मोठ	६१
चना	४०	राई	७
चावल	६२	सरसों	७
चीना	६२	साँवाँ	५
जौ	३५		

शाकवर्ग

अजवाइन	१०९	कचनार	११
आलू	१६३	कड़वी तोरई	१३
कचरी	१८०	करेला	१४

ककोड़ी	१००	पालक	९१
कौंहड़ा (काशी फल)	११८	पेठा (कुम्हड़ा)	११५
कुँदरू	१३१	पोई	९०
खरबूजा	१२४	बथुआ	८३
खीरा	१२०	बैंगन	१४३
खेखसा	१२७	भिण्डी	१४०
गदपूर्णा	१०२	मटर का शाक	११०
गाजर	१०६	मरसा	८८
गूमा	११२	मूली	१५३
गूलर	१५४	मेथी	९०
गोभी	१०६	रतालू और अरुई	१६८
चार की फली	१२५	राई का शाक	९९
चना का शाक	१११	लौआ	११४
चूका	८५	शकरकन्दी	१६०
चौलाई	८९	सरसों का शाक	९९
तरबूज	१२५	सहिजन	१४८
तोरई	१२७	सिंघाड़ा	१५१
नजुआ	१२८	सूरन	१५७
नोनियाँ, कुलफा	८४	सेम	१४६
पड़ुआ (करेमू)	९२	सोआ	९६
परवल	१३०	हुरहुर	९५

फलवर्ग

अंगूर, किसमिस और दाख	२६४	चिरौंजी	२४८
अंजीर ✓	२५६	जामुन	२७२
अखरोट ✓ ...	२३७	नारंगी, संतरा ✓	२१२
अनन्नास	२५३	नारियल ✓	१९३
अनार	१८९	पपीता ✓	२८१
अमरूद	२१०	पिस्ता	२५४
आम	१७३	फालसा	२५८
आमड़ा	१८०	बड़हर	२३१
इमली	२२२	बादाम	२०४
कटहल	२२७	बिजौरा नीमू	२१३
कैथ	२७७	बेर ✓	२८१
कमरख	२४०	बेल	२८३
करौंदा	२४३	मकोय ...	२७९
कसेरू	२७६	मूँगफली ✓	२५९
कागजी नीमू	२१९	लिसोड़ा	२६७
काजू	२७०	शरीफा	२५१
केला	१८७	शहतूत	२६०
कैथ	२३७	सुपारी	२३४
खजूर ✓	२००	सेब और नाशपाती	२०८
खिरनी	२५०	हरफारेवड़ी	२४२
चकोतरा नीमू	२१२		

दुग्ध, दधि, नवनीत और घृतवर्ग

गाय का घी	३१०	बकरी का दूध	२९९
गाय का दही	३०१	बकरी का मक्खन	३०९
गाय का मक्खन	३०७	बकरी का मट्ठा	३०५
गाय का मट्ठा	३०५	भैंस का घी	३१३
घी	३१०	भैंस का दही	३०४
छाछ (मट्ठा)	३०५	भैंस का दूध	२९९
दही	३००	भैंस का मक्खन	३०९
दूध	२९१	भैंस का मट्ठा	३०६
बकरी का घी	३१३	मक्खन	३०७
बकरी का दही	३०४		

परिशिष्टवर्ग

अदरख	३२३	धनियाँ	३२९
इलायची	३२६	पान	३४०
ईख, गन्ना	३१७	पुदीना	३३२
गोंद	३२२	मिर्च	३३६
खैर (कत्था)	३४२	लालमिरिच (मिर्चा)	३३४
गुड़	३१९	साबूदाना	३३९
चीनी, मिस्री	३२२		

उपयोगों की सूची

[अकारादि क्रम से]

अ

अण्ड वृद्धि में—९९, १४५, १०९

अगिपासन—१८१,

अग्निमांद्य में—२१३, २२६

अजीर्ण में—१५४, १८७ २२०, २४०, २५४, ३२५, ३३४

अतीसार—५२, ६३, ६६, ६८, ११५, १०८, १८६, १९३, १९९, २१०, २३५, २६३, २०५, ३२५

अतीसार, खाँसी और विसूचिका पर—३३४

अतीसार वमन, दाह और ज्वर पर—४०

अतीसार, विसूचिका और उदररोगादि पर—२०६

अतीसार संग्रहणी मन्दाग्नि, अर्श और शूल पर—१८६

अतीसार और संग्रहणी पर—३००

अपकपारी में—१२१

अधिक पसीना आने पर—१०७

अधिक पसीना और दुर्गन्ध पर—३८

अनिद्रा पर—९३

अन्तर्विद्रधि पर—१०५, १७०,

अन्नद्रव शूल पर—५४, ५६

अपस्मार (मृगी)—४०

अफीम का विष—४९, ९४ ११३, २८०

अफीम खानेवाले को—९४

अम्लपित्त—६०, १०५, ११७ १४५, १८१, २२१, २८६

अम्लपित्त, कलेजा की जलन, तृषा, मन्दाग्नि और आमवात पर—२६६
अम्लपित्त के कारण गले की जलन हो, तो—२८६
अम्लपित्त, पट-दर्द और यकृत पर—१९८
अरुचि और कफ्पित्त में—२००
अरुचि और पित्त पर—१२०
अरुचि और प्रमेह में—११०
अरुचि और मन्दाग्नि में—८७
अरुचि पर—११, ६६, ८०, ८४ ९४, १००, १११, ११५, ११९, १२५, १२८, १४३ १०९, २१८, २३२, २४२, २४४, २६०, २७६, २०९, ३२६, ३३१, ३३४
अर्दित, अरुचि, दुर्बलता और उदर-शूल पर—४१
अपानवायु पर—७९,
अर्बुद रोग पर—९३
अर्श गुल्म और कृमि पर—२३४
अशुद्ध पारे का विष—१०१
अशुद्ध रसायन का विष—९१
आँव आने पर—१०९ १५०, १६८, १८५, २२१, २२६
आँत की पीड़ा में—१०१
आँखों का जाला—४६, १०३, १०५
आँखों की गरमी पर—१८४
आँखों की जलन पर—२९०, ३०८
आँखों की पीड़ा पर—२०९
आँखों की पीड़ा—६६
आँखों के विकार पर—७९
आग से जलने पर—४०, ६६, ७४, ८३, ९३,१३३, १६१, १६४, ३१२
आग से जले हुए घावों पर—७०

कान में कीड़ा गया हो, तो—७७
कान में कोई जानवर गया हो, तो—२८०
कान में धूल जाने पर—९९ १०१
कानों का बहना—१४९, २१८, २४४
कानों का मैल—१३९
कानों की गरमी पर—२०८
कानों की दाद पर—२०९
कानों की पीड़ा में—७५, १०८
कानों में शब्द, धूल और बहरेपन पर—७७
कान्ति—४०
कामला—३४, १०४, ११३, ११७, १३१, १९१, २३० ३१९
कामला पाण्डु हलीमक श्वास,उदर,जीर्णज्वर और गलरोगादिकों में-१०६
कुचला का विष—२४१
कुत्ते का विष—७०, १०५, १०९
कृत्रिम विष पर—९१
कृमि पर—८०, १३०, १३४, १४२, १७७, १८४, १८५, २१६, २३०
१५४ २८२, २८६
केला से अजीर्ण होने पर—१९२
कोढ़ पर—२१२,
कीड़ों के विष पर—२९६
कोष्ठबद्धता और विष पर—२२०

ख

खटमलों का नाश करने के लिए—११६
खनखजूरा के काटे पर—२०६
खारुवा के दोष—१७५
खांसी—३४ ३९ ७४, ११४, १३५, १३०, १३८ १४४

खाँसी और जुकाम पर—१०
खाँसी और श्वास—११० १८१, २६८, ३०० ३२५
खाँसी, दमा और कफज्वर पर—१११
खाँसी, दमा और ताप—३८
खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि और अरुचि पर—३१४
खुजली और कुष्ठ पर—१०१
खुजली और दाद पर—१९०
खुजली, चेचक के दाग और फोड़े पर—२१२
खुजली पर—४५, १५६ १९७, २०२ २१७ २२१, २४४ ३३०
खूनी बवासीर—७१, ८५, १०४ १४१

ग

गठिया पर—५४ ६३, ११०, २५६
गण्डमाला—५० ७०, ११५, १२१, १४१ १५५ १७०
गण्डमाला फोड़ने के लिए—११५
गन्धक के विष पर—२०७
गरमी की छोटी-छोटी फुंसियों पर—२७४
गरमी में—१२१, १६८, ३११, ३४३
गरमी में धातु गिरता हो तो—२३९
गरमी से रक्त खराब होने पर—३१२
गरमी के सिर-दर्द पर—८५, १९६
गर्भधारण के लिए—२१८
गर्भपात—३७
गर्भस्राव के लिए—७१
गर्भाधान के लिए—७७, २१८
गर्भाशय की शुद्धि के लिए—६१, २१७
गर्भस्थिति के लिए—९०

जुकाम—११, ९९, ५६, २९८, ३२५, ३३८
जुकाम और सिर-दर्द—१११
जुकाम के लिए—६०
जोड़ों के दर्द पर—१४२
ज्वर—५८, ११२, ३३१
ज्वरजन्य शारीरिक दाह पर—३११

ठ

ठण्डक के लिए—२११

त

तूतिया का विष—२२१
तृषा—७०, २११, २६६, ३०३, ३१२, ३२३, ३३२
तृषा और मुँह के फीकापन पर—१८५
तृषा-शमन के लिए—३०४

थ

थकान दूर करने के लिए—२९८
थकावट दूर करने के लिए—३४४

द

दन्तरोग—४५, १०४
दमा पर—३८
दस्त के लिए—२४९, ३९१
दस्त रोकने के लिए—३३३
दाँतों का दर्द—५१, ११३, २११
दाँतों की मजबूती के लिए—२०६
दाँतों की मैल—७८
दाद पर—१०१, २००, २८२
दाह—९८, १०१, ३१९, ३३३, ३३४

दाह की शान्ति के लिए—३१०
दाह और अतिसार पर—१७७
दाह और तृषा पर—३३१
दाह और पित्त की शान्ति के लिए—३१७
दाह और प्रमेह पर—१९३
दाह और प्यास पर—२०७
दाह पर—३७, ५९, ६७, ११५, १९७, १९६, १७०, २०३, २५९, २७९, ३०५, ३३१ ३३९
दाहयुक्त मूत्रकृच्छ्र के लिए—३९३
दूध की कमी के लिए—४६
दूध बढ़ाने के लिए—३३४

ध

धतूरा और कनैल के विष पर—२९६
धतूरा और रसकपूर का विष—३३१
धतूरे का विष—७०, ८९, १७५, २९६
धनुर्वात और पक्षाघात पर—२०३
धातु गिरने पर—७२, २८७, ३२२
धातु-पुष्टि—१८, ४९, २८६, २८८, ३२९
धातु-पुष्टि और पित्त शमन के लिए—२०३
धातु-पुष्टि और शक्तिवर्द्धन के लिए—१९३
धातु-वृद्धि और मस्तकरोग पर—२०७
धातुरोगी के लिए—३१३
धातुक्षय पर—२६६
धुएँ से नेत्र विकार में—३२३

न

नकसीर और सन्निपात में यदि मुँह से खून गिरता हो, तो—१८७

नकसीर पर—४१, १०० २११
नए प्रमेह पर—१७१
नस फूलने पर—१६०, २४१
नष्टवायु और गरमी में—११४
नस विकार पर—२०१
नहरुआ पर—३५, ७१, ११५, १४५, १४९, १९०
नहरुआ में यदि छाले पड़ गए हों, तो—४२
नागफनी के विष पर—२१६
नादीमग में—१४६, २४२
नासूर—७७
निद्रा न आने पर—७४
निद्रानाश रोग पर—१४५, २११
नेत्ररोग में—१४९
नेत्रों की खुजली में—१०४
नेत्रों की जलन और कम दीखने पर—११८

प

पथरी—५२ १२१, १२८, १५१ १५५, १६८ २१९
पथरी और शर्करा पर—११०
पथरी और सूजन में—१११
पसीना—४० ४१, ४९, ५१, ५८, ६१, २०१
पसीना लाने के लिए—५९
पागल कुत्ते का विष—१११ १९० २११
पाचन के लिए—२२०
पाण्डुरोग—४९, २१५
पाण्डुरोग, शोथ और संग्रहणी पर—११८
पारदजन्य दोष में—१७१

पारा का विष—१०८, ३४२
पित्त और पित्त विकार की शान्ति के लिए—२६१
पित्तजन्य वमन में—९९
पित्तजन्य दाह पर—७९
पित्तजन्य फुन्सियों पर—७०, ३१९
पित्तजन्य रोगों पर—१८५
पित्तजन्य वमन—१४२
पित्तज सिर-दर्द पर—३११
पित्तज्वर—६६, ६०, ६८, १३५, १६४, १६९, १७७, १८७, ३१३,३६७
पित्तज्वर और अन्तर्दाह पर ३३१
पित्तज्वर, तृषा और दाह पर—११४
पित्त पर—२७५, २८०
पित्तरोग पर—१९२
पित्त-विकार और हृद्रोग पर—३६०
पित्त विकार पर—१३४, १७१, २६७, २७५, २९७, ३४४
पित्त-शान्ति के लिए—२४१
पित्त-शमन के लिए—२२१, २३९, २६८, २००, ३०६
पित्तातीसार पर—५७
पीड़ा पर—९५
पीनस रोग में—२०७
पीनस पर—३३४
प्लीहा और गुल्म पर—२५८
प्लीह में—१५०, २८२
प्लीह यकृत—४९
पुष्टि के लिए—२५७
पुष्टि, बल तथा वीर्य-वृद्धि के लिए—१९६

पेट की जलन और प्यास पर—५९
पट की दाह पर—१५१
पेट के वायु पर—१०९
पट के भारीपन पर—१९५
पट के शोथ पर—५७
पेट में बाल और लोहा जाने पर—१०५
पेट में बाल गया हो, तो—१५४
पेशाब की जलन पर—२७, ६०, ९५, ८५
पेशाब की जलन, रुकना और पथरी पर—७४
पेशाब के समय जलन हो तो—७१
पेशाब के साथ धातु गिरने पर—११८
पैरों की कमजोरी पर—२०१
प्रमेह एवं मूत्रमार्ग के सब रोगों पर—७५
प्रमेह और दाह पर—१७४
प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र पर—११२
प्रमेह पर—७०, ८५, १०९, १५१, २००, २२५, २२९
प्रपाहिका और रक्तपित्त की शान्ति के लिए—२९८
प्रसव के बाद रक्त-स्राव रोकने के लिए—७१
प्रसव के लिए—१७, २१६
प्रसूता के लिए—११२
प्रसूता को दूध लाने के लिए—९८
प्रदर और धातु-विकार पर—१९२
प्रदर पर—१९१, २०४, २१९
प्रदर, मान और मूत्रातिसार पर—१९१
प्यास—६५
प्यास अधिक लगने पर—५९

फ

फोड़ा—३४, ३८, ४२, ५१, ५७, ६६, ८८, १५१, १६४
फोड़ा अथवा गाँठों का दर्द—१४५
फोड़ा और खून की कमी में—१५७
फोड़ा और घाव पर—२५८

ब

बदमाश फोड़ा ठीक करने के लिए—२४४
बद और फोड़ा-फुन्सी पर—७४
बद पर—३५, १६८
बद शीघ्र फोड़ने के लिए—२०१
बर के विष पर—७३
बरतोड़ पर—२४०
बल वीर्य और मस्तिष्क शक्ति के लिए—२०८
बवासीर पर—७२, ११९ १५१, १५४, १५५,१५९, १६०, १७०,१७८,
२०२, २२५, २३३, २८२, २९९, ३०६, ३०८
बवासीर और रक्तातीसार पर—१६३
बल एवं वीर्य-वर्धक—४०
बल और वीर्य-वृद्धि के लिए—२१०, २००
बल एवं वीर्य-वृद्धि के लिए—४२, २०७,
बल-वृद्धि के लिए—४३, ५४, ७५, १२६, २१०, २५६
बवासीर के मस्सों पर—७४, १३१
बहिरेपन पर—२८६
बहुमूत्र—५७, ७२, ९८, १११, २५४, ३२५
बाघी पर—१२१, १२८
बाघी, फूटा फोड़ा और उपदंश के घावों का मरहम—११९
बालकों का आमातीसार—२८६

बालकों के उदर-शूल, आमातीसार और अजीर्ण पर—१११
बालकों का गला बैठ जाने पर—२०९
बालकों का पेट बढ़ जाने पर—१५०
बालकों का बल—९०
बालकों का हाथा-बाबा—१०१
बालकों की अण्ड-वृद्धि पर—४१
बालकों की आँव आने पर—११२
बालकों की खाँसी में—०७
बालकों की छाती के दर्द पर—१२९
बालकों की छाती पर कफ जमगया हो, तो—११२
बालकों के दूध फटकने पर—२१०
बालकों की पाचन-शक्ति—३०
बालकों को दीतला की गरमी में—१९९
बालकों की संग्रहणी पर—२८०
बालकों के अतीसार और संग्रहणी पर—१८४, २१०
बालकों की खाँसी और दमा पर—१८४, ११२
बालकों के दाँतजन्य रोगों पर—१९१
बालकों का पेट फूलने पर—१४१
बालकों के कफ-विकार पर—११२
बालकों के कमज़ोर दाँतों पर—९१
बालकों के रक्तातीसार पर—०१ ११०
बालकों को शान्ति के लिए—१०१
बिगड़ हुए फोड़ों पर—११
बिच्छू और सोमल के विष पर—९०
बिच्छू का विष—९५, १०४, १२९, १४०,१११,१९९,२४० १२८,११८
बिच्छु के डंक पर—११५, १०४

बिल्ली पर—१७७
बिल्ली के नोच हुए स्थान पर—७१
बैल का पैर सूजने पर—२२१
बेहोशी में—२०१

भ

भगन्दर—११९, १४१
भ्रम और पित्त विकार पर—११८
भ्रम और पित्त पर—११५, १२९
भ्रम और मूर्छा में—७५
भस्मक रोग—६६, १६९, १९१, १४०
भाँग का नशा—४४, ६५, २११, २१७
भिलावाँ आदि का विष—१९७
भिलावें का धुआँ लगने और उसका तेल आँखों में पड़ने पर—१०८
भिलावें का विष—७१, १०१
भिलावें के छालों पर—२०६
भिलावें से शरीर खराब होने पर—२२१
भूख कम लगती हो, तो—२१६
भूख लगने और पीले रंग के पेशाब की शान्ति के लिए—२६२
भोजन में सोमल का विष मिलने पर—१९२

म

मकड़ी पर—१५५
मदार के विष पर—२२६
मन्थर पर—२६८, ३१९, ३१७
मन्दाग्नि—१४, १७, ७०, १००, १०६, १२५, १२६
मन्दाग्नि, मलकोष्ठता, यक्ष्मा, ज्वर, खाँसी, श्वास, मूर्च्छा, तृषा, जुकाम और बवासीर पर—२६८

मन्दाग्नि, प्यास, विषमज्वर और अजीर्ण पर—१११
मधुमेह—२००, २०५, २०६
मल-मूत्र की कमी—१७९
मरदार सिंह के विष पर—१५५
मलशुद्धि के लिए—२१७
मस्तक-शूल और नाक से खून गिरने पर—१००
मस्तक-वायु में—७९
मस्तक की गरमी और पित्त की शान्ति के लिए—११७
मस्तिष्क की गरमी पर—२०७
मामूली ज्वर में—१०८
मासिकधर्म—५१, १२१
मासिकधर्म सम्बन्धी पीड़ा पर—८०
मासिकधर्म लाने के लिए—१५६, २५१
मुँह आने पर—१८७
मुँह की झाँई पर—६६
मुँह के छालों पर—९५, १५०, १७९, १८७, २११
मुँह फटने पर—२१०
मुँहासों पर—७१, २५०
मूत्र कष्ट, दाह, शोथ, अश्मरी और अरुचि रोग पर—११८
मुख की दुर्गन्धि और फीकापन में—८०
मुखपाक और दाँतों के हिलने पर—७०
मुखपाक पर—९५
मुखरोग पर—२०५ २०९ २१९
मुरदासंग के विष पर—१८५
मृगी में—११९, ११७, ११३, १५१
मृत गर्भ बाहर निकालने के लिए—७९

मूँगफली के भगौग पर—३०९
मृत और गृत गभ निकालने के लिए—२५९
मूत्रकृच्छ्र में—१२१, १२७, १९१, २७०, २६७, ३२१, ३३३, ३२९
मूत्रकृच्छ्र और धातु क्षीणता पर—१३८
मूत्रकृच्छ्र और प्रमेह पर—२६०
मूत्रकृच्छ्र और मूत्राश्मरी पर—२६८
मूत्रकृच्छ्र और रक्तपित्त पर—१९९
मूत्रकृच्छ्र और शर्करा रोग पर—२९७
मूत्र-विरेचन के लिये—१२१, २६६
मूत्र-शुद्धि और मेत्रों की जलन पर—१०९
मूत्राश्मरी और शुक्राश्मरी—७१
मूत्राघात—१२०, १२१, १५५, १९२, २३६, ९५९, ३३१, ३३८
मूत्राघात और दाह पर—१९
मूत्रावरोधक दवाओं में—१९८
मूत्रावरोध पर—१९२
मूर्छा पर—११७, २६६
मूषा के विष पर—२२५, २३९
मेदरोग पर—२८८
मैनसिल के विष पर—२९६
मोच पर—७२, १४७
मोच, गुमडी और चिपाई पर—७७
मोतीझरा ज्वर में—५८

य

यक्ष्म और क्षीद में—१३८
यकृत पर—७९, ११९, १२५, २१९
यकृत, प्लीहा और वातगुल्म—१११

पट्टस, हृदि, वात और रक्तगुल्म पर—२८१

र

रतौंधी—१०४, १११
रक्त का पचाव, पूय गर्भवती की उल्टी और चक्कर पर—७५
रक्तक्षय, छाती का दर्द और दाह पर—१४०
रक्तगुल्म और रक्तस्राव के लिए—७१
रक्तज और पित्तज शिरारोग पर—२९८
रक्तजन्य मूत्र में—११०
रक्तपित्त—१५, ७१, ४५, ५२, ८८, ९१, १६०, १७८, १८०, १९६, २०४, २११, ३११
रक्तपित्त, अम्लपित्त, ऊर्ध्वपित्त, और गरमी की शान्ति के लिए—२६१
रक्तपित्त और अम्लपित्त में—१५०
रक्तपित्त की शान्ति के लिये—२९०
रक्तपित्त, तृषा और दाह—३०
रक्तप्रदर और खून के दस्तों पर—६६
रक्त प्रमेह पर—१९८
रक्तप्रदर रक्तार्श और प्रमेह पर—३२८
रक्त विकार में—५०
रक्त-शुद्धि के लिए—६२
रक्तातिसार—७२, ९८, १६८, १७० १७८, १७९, १८५, २४०, २५०, २०४, २८०, ३०८, ३०९
रक्तातिसार और विसूचिका पर—२३०
रक्तार्श पर—१३९ ३०९
रक्तार्श और रक्तप्रदर पर—१००
राजयक्ष्मा—९०
रुके हुए मासिकधर्म पर—७०

ल

लँगड़ापन पर—१५१
लू लग जाने पर—९८, १२५, १०९
लू से बचने के लिए—११२

व

वत्सनाग—६०, १६७, २०५
वद्धकोष्ठता पर—६६, ७२, ९१, १०६
वमन और अतीसार पर—२८०
वमन और दस्त पर—२१७
वमन पर—६०, ८०, १९३, २१७, २२२, २४८, २०५, ३२५, ३२९
वर्षा में विवाइ फट जाने पर—६५
वात कफज्वर में—१५५
वातगुल्म—८७, १६४, २८६
वातज अरुचि पर—२९९
वातजन्य पीड़ा पर—९८
वातजन्य मस्तक-शूल पर—१३९
वातज शोथ पर—२३३
वातज्वर में—८३, ८७, ९१, ३१३
वात, पित्त, प्रदर और रक्तपित्त पर—२५१
वात विकार—४०, ९०, ११३
वातव्याधि—२००
वायु की पीड़ा पर—७७, ८४
वायु-गोला—७३
वायु-गोला, और उदर शूल पर—७३
वायु तथा कृमि पर—३३४
वायु में—१४९, १५४

शिरोरोग पर—२००
शिरोरोग और ज्वर में—१०४
शीघ्र प्रसव के लिए—१०१, १५०, १९१
शीतज्वर—९९, १०९, १२२, १४१, २०१
शीतज्वर और सार्वकालिक ज्वर—१३४
शीतपित्त—१११, २४१, २५०, ३३०
शीतला—१९२
शीतला की गरमी दूर करने के लिए—१६९
शीतला, पित्त, और अरुचि पर—२३२
शीत, विषम और सामान्यज्वर पर—३३३
शूल—५३, ११७, १९९, २१७, २१५, ३६०
शूल, अजीर्ण, यकृत गुल्म और प्लीहा—३८
शोथ—३४, ५५, ७८, ८०, ९९, १०१, १०५, १०९, ११३, ११९,
१३५, १६८, १९१
शोफोदर पर—१०४, १२९, ३३०, २४४, २८०
शोष रोग पर—६५
श्लीपद पर—७८
श्वास पर—७९, १९०
श्वेतप्रदर—५३

स

संग्रहणी, बवासीर, उदररोग, प्लीह, मन्दाग्नि और गुल्म पर—३३८
संखिया का विष—१५०, १९१, ३३८, ३४१
संखिया, कुचिला, वत्सनाभ और सुवर्णनाल आदि के विष पर—२९९
संग्रहणी, अतीसार और बवासीर पर—३०५
संग्रहणी पर—१७८, १८४, ३०१, ३००
सड़े घावों पर—७२, ७५

हिचकी और वमन पर—१९७
हिचकी और श्वास पर—४२, २१०
हैजा पर—१४३, २२१
हृद्रोग में—११९, २००
हृद्रोग, शूल और क्षय पर—२१८

क्ष

क्षत श्वास पर—२१५,
क्षतजन्य श्वास पर—२१६
क्षय के बाद शक्ति आने के लिए—२०८
क्षय रोग में—१००

त्र

त्रिदोष में—२१२
त्रिदोष की शान्ति के लिये—१९२
त्रिदोषजन्य वमन—५१, १८५, १८८
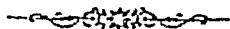
आहार-विज्ञान

आरम्भ

संसार में जीवमात्र के लिए आहार एक बहुत ही आवश्यक वस्तु है। वायु-जल बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता, परन्तु आहार बिना कुछ दिन जीवित रह सकता है। यह जीवन भी अनित्य है, क्योंकि आहार न मिलने से बहुत से शारीरिक तन्तु ऐसे हैं जो एकदम नष्ट हो जाते हैं। ये पुनः किसी प्रकार भी उत्पन्न नहीं किए जा सकते। जिस प्रकार आग में पूर्ण रूप से जल पड़ जाने पर वह बुझ जाती है, उसी प्रकार आहार के बिना प्राण वायु भी नष्ट हो जाता है। जिस तरह शुद्ध आहार जीवनी-शक्ति को बढ़ाता है उसी तरह विकारयुक्त आहार जीवनी-शक्ति को नष्ट भी कर देता है। आहार कई प्रकार का होता है। यह समझ लेना आवश्यक है कि कौन सा आहार हमारे जीवन को सुखी बना सकता है और उसके विषय में कौन-कौन सी बातें आवश्यक हैं।

भोजन क्यों करना चाहिए ?

एक साधारण सी मशीन भी बिना तेल दिए ठीक-ठीक काम नहीं करती। अतएव यह स्पष्ट है कि जीवधारीमात्र के लिए आहार नितान्त आवश्यक वस्तु है। मनुष्य चौबीसों घण्टे कुछ-न-कुछ काम किया ही करता है। कुछ लोगों को इस वाक्य से आश्चर्य होगा, परन्तु यह आश्चर्य की बात नहीं है। मनुष्य जिस समय सोता है, उस समय भी मस्तिष्क कुछ-न-कुछ काम करते रहा करता है। यदि मस्तिष्क और फेफड़े अपना काम करना बन्द कर दें, तो मनुष्य किसी प्रकार भी जीवित नहीं रह सकता। ईश्वर ने ये दोनों मशीनें ऐसी बनाई हैं जो गर्भ में जीव का जन्म होने से लेकर मृत्यु समय तक चलती ही रहती हैं। आहार के विषय में महर्षि सुश्रुताचार्य कहते हैं—

> आहारः प्राणिनः सद्यो बलकृद्देहधारकः ।
> आयुस्तेजःसमुत्साहस्मृत्योजोऽग्निविवर्धनः ॥

अर्थ—आहार प्राणियों के लिए सद्य बलकारक, देहधारक तथा आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, ओज और अग्निवर्धक है।

शरीर में कई प्रकार के पित्त उपस्थित हैं। उनमें से पाचक पित्त का कार्य भोजन पचाना है। इसी पाचक पित्त को जठराग्नि कहते हैं। जिस समय भोजन किया जाता है उस समय पहले, मुँह में लार द्वारा पाचक पित्त आकर भोजन का परिपाक आरम्भ कर देता है। भोजन पेट में आने पर अन्न-नाल या आमाशय से निकल

कर पुरीषस्थली में चला जाता है। शेष परिपाक वस्तु का सबसे पहले रस बनता है। इसके विषय में महर्षि सुश्रुत कहते हैं—'रसासृङ्मांस मेदास्थिमज्जाशुक्राणि धातवः।' इन्हीं सब पदार्थों से शरीर बना है। प्रतिदिन, प्रतिक्षण काम करते रहने से शरीर का भाग क्षीण होता जाता है। अतएव यह विचारणीय विषय है कि यदि किसी पात्र में जल भरकर रख लिया जाय और उसमें से हर समय थोड़ा-थोड़ा बराबर निकाला जाय, तो कुछ समय में वह पात्र जल-विहीन हो जायगा। अगर उसमें थोड़ा-थोड़ा होता और निकाला जाय, तो निश्चय ही वह कभी खाली नहीं हो सकता। इसी तरह यदि शुद्ध भोजन किया जाय, तो शरीर कभी खराब नहीं हो सकता। यह एक दूसरी बात है कि जिसका आदि है, उसका अन्त भी है। इस शरीर का कभी-न-कभी पात अवश्य होगा।

अब यह समझना चाहिए कि रस के बाद रक्त बनता है। रक्त एक तरल धातु है। किन्तु रक्त से ही मांस बनता है। इसलिए उस तरल पदार्थ के तत्त्व का बन्ध बनना आरम्भ हो जाता है। काम करने से शरीर की सभी नसें तेजी से अपना काम करने लग जाती हैं। रक्त-वाहिनी शिराओं में रक्त तीव्र गति से प्रवाहित होता है और वे मांस धातु के लिए बने हुए रक्त-कण टूट जाते हैं, पित्त बढ़ जाता है। जब तक पित्त शान्त न होगा, तब तक वे रक्त के कण पुनः नहीं बँध सकते। अतएव पित्त की शान्ति के लिए कुछ आवश्यक उपाय अवश्य करना चाहिए। वह उपाय कोई दूसरा नहीं, केवल थोड़ा सा आहार है। भोजन के बाद पित्त शान्त हो जाता है

और रक्त-कण पुनः बनने और मांस धातु बनाने लग जाते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि जो लोग किसी भी समय में शारीरिक अथवा मानसिक श्रम अधिक करते हैं और पूरी मात्रा में भोजन नहीं मिलता, तो वे शक्ति-हीन, दुर्बल, अशक्त और निस्तेज हो जाते हैं। उपवास करने से भी शरीर का वजन घटता है। इसका कारण यह है कि जठराग्नि का काम परिपाक करना है, जो कुछ भी मिलेगा वह पचाएगी। आहार न मिलने पर रस, रक्त बनना, तो बन्द हो ही जायगा, साथ ही जठराग्नि शरीर की चर्बी आदि पदार्थों का परिपाक कर बाकी अंश मलद्वार से निकाल देगी। दूसरे कम भोजन करनेवालों का वजन भी घटता है। इसका कारण यह है कि जठराग्नि शरीर के माफिक ही अन्न का परिपाक करती है। यदि उसे अन्न कम मात्रा में मिलेगा, तो वह शरीर के अन्य धातुओं का परिपाक करेगी।

अधिक चिन्तातुर मनुष्य पूर्ण आहार करके भी कभी बलवान और हृष्ट-पुष्ट नहीं हो सकता। बाल्यावस्था से पचीस वर्ष की अवस्था तक शरीर बढ़ता है। उस समय का आहार शरीर को अधिक बढ़ाता है। अधिक मात्रा में किया हुआ भोजन भी पाचन शक्ति तीव्र होने से परिपाक को प्राप्त हो जाता है और शारीरिक अवयव बढ़ जाती है। पचीस वर्ष के बाद पाचन-शक्ति में उतनी तीव्रता नहीं रह जाती। बस, यही कारण है कि इस समय में मनुष्य का शरीर एकदम आहार की मात्रा पर निर्भर करता है। पाचक रस के ठीक रहने से सभी शारीरिक क्रियाएँ ठीक रहती हैं। शरीर का ...

मान भी उचित मात्रा में रहता है। तापमान के बढ़ने से रोग और घटने से मृत्यु होती है। गरमी, बरसात और जाड़ा हर मौसम में शरीर का तापमान रहता है। प्रत्यक्ष रूप से शरीर गरम नहीं मालूम पड़ता; परन्तु भीतर तापमान अवश्य रहता है। यह तापमान मृत्यु के पश्चात ही शान्त होता है। मृत्यु के समय से थोड़ी ही देर पहले तापमान घटने लगता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि हर समय श्वास में गरमी अवश्य रहती है; परन्तु मृत्यु के समय वह श्वास के साथ की गरमी नष्ट हो जाती है और शीतल वायु के समान यह श्वास भी शीतल मालूम पड़ता है। भोजन प्राण की रक्षा के लिए किया जाता है। उपर्युक्त विवेचन द्वारा अवश्यमेव समझ में आगया होगा कि भोजन क्यों करना चाहिए ?

आहार का परिमाण

यह निश्चय हो जाने पर कि मनुष्यमात्र के लिए आहार आवश्यक है। उसके बाद यह प्रश्न उठता है कि आहार किस मात्रा में करना चाहिए। साधारणतया पाश्चात्य विद्वानों ने मनुष्य के वजन पर आहार का परिमाण बताया है। किन्तु भारतवर्ष अभी इतना शिक्षित नहीं हुआ है कि वह इसका ठीक-ठीक अंदाज लगा सके। फिर प्रतिदिन का भोजन वजन करके खाना असाध्य ही है। भारतीय परिवारों में यह कभी सम्भव नहीं। उनके यहाँ कोई भोजन पकानेवाला बावर्ची नहीं होता। प्राय घर

की स्त्रियाँ ही भोजन पकाती हैं। फिर अशिक्षित स्त्रियाँ वजन का भोजन नहीं मिला सकतीं। अमीरों के यहाँ का भोजन ऐसा हो है, जिसे बिना वजन किए भी परिमाण से अधिक नहीं हो सकता। गरीब भारतवर्ष में अभी इतना पैसा ही कहाँ है? जो बच्चे समय से भोजन और अपना काम कर सकें। फिर भी गरीब हो या अमीर सबके लिए शुद्ध-शुद्ध संयम करना आवश्यक है। बिना संयम के अवश्यमेव स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है।

प्रतिदिन केवल एक ही चीज खाना अथवा एक ही मात्रा में खाना रोग का निमंत्रण देकर बुलाना है। जिस प्रकार रुचि-परिवर्तन हो और भूख लगे उसी तरह चीजें बदलकर खाते रहना चाहिए। बिना खाए जिस प्रकार प्राण नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार भूख से अधिक खाने से भी प्राण नष्ट हो जाता है। अब लघुपाकी और गुरुपाकी भोजन के विषय में भी थोड़ा विचार करना चाहिए। जितनी देर में लघुपाकी भोजन पूर्ण रूप से पाचन हो प्राप्त होता है उतनी देर में गुरुपाकी भोजन का थोड़ा हिस्सा ही पाक को प्राप्त होता है। अतएव लघुपाकी और गुरुपाकी भोजन का विचार करके अपनी भूख से थोड़ा कम खाना चाहिए। यदि लघुपाकी भोजन भी परिमाण से अधिक खाया जाएगा, तो वह बीमारी का कारण होगा। भोजन भी विचार करके खाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति भलीभाँति समझता है कि भोजन की इतनी मात्रा हमारी क्षुधा को शान्त कर सकेगी। भोजन का विचार करना हि आयुर्वेद में कहा है —

द्वौभागौ पूरयेदन्नैर्भागमेकं जलेन तु।
वायुसञ्चारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत् ॥

अर्थ—दो भाग अन्न से और एक भाग जल से पूर्ण करना चाहिए; वायु-सचार के लिए चौथा छोड़ देना चाहिए।

इस प्रकार भोजन के परिमाण के चार भाग किए गए। अब जो दो भाग अन्न से पूरे किए जाते हैं उनमें भी विभाग करना चाहिए। केवल अन्न से कब्जियत और अजीर्ण की शिकायत हो सकती है। इसलिए उन दो भागों को तीन भागों में विभक्त कर देना चाहिए। एक भाग अन्न, एक भाग शाक और एक भाग दुग्ध तथा मट्ठा। इस प्रकार साधारण विभाग भारतीयों के लिए विशेष हित-कर सिद्ध हुआ है। शाकों में हरे पत्र-शाक अधिक लाभदायक होते हैं। मसाले आदि का समावेश इसमें नहीं किया गया है। कारण अधिक मसाला खाना हानिकारक है। दूसरे मैं स्वयं भी इतनी सूक्ष्म दृष्टि से भोजन का विभाग करने को तैयार नहीं हूँ। कारण इतना सूक्ष्म विभाग केवल कोरा उपदेश होता है और सब साधारण इसे कार्य-रूप में परिणत भी नहीं कर सकता। आहार की मात्रा भूख के ऊपर निर्भर करती है।

हानिकारक और संयोग-विरुद्ध

ससार के सभी पदार्थ कभी हितकर नहीं हो सकते, किन्तु खाद्य पदार्थों में कुछ ऐसे हैं जो निरन्तर सेवन करने से प्रायः हानि

पहुँचाते हैं। दूसरे कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो एक दूसरे के साथ मिलने पर हानि पहुँचाते हैं। जैसे सरसों का शाक, भेड़ का दूध, कटहल, उड़द और नया गुड़ आदि।

दूसरे हानिकारक पदार्थ वे हैं जिन्हें संयोग-विरुद्ध कहना चाहिए। संयोग-विरुद्ध का अर्थ यह है—जो एक दूसरे के साथ मिलकर बिगाड़ पैदा करें। इन संयोग-विरुद्ध पदार्थों का प्रभाव कभी-कभी तत्क्षण भी दिखाई पड़ता है। कोई-कोई तो पेट के भीतर मिलने पर भी अपना प्रभाव दिखाते हैं। जो अलग-अलग अमृत का काम करते हैं वे ही एक में मिलकर विष से भी तीव्र हो जाते हैं। इनमें से कुछ ऐसे हैं जो झट प्राण-नाश के लिए तैयार हो जाते हैं और कुछ ऐसे हैं जिनसे रोग पैदा हो जाते हैं।

अतएव यह अवश्य समझ लेना चाहिए कि कौन-कौन पदार्थ मिलकर संयोग-विरुद्ध होते हैं। शहद और घी सममात्रा में, मट्ठा और शहद, गरम किए हुए पदार्थ में शहद, गरमागरम खाने दही के साथ और तेल के बनाए पदार्थ काँजी के साथ कभी भूलकर भी न खाना चाहिए। मूली के साथ भी शहद न खाना चाहिये। आम को छोड़कर दूसरे फलों के साथ दूध, नीबू को छोड़कर खट्टे पदार्थ, नमक या नमक के बने पदार्थ और दूध, दूध के साथ कुलथी, मूली और लहसुन न खाना चाहिए, उड़द के साथ मूली, नाड़ी के शाक के साथ दही, केला और ताड़ के फल के साथ दही, बड़हल के साथ उड़द की दाल, दूध शहद, शहद के साथ खिचड़ी, मकोय के साथ गुड़, मकोय के साथ पीपल, मिर्च और नाड़ी का शाक,

दूध के साथ मछली, दूध के साथ देशी शराब, जल के साथ घी या तेल, अदरख के साथ पकाया मकोय का शाक, घी और तेल एक साथ मिलाकर तथा खिचड़ी और खीर एक साथ मिलाकर न खाना चाहिए। खरबूजे के ऊपर दूध पीने से हैजा होता है।

इन संयोग-विरुद्ध पदार्थों के खाने से रक्तपित्त, कुष्ठ, पाण्डुरोग, वमन, अरुचि, खुजली और वातरक्तादिक रोग पैदा होते हैं। यदि इन पदार्थों के खाने से किसी प्रकार की शिकायत तुरत न मालूम पड़े तो यह न समझना चाहिए कि इससे हानि न होगी। आज नहीं तो कल जरूर होगी। बाकी नहीं रह सकती। यदि कभी गलती से संयोग-विरुद्ध पदार्थ खाने में आजाय, तो तुरत उसे कै करके निकाल देना तथा उपवास करना चाहिए।

अन्नाहार, फलाहार और मांसाहार

साधारणतया आहार तीन भागों में विभक्त किया जाता है— अन्नाहार, फलाहार और मांसाहार। इन तीनों में अब विचारणीय विषय यह है कि कौन सा आहार मनुष्य के लिए है। वह कौन सा आहार कर संसार में जीवित रह सकता है। मनुष्य के लिए सर्वोत्तम आहार वानस्पतिक ही है। अतएव अन्नाहार और फलाहार ही मनुष्य के लिये श्रेष्ठ और श्रेयस्कर है। आगे के वैज्ञानिक तत्व कोष्ठ से यह पता लग जायगा कि मांसाहार मनुष्य की जीवनी-शक्ति को नष्ट करने का एक मात्र उपाय है। अन्नाहार और फलाहार मनुष्य

के शरीर में सभी धातुएँ बढ़ाते हैं और मांसाहार मांस के सिवा कुछ नहीं बढ़ा सकता। मनुष्य की पाचक अग्नि अन्न, फल, दूध और जल पचाने के लिए है। मांस पचाने की शक्ति उसमें नहीं है। आज भी भारत का सबसे बड़ा भाग निरामिष भोजी ही है। केवल मांस बढ़ाकर मोटा बनने के लिये मांसाहार करना अत्यन्त ही निकृष्ट कार्य है। मांस से कहीं अधिक शक्ति हमारे यहाँ के सूखे फलों में है।

प्रकृति ने हमारे लिए जो खाद्य बनाए हैं, उन्हीं को खाकर हम सुखी रह सकते हैं। मांस हमारे लिए अखाद्य वस्तुओं में है। जो प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करेंगे वे अवश्य ही दण्डित होंगे। वैज्ञानिकों ने शरीर-रचना के साथ दाँतों की भी व्याख्या की है और यह सिद्ध किया है कि मनुष्य के दाँत किसी प्रकार भी मांस खाने लायक नहीं हैं। कुत्ते और हिंसक जन्तुओं के ही दाँत मांस को चबा सकते हैं। लम्बे और नुकीले दाँतों में मांस का फाड़ने की शक्ति होती है। मांस को किसी प्रकार मसाले और नमक से गलाकर खाना और भी उसे खराब कर देना है। कच्चा मांस खाने का विरला ही उदाहरण मिल सकता है। मनुष्य की अपेक्षा और जीव प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन नहीं करते। इसका एक मात्र कारण यह है कि जितना भय और संयम जन्तुओं में होता है उसका शतांश भी मनुष्य में नहीं होता।

मांसभक्षण से कामोत्तेजना अधिक होती है। मांस से ही शराब की भी लत लगती है। कामोत्तेजना से मनुष्य विषय की

और असमर होता है। बस यहीं से उसके शरीर में राजयक्ष्मा के कीटाणु पैदा होते हैं। कभी-कभी तो मारने से पहले पशु को जो रोग होता है, वही रोग मासभक्षण करने से मांसभक्षी मनुष्य को भी हो जाता है। मांसभक्षण से शारीरिक और मानसिक दोनों शक्तियाँ खराब हो जाती हैं। भारतीयों के लिये मांसभक्षण कभी कल्याण-कारक नहीं हो सकता। सात्विक अन्नाहार और फलाहार से मस्तिष्क जितना ही शान्त होकर कार्य करता है, मांसाहार से मस्तिष्क उतना ही उत्तेजित रहता है। मेरा विश्वास है कि आज भारत में यदि सभी लोग मांसभक्षण छोड़ दें, तो ये साम्प्रदायिक और जातीय कलह एकदम दूर हो जायँ। वानस्पतिक आहारों से मानसिक शक्तियों का विकास और आत्मा की उन्नति होती है। भारतीयों को जरा एक बार गम्भीर विचार करना चाहिए कि हम गरीबों को भर पेट अन्न तो मिलता ही नहीं और मांस खाने के लिए तरह-तरह के कष्ट उठाकर पैसे का अपव्ययकर रोग मोल लेते हैं। आजकल संसार में जितनी हत्याएँ मांस खाने के लिए होती हैं, इन सबों का पाप हिन्दू जाति के ही सिर है। भारत में हिन्दुओं का ही बहुत बड़ा भाग मांसभक्षक है। यदि आज ये लोग मांसभक्षण बन्द कर दें, तो निश्चय ही कल दिन और समाज के लोग भी मांसभक्षण बन्द करना शुरू कर दें।

कुछ दलीलें ऐसी भी पेश की जाती हैं कि आयुर्वेद में ऋषियों ने मांस की बड़ी व्याख्या की है। उस समय खाया जाता था, तभी तो उन्होंने ऐसा किया, अन्यथा उन्हें क्या आवश्यकता थी कि मांस

की इतनी व्याख्या करते। मैं तो यह कहूँगा कि इन तर्क करने वालों के दिमाग की खूबी है जो ऐसा ऊल-जलूल तर्क करते हैं। आयुर्वेद में जिस प्रकार सभी चीजों के गुण-दोषों का वर्णन है उसी प्रकार मास के गुण-दोषों का भी वर्णन है। किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि मांस खाने की आज्ञा ऋषियों ने दी है। परन्तु कहीं कहीं रोग विशेष में मांस-रस अर्थात् शोरबा की आज्ञा अवश्य दी है। जहाँ रोग विशेष में आज्ञा है वहाँ आप उसमें खा कोई नहीं खाता। हाँ, नीरोग अवस्था में अवश्य खाते हैं। रोग विशेष में भी यदि हम मास के अतिरिक्त किसी अन्य अथवा मल से काम ले सकते हैं, तो कोई आवश्यकता नहीं कि हम मांस भक्षण करें। इसके अतिरिक्त हिंसा से बढ़कर पाप संसार में दूसरा नहीं है। जो मनुष्य अपनी उदरपूर्ति के लिए अथवा जिह्वा स्वाद के लिए हिंसा करता है उससे बढ़कर संसार में दूसरा पापी प्राणी नहीं है। आहारों के निम्न वैज्ञानिक कोष्ठ से सिद्ध हो जायगा कि किस वस्तु में शरीर को पुष्ट करनेवाला कौन सा तत्व कितनी मात्रा में है।

पदार्थों में प्रत्येक तत्व का अलग-अलग परिमाण

पदार्थों के नाम	प्रोटीन की मात्रा	चिकनाई की मात्रा	चीनी और मैदा की मात्रा	नमक की मात्रा	पानी की मात्रा	भाजनीय का ठोस भाग
दाल	२५.१	२.३	५५.८	२.८	१२	८५.६
मेवा	१८.५	५१.६	९.६	२.४	२.६	८०.२
अनाज	१०.६	२.३	७२.५	२.१	१२.०	८७.८
सूखा मेवा	४.४	१.६	६८.७	२.४	१९.७	७७.१
भाजी तरकारी	१.४	०.३	८.६	०.८	८७.७	११.१
ताजा फल	१.०	०.९	१६.०	०.६	८१.४	१८.५
पनीर	२८.४	३१.०	०.०	४.५	३६.०	६४.०
मांस	१७.०	१७.९	०.०	२.१	६२.९	३७.०
अंडा	१४.०	१०.५	०.०	१.५	६४.०	२६.०
मछली	११.९	१.२	०.०	१.२	८६.१	१३
दूध	४.०	३.९	५.२	०.८	८६.५	११.८

आगे दिए हुए अन्नों और फलों के गुणों तथा उपयोगों से सर्वसाधारण भी यह निश्चय कर सकते हैं कि कौन सी वस्तु हमारे लिए हितकर है और कौन सी अहितकर। साधारणतया फलाहारियों के लिये मौसम का ध्यान रखकर आहार का क्रम बनाना चाहिए। गरमी में हरे फल अधिक, सूखे फल कम; बरसात में दोनों की मात्रा बराबर तथा जाड़े के दिनों में सूखे फल अधिक और हरे कम खाने चाहिए। फलाहारी को हर मौसम में

दूध अवश्य लेना चाहिए। फलाहारी का शरीर हलका, बुद्धि ... एवं शारीरिक-मानसिक शक्तियाँ बड़ी ही उम्र होती हैं।

अन्नाहारी को मौसम के अनुसार चीजों का गुण ... भोजन का क्रम बनाना चाहिए। गरिष्ठ अन्न अथवा अन्न के ... हुए गरिष्ठ पदार्थ न खाने चाहिएँ। शीघ्र पचनेवाला और सात्विक भोजन शारीरिक और मानसिक शक्ति बढ़ाता है। भूख से अधिक मात्रा में अन्नाहार और फलाहार रोग का कारण होता है।

भोजन करने का समय

आजकल प्राय प्रातःकाल और सायंकाल भोजन करने की प्रथा नहीं है। जिस प्रकार भारतीय लोग सभी कार्यों में पाश्चात्यों की नकल करने लगे हैं, उसी प्रकार भोजन के विषय में भी उनकी नकल की जाने लगी है। चरकाचार्य का कथन है—

> सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिबोधितम्।
>
> नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधि ॥

अर्थ—सायंकाल और प्रातःकाल दो बार मनुष्यों को आहार करना चाहिए। जिस प्रकार अग्निहोत्र किया जाता है। किन्तु मध्य में भोजन करने की विधि नहीं है।

दिनभर में तीन काल होते हैं और प्रत्येक चार-चार घंटे तक रहते हैं। इस प्रकार दस बजे के बाद और बारह बजे के भीतर दोपहर के समय भोजन कर लेना चाहिए। किन्तु शाम को

सोने से एक या दो घंटे पूर्व भोजन कर लेना चाहिए। दिन या रात किसी समय भी भोजन करते ही न सो जाना चाहिए। क्योंकि तुरन्त सो जाने से कफ कुपित होकर जठराग्नि को नष्ट कर देता है। इससे अनेक प्रकार की व्याधियाँ पैदा हो जाती हैं। प्रातःकाल और सायंकाल ठीक समय पर भोजन करने से ठीक समय पर भूख भी लगती है। भोजन का समय अनिश्चित रहने से ठीक समय पर भूख नहीं लगती। अतएव कभी जल्दी और कभी देर में खाने से ठीक-ठीक उसका परिपाक नहीं होता। वस अजीर्ण और मन्दाग्नि पैदा हो जाती है। प्रायः भोजन करने के छः घंटे बाद उसका परिपाक हो जाता है। दिनभर बार-बार खाते रहने से कभी ठीक समय पर भूख नहीं लगती और परिपाक नहीं होता। बार-बार भोजन करने से उतनी शक्ति नहीं बढ़ती जितनी दोनों वक्त ठीक समय पर भोजन करने से बढ़ती है।

कभी-कभी ठीक समय पर भोजन करनेवाले को भी भूख नहीं लगती। उन्हें उचित है कि जिस समय या जिस दिन भूख न लगे उस दिन कुछ भी न खायँ। भूख न लगने पर खाने के विषय में भावमिश्र लिखते हैं—

> अप्राप्तकाले भुञ्जानो ह्यसमर्थतनुर्नरः।
> तांस्तान् व्याधीनवाप्नोति मरणञ्चाधिगच्छति॥
> कालेऽतीतेऽश्नतो जन्तोर्वायुनोपहतेऽनले।
> कृच्छ्राद्विपच्यते भुक्तं न स्याद् भोक्तुं पुनः स्पृहा॥

अर्थ—अप्राप्त काल में भोजन करने से शरीर असमर्थ

और अशक्त होता है। अनेक व्याधियों को प्राप्त होकर मरण की ओर अग्रसर होता है। काल व्यतीत होने पर भोजन करने से वायु कुपित होकर जठराग्नि को नष्ट कर देता है। तब कष्ट से भोजन पचता है और पुनः भोजन करने की इच्छा नहीं होती।

किसी को भोजन करने के बाद ही यदि भूख लगे, तो उसे भूख न समझकर आमाशय का विकार समझना चाहिए। उस समय कुछ खाने के बजाय थोड़ा गरम पानी पीना चाहिए। अन्यथा भोजन करने से भयकर रोग पैदा होते हैं। जिस प्रकार समय से पहले भोजन करने से हानि होती है, उसी प्रकार भूख लगने पर जल पीने से और प्यास लगने पर भोजन करने से भी हानि होती है। भूख लगने पर केवल जल पीने से मन्दाग्नि और जलोदर होता है तथा प्यास लगने पर भोजन करने से वायुगुल्म आदि रोगों की शिकायत होती है।

दोनों समय भोजन करने पर भी बालक, युवा और परिश्रमी को बीच में खाने की आवश्यकता पड़ती है। इसका कारण यह है कि बालक और युवा की अग्नि स्वभावतः तीव्र रहती है तथा परिश्रमी के परिश्रम से अग्नि तीव्र हो जाती है। अतएव इन लोगों को भोजन करने के तीन-चार घंटे बाद कुछ अवश्य खाना चाहिए। भूख लगने पर भोजन न करने से शारीरिक-शक्ति नष्ट होती है, क्योंकि जठराग्नि को आहार न मिलने पर वह शरीर की अन्य धातुओं का परिपाक करती है। अतएव भूख लगते ही तुरन्त भोजन करना अनिवार्य है।

भोजन का स्थान

भोजन का स्थान अत्यन्त स्वच्छ और एकान्त में होना आवश्यक है। जिस प्रकार भारतीय लोग भोजन के स्थान सम्बन्धी नियमों में गिरे हैं, उसी प्रकार पाश्चात्य-वासी आगे बढ़े हुए हैं। भोजन का स्थान रसोई घर से अलग होना आवश्यक है। वह स्थान ऐसा होना चाहिए, जहाँ किसी प्रकार की आशंका न हो। आत्मीयों के सिवाय उस स्थान में और किसी को न रखना चाहिए। जिन लोगों से किसी प्रकार का भय हो, उन्हें कम-से-कम उस स्थान से अवश्य हटा देना चाहिए। बहुत से लोगों की दृष्टि भोजन के सम्बन्ध में ऐसी होती है कि उनका देखा हुआ भोजन नहीं पचता और कै या दस्त होने लगता है। ऐसे मनुष्य और कोई नहीं केवल गरीब और नीच दृष्टि वाले होते हैं। ऊपर जितनी भी बातें बताई गई हैं, वे सभी डरपोक लोगों के लिए हैं; किन्तु जो निर्भय हैं, जिन्हें किसी प्रकार का डर नहीं रहता; उनके लिए किसी की दृष्टि काम नहीं कर सकती।

जिस स्थान पर भोजन किया जाय उसे कम-से-कम रोज धुल जाना चाहिए। वहाँ पर सूर्य का प्रकाश तथा शुद्ध हवा भी काफी मात्रा में आती हो। भोजन करने के लिए शुद्ध और मुलायम आसन होना चाहिए। उस स्थान की सभी चीजें मन प्रसन्न करने-वाली होनी चाहिएँ। वहाँ पर कोई छोटा बालक ऐसा न रहना चाहिए जो भोजन करते समय मल-मूत्र का त्याग करे। भोजन

करते समय किसी प्रकार का मानसिक विकार पैदा न होना चाहिए। भोजन के स्थान में कुछ ऐसे सुगंधित पदार्थ रखने चाहिए जिनसे उस समय चित्त प्रसन्न हो जाय। जहाँ पर अधिक क्लेश हो, दुर्गन्ध आती हो, चित्त बिगड़ने की आशंका हो, हवा न आती हो तथा स्थान संकीर्ण हो, वहाँ भोजन न करना चाहिए। ऐसे स्थान का किया हुआ भोजन शक्तिवर्द्धक नहीं होता एवं मानसिक स्थिति बिगड़ जाने से रोग का कारण होता है।

भोजन के पदार्थ और खाने की विधि

भोजन सदैव सादा, ताजा, हलका, लघुपाकी, शुद्ध गंध और शुद्ध दर्शनयुक्त होना चाहिए। अधिक मसालेवाला, बासी, भारी, देर में पचनेवाला, खराब गंध और खराब रूपवाला भोजन न करना चाहिए। यदि भोजन शुद्ध ग्लानि पैदा करे, तो उसे न खाना चाहिए क्योंकि ऐसा भोजन परिपाक को नहीं प्राप्त होता। बासी भोजन सड़ाँध आलस्य पैदा करता है। उसमें एक प्रकार के जीवाणु पैदा हो जाते हैं, जो मन्दाग्नि और हैजा आदि पैदा कर देते हैं। बासी भोजन जीवनी-शक्ति, स्मरण-शक्ति और शारीरिक-शक्ति का नाश करता है। अतएव सदैव ताजा भोजन करना चाहिए। सुबह का बनाया शाम को भी न खाना चाहिए। अपनी स्थिति के अनुसार दोनों समय के लिये ताजा भोजन का प्रबन्ध करना चाहिए। कच्चा और जला हुआ भोजन न करना चाहिए। ये दोनों खराब

के भोजन रोग के कारण होते हैं। इससे आमाशय की विकृति, मन्दाग्नि, उदरशूल और अजीर्ण आदि रोग होते हैं। सभी प्रकार की शक्तियों का ह्रास होता है।

सदैव एक ही प्रकार का भोजन हानिकारक होता है। अतएव एक तरह का भोजन और समान मात्रा में कभी न करना चाहिए। हमेशा कुछ-न-कुछ बदलकर खाना चाहिए। भोजन की एक समान मात्रा में भी परिवर्तन आवश्यक है। भोजन सदैव ऋतु देश, काल, प्रकृति और जल-वायु के अनुकूल होना चाहिए। शारीरिक-शक्ति और शारीरिक परिश्रम के अनुसार भोजन करना चाहिए। सदैव हरे शाक अधिक मात्रा में खाने चाहिए। थोड़ा सूखा और हरा फल भी खाना आवश्यक है। अधिक गरम और अधिक शीतल भोजन भी दाँत और पाचन शक्ति को खराब कर देता है। इसलिए मामूली गरम भोजन करना चाहिए। भोजन का सामान सदैव शारीरिक और मानसिक शक्ति को बढ़ानेवाला होना चाहिए। अधिक मसालेदार, चरपरा और कई प्रकार के सामानों की आवश्यकता नहीं। एक साथ कई तरह के खाद्य पदार्थों का ठीक-ठीक रस नहीं बनता। सदैव किसी पतले पदार्थ के साथ रोटी और चावल खाना चाहिए क्योंकि सभी सूखे पदार्थ जठराग्नि को नष्ट करनेवाले होते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जिस दिन सभी सूखे पदार्थ खाए जाते हैं उस दिन कलेजे से लेकर गले तक जलन हुआ करती है। कब्जियत की शिकायत हो जाती है तथा आलस्य मालूम पड़ता है। अधिक मात्रा में घी

खाना हानिकारक है। किन्तु जितना भी घी खाना हो पुख्ता दाल में ही देना चाहिए। बहुत से लोग रोटियों में घी लगाकर खाने के आदी हो जाते हैं, यह उनकी गलती है; क्योंकि घी लगी रोटियाँ गुरुपाकी हो जाती हैं। कोई भी शाक अथवा फल कच्चा अथवा गला हुआ न खाना चाहिए।

भोजन करने से पूर्व सब कपड़े उतारकर शुद्ध वस्त्र पहनकर अच्छी तरह हाथ-पैर और मुँह धोकर शुद्ध आसन पर बैठना चाहिए। उस समय चित्त एकदम प्रसन्न और शान्त रहना चाहिए। शोक, लोभ, भय, चिन्ता, ईर्ष्या और द्वेष भुलाकर भोजन करना चाहिए।

भोजन का पात्र किसी ऊँची चौकी पर रखना चाहिए जिससे आवश्यकता से अधिक झुकना न पड़े। अधिक झुकने से पैरों के बल बैठकर भोजन करने से पेट सिकुड़ता है तथा भोजन का ठीक-ठीक परिपाक नहीं होता। अतएव सदैव सीधे पालथी मारकर बैठना चाहिए। भोजन करते समय मन में विचार करते रहना चाहिए कि यह आहार हमारे जीवन को पुष्ट रखेगा, हमारी आयु को बढ़ाएगा तथा हमारे स्वास्थ्य की रक्षा करेगा। सबसे पहले अदरक और सेंधा नमक थोड़ा मात्रा में खाना चाहिए। उसके बाद भारी और मीठा पदार्थ खाना चाहिए। अन्त में थोड़ा भात और तरल पदार्थ खाना चाहिए। बीच-बीच में चटनी, नींबू और खीर आदि का उपयोग करना चाहिए। अधिक कड़वे और चरपरे पदार्थों का बीच-बीच

में थोड़ा उपयोग करना चाहिए। भोजन के अन्त में मट्ठा या दूध अवश्य पीना चाहिए। भोजन करते समय बोलना या हँसना भी हानिकारक है। बोलने या हँसने से यदि कुछ अंश श्वास-नलिका में चला जाता है, तो उससे बहुत कष्ट होता है और कभी-कभी वह रोग का कारण बन जाता है।

प्राय सभी लोग जानते हैं कि भोजन खूब चबाकर खाना चाहिए। पाचन का अधिकांश काम दाँतों और मसूड़ों से निकली हुई लार से होता है। दाँतों द्वारा जितना ही अधिक भोजन कूच कर खाया जायगा, उतनी ही अधिक लार उसके साथ मिलकर पेट में जायगी। और शीघ्र ही पाचन-क्रिया आरंभ हो जायगी। यदि भोजन बिना कूचे ही निगल लिया जायगा, तो वह किसी प्रकार भी शीघ्र पचने में असमर्थ होगा। इससे पाचन-शक्ति को बड़ा नुकसान पहुँचता है। हरएक ग्रास को इस प्रकार चबाना चाहिए जिसमें वह खूब महीन हो जाय। यहाँ तक कि कड़ा-से-कड़ा और हलवा जैसा मुलायम पदार्थ भी अच्छी तरह चबाना चाहिए। रबड़ी, मलाई और खीर भी चबाकर खाना चाहिए। भोजन चबाकर न खाने से दाँतों और आमाशय की शक्ति नष्ट होती है। अधपचा पदार्थ अंतड़ियों में पड़कर सड़ने लगता है और उससे एक प्रकार का विष पैदा होकर रक्त में मिल जाता है। यह विष स्वास्थ्य का नाश कर देता है। आगे चलकर अतीसार, संग्रहणी और उदररोगों की शिकायत हो जाती है। कुछ लोग कहेंगे कि इस प्रकार भोजन के स्वाद का नाश करना

है। अस्तु, यह उनकी गलती है। भोजन जीवन-रक्षा के लिए किया जाता है। सभी कार्यों का एक उद्देश्य अवश्य होता है। उसी तरह भोजन का उद्देश्य जिह्वा का स्वाद नहीं है। कुछ लोग ऐसे भी मिलेंगे जो भोजन को चबाकर खाने का तत्व न समझ कर उसमें इस प्रकार व्यर्थ का समय खराब करेंगे कि देखनेवाले घबरा जायेंगे और उनका पेट भी न भरेगा। उन्हें उचित है कि इसके तत्व को समझें और शीघ्र तथा खूब चबाकर खाना खा डालें।

भोजन के साथ जलपान

भोजन करते समय जल पीना भी अत्यन्त आवश्यक है किन्तु यह भी विचार करना चाहिए कि किस समय जल पीना लाभदायक है। इसके विषय में महर्षि वाग्भट कहते हैं—"समस्थूलकृशाभुक्तमध्यान्तप्रथमाम्बुपा।" भोजन से पहले पानी पीने से शरीर दुबला होता है, अन्त में पीने से मोटा होता है और बीच में पीने से शरीर सम रहता है। भोजन करने से पहले जल पीने से अग्निनाश होता है। अन्त में पानी से कफ बढ़कर शरीर मोटा होता तथा कफजन्य व्याधियाँ पैदा होती हैं। इसलिए भोजन के आदि-अन्त में जलपान न करके बीच में करना चाहिए। किस समय जलपान करना चाहिए यह तो निश्चित हो गया परन्तु अब विचारणीय विषय यह है कि भोजन

के समय कितना जल पीना चाहिए। आयुर्वेद में बहुत अधिक जल पीने का निषेध किया गया है और उसे अजीर्ण का कारण बतलाया गया है। कहा है—

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च सन्धारणात् स्वप्न विपर्ययाच्च ।
कालेऽपिसात्म्यंलघुचापिभुक्तमन्नं न पाकं भजत नरस्य ॥

अर्थ—अत्यन्त जल पीने से, विषम भोजन करने से, मल-मूत्रादिकों का वेग रोकने से, दिन में सोने और रात में जागने से, ठीक काल में, सात्म्य और हलका अन्न भोजन किया हुआ भी पाक को नहीं प्राप्त होता।

उपर्युक्त वाक्य से सिद्ध हो जाता है कि अति मात्रा में कभी जल न पीना चाहिए। जल्दी जल्दी भोजन करने तथा मिर्च और मसालेदार भोजन करने से प्यास लगती है। वास्तव में यह प्यास नहीं है; बल्कि जल्दी भोजन करने से अधिक कड़ा ग्रास गले से उतरता है उससे गला सूख जाता है और पानी पीने की आवश्यकता मालूम पड़ती है। मिर्च और मसालेदार भोजन करने से मुँह से लेकर कलेजे तक जलन पैदा हो जाती है और उसे शान्त करने के लिए पानी पीने की इच्छा होती है। अतएव भोजन सदैव चबाकर और सादा करना चाहिए।

भोजन करते समय अथवा कभी जब जल पीने की आवश्यकता हो, तो थोड़ा पानी पीना चाहिए। भोजन के अतिरिक्त जिस समय जल पीने की इच्छा हो उस समय पहले कुल्ला करके तब घूँट घूँट पानी पीना चाहिए। एकदम गट-गट कर पानी पीने से प्यास

भी नहीं शान्त होती और वह जल भीतर जाकर नुकसान करता है। खड़े होकर जल पीने से मल आँतें धुल जाती हैं तथा मन्द वृद्धि होती है। अधिक गरम-गरम भोजन करने और उसके बाद अधिक ठंढा पानी पीने से दाँत कमजोर हो जाते हैं। उपर्युक्त बातों का ध्यान रखते हुए भोजन के समय जल पीना चाहिए। गरमी के दिनों में गरम भोजन करने तथा ठंढा जल पीने से वायु का कोप होता है और वह कुपित वायु हैजा और अजीर्ण पैदा कर देता है। अतएव गरमी के दिनों में भोजन खूब ठण्ढा करके करना चाहिए।

भोजन के समय मानसिक विचार

हमारे स्वास्थ्य पर मानसिक विचारों का कितना प्रभाव पड़ता है, यह सहज ही नहीं समझा जा सकता। जितनी जल्दी हम मानसिक विचारों द्वारा स्वस्थ और रोगी हो सकते हैं उतनी जल्दी आहार-विहार और खान-पान से नहीं हो सकते। रोगी को जितना लाभ औषध से नहीं होता उससे कहीं अधिक उसे समझा-बुझाकर मानसिक स्थिति ठीक करने से होता है। भोजन के समय जैसा मानसिक विचार रहेगा वैसा ही उसका फल बनेगा। कोई मनुष्य यदि भोजन करते समय यह दृढ़ निश्चय कर ले कि यह भोजन हमारे स्वास्थ्य को नष्ट करनेवाला है, तो निश्चय ही उसका स्वास्थ्य नष्ट हो जायगा। यहाँ पर यह विचार पैदा होता है कि क्या ऐसे ही

दिन में ऐसा हो सकता है ? नहीं, एक दिन में न तो उसका स्वास्थ्य ही खराब हो सकता है और न एक दिन में उसकी मानसिक धारणा ही बदली जा सकती है। अतएव यह निश्चय है कि कुछ दिनों में उसकी यह मानसिक विचार धारा उसका स्वास्थ्य नष्ट कर देगी।

भोजन करते समय या उससे पहले किसी घृणित वस्तु का दर्शन अथवा ध्यान न करना चाहिए। शोक, चिन्ता, भय, क्रोध, लोभ और मोह छोड़ देना चाहिए। इसमें सबसे खराब वस्तु चिन्ता ही है। चिन्ता के विषय में कहा है—

चिता चिन्ता समानास्ति बिन्दुमात्र विशेषतः।
सजीवं दहते चिन्ता निर्जीवं दहते चिता॥

चिता और चिन्ता समान ही शब्द हैं, केवल चिन्ता में बिन्दु मात्र विशेष है। किन्तु चिन्ता सजीव को जलाती है और चिता निर्जीव को जलाती है।

इस तरह भोजन के समय चिन्ता करने से वह भोजन शारीरिक शक्ति को ठीक रखने अथवा बढ़ाने के लिये नहीं होता; बल्कि वह रोग का कारण होता है। वह भोजन रोग का कारण इसलिये होता है कि उपर्युक्त किसी प्रकार का भी मानसिक विकार उत्पन्न हो जाने से भोजन का ठीक-ठीक परिपाक नहीं होता और अजीर्ण, उदरशूल आदि व्याधियाँ पैदा हो जाती हैं। यदि किसी दिन संयोगवश भोजन के समय किसी प्रकार का मानसिक

भी नहीं शान्त होती और यह जल भीतर जाकर नुकसान करता है। खड़े होकर जल पीने से मन आँतें घुल जाती हैं तथा मन्द बुद्धि होती है। अधिक गरम-गरम भोजन करने और उसके बाद अधिक ठंडा पानी पीने से दाँत कमजोर हो जाते हैं। उपर्युक्त बातों का ध्यान रखते हुए भोजन के समय जल पीना चाहिए। गरमी के दिनों में गरम भोजन करने तथा ठंडा जल पीने से वायु का कोप होता है और यह कुपित वायु हैजा और अजीर्ण पैदा कर देता है। अतएव गरमी के दिनों में भोजन खूब ठण्डा करके करना चाहिए।

भोजन के समय मानसिक विचार

हमारे स्वास्थ्य पर मानसिक विचारों का कितना प्रभाव पड़ता है, यह सहज ही नहीं समझा जा सकता। जितनी जल्दी हम मानसिक विचारों द्वारा स्वस्थ और रोगी हो सकते हैं उतनी जल्दी आहार विहार और खान-पान से नहीं हो सकते। रोगी को जितना लाभ औषध से नहीं होता उससे कहीं अधिक उसे समझा-बुझाकर मानसिक स्थिति ठीक करने से होता है। भोजन के समय जैसा मानसिक विचार रहेगा वैसा ही उसका रूप बनेगा। कोई मनुष्य यदि भोजन करते समय यह दृढ़ निश्चय कर ले कि यह भोजन हमारे स्वास्थ्य को नष्ट करनेवाला है, तो निश्चय ही उसका स्वास्थ्य नष्ट हो जायगा। यहाँ पर यह विचार पैदा होता है कि क्या एक ही

दिन में ऐसा हो सकता है ? नहीं, एक दिन में न तो उसका स्वास्थ्य ही खराब हो सकता है और न एक दिन में उसकी मानसिक धारणा ही बदली जा सकती है। अवश्य यह निश्चय है कि कुछ दिनों में उसकी यह मानसिक विकार धारा उसका स्वास्थ्य नष्ट कर देगी।

भोजन करते समय या उससे पहले किसी घृणित वस्तु का दर्शन अथवा ध्यान न करना चाहिए। शोक, चिन्ता, भय, क्रोध, लोभ और मोह छोड़ देना चाहिए। इनमें सबसे खराब वस्तु चिन्ता ही है। चिन्ता के विषय में कहा है—

चिता चिन्ता समानास्ति बिन्दुमात्र विशेषतः।
सजीवं दहते चिन्ता निर्जीवं दहते चिता॥

चिता और चिन्ता समान ही शब्द हैं केवल चिन्ता में बिन्दु मात्र विशेष है। किन्तु चिन्ता सजीव को जलाती है और चिता निर्जीव को जलाती है।

इस तरह भोजन के समय चिन्ता करने से वह भोजन शारीरिक-शक्ति को ठीक रखने अथवा बढ़ाने के लिये नहीं होता; बल्कि वह रोग का कारण होता है। वह भोजन रोग का कारण इसलिये होता है कि उपर्युक्त किसी प्रकार का भी मानसिक विकार उत्पन्न हो जाने से भोजन का ठीक-ठीक परिपाक नहीं होता और अजीर्ण, उदरशूल आदि व्याधियाँ पैदा हो जाती हैं। यदि किसी दिन संयोगवश भोजन के समय किसी प्रकार का मानसिक विकार हो जाय, तो भोजन न करना ही श्रेयस्कर है।

बाद बाएँ करवट लेट जाना चाहिए। शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्ध सभी चित्त प्रसन्न करनेवाली चीजें होनी चाहिएँ।

भोजन करने के बाद धीरे-धीरे घूमने से पाचन-क्रिया ठीक-ठीक होती है। इसलिए भोजन के बाद भी कदम तक धीरे से ही घूमना चाहिए। भोजन के बाद दौड़ने अथवा तेजी के साथ चलने से पाचन-क्रिया ठीक नहीं होती और थोड़े दिनों में रुग्ण होकर मनुष्य मर जाता है। भोजन करने के बाद बाएँ करवट लेटने की विधि बतलाई गई है। सोने की अर्थात् निद्रा लेने की नहीं। क्योंकि दिन में सोने से कफ का कोप होता है। उसके विषय में कहा है—

भुक्तमात्रस्य च स्वपतोऽन्नमपि कुपित कफः।

अर्थ—भोजन करके तुरन्त सो जाने से कुपित हुआ कफ अग्नि को नष्ट कर देता है।

प्राय गरमी के दिनों में भोजन करने के बाद आलस्य आ घेरता है और सोने की आवश्यकता प्रतीत होती है। अतएव गरमी के दिनों में भोजन करने के कम-से कम एक-दो घंटे बाद सोना चाहिए। वह भी थोड़ा। भोजन के बाद कुल्ला कर चुकने पर पेशाब अवश्य करना चाहिए। पेशाब करने से गरमी निकल जाती है। प्रमेह आदि रोगों का भय नहीं रहता। भोजन करने के चार-पाँच घंटे बाद तक किसी प्रकार मानसिक विकार न पैदा होने देना चाहिए। अन्यथा भोजन के परिपाक में बड़ी गड़बड़ी पैदा हो जाती है। भोजन के पश्चात् किसी प्रकार का चूर्ण आदि गरम क्षार पदार्थ नहीं खाना चाहिए। अधिक मात्रा में पानी भी न

पीना चाहिए। भोजन के पश्चात—पुरुषार्थ, ग्राम्य गन्ध, अधिक हँसना आदि कार्य करने से एकाएक चित्त-वृत्ति बिगड़ जाती है और वमन हो जाने का भय रहता है। इसके अतिरिक्त सोना, बैठना, अधिकमात्रा में पतला पदार्थ पीना, धाम में बैठना अथवा आग तापना, तैरना, तेज सवारी पर चलना, घोड़े पर बैठना, व्यायाम करना, मैथुन करना तेज सवारी पर बैठकर दौड़ना, युद्ध, गाना और पढ़ना आदि कार्य न करना चाहिए। भोजन के बाद ही इन सब कार्यों से पेट में उथल-पुथल मच जाती है और खाया हुआ आहार नहीं पचता। कभी-कभी इन कार्यों से वायु इतना कुपित हो जाता है कि अजीर्ण और हृदि रोग की शिकायत सदैव के लिए पिण्ड पड़ जाती है।

भोजन के पश्चात का कृत्य बहुत ही सम्हालकर करना चाहिए। अन्यथा यह जीवन नष्ट कर देता है। आजकल भारतवर्ष में जो इतनी व्याधियाँ नजर आती हैं उनका सबसे बड़ा कारण भोजन के बाद ठीक-ठीक व्यवहार न होना ही है। जिन लोगों ने स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षा प्राप्त की है, उनके विषय में तो कम-से-कम यह अवश्य ही समझ लेना चाहिए कि इन्होंने विद्या के साथ ही कोई उच्च-कोटि की व्याधि भी अवश्य प्राप्त की होगी। इसमें कारण यह है कि जो समय स्कूल अथवा कॉलेज का होता है वही भोजन करने का भी होता है। भोजन करके तुरन्त ही पढ़ने के लिए भागना पड़ता है। अब स्वयं ही विचारा जा सकता है कि अजीर्ण, प्रमेह और कब्जियत की शिकायत क्यों न होगी?

बाद बाएँ करवट लेट जाना चाहिए। शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्ध सभी चित्त प्रसन्न करनेवाली चीजें होनी चाहिए।

भोजन करने के बाद धीरे-धीरे घूमने से पाचन-क्रिया ठीक-ठीक होती है। इसलिए भोजन के बाद सौ कदम तक धीरे से ही घूमना चाहिए। भोजन के बाद दौड़ने अथवा तेजी के साथ चलने से पाचन-क्रिया ठीक नहीं होती और थोड़े दिनों में रुग्ण होकर मनुष्य मर जाता है। भोजन करने के बाद बाएँ करवट लेटने की विधि बतलाई गई है। सोने की अर्थात् निद्रा लेने की नहीं। क्योंकि दिन में सोने से कफ का कोप होता है। उनके विषय में कहा है—

भुक्तमात्रस्य च स्वपतोऽन्यग्नि कुपित कफः।

अर्थ—भोजन करके तुरन्त सो जाने से कुपित हुआ कफ अग्नि को नष्ट कर देता है।

प्राय गरमी के दिनों में भोजन करने के बाद आलस्य आ घेरता है और सोने की आवश्यकता प्रतीत होती है। अतएव गरमी के दिनों में भोजन करने के कम-से कम एक-दो घंटे बाद सोना चाहिए। वह भी थोड़ा। भोजन के बाद तुरन्त कर चुकने पर पेशाब अवश्य करना चाहिए। पेशाब करने से गरमी निकल जाती है। प्रमेह आदि रोगों का भय नहीं रहता। भोजन करने के चार-पाँच घंटे बाद तक किसी प्रकार मानसिक विकार न पैदा होने देना चाहिए। अन्यथा भोजन के परिपाक में बड़ी गड़बड़ी पैदा हो जाती है। भोजन के पश्चात किसी प्रकार का चूर्ण आदि तीव्र क्षार पदार्थ नहीं खाना चाहिए। अधिक मात्रा में पानी भी न

पीना चाहिए। भोजन के पश्चात—दुर्गन्ध, स्वराय गन्ध, अधिक हँसना आदि कार्य करने से एकाएक चित्त-वृत्ति बिगड़ जाती है और वमन हो जाने का भय रहता है। इसके अतिरिक्त सोना, बैठना, अधिकमात्रा में पतला पदार्थ पीना, घाम में बैठना अथवा आग तापना, तैरना, तेज सवारी पर चलना, घोड़े पर बैठना, व्यायाम करना, मैथुन करना, तेज सवारी पर बैठकर दौड़ना, युद्ध, गाना और पढ़ना आदि कार्य न करना चाहिए। भोजन के बाद ही इन सब कार्यों से पेट में उथल-पुथल मच जाती है और खाया हुआ आहार नहीं पचता। कभी-कभी इन कार्यों से वायु इतना कुपित हो जाता है कि अजीर्ण और छर्दि रोग की शिकायत सदैव के लिए पिण्ड पड़ जाती है।

भोजन के पश्चात का कृत्य बहुत ही सम्हालकर करना चाहिए। अन्यथा यह जीवन नष्ट कर देता है। आजकल भारतवर्ष में जो इतनी व्याधियाँ नजर आती हैं उनका सबसे बड़ा कारण भोजन के बाद ठीक-ठीक व्यवहार न होना ही है। जिन लोगों ने स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षा प्राप्त की है, उनके विषय में तो कम-से-कम यह अवश्य ही समझ लेना चाहिए कि इन्होंने विद्या के साथ ही कोई उच्च-कोटि की व्याधि भी अवश्य प्राप्त की होगी। इसमें कारण यह है कि जो समय स्कूल अथवा कॉलेज का होता है वही भोजन करने का भी होता है। भोजन करके तुरन्त ही पढ़ने के लिए भागना पड़ता है। अब स्वयं ही विचारा जा सकता है कि अजीर्ण, प्रमेह और कब्जियत की शिकायत क्यों न होगी?

ठीक यही हालत आफिस के बाबुओं और बड़े-बड़े कर्मचारियों की होती है। भोजन के बाद जहाँ विश्राम की आवश्यकता होती है वहाँ भोजन के बाद आठ-दस घंटे तक घोर मानसिक और मस्तिष्क सम्बन्धी परिश्रम करना पड़ता है। फिर उनके स्वास्थ्य का दिवाला क्यों न हो ? कम-से-कम भारतीय विद्यार्थी-समाज और श्रमजीवी-समाज के साथ घोर अन्याय किया जाता है।

आहार-विज्ञान

प्रथम खण्ड, धान्यवर्ग

धान्य पाँच प्रकार का होता है—शालि धान्य, शूक धान्य, शिम्बी धान्य और क्षुद्र धान्य। रक्तशालि (लाल चावल)-शालि धान्य, साठी आदि सब प्रकार के चावल-व्रीहि धान्य; गेहूँ, जौ आदि-शूक धान्य; मूँग, उड़द आदि-शिम्बी धान्य और कँगुनी, चीना आदि-क्षुद्र धान्य नाम से सम्बोधित होते हैं। इस क्षुद्र धान्य को ही तृण धान्य भी कहते हैं।

और गरम-गरम रोटी छाती पर बाँधें इससे छाती का दर्द और जकड़न नष्ट हो जाती है।

(१०) दमा—छ मासे जौ की राख और छ मासे मिश्री गरम जल के साथ सुबह-शाम सेवन करने से नष्ट होती है।

(११) फोड़ा—जौ की राख गोमूत्र में पकाकर बाँधने से शीघ्र पक जाता है।

(१२) विषूचिका (हैजा)—जौ का आटा और जवाखार मट्ठे के साथ पकाकर थोड़ा-थोड़ा चाटना चाहिए।

(१३) अधिक पसीना और दुर्गन्धि पर—भूने हुए जौ और मसूर के आटे के साथ सफेद पान पीसकर उबटन करने से नष्ट होता है।

(१४) शूल, अजीर्ण, यकृत्, गुल्म और प्लीहा—दो से चार रत्ती तक जवाखार खाने से उपर्युक्त रोगों का नाश होता है।

(१५) खाँसी, दमा और क्षय—जवाखार एक तोला, काली मिर्च दो तोले, पीपर दो तोले, अनार की छाल चार तोले सबों का चूर्ण बनाकर सोलह तोले गुड़ के साथ घोटकर चार-चार रत्ती की गोलियाँ बनाएँ। दिन में तीन-चार गोली खाने से खाँसी, दमा और क्षय रोग में लाभ होता है।

(१६) धातु पुष्टि—एक सेर जौ का आटा, एक सेर मिश्री, एक तोला सफेद मिर्च, दो तोले छोटी इलायची का दाना अथवा

महीन पीसकर कलईदार कढ़ाई में एक सेर घी देकर धीमी आँच पर भूनें, बाद पूर्णिमा की रात्रि में खुली जगह रख दें। प्रातःकाल एक छटाँक का मोदक बना लें। प्रतिदिन सुबह-शाम एक-एक मोदक खाकर गाय का धारोष्ण दूध पीएँ इससे बल और वीर्य की वृद्धि होती है।

मूँग

स० मुद्ग, हि० मूँग, ब० मुग, म० मूग, गु० मग, क० पच्चेहेसरु, तै० पच्चापेसलु, ता० पच्चोपापरु, फा० बुनुमाष, अ० मज, अँ० ग्रीन ग्रेन-Green Grain, और लै० फेजिओलस मुगो Phaseolus Mungo

विशेष विवरण—यह भारतवर्ष में अधिक पैदा होती है। इसका पेड़ दो हाथ ऊँचा होता है। इसकी टहनियाँ लता की तरह इधर-उधर फैली होती हैं। एक-एक सींक में सेम की भाँति तीन-तीन पत्तियाँ होती हैं। फूल पीले और बैंगनी रंग के होते हैं। फलियाँ ढाई-तीन अँगुल लम्बी, पतली, गुच्छे के रूप में होती हैं। प्रत्येक फली में पाँच-छः लम्बे और गोल दाने होते हैं। इसके मुँह का चिन्ह स्पष्ट रूप से नहीं मालूम होता।

गुण—मुद्गो रूक्षो लघुर्ग्राही कफपित्तहरो हिमः।
स्वादुरल्पानिलो नेत्र्यो ज्वरघ्नो वनजस्तथा ॥ (भा० प्र०)

मूँग—रूखी, हलकी, कफ एवं पित्त नाशक, शीतल,

स्वादिष्ट, किंचित वातकारक, नेत्रों को हित और ज्वरनाशक है। वनमूँग भी इसी के समान गुणोंवाली होती है।

विशेष उपयोग (१) जीर्ण ज्वर में—मूँग की दाल और सूखा आमला एक में पकाकर खाना चाहिए।

(२) चर्मरोग—मूँग को दूध में पीसकर उपटन करने से सब तरह के चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं एवं कान्ति बढ़ती है।

(३) पसीना—यदि किसी रोग में पसीना आना आरम्भ हो, तो मट मूंग को भूनकर और महीन पीसकर उसी का धूप करना चाहिए।

(४) आग से जलने पर—मूँग को जल में पीसकर गाढ़ा लेप करना चाहिए।

(५) मन्दाग्नि में—मूँग का पापड़ खाना लाभदायक है।

(६) अतीसार, वमन, दाह और ज्वर पर—एक तोला गूनी मूँग, दो मासे धनियाँ, छः मासे मिश्री एक पाव जल में पकाएँ, एक छटाँक बाकी रहने पर एक मासा शहद मिलाकर पी जायें।

(७) बल एवं वीर्यवर्द्धक—भूने हुए मूँग का आटा सममाग घी देकर कलईदार कड़ाई में धीरे-धीरे भूनें, बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा दूध छोड़ते जायें। जब दाना पड़ने लग तब कड़ाई उतारकर जमीन पर रख दें। बाद मीठा होने लायक मिश्री तथा बादाम, पिस्ता, छोटी इलायची, लौंग एवं मघर मिर्च का चूर्ण मिलाकर एक-एक छटाँक का लड्डू बना लें। सुबह-शाम एक-एक

लड्डू खाकर ऊपर से गाय का दूध पीना चाहिए। इससे बल एवं वीर्य की वृद्धि होती है।

उड़द

स० माप, हि० उड़द, ब० माषकलाय, म० उड़ीद, गु० अड़द, क० उद्दु, तै० मीनुमलु, ता० उलदु, फा० अ० माप, अँ० किडनी-बीन Kidneybean, और लै० फेसियोलस रोक्सबर्घाई-Phaseolus Roxburghi

विशेष विवरण—उड़द हिन्दुस्तान में थोड़ा बहुत सभी जगह पैदा होता है। इसका पेड़ लगभग हाथभर ऊँचा होता है। इसके पत्ते बिल्व-पत्र के समान तीन-तीन, कुछ छोटे एवं गोल होते हैं। फूल बैंगनी रंग का होता है। फलियाँ तीन-चार अँगुल लम्बी होती हैं। प्रत्येक में पाँच-छः दाने होते हैं। इसके मुँह पर सफेद रंग की बिन्दी होती है।

गुण—माषः स्निग्धो बलश्लेष्ममलपित्तकरः सरः।
गुरूष्णोऽनिलहा स्वादुः शुक्रवृद्धिविरेककृत् ॥ (वाग्भट)

उड़द—चिकना, बल, कफ, मल और पित्तकारक तथा सारक, भारी, गरम, वातनाशक, स्वादिष्ट, शुक्रवर्द्धक और दस्तावर है।

विशेष उपयोग (१) अर्दित, अरुचि, दुर्बलता और उदर-शूल पर—उड़द की दाल भिगोकर पीस लें तथा उसमें हींग,

काली मिर्च, अदरख और सेंधा नमक मिलाकर तेल में बड़ा बनाकर भून लें और गरम-गरम खायें।

(२) बल एवं वीर्य-वृद्धि के लिए—उड़द का आटा, गेहूँ का आटा, चावल का आटा, पीपर का चूर्ण, चार-चार तोले छः तोले घी में भूनें और सबके बराबर मिश्री मिलाकर चार-चार तोले का लड्डू बना लें। सुबह-शाम एक-एक लड्डू खाकर ऊपर से गाय का दूध पीना चाहिए।

(३) फोड़े पर—जिस फोड़े से गाढ़ा और अधिक पीब निकले उस पर उड़द की पुल्टिस बाँधना चाहिए।

(४) हिचकी और श्वास पर—उड़द, हल्दी का चूर्ण और सन सबको तम्बाकू की भाँति चिलम में भरकर धुँआ पीने से एवं शीशम की लकड़ी और सुपारी के ऊपर का छिलका भी उपर्युक्त रीति से चिलम में भरकर धुँआ पीने से हिचकी और श्वास नष्ट होती है।

(५) स्तनों में अधिक दूध उतारने के लिये—उड़द की दाल में घी मिलाकर पीना चाहिए।

(६) रक्तपित्त—उड़द का आटा और रेशम की राख जल में पीसकर सिर पर लेप करना चाहिए। इससे मुँह से खून गिरना बन्द हो जाता है।

(७) नहरुआ में यदि छाले पड़ गए हों, तो—उड़द के आटे को पानी में घोल तथा गरम करके सूजन पर लगाना चाहिए और उसे सुई से छेदकर उसमें गरम-गरम

सरसों का तेल एक-एक बूंद करके छोड़ा जाय। इससे सूजन नष्ट हो जायगी और नहरुआ का विकार निकल जायगा।

(८) वायुगोला और उदरशूल पर—उड़द की रोटी में सरसों का तेल लगाकर गरम-गरम बाँधना चाहिए।

(९) वीर्य का गिरना—एक पाव गाय के दूध में एक तोला उड़द की पीठी और दो तोले मिश्री पकाकर सात दिनों तक पीने से पेशाब के साथ वीर्य का गिरना बंद हो जाता है।

(१०) बलवृद्धि के लिए—उड़द की दाल, गाय के दूध अथवा ईख के रस में इक्कीस बार पीसकर सुखा लें। प्रतिदिन प्रातःकाल डेढ़ तोले आटा एक पाव गाय के दूध में पकाएँ। थोड़ा घी, मिश्री, बादाम, जायफल, छोटी इलायची और चिरौंजी मिलाकर सेवन करें।

(११) नकसीर—उड़द का आटा, कपूर और लाल रेशम की राख पानी में पीसकर मस्तक पर लेप करना चाहिए।

(१२) वायुगोला पर—उड़द की दाल में हींग, लहसुन, काली मिर्च और तेजपत्ता छोड़कर खाना चाहिए।

अरहर

स० आढ़की, हि० अरहर, य० आइरिकलामअरहर, म० तुर, गु० तुवेर, क० कटलाकडु, तै० कादुलु, ता० आदगी, फा० शाखुल, अँ० पिजन पी Pigeon pea, और लै० केजेनस-इन्डिकस-Cajanus Indicus

काली मिर्च, अदरख और सेंधा नमक मिलाकर तेल में बड़ा बनाकर भून लें और गरम-गरम खायें।

(२) बल एवं वीर्य-वृद्धि के लिए—उड़द का आटा, गेहूँ का आटा, चावल का आटा, पीपर का चूर्ण, चार-चार तोले, छः तोले घी में भूनें और सबके बराबर मिश्री मिलाकर चार-चार तोले का लड्डू बना लें। सुबह-शाम एक-एक लड्डू खाकर ऊपर से गाय का दूध पीना चाहिए।

(३) फोड़े पर—जिस फोड़े से गाढ़ा और अधिक पीब निकले उस पर उड़द की पुल्टिस बाँधना चाहिए।

(४) हिचकी और श्वास पर—उड़द, हल्दी का चूर्ण और सन सबको तम्बाकू की भाँति चिलम में भरकर धुँआ पीने से एवं सीसम की लकड़ी और सुपारी के ऊपर का छिलका भी उपर्युक्त रीति से चिलम में भरकर धुँआ पीने से हिचकी और श्वास नष्ट होती है।

(५) स्तनों में अधिक दूध उतारने के लिये—उड़द की दाल में घी मिलाकर पीना चाहिए।

(६) रक्तपित्त—उड़द का आटा और रेशम की राख जल में पीसकर सिर पर लेप करना चाहिए। इससे मुँह से खून गिरना बन्द हो जाता है।

(७) नहरुआ में यदि छाले पड़ गए हों, तो—उड़द के आटे को पानी में घोल तथा गरम करके सूजन पर लगाना चाहिए और उसे सूई से छेदकर उसमें गरम-गरम

सरसों का तेल एक-एक बूँद करके छोड़ा जाय। इससे सूजन नष्ट हो जायगी और नहरुआ का विकार निकल जायगा।

(८) वायुगोला और उदरशूल पर—उड़द की रोटी में सरसों का तेल लगाकर गरम-गरम पोंधना चाहिए।

(९) वीर्य का गिरना—एक पाव गाय के दूध में एक तोला उड़द की पीठी और दो तोले मिश्री पकाकर सात दिनों तक पीने से पेशाब के साथ वीर्य का गिरना बंद हो जाता है।

(१०) बलवृद्धि के लिए—उड़द की दाल, गाय के दूध अथवा ईख के रस में इक्कीस बार पीसकर सुखा लें। प्रतिदिन प्रातःकाल छेद तोले आटा एक पाव गाय के दूध में पकाएँ। थोड़ा घी, मिश्री, बादाम, जायफल, छोटी इलायची और चिरौंजी मिलाकर सेवन करें।

(११) नकसीर—उड़द का आटा, कपूर और लाल रेशम की राख पानी में पीसकर मस्तक पर लेप करना चाहिए।

(१२) वायुगोला पर—उड़द की दाल में हींग, लहसुन, काली मिर्च और तेजपत्ता छोड़कर खाना चाहिए।

अरहर

सं० आढ़की, हि० अरहर, ब० आढ़रिकलायअरहर, म० तुर, गु० तुवेर, क० फटलाफडु, तै० कादुलु, ता० आदगी, फा० शाखुल, अँ० पिजन पी Pigeon pea, और लै० केजेनस-इन्डिकस-Cajanus Indicus

विशेष विवरण—यह मध्य प्रान्त, गुजरात और दक्षिण भारत में बहुतायत से पैदा होती है। इसका पेड़ दो प्रकार का होता है। एक प्रतिवर्ष पैदा होता है दूसरा चार-पाँच वर्षों तक बराबर रहता है। प्रतिवर्ष पैदा होनेवाला पेड़ दो-ढाई हाथ ऊँचा होता है और चार-पाँच वर्षों तक रहनेवाला छ-सात हाथ ऊँचा होता है।

इसके एक-एक सींक में तीन-तीन पत्तियाँ होती हैं। पत्तियाँ एक ओर हरी और दूसरी ओर भूरी होती हैं। ये स्वाद में कसैली होती हैं। अरहर का फूल पीले रंग का होता है। फूल झड़ जाने पर डेढ़-दो इञ्च की फलियाँ लगती हैं। प्रत्येक फली में चार-पाँच दाने होते हैं। यह दो प्रकार की होती है, एक छोटी और दूसरी बड़ी। उड़द की तरह यह भी कुछ चिपटी होती है। मुँह पर सफेद और काला दाग रहता है।

गुण—तुवर्यस्तिक्तकषाया च मेदः श्लेष्मास्रपित्तजित्।
विष्टम्भाध्मानकृत् स्वादुः स्वादुपाकाल्पवातदा॥
शीतला बद्धविण्मूत्रा लघ्वी रूक्षा प्रकीर्तिता। (शा॰ नि॰)

अरहर—अत्यन्त कसैली, मेद, कफ, एवं रक्तपित्त नाशक, विष्टम्भकारक, पेट को फुलानेवाली, स्वादिष्ट, पाक में भी स्वादिष्ट, किंचित वातकारक, शीतल, मल एवं मूत्र को रोकनेवाली, हलकी और रूखी है।

विशेष उपयोग (१) भाँग का नशा—अरहर की दाल पानी में भिगोकर छान लें और वही पानी पिला दें। इससे नशा उतर जाता है।

(२) खुजली पर—अरहर की दाल अथवा पत्ती जला-कर दही में घोटकर लेप करना चाहिए।

(३) घावों पर—सफेद अरहर की पत्ती का रस एक पाव निकालकर इक्कीस बार जल से धोए हुए घी में मिलाकर लगाएँ, अथवा अरहर की पत्ती जलाकर उसकी राख उपर्युक्त घी में घोटकर लगाएँ।

(४) दन्तरोग—अरहर की सूखी पत्ती अथवा दाल, कटसरैया की जड़ और भिलावाँ तीनो चीजें समभाग एक साथ कढ़ाई में डालकर भूनें, बाद अँगारा डालकर कोयला कर लें और थोड़ा सा सेंधा नमक मिलाकर खूब महीन पीस लें। प्रतिदिन इस मंजन के करने से सभी प्रकार के दन्तरोग नष्ट हो जाते हैं तथा दाँत मजबूत रहते हैं।

(५) मुँह के छालों पर—अरहर की मुलायम पत्ती और कत्था चबाना चाहिए।

(६) मुखपाक पर—आधा तोला अरहर की पत्ती तम्बाकू की तरह कूचकर लार निकाले।

(७) भ्रम और मूर्च्छा में—अरहर की दाल घिसकर नेत्रों में अंजन करना चाहिए।

(८) रक्तपित्त—तीन तोले अरहर की पत्ती के रस में तीन तोले घी मिलाकर पीने से नाक और मुँह से खून गिरना बंद हो जाता है।

(९) सर्प-विष पर—अरहर की जड़ चबा-चबाकर खाना चाहिए।

(१०) दूध की कमी के लिए—अरहर की पत्ती का रस स्तनों पर लगाना चाहिए।

(११) आधासीसी पर—अरहर की पत्ती और दूब के स्वरस की नास लेनी चाहिए।

(१२) बालकों की अण्डवृद्धि पर—अरहर की पत्ती अथवा दाल पीसकर गरम-गरम लगाना चाहिए।

(१३) आँखों के जाला पर—अरहर की जड़ पानी में घिसकर अंजन करना चाहिए।

(१४) पसीना—किसी भी रोग में यदि पसीना की अधिकता हो, तो अरहर की दाल और सोंठ भूनकर तथा चूर्ण करके भूरा करना चाहिए।

(१५) अफीम का विष—अरहर की पत्ती का रस पीने से नष्ट होता है।

मटर

सं० कलाय, हिं० मटर, बं० बाँटुला मटर, म० वाटाण, गु० वटाणा, क० बट्टकडले, तै० पेइझर्म्म, अँ० फील्ड पी Field pea, और लै० पाईसम् सेटाइवम्-Pisum Sativum.

विशेष विवरण—यह वर्षा अथवा शरदऋतु में प्राय

भारतवर्ष भर में सभी जगह बोया जाता है। इसका पेड़ साधारण छोटा सा होता है। इसकी फलियाँ चार-पाँच अँगुल तक की होती हैं। प्रत्येक में चार-पाँच दाने होते हैं।

गुण—कषायो मधुरः स्वादुः पाके रूक्षश्च शीतलः।

रक्तदः कफपित्तघ्नो भिन्नविट्कोविबन्धकृत्॥ (शा० प्र०)

मटर—मधुर, पाक में स्वादिष्ट, रूखी, शीतल, रुधिर विना शक, कफ-पित्त नाशक, दस्तावर और अत्यन्त वातकारक है।

विशेष उपयोग (१) उँगलियों की सूजन—मटर के गरम-गरम काढ़े में थोड़ा मीठा तेल मिलाकर धोने से नष्ट होती है।

(२) कान्ति—भूनी हुई मटर और नारंगी का छिलका दूध में पीसकर उबटन करने से वर्ण साफ होकर कान्ति बढ़ती है।

(३) आग से जलने पर—हरी मटर पीसकर लगाना चाहिए।

(४) वातविकार—मटर की रोटी घी के साथ खाने से नष्ट होता है।

चना

स० हरिमन्थ, चणक, हि० चना, ब० छोला, म० हरबरा, गु० चण्या, ते० चनगालु, क० ता० कडले, फा० नखुद, अ० हुमस्, अँ० ग्रैम Gram, और लै० सीसर एरीएटिनम्-Cicer Arıatınum

चूर्ण बना लें। बाद दो तोले चणक क्षार में तीन माशे उपर्युक्त चूर्ण मिलाकर पी जायँ। अथवा चणक क्षार, सेंधा नमक और काला नमक मिलाकर पिया जाय।

(७) उदर-शूल—एक तोला चणक क्षार में एक माशा सेंधा नमक मिलाकर पीने से सब प्रकार का उदर-शूल नष्ट हो जाता है।

(८) उन्माद और वमन पर—चने की दाल का पानी पीना चाहिए।

(९) रक्तविकार में—चने की रोटी बिना नमक की घी के साथ खाना चाहिए।

(१०) हिचकी—चने की भूसी तम्बाकू की तरह पीने से नष्ट हो जाती है।

(११) सिर-दर्द पर—चने का बेसन घी में भूनकर काली मिर्च और मिश्री मिलाकर खाना चाहिए।

मसूर

स० म० गु० हि० वा० मसूर, बं० मसूर कलाय, फा० बयागी, तै० चिरिशनमल्लु, फा० यूनोसुर्ख, अ० अदस्, अँ० लेनटिल Lentil, और लै० इरवेलेन्स Erveylens

विशेष विवरण—यह भारतवर्ष में प्रायः सभी जगह थोड़ा बहुत होता है। इसका पेड़ हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा होता है।

इसका रंग कुछ लाली लिए हुए काला होता है । यह लाल और सफेद दो प्रकार का होता है । दोनों का गुण समान है ।

गुण—मसूरो मधुरः शीतः संग्राही कफपित्तजित् ।

वातामयकरश्चैव मूत्रकृच्छ्रहरो लघुः ॥ (रा० नि०)

मसूर—मधुर, शीतल, ग्राही, कफ-पित्त नाशक, वातरोगकारक मूत्रकृच्छ्र नाशक और हलका है ।

विशेष उपयोग (१) त्रिदोष जन्य वमन पर—भूने हुए मसूर का चूर्ण अनार के रस में मिलाकर पीना चाहिये ।

(२) फोड़े पर—मसूर की पुल्टिस बाँधने से मवाद साफ हो जाता है ।

(३) दाँतों का दर्द—मसूर की राख दो तोले, सुपारी की राख एक तोला, भूनी हुई फिटकिरी तीन मासे, सेंधा नमक एक तोला सबको महीन पीसकर मंजन करने से दाँतों का दर्द शान्त हो जाता है और दाँत पुष्ट हो जाते हैं ।

(४) सर्वज्वर पर—मसूर की ठठी की धूप देना चाहिए ।

(५) घावों पर—मसूर की राख भैंस के दूध में घोल-कर लगाने से लाभ होता है ।

कुलथी

स० कुलित्थ, हि० कुलथी, ब० कुलत्थकलाय, म० कुलीथ, गु० कलथी, क० हुरली, ते० युलवुलु, ता० कोलु, फा० किस्लान,

अ० हुखुलकिलत, अ० टू फ्लावर्स डोलीकोस Two Flowered Dolichos, और लै० डोलिकोस बाइफ्लोरस Dolichos Bifloras

विशेष विवरण—कुलथी प्राय भारतवर्ष में सब जगह होती है। इसका पेड़ जमीन पर फैला हुआ प्राय एक हाथ ऊँचा होता है। इसके पत्तों की आकृति उड़द से मिलती हुई होती है। इसकी फलियाँ कुछ टेढ़ी और चिपटी होती हैं। प्रत्येक फली में तीन-चार दाने कुछ कालिमा लिए हुए लाल रंग के होते हैं।

गुण—कुलत्थः कटुकः पाके कषायः पित्तरक्तकृत्।
लघुर्विदाही वीर्योष्णः श्वासकासकफानिलान्॥
हन्ति हिक्काश्मरीशुक्रदाहानाहान्सपीनसान्।
स्वेदसंग्राहको मेदोज्वरक्रिमिहरः परः॥ (भा० प्र०)

कुलथी—पाक में कटु, कषैली, रक्तपित्तकारक, हलकी, विदाह कारक, उष्ण वीर्य तथा श्वास, खाँसी, कफ, वायु, हिचकी, पथरी, वीर्य, दाह, पेट का फूलना, जुकाम, मेद, ज्वर तथा कृमि नाशक और पसीना को रोकती है।

विशेष उपयोग (१) वायु विकार पर—कुलथी का काढ़ा पीना चाहिए।

(२) गण्डमाला—कुलथी एक तोला और दस दाना काली मिर्च का काढ़ा पीने से लाभ होता है।

(३) अतीसार में—कुलथी के पेड़ के एक तोला रस में तीन मासे कत्था मिलाकर पीना चाहिए।

(४) पसीना—भूनी हुई कुलथी का चूर्ण शरीर पर मालिश करने से अधिक पसीना आना मन्द होता है।

(५) रक्तपित्त पर—कुलथी एक पाव और पाँच मिलायाँ एक सेर पानी में उबालकर थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिए।

(६) शूल पर—कुलथी के काढ़े में भूनी हुई हींग, काला नमक और सोंठ का चार-चार रत्ती चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(७) पथरी पर—कुलथी के काढ़े में सरफोंका का चूर्ण और सेंधा नमक दो-दो माशे मिलाकर पीना चाहिए।

(८) श्वेतप्रदर पर—कुलथी का काढ़ा एक माशा कत्था का चूर्ण मिलाकर पीने से स्त्रियों का श्वेतप्रदर नष्ट हो जाता है।

(९) मासिक धर्म—कुलथी एक तोला, एक तोला काला तिल, दो तोले पुराना गुड़ आध सेर पानी में पकाएँ। आध पाव बाकी रहने पर छानकर पी जायँ। इससे मासिक धर्म सम्बन्धी सभी खराबियाँ दूर हो जाती हैं।

कगुनी

स० कगु, हि० कगुनी, म० कॉंगनी, गु० म० कॉंग, क० नवणी, तै० प्रेंकसापुचेद्द्रु, फा० गल, और लै० पेनिकम् इटैलिकम्- Panicum Italicum

विशेष विवरण—यह तृण धान्य का ही एक भेद है; किन्तु

इसकी छाल कुछ मोटी होती है। इसका पेड़ दो-ढाई हाथ ऊँचा होता है। इसमें बाजरे के समान लम्बे-लम्बे भुट्टे लगते हैं। उनमें छोटे-छोटे पीले रंग के रोएँ होते हैं। इसे चिड़ियाँ बहुत खाती हैं।

गुण—कंगुस्तु भग्नसन्धानवातकृद्बृंहणो गुरुः।
रूक्षा श्लेष्महरातीव वाजिनां गुणकृद्भृशम्॥ (भा० प्र०)

कगुनी—टूटे हुए को जोड़नेवाली, वातकारक, बृंहण, भारी, रूखी, कफ नाशक और घोड़ों के लिए अत्यन्त गुण-कारक है।

विशेष उपयोग (१) अन्नद्रव शूल—कगुनी को दूध में पकाकर खाने से नष्ट हो जाता है।

(२) बल, वीर्य की वृद्धि के लिए—कंगुनी का भूना हुआ चावल दूध में पकाकर खाना चाहिए।

(३) गठिया—कगुनी सिरका में पीस और गरम करके लेप करने से गाँठों का दर्द नष्ट होता है।

खेसारी

सं० त्रिपुट, हि० खेसारी, ब० खेसारिकलाय, म० लांग, गु० मटर, तै० लाक, अ० हयुलमकर, फा० मासग, अं० चिक वेच Chick Vetch, और लै० लेथिरस् साटिवस Lathyrus Sativus

विशेष विवरण—इसका पेड़ मटर की तरह ही होता है।

प्राय भारतवर्ष में यह सभी जगह होती है। परन्तु मध्य भारत और सिन्ध में विशेष रूप से होती है। इसकी पत्तियाँ लम्बी और पतली होती हैं। दाना छोटा, चिपटा तथा मटमैला होता है।

गुण—त्रिपुटोमधुरस्तिक्तस्तुवरो रूक्षणो भृशम् ।
कफपित्तहरो रुच्यो मादकः शीतलस्तथा ॥
किन्तु खञ्जत्वपङ्गुत्वकरो वातातिकोपनः । (भा० प्र०)

खेसारी—मीठी, तीती, कषैली, अत्यन्त रूखी, कफ-पित्त-नाशक, रुचिकारक, मलरोधक, शीतल, खञ्ज और पङ्गुत्व को करनेवाली तथा अत्यन्त वातकारक है।

विशेष उपयोग (१) कफ और पित्त जन्य अरुचि वाले को—खेसारी की दाल में हींग और घी मिलाकर खाना चाहिए।

(२) शोथ—खेसारी के गरम-गरम काढ़े से धोना चाहिए।

सॉवॉं

स० श्यामाक, हि० सॉवॉं, ब० शामाधान, म० सावें, गु० शामो, क० सवे, तै० श्यामालु, फा० शामाख् और लै० पेनिक फ्रुमेंटशियम् Panicum Frumentaceum

विशेष विवरण—भारत में यह बहुत होता है। यह काला और सफेद दो प्रकार का होता है। पंजाब प्रान्त में इसे केवल पशु ही खाते हैं, किन्तु संयुक्त प्रान्त में लोग इसे दूध में पकाकर खाते हैं।

गुण—श्यामाकः शोषणो रूक्षो वातलः कफपित्तनुत् (भा० प्र०)

साँवाँ—शोषक, रूखा, वातकारक और कफ-पित्त नाशक है।

विशेष उपयोग (१) अन्नद्रव शूल पर—साँवाँ की खीर में अगर का चूर्ण मिलाकर खाना चाहिए।

(२) जुकाम पर—साँवाँ को तवा पर भून लें और घी सेंधा नमक मिलाकर खायें।

कोदो

स० कोद्रव, हि० कोदो, ब० क० हारिक, म० कोद्रू, गु० कोदरो, तै० आलुवालु, अ० कोद्रु, अँ० पक्चर्ड पसपेलम्-Panctured Paspalum, और लै० पासपेलम् स्कोबिक्यूलेटम् Paspalum Scrobiculatum.

विशेष विवरण—सब प्रकार के धान्यों में यह निम्न श्रेणी का धान्य है। यह राई के बराबर का, लाल और पीले दो रंग का होता है। इसे खाने के पहले तीन दिनों तक शाम के समय पानी में भिगो देना और सुबह पानी से निकालकर घाम में सुखा लेना चाहिए। इससे इसके सब दोष निकल जाते हैं।

गुण—कोद्रवो वातलो ग्राही हिमः पित्तकफापहः।
उद्दालस्तु भवेदुष्णो ग्राही वातकरो भृशम्॥ (भा० प्र०)

कोदो—वातकारक, ग्राही, ठढा और पित्त-कफ नाशक है।
वनकोदो—गरम, ग्राही और अत्यन्त वातकारक है।

विशेष उपयोग (१) अन्नद्रव शूल पर—कोदो की खीर

अथवा कोदो का भात दही के साथ खाने से लाभ होता है।

(२) पित्तातीसार पर—कोदो का भात और केले की तरकारी का पथ्य देना चाहिए।

(३) फोड़ा—कोदो का भात व्रणवाले रोगी को खाना चाहिए।

बाजरा

स० वर्जरी, हि० बाजरा, म० बाजरी, गु० बाजरो, अ० जार्वस, फा० गार्वसा और अँ० मिलेट मेज-Millet Maize

विशेष विवरण—बाजरा भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में पैदा होता है, किन्तु मारवाड़ और कच्छभुज का बाजरा उत्तम और मोटा होता है। यह बड़ा पौष्टिक और मीठा होता है। ठंढे प्रान्तों के लोगों को यह विशेष हितकर होता है। इसमें भी भुट्टा होता है। उसे मलने से दाने निकलते हैं।

गुण—वर्जरी दुर्जरा ज्ञेया कफवातव्रणाशिनी (शा० नि०)

बाजरा—देर में पचनेवाला और कफ-वात नाशक है।

विशेष उपयोग (१) पेट के शोथ पर—बाजरे की रोटी एक तरफ सेंकी हुई गरम-गरम बाँधनी चाहिए।

(२) बहुमूत्र में—बाजरे का भात अथवा रोटी गुड़ के साथ खाने से लाभ होता है।

(३) ज्वर—बाजरे की खील का कफ और पित्त जन्य ज्वर में पथ्य देना चाहिए।

(४) पसीना में—भूने हुए बाजरे में सोंठ और सेंधा नमक मिलाकर उसका महीन चूर्ण मालिश करना चाहिए।

(५) मोतीझरा ज्वर में—बाजरे की खीलों का पथ्य देना चाहिए।

(६) घोड़े की पीठ की छालों पर—बाजरे की राख पानी में खरल करके लगाना और ऊपर से चिकनी मिट्टी की पट्टी बाँधना चाहिए।

ज्वार

स० यावनाल, हि० ज्वार, म० जोयार, म० जोंधले, गु० जुवार, क० जोल, तै० जोन्नलु, ता० चोल, फा० जुरेमका, अ० दुराहमिया ख़दरूस, अँ० ग्रेट मिलेट-Great Millet , और लै० होलकस वलगेरी Holcus Valgari

विशेष विवरण—बुंदेलखण्ड, मालवा, गुजरात, खानदेश, बरार, कृष्णगिरि बालाघाट, धारवाड़, और मद्रास आदि प्रान्तों में अधिक पैदा होती है। इसका पेड़ तीन-चार हाथ ऊँचा होता है। सूखने पर इसका दाना पीले और लाल रंग का होता है।

गुण—यावनालो गुरुः शीतो रूक्षो ग्राही रुचिप्रदः।
वृष्यो मलस्तम्भकरः स्वादु पित्तकफापहः॥

रक्तरोगप्रशमनो रुचिमि पूर्वमीरितः । (शा० नि०)

ज्वार—भारी, शीतल, रूखी, ग्राही रुचिकारक, वाजीकर, मलरोधक, स्वादिष्ट, पित्त-कफ नाशक और रक्तरोग नाशक है।

विशेष उपयोग (१) प्यास अधिक लगने पर—ज्वार की ताजी रोटी मट्ठे में भिगोकर खाना चाहिए।

(२) पेट की जलन और प्यास पर—ज्वार की खील बताशे के साथ खाना चाहिए।

(३) दाह—ज्वार का आटा घोलकर शरीर पर लेप करने से शरीर की दाह शान्त होती है।

(४) पसीना लाने के लिए—भूने हुए ज्वार का काढ़ा पीना चाहिए।

मक्का

स० महाकाय, हि० मका, म० मका, गु० मकाइ, तै० जनपटलु, अँ० इण्डियन कर्नमेज Indian Cornmaize, और लै० जिया मेज-Ziamaize

विशेष विवरण—इसका पेड़ तीन-चार हाथ ऊँचा होता है। पेड़ का रूप ज्वार के पेड़ से मिलता है। पेड़ की प्रत्येक गाँठ पर तीन-चार बालें निकलती हैं। इन बालों में पीले रंग के दाने निकलते हैं। किसी किसी बाल में एकाध लाल रंग का भी दाना होता है। भूनकर इसकी खीलें बनाई जाती हैं।

गुण—महाकायस्तुसिक्तो वातलः कफपित्तहृत् ।
विष्टम्भजनको रुक्षः कोमलो रुचिपुष्टिकृत् ॥ (शा० नि०)

मक्का—तृप्तिकारक, वातकारक, कफ-पित्त नाशक, विष्टम्भी और रूखा है। कच्चा मक्का—रुचिकर और पुष्टिकारक है।

विशेष उपयोग (१) **राजयक्ष्मा**—मक्का की रोटी जिसे राजयक्ष्मा का पूर्व रूप हो उसे खाना चाहिए।

(२) **खाँसी और जुकाम पर**—मक्का की राख और सेंधा नमक दो-दो माशे दिन में तीन बार गरम जल के साथ सेवन करना चाहिए।

(३) **पेशाब की जलन में**—ताजे मक्के का काढ़ा मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

(४) **वमन पर**—मक्का का दाना निकाली हुई भीतर की हीर जलाकर चार रत्ती, शहद के साथ मिलाकर चटाना चाहिए।

(५) **शारीरिक बल के लिए**—मक्का का तेल * शरीर पर मालिश करना चाहिए।

(६) **बालकों का बल**—मक्का का तेल शहद के साथ चटाने से बढ़ता है।

---

* मक्का पीसकर उसका रस निकाल लें और उसे बोतल में भरकर धाम में रख दें। थोड़ी देर में तेल बोतल के नीचे के हिस्से में जम जायगा। बस उसे छानकर शीशी में भरकर रख दें। इसे ही मक्का का तेल कहते हैं।

(७) बालकों के कमजोर पैरों पर—मक्का का तेल मालिश करना चाहिए।

मोठ

सं० मुकुष्ठ, हिं० मोठ, बं० बनमूँग, म० मटक्या, गु० मठ, क० मुगु, तै० कर्फपेसालु, फा० मापहिंदि, अं० एकोनेट लिव्ड किडनी-बिन-Aconite Leaved Kidneybean, और लै० फेसीओलस Phaseolus

विशेष विवरण—यह प्राय पूर्व भारत में होती है। द्विदल धान्यों में यह भी एक निम्न श्रेणी का धान्य है। अधिकतर लोग इसकी दाल ही बनाकर खाते हैं।

गुण—मुकुष्ठो वातलो ग्राही कफपित्तहरो लघुः।
वह्निकृन्मधुरः पाके कृमिकृज्ज्वर नाशनः॥ (भा० प्र०)

मोठ—वातकारक, ग्राही, कफ-पित्त नाशक, हलकी, वमन निवारक, पाक में मधुर, कृमिकारक और ज्वर नाशक है।

विशेष उपयोग (१) पसीना में—भूनी हुई मोठ के चूर्ण में नमक मिलाकर शरीर पर मालिश करना चाहिए।

(२) गर्भाशय की शुद्धि—मोठ की रोटी खाने से प्रसव के बाद गर्भाशय की शुद्धि होती है।

(३) अरुचि पर—भूनी हुई मोठ में नमक, मिर्च लगाकर खाना चाहिए।

(४) रक्तशुद्धि के लिए—मोठ की दाल खानी चाहिए।

(५) उदर शूल पर—मोठ की दाल में सोंठ का चूर्ण और भूनी हुई हींग मिलाकर खाने से लाभ होता है।

कुसुम

स० क० कुसुम्व, गु० कुसुम्वी, म० करडई, वा० पेडुरफुल, ते० लवरुका, लक्का, फा० तुस्मकापरा, अ० हुबुलअस्फर, अँ० सेफ्लोवर कार्थेमस-Safflower Carthemus, और लै० कार्थेमस टिंकटोरियन्स Carthemus Tinctorions.

विशेष विवरण—यह दक्षिण प्रान्त में बहुतायत से पैदा होता है। यह प्राय: गेहूँ के खेत में बोया जाता है। इसका बीज कपास की तरह तथा यह दो प्रकार का होता है। एक जगली काँटेदार और दूसरा बिना काँटे का। जगली कुसुम की पत्तियों के चारो ओर काँटे होते हैं। दूसरे की पत्तियाँ बिना काँटे की अथवा थोड़ी काँटेदार होती हैं। इसके फूल पीले, नारगी के रगवाले, बैंगनी और गुलाबी रग के होते हैं। इनसे रग बनाया जाता है।

कुसुम का बीज सफेद रग का होता है। इसमें से तेल भी निकाला जाता है। आजकल प्राय: इसी तेल को घी में मिलाकर बेचते हैं।

गुण—शरद्य मधुरा स्निग्धा रक्तपित्तकफापहा।
कषाया शीतला गुर्वी स्वादुर्वृष्यानिलापहा॥ (भा० प्र०)

कुसुम—मधुर, चिकना, रक्तपित्त एवं कफ नाशक, कषैला, शीतल, भारी, स्वादिष्ट, वृष्य और वात नाशक है।

विशेष उपयोग (१) गठिया पर—कुसुम का तेल मालिश करने से लाभ होता है।

(२) बिगड़े हुए फोड़े पर—कुसुम की पुल्टिस बाँधने से विशेष लाभ होता है।

चीना

स० चीनक, हि० चीना, ब० चीनाधान, म० राला, गु० चीणो, क० चीनक, फा० उरजान, अ० धारेगा, अं० मिलेट Millet, और लै० पैनिकम् मिलियेसियम-Panicum Miliaceum

विशेष विवरण—यह साँवाँ और कगुनी की जाति का धान्य है। इसके भी भुट्टे होते हैं। यह प्रायः सभी जगह पैदा होता है।

गुण—चीनकः कगुभेदोऽस्ति स ज्ञेयः कंगुवद्गुणैः। (भा० प्र०)

चीना—कगुनी का भेद है। इसलिए उसी के गुण के समान इसका भी गुण समझना चाहिए।

विशेष उपयोग (१) अतीसार में—भूने हुए चीना के चावल को गाय के मट्ठे के साथ खाना चाहिए।

चावल

स० तण्डुल, हि० चावल, ब० शालिधान्य, म० साली, भात,

गु० थोखा, क० नेल्लु, तै० धान्यम्, फा० विरज, अ० उरज, अँ० पैडी राइस-Paddy Rice, और लै० ओरिजा सैटिवा-Oriza Sativa.

विशेष विवरण—संसार में सभी जगह थोड़ा बहुत उपयोग उसका होता है। यह भारत में अधिकतर पूर्वीय देशों में पैदा होता है और वही श्रेष्ठ माना गया है। इसका पेड़ दो से पाँच हाथ तक ऊँचा होता है। इसमें सब पत्तियाँ ही नजर आती हैं। उसी में से छोटे-छोटे शलाके निकलते हैं और उन्हीं में से चावल निकलता है। सब प्रकार के धान्यों में जितने प्रकार चावल में होते हैं उतने दूसरे में नहीं। जो धान साढ़े चार मास के भीतर पककर तैयार होता है, उसे "भदइयाँ" कहते हैं। जो धान छ मास के भीतर तैयार होता है उसे "अगहनियाँ" कहते हैं। बंगालियों का मुख्य आहार चावल ही है। अन्य प्रान्तों में भी बहुत से ऐसे लोग हैं जो चावल का ही अधिक उपयोग करते हैं। ऊपर भदइयाँ और अगहनियाँ दो भेद चावल के बताए जा चुके हैं। उसे ही क्रम से साठी—भदइयाँ और शाली—अगहनियाँ समझना चाहिए।

गुण—षष्टिका मधुराः शीता लघवो बद्धवर्चसः।
वातपित्तप्रशमनाः शालिभिः सदृशा गुणैः॥
षष्टिका प्रवरा तेषां लघ्वी स्निग्धा त्रिदोषजित्।
स्वाद्वी मृद्वी ग्राहिणी च बल्या ज्वरहारिणी॥ (भा० प्र०)

साठी चावल—मधुर, शीतल, हलका, मलरोधक, वातपित्त नाशक, और अन्य गुणों में शालि धान्य के समान है। सब प्रकार के धान्यों में यह धान्य उत्तम है और हलका, चिकना,

त्रिदोष नाशक, स्वादिष्ट, मुलायम, मलरोधक, बलदायक और ज्वर-नाशक है।

गुण—शाल्यो मधुराः स्निग्धा बल्या बद्धाल्पवर्चसः।

कषाया लघवो रुच्याः स्वर्या वृष्याश्च बृंहणाः॥

अल्पानिलकफाः शीताः पित्तघ्ना मूत्रलास्तथा। (शा० नि०)

शाली चावल—मधुर, स्निग्ध, बलकारक, थोड़ा मलरोधक, कषैला, हलका, रुचिकारक, स्वर को शुद्ध करनेवाला, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, थोड़ा वात और कफकारक, शीतल, पित्त नाशक और मूत्रजनक है।

विशेष उपयोग (१) वर्षा में बिवाई फट जाने पर—धान के पुआल को जलाकर सेंकना चाहिए। यह इस प्रकार सेंका जाय, जिसमें पैर उसके धूएँ से काला हो जाय।

(२) सरदी, गरमी पर—महीन चावल के माँड़ को हाँड़ी में भरकर मुँह कपड़े से बन्द करके ओस में रख दें। सुबह थोड़ी शक्कर मिलाकर सात दिनों तक पीएँ।

(३) पेशाब की जलन—सफेद चावलों की धोअन में शक्कर और सोडा मिलाकर पीने से नष्ट होती है।

(४) भाँग का नशा—चावलों की धोअन पीने से उतरता है।

(५) शोप रोग पर—भूने चावलों का काढ़ा देना चाहिए।

(६) प्यास—चावलों की धोअन में शहद मिलाकर पीने से शान्त होती है।

(७) आग से जलने पर—धान के पुआल की राख घी में घोटकर लगाना चाहिए।

(८) भस्मक रोग पर—चावल, कमलगट्टा अथवा सफेद कमल बकरी अथवा भैंस के दूध में पकाकर तथा थोड़ा घी मिलाकर सेवन करना चाहिए।

(९) बद्धकोष्ठता—चावल एक भाग और दो भाग मूँग के दाल की खिचड़ी पकाकर घी मिलाकर खाना चाहिए।

(१०) रक्त प्रदर और खून के दस्तों पर—चावलों की धोवन एक छटाँक, एक माशा खूनखराबा और दो माशे शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(११) पित्तज्वर में—चावलों के माँड़ में मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

(१२) अरुचि में—चावलों के माँड़ को हींग, जीरा और घी से छौंककर तथा नीबू का रस मिलाकर पीने से लाभ होता है।

(१३) आँतों की पीड़ा—चावलों के माँड़ की पिचकारी गुदा द्वारा देने से नष्ट होती है।

(१४) फोड़ा—पिसे हुए चावलों का हलवा सरसों के तेल में बनाकर बाँधने से पककर फूट जाता एवं पीव साफ होकर निकल जाता है।

(१५) अतीसार पर—चावलों का माँड़ दिन में थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिए।

(१६) मुँह की झाईं में—चावलों की पिट्ठी घी में भून

कर मुँह पर उपटन करना चाहिए।

(१७) जुलाब के लिए—चावलों को थूहर के दूध में भिगोकर सुखा लें। बाद उसमें मीठा मिलाकर पूरी बनाकर खाएँ। इससे जलोदर रोग भी नष्ट हो जाता है।

(१८) अम्लपित्त पर—धान की राख छः माशे, जल के साथ दोनों समय सेवन करना चाहिए।

(१९) पित्तज्वर पर—चावल और मूली की पुरानी काँजी पिलाना और शरीर पर मालिश करना चाहिए।

(२०) दाह—भूने हुए चावलों और मिश्री का काढा पीने से शान्त होती है। *

तीनी

स० नीवार, हि० तीनी, ब० उड़ीधान्य, म० देवभात, गु० वटी, फ० ब्यरहुमेचे, तै० निवरीयद्‌ट्ठ और लै० पेनिक इटालिकम्-Panicum Italicum

विशेष विवरण—यह प्रायः बड़े-बड़े तालाबों के किनारे और विशेष रूप से बंगाल के समीपवर्ती स्थानों में पैदा होता है।

* नोट—बंगाल के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर पी० सी० राय ने यह सिद्ध किया है कि बिस्कुट से अधिक पौष्टिक पदार्थ चावलों की भूनी हुई फरही (लाई) है। यदि पाश्चात्य सभ्यता के कंगाल बिस्कुट छोड़कर फरही का व्यवहार करें, तो अर्थ और स्वास्थ्य दोनों का विशेष लाभ हो।

हिन्दुओं में एक त्योहार सलही-छठ नाम का होता है। उस दिन व्रती प्राणी इसका ही आहार करते हैं।

गुण—नीवारः शीतलो ग्राही पित्तघ्न कफवातकृत्। (भा० प्र०)

तीनी—शीतल, ग्राही, पित्त नाशक तथा कफ और वात कारक है।

विशेष उपयोग (१) पित्तज्वर पर—तीनी के चावलों का पथ्य देना चाहिए।

(२) दाह—तीनी का चावल और मूंग के दाल की खिचड़ी घी मिलाकर खाने से शान्त होती है।

(३) अतीसार में—तीनी के चावलों का माँड जीरा और लौंग से छौंका हुआ खाने से लाभ होता है।

तिल

म० हि० तिल, ब० तिलगाछ, म० तील, गु० तल, क० एछु, तै० नोवुल्ल, खथिनूने, ता० वाल्लेनेय, द्रा० धारिक तिल, अ० सिमसिम, फा० कुजद, अं० सिसेमम् निगर सीड्स Sisamum Niger Seeds, और लै० सिसेमम् इण्डिकम्-Sisamum Indicum

विशेष विवरण—वैज्ञानिकों का कथन है कि इसका उत्पत्ति-स्थान अफ्रीका महाद्वीप है। किन्तु तिल शब्द वेदों में भी मिलता है। दूसरे उसकी खेती यहाँ पर भी होती है। इसका पेड़ प्रायः दो हाथ ऊँचा होता है। जिस समय यह एक या दो बित्ता

ऊँचा रहता है उस समय लोग इसकी तरकारी बनाकर खाते हैं। इसकी पत्तियाँ आठ-दस अंगुल लम्बी और तीन-चार अंगुल चौड़ी और जरा टेढ़ी होती हैं। इसके फूल गोल आकार के जरा गहरे तथा बाहर सफेद और भीतर बैंगनी रंग के होते हैं। उनमें से तिल के कोष लम्बे-लम्बे निकलते हैं। काला और सफेद दो तरह का तिल होता है। परन्तु दवा के काम में काला तिल ही आता है।

गुण—तिलो रसे कटुस्तिक्तो मधुरस्तुवरो गुरुः।
विपाके कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः कफपित्तकृत् ॥
बल्यः केश्यो हिमस्पर्शस्त्वच्यः स्तन्यो व्रणे हितः।
दन्त्योऽल्पमूत्रकृद्ग्राही वातघ्नोऽग्निमतिप्रदः ॥
कृष्णः श्रेष्ठतमस्तेषु शुक्लो मध्यमः स्मृतः।
अन्येहीनतराः प्रोक्तास्तज्ज्ञैः रक्तादयस्तिलाः ॥

तिल—रस में कटु, चरपरा, मधुर, कषैला, भारी, पाक में कटु, स्वादिष्ट, चिकना, उष्ण, कफ-पित्तकारक, बलवर्द्धक, केशों को हित, स्पर्श में शीतल, त्वचा को हित, स्तनों में दूध पैदा करने-वाला, व्रणों को हित, दाँतों को हितकारक, अल्पमूत्रकारक, ग्राही, वात नाशक और बुद्धिप्रद है। सब प्रकार के तिलों में काला तिल अत्युत्तम है। सफेद तिल मध्यम श्रेणी का और वीर्यवर्द्धक है। इनके अतिरिक्त अन्य रंगवाले तिल गुणहीन होते हैं।

विशेष उपयोग (१) मूत्राघात और दाह पर—तिल के पेड़ की अथवा फली की राख और शहद गाय के दूध में मिलाकर पीना चाहिए।

(२) आग से जले हुए घावों पर—तिल का तेल और चूने का पानी एक में मिलाकर रूई का फाया तर करके रखना चाहिए और बारम्बार वही तेल तथा चूने का पानी छोड़ना चाहिए।

(३) रुके हुए मासिक-धर्म पर—काला तिल एक तोला, पुराना गुड़ दो तोले, लिसोढ़ा छः माशे, काली मिर्च छः माशे, सौंफ छः माशे आध सेर पानी में पकाएँ। आध पाव बाकी रहे तब छानकर पीना चाहिए।

(४) मुखपाक और दाँतों के हिलने पर—सेंधा नमक और तिल का तेल मुँह में भरकर थोड़ी देर रखना और बाद कुल्ला कर देना चाहिए।

(५) अपस्मार (मृगी) पर—तिल के तेल में कनखजूरा पका लें बाद छानकर उसी तेल को नाक और कान में बूँद-बूँद टपकाएँ। इससे मृगी का कीड़ा सिर से निकल जाता है और रोग अच्छा हो जाता है।

(६) आधाशीशी में—काला तिल दूध में पीसकर सिर पर लेप करना तथा गुड़ और घी एक साथ खाना चाहिए।

(७) कुत्ते के विष पर—तिल का तेल, काला तिल, गुड़ और मन्दार का दूध बराबर भाग मिलाकर खाना चाहिए।

(८) धतूरे के विष पर—तिल का तेल गरम पानी में मिलाकर पीना चाहिए।

(९) पित्तजन्य फुन्सियों पर—तिल के तेल में अपामार्ग

और साबुन मिलाकर तथा गरम करके लगाना अथवा सफेद केथुल की राख तेल में मिलाकर लगाना चाहिए।

(१०) प्रमेह पर—तिल का पत्ता पानी में भिगो दें और मलकर तथा छानकर तुरन्त पी जायँ।

(११) गर्भस्राव के लिए—तिल और पलाश का चूर्ण समभाग शक्कर मिलाकर फाँकना चाहिए।

(१२) खूनी बवासीर पर—तिल का चूर्ण मक्खन के साथ खाना चाहिए।

(१३) प्रसव के बाद रक्तस्राव रोकने के लिए—तिल, जौ और मिश्री का चूर्ण शहद के साथ चाटना चाहिए।

(१४) मूत्रश्मरी और शुक्रश्मरी में—तिल के पेड़ के छाल की राख शहद में मिलाकर चाटने से लाभ होता है।

(१५) पेशाब के समय जलन होती हो,तो—पचास तिल का ताजा फूल आध सेर पानी में शाम को भिगो दें। सुबह फूलों को मलकर पानी छान लें और उसमें थोड़ी शक्कर मिलाकर पी जायँ। इसी प्रकार दोनों समय सात दिनों तक पीएँ। अथवा तिल का पत्ता सुखाकर छ: मारो काँच के बर्तन में भिगो दें। शाम का भिगोया सुबह छान लें और उसमें शक्कर और जीरा का चूर्ण मिलाकर पी जायँ। इसे केवल सुबह ही पीना चाहिए।

(१६) बालकों के रक्तातीसार पर—मक्खन में तिल की भूसी और शक्कर मिलाकर चटाना चाहिए।

(१७) रक्तगुल्म और रजस्राव के लिए—तिल के

काढ़े में सोंठ, मिर्च, पीपर, भूनी हुई हींग और मोंगरमूल का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(१८) रक्तातीसार पर—काले तिलों का चूर्ण एक तोला, दो तोले शक्कर, एक पाव बकरी के दूध में मिलाकर पीना चाहिए।

(१९) बवासीर में—भूसी रहित काला तिल दो तोले प्रतिदिन खाने से लाभ होता है। या काला तिल, नागकेशर और शक्कर मक्खन के साथ खाने से लाभ होता है।

(२०) सड़े घावों पर—तिल की पुल्टिस बाँधना चाहिए।

(२१) धातु गिरने पर—तिल और गोखुरू दूध में पका-कर और छानकर पीना चाहिए।

(२२) नहरुआ पर—तिल की भूसी काँजी में पीसकर लेप करना चाहिए।

(२३) बद्धकोष्ठता पर—तिल, चावल और मूँग के दाल की खिचड़ी खाने से लाभ होता है।

(२४) बहुमूत्र—तिल और गुड़ कुछ दिनों तक खाने से नष्ट होता है।

(२५) सरदी और गर्भाशय की पीड़ा में—तिल को पानी में पीस और गरम करके नाभि के नीचे पेड़ू पर लेप करना चाहिए।

(२६) मुँहासों पर—तिल सिरके में पीसकर मुँह पर लेप करना चाहिए।

(२७) मोच पर—तिल की खली पानी में पीसकर और

गरम करके लेप करना चाहिए।

(२८) बिल्ली के नोचे हुए स्थान पर—तिल पानी में पीसकर लेप करना चाहिए।

(२९) घर्रे के विष पर—तिल सिरके में पीसकर लेप करना चाहिए।

(३०) बिलावों का विष—तिल और मक्खन एक में पीसकर लेप करने से नष्ट होता है।*

अलसी

स० अतसी, हि० अलसी, तीसी, ब० मसिना, म०गु०अलशी, क० अगसी, तै० जस्त्लपासिचेट्टु, ता० अलविराई, फा० तुख्मे-कतान, अ० बजरुलकतान, अं० लिनसीड-Linseed, और लै० लिनम् यूसीटैटीसीमम्-Linum Usitatissimum.

विशेष विवरण—नवीन तत्ववेत्ताओं ने इसका मूल उत्पत्ति-स्थान मिश्र और यूरोपीय देश बतलाया है, किन्तु चरक, सुश्रुत एवं वेदों के देखने से यह साफ मालूम हो जाता है कि अलसी पहले भी यहाँ पैदा होती थी। इसका पेड़ डेढ़-दो फीट ऊँचा तथा बहुत ही नाजुक और मुलायम होता है। इसमें पतले,

---

* नोट—तिल के पेड़ों पर एक प्रकार का जीव रहता है। उसे गुजराती में "मारुवा" कहते हैं। यह कीड़ा खटमलों को खा जाता है। इसलिए तिल के पेड़ समेत उसे घर लाकर गमले में रखना चाहिए।

लम्बे और एक-एक के अन्तर पर पत्ते होते हैं। इसमें घंटी के आकार का नीला फूल लगता है। उसी फूल में से गोल आकार का फल पैदा होता है और उसमें से दस-दस दाने निकलते हैं। अलसी का तेल रंग, रबर वार्निश और साबुन आदि बहुत से पदार्थों के बनाने में काम आता है।

गुण—अतसी मन्दगन्धा स्यान्मधुरा बलकारिका।
कफवातकरी पित्तपित्तघ्नकुष्ठवातनुत् ॥ (रा० नि०)

अलसी—मन्द गन्धयुक्त, मधुर, बलकारक, किंचित् कफ वातकारक, पित्त नाशक तथा कुष्ठ और वात विनाशक है।

विशेष उपयोग (१) निद्रा न आने पर—अलसी और रेंडी का तेल समभाग काँसे के बर्तन में खरल करके आँखों में आँजना चाहिए।

(२) बद और फोड़ा-फुंसी पर—अलसी और हल्दी दूध अथवा पानी में पीसकर और गरम करके बाँधना चाहिए। इससे आश्चर्यजनक लाभ होता है।

(३) आग से जलने पर—अलसी का तेल और चूने का पानी एक में फेंटकर लगाना चाहिए।

(४) पेशाब की जलन, रुकना, पथरी और सूखी खाँसी में—अलसी चार तोले, एक पाव पानी में पकाएँ। एक छटाँक बाकी रहने पर छानकर पी जायँ।

(५) बवासीर के मसों पर—अलसी का तेल दो तोले

एक पाव दूध में मिलाकर पीने से मसे मुलायम हो जाते हैं और कोष्ठ साफ रहता है।

(६) प्रमेह एवं मूत्र मार्ग के सब रोगों पर—अलसी का काढ़ा, शक्कर मिला अलसी का चूर्ण अथवा अलसी और मुलेहठी दो-दो तोले आध सेर पानी में पकाएँ। आध पाव बाकी रहने पर दिनभर थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिए।

(७) कफ जमने एवं फेफड़ा सूजने पर—अलसी की गरम-गरम रोटी छाती पर बाँधना चाहिए।

(८) उदर-शूल पर—अलसी का काढ़ा पीना चाहिए।

(९) रक्त का पेशाब एवं गर्भवती की उलटी और चक्कर में—अलसी का काढ़ा पीने से लाभ होता है।

(१०) बल और वीर्य की वृद्धि के लिए—अलसी और बबूल का गोंद घी में भूनकर तथा समभाग मिश्री मिलाकर दो तोले सुबह शाम धारोष्ण दूध के साथ सेवन करना चाहिए।

(११) कानों की पीड़ा में—अलसी का गरम-गरम तेल छोड़ना चाहिए।

(१२) कमर और पीठ की पीड़ा पर—अलसी के तेल में सोंठ का चूर्ण मिलाकर मालिश करना चाहिए।

(१३) सड़े घावों पर—अलसी को जलाकर और महीन पीसकर छोड़ना चाहिए।

सरसों

स० सर्षप, हि० सरसों, ब० सरिषा, म० सिरसव, गु० शरशव, क० बिलीयसासवेयतप्पलु, तै० पाबा आरवालु, फा० सर्षफ, अ० वर्फेस्मवीयद, अँ० व्हाइट मष्टर्ड—White Mustard, और लै० ब्रासिका केम्पेस्ट्रीस—Brassica Campestris

विशेष विवरण—यह लाल और पीली दो प्रकार की होती है। कहीं-कहीं काले रंग की भी देखने में आती है। मध्य प्रान्त और गुजरात में विशेष होती है। इसका पेड़ प्रायः एक-डेढ़ हाथ ऊँचा होता है। फूल पीले रंग का चमकीला होता है। उसी के बीच से दो-तीन अंगुल लम्बी फलियाँ निकलती हैं। जिनमें सरसों रहता है।

गुण—सर्षपस्तु रसे पाके कटुकस्तिक्तकः ।

तीक्ष्णोष्णः कफवातघ्नो रक्तपित्ताग्निवर्धनः ॥

रक्षोहरो जयेत्कण्डूकुष्ठकोष्ठकृमिग्रहान् ।

यथारक्तस्तथा गौरः किन्तु गौरो वरो मतः ॥ (भा० प्र०)

सरसों—रस और पाक में चरपरी, हृदय को हित, तीक्ष्ण, गरम, कफ-वात नाशक, रक्तपित्तजनक, अग्निवर्द्धक तथा राक्षस बाधा, खुजली, कुष्ठ, कोष्ठ, कृमि और ग्रह बाधा को दूर करती है। जो गुण लाल सरसों में हैं वे ही पीली में भी हैं; किन्तु लाल की अपेक्षा पीली सरसों श्रेष्ठ है।

विशेष उपयोग (१) श्वास पर—सरसों का तेल और गुड़ खाना चाहिए।

(२) गरडमाला पर—सरसों,नीम की पत्ती और भिलावों को समभाग जलाकर बकरी के मूत्र में पीसकर लेप करना चाहिए।

(३) कान में कीड़ा गया हो, तो—सरसों का तेल छोड़ना चाहिए।

(४) कानों में शब्द, शूल और बहिरेपन पर—सरसों का तेल छोड़ना चाहिए।

(५) शरीर की पीड़ा पर—सरसों के तेल में कपूर मिलाकर मालिश करना चाहिए।

(६) वायु की पीड़ा पर—सरसों पीसकर और गरम करके लेप करना चाहिए।

(७) बालकों की खाँसी में—सरसों के तेल में सेंधा-नमक मिलाकर छाती पर मालिश करना चाहिए।

(८) गर्भाधान के लिए—सरसों पीसकर गोली बनाकर मासिक धर्म में स्नान के बाद तीन दिनों तक रूई के फाहे के सहारे योनि में रखना चाहिए। इससे कफ और वायु के रोग नष्ट होकर गर्भ धारण करने की शक्ति आ जाती है।

(९) नासूर—रूई की बत्ती आक के दूध में भिगोकर सुखा लें। बाद उसे सरसों के तेल में डुबाकर जलाएँ और उस काजल को किसी मिट्टी के बर्तन में रोप लें और वही काजल नासूर के मुँह में भर दें।

(१०) मोच, खुजली और बिवाई पर—सरसों का तेल एक पाव, एक सेर आक के पत्तों का रस, पाँच तोले हल्दी का

चूर्ण एक साथ पकाएँ। केवल तेल बाकी रहने पर छानकर रख लें और आवश्यकतानुसार काम में लाएँ।

(११) शोथ पर—सरसों और बच समभाग पीसकर और गरम करके लेप करने से लाभ होता है।

(१२) श्लीपद पर—गोमूत्र में सरसों पीसकर और गरम करके लेप करना चाहिए।

(१३) दाँतों की मैल—सरसों का तेल, नीबू का रस और सेंधा नमक मिलाकर मलने से मैल साफ होती है और हिलना एवं दूखना भी बन्द हो जाता है।

राई

सं० राजिका, हि० गु० राई, म० राईसर्षप, म० मोहरी, क० सासीराई, तै० बर्णालु, अँ० इण्डियन मस्टर्ड Indian Mustard, और ले० ब्रासिका जनसिया Brassica Juncia.

विशेष विवरण—राई मध्य प्रान्त में बहुत होती है। इसका पेड़ प्राय हाथ भर ऊँचा होता है। यह सफेद, काली और लाल तीन प्रकार की होती है। इसमें भी सरसों की ही तरह फूल और फलियाँ होती हैं।

गुण—राजिका कफपित्तघ्नी तीक्ष्णोष्णा रक्तपित्तकृत्।
किञ्चिद्रूक्षाग्निदा, कण्डूकुष्ठकोष्ठकृमीन्हरेत्॥
अतितीक्ष्णा विशेषेण तद्वत्कृष्णापि राजिका। (भा० प्र०)

राई—कफ-पित्त नाशक, तीक्ष्ण, गरम, रक्तपित्तकारक, किंचित रूखी, अग्निवर्धक तथा खुजली, कुष्ठ, कोष्ठ और कृमि रोग नाशक है। काली राई भी इसी के गुण के समान है। किन्तु इसकी अपेक्षा उसमें तीक्ष्णता विशेष होती है।

विशेष उपयोग (१) वायु से जकड़े अंगों पर—राई पीसकर और गरम करके लेप करना चाहिए।

(२) विष उतारने के लिए—राई पानी में पीसकर पीना चाहिए। इससे वमन होकर विष उतर जाता है।

(३) उदर शूल और अजीर्ण में—राई का चूर्ण तीन मासे, गरम पानी के साथ सेवन करना चाहिए।

(४) सरदी पर—राई का चूर्ण शहद के साथ खाएँ। एव हाथ पैरों की ठंढक दूर करने के लिए राई का चूर्ण मलें।

(५) कर्णमूल पर—राई जैतून के तेल में पीसकर लेप करना चाहिए।

(६) यकृत पर—राई और सेंधा नमक का समभाग चूर्ण छः मासे, गोमूत्र के साथ सेवन करना चाहिए।

(७) पित्तजन्य दाह में—राई के पत्तों का रस तालू पर लगाना चाहिए।

(८) अर्धाङ्गवात पर—राई का तेल मालिश करें।

(९) मृतगर्भ बाहर निकालने के लिए—राई और भूनी हुई हींग का समभाग चूर्ण तीन मासे, काँजी के साथ सेवन करें।

(१०) आँखों के विकार पर—राई का चूर्ण तीन मासे,

चूने के पानी के साथ सेवन करना चाहिए।

(११) कखौरी पर—राई, गुड़ और गूगुल समभाग पानी में पीसकर और गरम करके पुल्टिस बाँधने से यह फूट जाती है।

(१२) शोथ पर—राई और काला नमक पानी में पीस और गरम करके लेप करना चाहिए।

(१३) वमन—राई का लेप करने से बंद हो जाता है।

(१४) मासिक-धर्म सम्बन्धी पीड़ा में—राई पीसकर गरम पानी में घोल दें और उसी पानी में कमर तक डूबकर आध घंटा तक बैठ जायँ। इससे पीड़ा नष्ट हो जाती है।

(१५) सिर में अधिक खून चढ़ जाने पर—राई पीसी हुई, गरम पानी में घोलकर उसी में घुटने तक पैर डुबाकर बैठा दें तथा सिर पर मोटा कपड़ा पानी से तर करके रख दें। इससे तुरन्त खून नीचे उतर जाता है।

(१६) कृमिविकार पर—राई का चूर्ण दही में मिलाकर खाना चाहिए।

(१७) अरुचि में—राई से छौंकी दाल खाना चाहिए। *

---

* नोट—पीसी हुई राई का चमड़े पर लेप करने से छाले पड़ जाते हैं। इसलिए बालक, सुकुमार, स्त्री एवं मुलायम चमड़वाले को इसका लेप झिल्ले (महीन) कपड़े के ऊपर करना चाहिए। इससे भी गुण उतना ही होता है और व्यर्थ तकलीफ नहीं होती।

आहार-विज्ञान

द्वितीय खण्ड, शाकवर्ग

पत्र, पुष्प, फल, नाल, कन्द और ससेवदज, इन छ प्रकार के शाकों में उत्तरोत्तर एक से दूसरा भारी है। अर्थात् पत्र से पुष्प, पुष्प से फल, फल से नाल, नाल से कन्द और कन्द से ससेवदज। प्राय सब प्रकार के शाक—विष्टम्भ कारक, भारी, रूखे और बहुत मल के करनेवाले होते हैं। शरीर, अस्थि, नेत्र, रक्त, शुक्र और बुद्धि का नाश कर स्मरण शक्ति को भी हरते हैं, किन्तु पत्र-शाकों में डोडी, बथुआ, हुरहुर, चौलाई और गन्हपूर्णा का शाक नेत्रों के लिए विशेष हितकारक है।

बथुआ

स० वास्तूक, हि० बथुआ, ब० वेतुया, म० चाकवत, गु० टाँको, क० चक्रवती, फा० सुमेलेसा सरमक, अ० रोकमतुल वजामेल शुतुक, अँ० व्हाइट गूज फूट-White Goose foot, और लै० अमरॅथस् पानिकुलेटस् Amaranthus Paniculatus

विशेष विवरण—भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में प्राय: बथुआ का शाक होता है। यह जौ-गेहूँ के खेतों में होता है। इसका पेड़ प्राय: एक बित्ता से एक हाथ तक बड़ा होता है। यह हरा और लाल दो प्रकार का होता है। इसकी पत्तियाँ छोटी और मुलायम होती हैं। इसमें एक प्रकार का क्षार होता है।

गुण—वास्तूकद्वितय स्वादु क्षारं पाके कटूदितम्।
दीपन पाचन रुच्य लघु शुक्रबलप्रदम्॥
सरं पित्तास्रप्लीहार्शःकृमिदोषत्रयापहम्। (भा० प्र०)

दोनों प्रकार के बथुए—स्वादिष्ट, क्षार, पाक में कटु, दीपन, पाचन, रुचिकारक, हलके, शुक्रजनक, बलदायक, दस्तावर तथा रक्तपित्त, प्लीहा, रक्तविकार, कृमि और त्रिदोष नाशक हैं।

विशेष उपयोग (१) चेचक में वमन कराने के लिए—बथुआ के रस में शहद मिलाकर पिलाना चाहिए।

(२) आग से जलने पर—बथुआ का रस लगाना चाहिए।

(३) वातज्वर में—बथुआ को उबालकर उसका पानी पीना चाहिए।

(४) अरुचि में—बथुआ का शाक दाल में छोड़कर खाना चाहिए।

(५) वायु की पीड़ा में—बथुआ उबालकर थोड़ा सेंधा नमक मिलाकर गरम-गरम बाँधना चाहिए।

नोनियाँ, कुल्फा

स० लोणी, बृहल्लोणी, हि० नोनियाँ, कुल्फा, ब० बड़लुनी, मुबेणुनी, म० घोल, गु० लुणी मोरणी, लुणी मोटी, क० गोनि, तै० अईलकुरा, ता० कोरिलकीरई, फा० खुरफा, अ० बक्लतुलहुमक्का, अँ० पर्सलेन-Purselane, और लै० पोर्चलेका ओलिरासिया-Portulaca Oleracea

विशेष विवरण—नोनियाँ, कुल्फा प्राय सभी जगह होता है। छोटी और बड़ी दो प्रकार की नोनियाँ होती है। बड़ी नोनियाँ को ही कुल्फा कहते हैं। छोटी नोनियाँ का रग कुछ लाली लिए होता है। इसकी पत्तियाँ कुछ खरखरी होती हैं। पेड़ लता के समान झुण्ड का झुण्ड छोटे कद का होता है। कुल्फा का पेड़ प्राय एक बित्ता लम्बा और फूल पीला होता है। इसकी पत्तियाँ बड़ी, कुछ लाली लिए हुए हरी होती हैं। छोटी और बड़ी दोनों नोनियाँ खट्टी होती हैं।

गुण—राजपूता घोलिका तु रूक्षा चाम्ला पटुः स्मृता।
रूक्षा कफघ्नी च गुर्वी च दीपिकाग्नेः कफापहा॥
पाम चारणाग्निमांद्य विषं शुक्रं च नाशयत्। (शा० नि०)

बड़ी नोनियाँ—रूखी, खट्टी, खारी, रुचिकारक, कटु, भारी, अग्नि दीपक, कफ नाशक तथा वात, बवासीर, मन्दाग्नि, विष और शुक्र नाशक है।

गुण—क्षुद्रघालिका पित्तला सरा कफकरी च कट्वी जीर्णज्वरार्तिहरा।
श्वासकासहरा गुल्ममाशिनी मेहशोथहरा सा रसायनी॥
वातहरा मता चोष्णकारिणी चाम्लिका मता नेत्ररोगहा।
चर्मदोषहा व्रणहरी मता पूर्व वैद्यकैः सा निरूपिता॥ (नि०र०)

छोटी नोनियाँ—पित्तकारक, सारक, कफकारक कटु, जीर्णज्वर नाशक, तथा श्वास, खाँसी, गुल्म, प्रमेह और शोथ नाशक एवं रसायन, वात नाशक, गरम, खट्टी तथा नेत्ररोग, चर्म रोग और व्रण नाशक है।

विशेष उपयोग (१) **पेशाब की जलन में**—कुल्फा के रस में शक्कर मिलाकर सुबह शाम पीना चाहिए।

(२) **खूनी बवासीर में**—एक तोला कुल्फा के रस में एक माशा खूनखराबा मिलाकर पीना चाहिए।

(३) **प्रमेह पर**—छोटी नोनियाँ के रस में हल्दी का चूर्ण और शहद मिलाकर सेवन करना चाहिए।

(४) **गरमी के सिर-दर्द पर**—कुल्फा का बीया पीसकर सिर पर लेप करना चाहिए।

चूका

सं० चुक्र, हिं० चूका, ब० चूकापालक, म० आँबचुका, गु० चूको,

क० हुलिचकोत, फा० तुरशक यजा तुर्रे खुरासानी छोटा, अ० हुमाज वुकशेहामेजा, अँ० सावर डाक Sour Dock, और लैं० रुमेक्स वेसिकेरियस Rumex Vesicarious.

विशेष विवरण—यह सभी प्रान्तों में अधिक होता है। इसका पेड़ बित्ता-डेढ़ बित्ता लम्बा होता है। पत्ता कुछ मोटा और फूल सफेद होता है। यह प्रायः हर मौसम में मिलता है।

गुण—चुक्रोग्निदीपनश्चोष्णो रुचिकारी लघुः स्मृतः।
विपत्तः सारकः पथ्यो ह्यम्लः शूलनाशकः॥
गुल्माग्निमान्द्यहृत्पीडा वद्वविट्कामवातहा।
स्यात्तृष्णावान्तिकफवातगुल्मापहो मतः॥
वात च मुखवैरस्य नाशयेदिति कीर्तितः। (नि० र०)

चूका—अग्निदीपक, गरम, रुचिकारक, हलका, पित्त कारक, सारक, पथ्य और अम्ल-शूल नाशक तथा गुल्म, अग्निमांद्य, हृदय की पीड़ा, कोष्ठबद्धता, आमवात, तृषा, वमन, कफ, वातगुल्म, वात और मुख की विरसता दूर करनेवाला तथा स्वादिष्ट है।

विशेष उपयोग (१) कमर, छाती, और रीढ़ सम्बन्धी वायु, गुल्म, शूल, गृध्रसी, उदावर्त और हनुग्रह आदि रोगों पर—चूका के रस में गुड़ छोड़कर सेवन करना चाहिए।

(२) धतूरे के विष पर—चूका का रस पीना चाहिए।

(३) सिर-दर्द पर—चूका तथा प्याज का रस पीना चाहिए।

(४) गुदभ्रंश पर—चाँगेरी घृत का सेवन करना चाहिए।

(५) वातज्वर में—चाँगेरी घृत* का सेवन लाभ दायक है।

(६) अरुचि और मन्दाग्नि में—चूका का शाक बैंगन के साथ खाना चाहिए।

(७) मुख की दुर्गन्धि और फीकापन में—चूका का शाक और दाल एक में पकाकर खाना चाहिए।

(८) वातगुल्म पर—चूका उबालकर नमक मिलाकर गरम-गरम बाँधना चाहिए।

मरसा

सं० मारिष, हिं० मरसा, बं० काँटनटेरशाक, म० पोकल्याची भाजी, गु० तांदलो, ते० डुगलकुरा और लै० एमेरेंथस् ट्रिकलर Amaranthus Tricolor

---

* चांगेरी घृत—छोटी पीपर, पिपरामूल, चव्य, सोंठ, चित्रक, गोखुरू, धनियाँ, बेल की गिरी, पाठा और अजवाइन एक-एक तोला, दो सौ छप्पन तोले दही का पानी अथवा मट्ठा, दो सौ छप्पन तोले चूका का रस और चौंसठ तोले शुद्ध गाय का घी कलई के बर्तन में मन्द आँच से धीरे-धीरे पकाएँ। सब पानी जल जाने पर उतार लें और छानकर रख लें। बाद आवश्यकतानुसार चः मासे से दो तोले तक सेवन करें। इसके सेवन से मूत्रकृच्छ्र, बवासीर, संग्रहणी, कफ और वातजन्य रोगों में आराम होता है।

विशेष विवरण—मरसा का शाक सर्वत्र होता और सदैव मिलता है। यह लाल और सफेद दो प्रकार का होता है। बोने के बाद तीन सप्ताह में शाक तैयार हो जाता है। इसके पत्ते और डंठे दोनों का शाक बनता है। इसका फूल सफेद और बीज काला होता है।

गुण—मारिषो मधुरः शीतो विष्टम्भी पित्तनुद्गुरुः।
वातश्लेष्मकरो रक्तपित्तनुद्विषमाग्निजित्॥
रक्तमार्षो गुरुर्नातिसक्षारो मधुरः सरः।
श्लेष्मलः कटुकः पाके स्वल्पदोष उदीरितः॥ (भा० प्र०)

मरसा—मधुर, शीतल, विष्टम्भकारक, पित्त नाशक, भारी, वात-कफकारक, रक्तपित्त नाशक और अग्नि की विषमता को दूर करता है। लाल मरसा—भारी, खारी, मधुर, सारक, कफकारक, पाक में चरपरा और स्वल्पदोष युक्त है।

विशेष उपयोग (१) फोड़े पर—मरसा के डण्ठे की राख, चूना और शहद एक में मिलाकर लगाना चाहिए।

(२) शराब का नशा—लाल मरसा के डण्ठे का रस एक छटाँक पिलाने से उतरता है।

(३) रक्तपित्त में—मरसा का शाक मूँग की दाल के साथ पकाकर खाना चाहिए।

चौलाई

स० तण्डुलीय, हि० चौलाई, ब० मुवेनटे, म० तादुलजा, गु० तांजलजो, तै० मोलाकुरा, क० किरकुसाले, ता० मुल्लुकुरई, फा० मुपेजमर्ज, अ० बुकले यमानीय ऑ० हरमेफ्रोडाईट एमेरेंथ Hermaphrodito Amaranth, और लै० एमेरेंथस् टेनिफोलिअस-Amaranthus Tenifolius

विशेष विवरण—यह प्राय सभी जगह होती है और हर मौसम में पाई जाती है। इसकी पत्ती छोटी और पेड़ एक या डेढ़ बित्ता ऊँचा होता है।

गुण—रसे विपाके मधुरोतिशीतो रूक्षस्तृषारोचकनाशनश्च ।
स दाहपित्त रुधिरं विषं च विनाशको हन्ति च तण्डुलीय ॥

चौलाई—रस और पाक में मधुर, अत्यन्त शीतल, रूखी, तथा तृषा, अरुचि, दाह, पित्त, रक्तविकार और विष को नाश करती है।

गुण—तण्डुलीयकदलं हिमस्पर्श पित्तरक्तविषमलविनाशि ।
ग्राहकं समधुरं च विपाके दाहशोषशमनं रुचिदायि ॥ (रा० नि०)

चौलाई की पत्तियाँ-छूने में शीतल, पित्त-रक्त नाशक, विष विनाशक, कास नाशक, मलरोधक, पाक में मधुर तथा दाह और शोष नाशक हैं।

गुण—तण्डुलीयकमूलं स्वादुष्णं श्लेष्मविनाशनम् ।
रजोरोधकरं रक्तपित्तप्रदरसंहारकम् ॥ (आ० वे०)

चौलाई की जड़—गरम, कफ नाशक, रक्तरोधक तथा रक्त-पित्त और प्रदररोग को नष्ट करती है।

विशेष उपयोग (१) सर्प विष पर—चौलाई की जड़ और काली मिर्च समभाग चावलों की धोवन में पीसकर पिलाना चाहिए।

(२) सब प्रकार के प्रदर में—चौलाई की जड़ और रसवत छः-छः मासे एक छटाँक चावलों की धोवन में पीसकर और शहद मिलाकर पिलाना चाहिए।

(३) गर्भस्थिति के लिए—चौलाई की जड़ चावलों की धोवन में पीसकर देना चाहिए।

(४) विषमज्वर में—चौलाई की जड़ सिर में बाँधना चाहिए।

(५) गर्भिणी और प्रसूता का रक्तस्राव—चौलाई का जड़ चावलों की धोवन में पीसकर देने से बन्द हो जाता है।

(६) बिच्छू और सोमल के विष पर—चौलाई के रस में शक्कर मिलाकर पीना चाहिए।

(७) बच्छनाग का विष—चौलाई का रस और दूध पीने से नष्ट होता है।

(८) घुमची का विष—चौलाई के रस में शक्कर मिलाकर पीने से नष्ट होता है।

(९) आधाशीशी—चौलाई और जटामासी छः-छः मासे

जल में पीसकर दो तोले घी में पकाएँ। केवल घी रह जाने पर छानकर नास लें।

(१०) बाल गिरने पर—चौलाई का शाक खाना चाहिए।

(११) उदर रोग में—चौलाई का रस पीना अथवा शाक खाना चाहिए।

(१२) अशुद्ध रसायन का विष—चौलाई के रस में घी मिलाकर खाने से नष्ट होता है।

(१३) आग से जलने पर—चौलाई का रस लगाना चाहिए।

(१४) कृत्रिम विष पर—चौलाई और काजल छः-छः माशे पीसकर दो तोले घी और आठ तोले दूध में पकाएँ केवल घी बाकी रहने पर छानकर पी जायँ।

(१५) वातज्वर में—चौलाई की जड़ के काढ़े में सेंधा नमक मिलाकर पीना चाहिए।

(१६) बद्धकोष्ठता में—चौलाई का शाक खाना चाहिए।

पालक

स० पालक्य, हि० पालक, ब० पालशाक, म० पालख, क०-पालक्य, फा० इस्पनाख, अ० अस्पनाख, अं० स्पाइनेच-Spinach और लै० स्पाईनेशिया ओलिरेक्का-Spinacea Oleracea

विशेष विवरण—यह प्रायः भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में

होता है। इसका पेड़ एक बित्ता से अधिक बड़ा नहीं होता। इसकी पत्तियाँ कोमल एवं हरे रंग की होती हैं।

गुण—पालक्या वातला शीता श्लेष्मला भेदिनी गुरुः।
विष्टम्भिनी मदश्वासपित्तरक्तविषापहा॥ (भा॰ प्र॰)

पालक का शाक—वातकारक, शीतल, कफकारक, भेदक, भारी, विष्टम्भजनक तथा मद, श्वास, रक्तपित्त और विष नाशक है।

विशेष उपयोग (१) रक्तपित्त में—पालक के रस में शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(२) साधारण विरेचन के लिए—पालक और बथुआ का शाक खाना चाहिए।

पोई

स॰ उपोदकी, हि॰ पोई, ब॰ पुइशाक, म॰ मायाळू, गु॰ पोथी, अँ॰ मलाबार नाइट शेड-Malabar Night Shade, और लै॰ बसेला रुब्रा; बसेला अल्बा-Bassolla Rubra, Bacella Alba

विशेष विवरण—इसकी एक प्रकार की लता होती है। यह कई प्रकार की होती है। इसमें से एक को 'नेपाल' कहते हैं। इसे यदि बराबर पानी मिलता रहे, तो यह पचास-साठ हाथ तक बढ़ सकती है। इसकी पत्तियाँ पान की तरह बड़ी और अधिक मोटी होती हैं। इसके किसी अंश का टुकड़ा लेकर कहीं भी लगाया

जा सकता है। दूसरी को गगावली कहते हैं। यह लाल और सफेद दो प्रकार की होती है। इसकी पत्तियाँ छोटी, बथुआ के समान होती हैं। इसकी लता एक वर्ष से अधिक नहीं चलती। इसमें मिर्च के बराबर का फल भी होता है। उसका भीतरी रंग जामुन के रंग का होता है। इसे लाल स्याही बनाने के काम में लाते हैं।

गुण—पोतकी शीतला स्निग्धा श्लेष्मला वातपित्तनुत्।
अकण्ठ्या पिच्छिला निद्राशुक्रदा रक्तपित्तनुत्॥
बलदा रुचिकृत्पथ्या बृंहणी तृप्तिकारिणी। (भा० प्र०)

पोई का शाक—शीतल, चिकना, कफकारक, वात-पित्त नाशक, कण्ठ को अहितकारी, पिच्छिल, निद्राजनक, शुक्रजनक, रक्तपित्त नाशक, बलवर्द्धक, रुचिकारक, पथ्य, पुष्टिकारक और तृप्तिजनक है।

विशेष उपयोग (१) अर्बुद रोग पर—पोई और काँजी मट्ठे में पीसकर तथा थोड़ा नमक मिलाकर लेप करना चाहिए।

(२) अनिद्रा रोग में—पोई का रस भैंस के दूध में मिलाकर पीना चाहिए।

पटुआ (करेमू)

स० म० नाड़ी शाक, हि० पटुआ (करेमू), बं० पाटशाक, गु० नालानी भाजी और लै० आईपोमिया रिप्टेन्स Ipomoea Reptans

विशेष विवरण—यह सालाबों में पैदा होता है। इसकी डंठी पोली तथा गांठदार होती है। पत्ते लम्बे और हरे रंग के होते हैं। यह तिक्त और मधुर दो प्रकार का होता है।

गुण—मार्दीकशाकं द्विविधं तिक्तं मधुरमेव च।

रक्तपित्तहरं तिक्तं कृमिकुष्ठविनाशनम् ॥

मधुरं पिच्छिलं शीतं विष्टम्भिकफवातकृत्।

तत्पुष्पपत्रं ज्वरदोषनाशनं विशेषतः पित्तकफज्वरापहम्।

अतं तस्यापि च पित्तहारकं सुरोचनं व्यञ्जनयोगकारकम् ॥ (रा०नि०)

पदुआ का शाक—तिक्त और मधुर दो प्रकार का होता है। तिक्तशाक—रक्तपित्त नाशक तथा कृमि और कुष्ठ नाशक है। मधुर शाक—पिच्छिल, शीतल, विष्टम्भजनक और कफ-वातकारक है। इसके सूखे पत्ते—ज्वर और विशेष करके पित्त, कफ तथा ज्वर नाशक हैं। इसका रस—पित्तनिवारक, रोचक और व्यञ्जन में विशेष उपयोगी है।

विशेष उपयोग (१) अफीम का विष—पदुआ के शाक का रस पीने से नष्ट हो जाता है।

(२) अफीम खानेवाले को—करेमू का शाक साल में एक बार अवश्य खाना चाहिए।

(३) अरुचि में—करेमू का शाक हींग से छौंककर खाना चाहिए।

हुरहुर

स० हिल मोचिका, हि० हुरहुर, ब० हिंचेशाक, गु० कान-फोड़ी, म० तिलवसा, फ० कनर फपाला फोदी, अँ० सनफ्लावर-Sunflower, और लै० क्लेम विसकोस-Oleome Viscosa.

विशेष विवरण—यह प्राय चौमासे में और अधिकतर गीली जमीन में होता है। इसका पेड़ दो हाथ तक ऊँचा होता है। चकवड़ की तरह आठ अगुल तक का फल होता है।

गुण—शोथं कुष्ठ कफ पित्त हरते हिलमोचिका (भा० प्र०)

हुरहुर का शाक—शोथ, कुष्ठ, कफ और पित्त को नष्ट करता है।

विशेष उपयोग (१) कर्ण रोग में—हुरहुर के पत्तों का रस दिन में तीन बार छोड़ने से कर्ण-शूल और कान का बहना आराम होता है।

(२) जानवरों में कर्ण रोग में—हुरहुर के पत्तों का रस और मक्खन का पानी कान साफ करके प्रातःकाल छोड़ें। सायकाल पुनः साफ करके उसी को छोड़ें। दो दिनों के बाद काली तुलसी और भागरा का रस छोड़ना चाहिए।

(३) बिच्छू का विष—हुरहुर के पत्तों का रस जिधर उसने काटा हो उसी ओर कान में छोड़ना चाहिए।

(४) पीड़ा पर—हुरहुर के पत्तों का रस लगाने से वह स्थान लाल होकर दर्द छूट जाता है।

(५) कान में धूल जाने पर—कुकुर के पत्तों का रस छोड़ना चाहिए।

(६) अंडवृद्धि में—कुकुर का रस चना के काढ़े में मिलाकर पीना चाहिए।

(७) शीतज्वर में—कुकुर के पत्तों का रस ज्वर आने से पहले कानों में छोड़ना चाहिए।

(८) शोथ पर—कुकुर के रस म लोहे का मुर्चा घिसकर लगाना चाहिए।

(९) उदर शूल में—कुकुर के रस में सेंधा नमक मिलाकर पीना चाहिए।

सोआ

स० शताह्वा, हि० सोआ, ब० शुल्फा, गु० सवा, म० बालंतशेप, क० सब्बसिंगे, तै० सदापा, ता० शदाकुप्पी, फा० तुख्मेशूद, अ० शीतब्वत सजरुल, अँ० डिलशीड-Dillseed, और लै० आर्थम ग्रेवियोलेन्स Aurthum Graveolens.

सोआ का शाक—गरम, मधुर, गुल्म नाशक, शूल नाशक, वात विनाशक, दीपन, पथ्य, पित्तजनक और रुचिकारक है।

विशेष उपयोग (१) वात विकार पर—सोआ, देवदारु, हींग और सेंधा नमक सब का चूर्ण बनाकर मदार के दूध में पका कर लेप करना चाहिए। इससे अस्थिवात, कटिवात और संधिवात में लाभ होता है।

(२) तृषा में—सोआ के पत्तों का रस पीना चाहिए।

(३) गुल्म पर—सोआ का शाक उबालकर और सेंधा नमक मिलाकर खाना चाहिए।

मेथी

स० मेथिका, हि० ब० गु० म० मेथी, क० मेथक, तै० मैतुळु, ता० वेंदायाम्, फा० तुख्मे शमलीत, अ० बजरुलहुल्बा, अँ० फेनु ग्रीक–Fenugreek, और लै० ट्रिगोनेल्ला फेन म्रेकम्–Trigonella Foenum Graecum

विशेष विवरण—यह प्राय भारतवर्ष में सभी जगह होती है। इसका पेड़ हाथ भर के लगभग ऊँचा होता है। इसके पत्तों का शाक बनाया जाता है। पेड़ पुराना होने पर उसमें फलियाँ लगती हैं। उन्हीं फलियों में से बीज निकलता है।

गुण—मेथिकापत्रशाका तु तिक्त वातहरा मता।
रुचिकृद्दीपनी या च किंचित्पित्तप्रकोपनी ॥ (शा० नि०)

मेथी का शाक—कड़वा, वात नाशक, रुचिकारक, दीप्त और किंचित पित्तकारक है।

विशेष उपयोग (१) वातजन्य पीड़ा पर—मेथी घी में भूनकर और पीसकर उसका छोटा-छोटा लड्डू बनाकर कुछ दिनों तक सुबह-शाम सेवन करें।

(२) आमातीसार में—मेथी के पत्तों के एक छटाँक रस में छ माशे शक्कर मिलाकर पीना चाहिए। अथवा मेथी का चूर्ण दही में मिलाकर खाना चाहिए।

(३) बहुमूत्र में—मेथी के पत्तों का रस एक पाव तक पीना चाहिए।

(४) रक्तातीसार में—मेथी के पत्तों के रस में काला मुनक्का पीसकर पीना चाहिए।

(५) प्रसूता को दूध लाने के लिए—तीन तोले मेथी का चूर्ण आध सेर दूध में रात के समय भिगो दें। सुबह गाय का घी मिलाकर पकाएँ। अच्छी तरह पक जाने पर ठंडा करके लाल ईख का रस एक पाव मिला दें। बाद दो तोले इक्कीस दिनों तक सेवन करें।

(६) लू लग आने पर—मेथी का सूखा शाक ठंडे पानी में भिगो दें। थोड़ी देर बाद अच्छी तरह मलकर छान लें और उस पानी में थोड़ा शहद मिलाकर पी जायँ।

सरसों का शाक *

गुण—कटुकं सार्षपं शाकं बहुमूत्रमलं गुरु ।
अम्लपाकं विदाहि स्यादुष्णं रूक्षं त्रिदोषजित् ॥
सक्षारं लवणं तीक्ष्णं स्वादु शाकेषु निन्दितम् । (भा० प्र०)

सरसों का शाक—चरपरा, बहुत मूत्र और मल को करनेवाला, भारी, पाक में अम्ल, विदाहकारक, गरम, रूखा, त्रिदोष नाशक, क्षारयुक्त, लवणरसयुक्त, तीक्ष्ण, स्वादिष्ट और शाकों में निन्दित है ।

राई का शाक *

गुण—कटूष्णं राजिकापत्रं कृमिवातकफापहम् ।
कण्ठामयहरं स्वादु वह्निदीपनकारकम् ॥ (शा० नि०)

राई का शाक—चरपरा, गरम, कृमि, वात और कफ नाशक, कण्ठ के रोगों का नाश करनेवाला, स्वादिष्ट और दीपन है ।

विशेष उपयोग (१) पित्तजन्य अस्तन में—राई के पत्तों का रस गले में लगाना चाहिए ।

(२) उदर शूल पर—राई का शाक उबालकर और सेंधा नमक मिलाकर बाँधना चाहिए।

---

* नोट—सरसों और राई का सविस्तर वर्णन अन्यत्र में किया जा चुका है । पत्तों का गुण यहाँ दिया गया है । विशेष जानने के लिए अन्नवर्ग पृष्ठ-संख्या ७६ और ७८ देखना चाहिए ।

(३) मन्दाग्नि में–राई का शाक मूँग की दाल में पका कर खाना चाहिए।

(४) अरुचि में–राई का शाक घी में भूनकर खाना चाहिए।

कसौंदी

स० कासमर्द, हि० कसौंदी, ब० कालकासुन्दा, म० रान कासविन्दा, गु० कासोदरी, क० कासवदी फरहुल कसाव, ते० गुर्र पुताव्य, अँ० राउण्ड पोडेड केशिया–Round Podded Cassia, और लै० केशिया सोफेरा–Cassia Sophora

विशेष विवरण–इसका पेड़ कमर बराबर ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ आँवले की पत्तियों से छोटी और फूल पीला होता है तथा इसकी फलियाँ मोटी, चिपटी और लम्बी होती हैं। इनके भीतर बीज होता है।

गुण—कासमर्ददलं रुच्यं वृष्यं कासविषास्रनुत।
मधुरं कफवातघ्नं पाचनं कण्ठशोधनम्॥
विशेषतः कासहरं पित्तघ्नं ग्राहकं लघु। (भा० प्र०)

कसौंदी के पत्तों का शाक–रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक, कास नाशक, विषघ्न, बवासीर को दूर करनेवाला, मधुर, कफ-वात नाशक, पाचन, कण्ठ शोधक, विशेष करके खाँसी को दूर करनेवाला, पित्त नाशक, ग्राही और हलका है।

विशेष उपयोग (१) दाद पर–फसौंदी की जड़ पानी में घिसकर लेप करना चाहिए।

(२) दाद पर–फसौंदी की पत्ती का रस और नीबू का रस लगाना चाहिए।

(३) शोथ पर–फसौंदी की पत्ती बकरी के दूध में पीस कर लगाना चाहिए।

(४) अशुद्ध पारे का विष–फसौंदी की पत्तियों का रस पीने से नष्ट होता है।

(५) शीघ्र प्रसव के लिए–फसौंदी की पत्तियों का रस पीना चाहिए।

(६) हिचकी और खाँसी में–फसौंदी की पत्तियों का काढ़ा देना चाहिए।

(७) कान में धूल आदि पड़ने पर–फसौंदी की पत्तियों का रस छोड़ना चाहिए।

(८) खुजली और कुष्ठ पर–फसौंदी की जड़ पानी में पीसकर लेप करना चाहिए।

(९) सिर का मैल साफ करने के लिए–फसौंदी के आटे की एक तरफ सकी हुई रोटी सिर पर बाँधना चाहिए।

(१०) आँख की पीड़ा में–फसौंदी की पत्ती का रस छोड़ना तथा उसकी पत्ती बाँधना चाहिए।

(११) भिलावाँ का विष–फसौंदी की पत्ती पीसकर लेप करने से नष्ट होता है।

(१२) बालकों का हावा-दावा—फर्सौंदी की हरी पत्तियों का रस देना चाहिए।

(१३) स्वरभग में—फर्सौंदी की पत्ती घी में भूनकर खाना चाहिए।

गदहपूर्णा

स० पुनर्नवा, हि० गदहपूर्णा, ध० गादापुण्या, गु० साटोडी, ग० घेटुली, फ० विलीय दुयेस्ल झुकिलु, सा० मुक्किराटे, वै० वेल्ला भटा वामामिडी, अ० हयकूकी, अँ० स्प्रेडिंग होगवीड-Spreading Hogweed, और लै० बोरहाविया डिफ्युजा—Boerhavia Diffusa

विशेष विवरण—यह सभी जगह प्राय रेतीली जगहों में होता है। यह गदहपूर्णा गुलाबाँसी जाति का बतलाया जाता है। इसकी पत्तियाँ छोटी, गोल, मोटी, मुण्ड की मुण्ड चौलाई की भाँति होती हैं। पत्ती के ऊपर घटी के आकार का गुलाबी, सफेद, नीला अथवा हरे रंग का फूल होता है। इसकी सफेद, लाल, नीली या काली तीन जातियाँ हैं। काली जाति का बहुत कम मिलता है। लाल रंग का सर्वत्र मिलता है। वर्षा ऋतु में बहुतायत से मिलता है। अत इसे वर्षाभू, वर्षाभव और प्रावृषायणी आदि भी कहते हैं। शरीर के भीतरी और बाहरी शोथ को नष्ट करने के कारण इसे शोथघ्नी और सारिणी भी कहते हैं। इसकी जड़ जमीन के

भीतर बहुत फैलती है। यह मूत्रल है, किन्तु इसमें विशेषता यह है कि मूत्र विरेचन में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। उदर-रोग पर भी विशेष लाभ पहुँचाता है।

गुण—कटुः कषायास्त्युष्णः पाण्डुघ्नी दीपनीपरा।
शोफानिलगरश्लेष्महरी भग्नोदरप्रणुत्‌ ॥ (भा० प्र०)

सफेद गदहपूर्णा—चरपरा, कषैला, रुचिकारक, अग्नि दीपक तथा पाण्डु, बवासीर, सूजन, वात, विष, कफ, भग्न और उदर-रोग का नाश करता है।

गुण—पुनर्नवारुणा तिक्ता कटुपाका हिमा लघुः।
वातला ग्राहिणी श्लेष्मपित्तरक्तविनाशिनी ॥

लाल गदहपूर्णा—कड़वा, पाक में चरपरा, शीतल, हलका, वातकारक, मलरोधक तथा कफ, पित्त, रक्तविकार नाशक है।

गुण—नीला पुनर्नवा तिक्ता कटूष्णा च रसायनी।
हृद्रोगपाण्डुश्वयथुश्वासवातकफापहा ॥ (रा० नि०)

नीला गदहपूर्णा—कड़वा, चरपरा, गरम, रसायन तथा हृद्रोग, पाण्डुरोग, सूजन, श्वास, वात और कफ नाशक है।

गुण—पौनर्नवी पर्णशाका वातिरूक्षा कफापहा।
वाताग्निमांद्यगुल्मघ्नी प्लीहा शूलविनाशिका ॥ (नि० र०)

गदहपूर्णा के पत्तों का शाक—अत्यन्त रूखा, कफ नाशक तथा वात, मंदाग्नि, गुल्म, प्लीह और शूल नाशक है।

विशेष उपयोग (१) आँखों का जाला—सफेद गदहपूर्णा की जड़ पानी अथवा शहद में घिसकर लगाना चाहिए।

(२) नेत्रों की खुजली में—सफेद गदहपूर्णा की जड़ शहद, दूध अथवा भाँगरा के रस में घिसकर लगाना चाहिए।

(३) रतौंधी में—सफेद गदहपूर्णा की जड़ काँजी में घिसकर लगाना चाहिए।

(४) शोफोदर पर—सफेद गदहपूर्णा की जड़ का क्वाथ करके पीएँ और पीसकर सूजन पर लेप करें। अथवा गदहपूर्णा और सोंठ पीसकर पीना चाहिए।

(५) खूनी बवासीर में—सफेद गदहपूर्णा की जड़ और हल्दी का काढ़ा पीना चाहिए।

(६) गुल्म और प्लीहा पर—सफेद गदहपूर्णा का पचांग और सेंधा नमक चूर्ण करके गोमूत्र के साथ सेवन करना चाहिए।

(७) कामला रोग में—सफेद गदहपूर्णा का पचांग चूर्ण करके शहद और चीनी के साथ सेवन करें। अथवा काढ़ा करके या हरे का ही रस निकालकर पीएँ।

(८) शिरोरोग और ज्वर में—सफेद गदहपूर्णा के पचाग का चूर्ण घी और शहद के साथ सेवन करें।

(९) बिच्छू का विष—सफेद गदहपूर्णा की जड़ रविवार को लाकर रख लें। आवश्यकतानुसार उसे खूब चबाकर खाने से अथवा घिसकर लगाने से नष्ट हो जाता है।

(१०) दन्त-रोग में—गदहपूर्णा की जड़, पठानी लोध की छाल और फिटकिरी का काढ़ा करके कुल्ला करें।

(११) अन्तर्विद्रधि में—गदहपूर्णा की जड़ और वरुना की छाल का काढ़ा करके पीवें ।

(१२) अम्ल पित्त में—सफेद गदहपूर्णा की जड़ को खूब चबाकर प्रतिदिन प्रातःकाल खाना चाहिए। उसके बाद चौदह दिन दोपहर तक कुछ न खाना चाहिए।

(१३) चौथिया ज्वर में—सफेद गदहपूर्णा की जड़ दूध में पीसकर पीना अथवा पान में रखकर खाना चाहिए।

(१४) शोथ—गदहपूर्णा, देवदारु, सोंठ और खस का काढ़ा बनाकर, उसमें गोमूत्र मिलाकर पीने से नष्ट होता है।

(१५) गुल्म और जलोदर पर—सफेद गदहपूर्णा की जड़ और सेंधा नमक का चूर्ण घी में मिलाकर गुल्म पर, और शहद में मिलाकर जलोदर पर दें।

(१६) आँखों के जाला पर—सफेद गदहपूर्णा की जड़ रविवार को लाकर धूप देकर कानों में बाँध दें।

(१७) सर्वाङ्ग शोथ, उदर पाण्डु, स्थूलता तथा कफ पर—गदहपूर्णा, नीम, कड़वा परवल, सोंठ, कुटकी, दारु हल्दी, गुरिच और छोटी हर्रे का काढ़ा बनाकर पीना चाहिए।

(१८) कुत्ते का विष—सफेद गदहपूर्णा का रस पीने से नष्ट होता है।

(१९) सर्वांग शोथ में—गदहपूर्णा, कुटकी, चिरायता और सोंठ का काढ़ा पीना चाहिए।

(२०) शोथ पर—पुनर्नवादि घृत ❀ देना चाहिए।

(२१) कामला, पाण्डु, हलीमक, श्वास, उदर, जीर्णज्वर और मलरोगादिकों में—पुनर्नवादि तेल लगाना चाहिए।

(२२) मन्दाग्नि में—गदहपूर्णा का शाक घी में भूनकर खाना चाहिए।

(२३) उदर शूल, गुल्म और प्लीह रोग—गदहपूर्णा का शाक मूँग की दाल में पकाकर खाना अथवा पत्तों के रस में सेंधा नमक मिलाकर पीना चाहिए।

(२४) शोथ पर—गदहपूर्णा का शाक उबालकर खावे तथा उसके पत्तों के रस में लोहे का मुर्चा घिसकर लेप करना चाहिए।

गोभी (फूल गोभी)

स० गोजिह्वा, हि० गोभी, म० दाढ़ीशाक, गु० गलजिभी, म० मुई पाथरी, क० पलुबालगे, तै० पेद्दुनालिक चेट्टु, फा० कलम

❀ पुनर्नवादिघृत—आठ सेर पानी में पचास तोले दशमूल पकावें दो सेर जल बाकी रखें; पुनर्नवा, देवदारु पिपरामूल, चित्रक, पीपल, चव्य सोंठ, हर्रा की छाल, जवाखार जायफल और सब चीजें एक-एक तोला; गाय का घी आध सेर और गाय का दूध दो सेर एक में मिलाकर किसी कलई दार बर्तन में पकावें, केवल घी बाकी रहने पर छानकर रख लें और आवश्यकतानुसार काम में लावें। इसी विधि से केवल घी के स्थान पर उतना ही तिल का तेल मिलाकर पकाया गया पुनर्नवादि तल होता है।

रूमी, अं० कालीफ्लावर-Cauli flower और लै० एलिफेन्टोपस स्केबर Elephantopus Scaber

विशेष विवरण—यह तीन प्रकार की होती है। फूल गोभी, गाँठ गोभी और पात गोभी। इसका पेड़ साधारणतया अच्छी जमीन पर होता है। ऊँचाई डेढ़ बित्ता तक होती है। नीचे का डण्ठल दो से पाँच अगुल तक जमीन के भीतर होता है।

फूल गोभी—इसका एक या डेढ़ बित्ते का पेड़ होता है। इसके चारो ओर चौड़े, मोटे और बड़े-बड़े पत्ते होते हैं। पत्तों के बीच में बहुत छोटे मुँह बँधे फूलों का गुथा हुआ समूह होता है। खिले फूलों की गोभी खराब समझी जाती है। यह कार्तिक मास से लेकर प्राय जाड़े भर मिलती रहती है। इसके फूलों का और पत्तों का अलग-अलग शाक बनाया जाता है।

गुण—फूल गोभी—तीखी, कड़वी, शीतल और व्रणरोपण है तथा पित्त, सब प्रकार के विष एवं अरुचिनाशक है।

गुण—गोजिह्वा कुष्ठ मेहास्र कृच्छ्रज्वरहरीस्मृः। (भा० प्र०)

गोभी के पत्तों का शाक—कुष्ठ, मेह, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र और ज्वरनाशक तथा हलका है।

गाँठ गोभी—इसका पेड़ भी फूल गोभी की ही भाँति का होता है। अन्तर इतना है कि उसमें पत्तों के बीच फूल होता है और इसमें फूल नहीं होता। पेड़ के नीचे से चार-पाँच अगुल पर गूदेदार गाँठ होती है। इसकी भी तरकारी बनाई जाती है। इसे साधारणतया हिन्दू लोग नहीं खाते; मुसलमान अधिक खाते हैं।

गुण—गाँठ गोभी—मधुर, रूखी, स्वच्छ, शीतल, मेदक, माहक, रुचिकारक और भारी है तथा पित्त, कफ और वात नाशक है।

पात गोभी—इसका पेड़ भी गोभी की तरह होता है। इसमें फूल नहीं होता। केवल पत्ते ही होते हैं। पत्तों का समूह एक पर एक बँधकर गोल रूप धारण कर लेता है। यह भी जाड़े में होती है। चैत में इसके पत्ते कड़े हो जाते हैं। उसका मुँह खुल जाता है। उसके बीच से एक डण्ठल निकलता है जिसमें सरसों की भाँति फूल और पत्तियाँ निकलती हैं। फलों के भीतर से राई जैसे दाने निकलते हैं।

गुण—मधुर, वृष्य, पाक में तीखी, कड़वी, माहक, शीतल, हलकी, पाचक, दीपक, हृद्य तथा वातकारक है और कफ, पित्त, ज्वर, प्रमेह, कुष्ठ, खाँसी, रक्त-दोष तथा पित्तजन्य भ्रम नाशक है।

वन गोभी—इसके पत्ते लम्बे, खुरखुरे, कटावदार और फूल के समान होते हैं। इसमें पीले रंग के चक्करदार फूल लगते हैं। पत्तों के बीच से एक वाल निकलती है।

गुण—वन गोभी—शीतल, कड़वी, हलकी, वातकारक तथा कफ, पित्त, खाँसी, रक्तदोष, अरुचि, फोड़ा, ज्वर और सब प्रकार के विष को नष्ट करती है।

विशेष उपयोग (१) पारा के विष पर—गोभी की जड़ का रस पीना, शरीर में मलना और गोभी की तरकारी खाना चाहिए।

(२) आँख आने पर—गोभी के पत्ते का रस आँख में छोड़ना चाहिए।

(३) सर्प विष—गोभी की जड़ पीसकर पीने से नष्ट होता है।

(४) शीतज्वर में—गोभी और अरणी की जड़ चावलों के धोवन में पीसकर पीना चाहिए।

(५) कुत्ते का विष—गोभी के काढ़े में घी मिलाकर पीना चाहिए।

(६) चर्मरोग और रक्तविकार पर—गोभी के रस में चीनी मिलाकर सात दिनों तक पीना चाहिए।

(७) मूत्र शुद्धि और नेत्रों की जलन पर—गोभी का रस पीना चाहिए।

(८) प्रमेह—गोभी के रस में शहद और हल्दी का चूर्ण मिलाकर पीने से नष्ट होता है।

अजवाइन

स० यवानी, हि० अजवाइन, व० यमानी, म० ओंवा, गु० अजमा, क० ओंव, तै० ओममी, ता० अमन, फा० नानुख्वा, अ० कमून मुलूकी, अँ० विशप्स विड सीड Bishops weed Seed और लै० टाइकोटिस अजवान, टाइकोटिस कोप्टिका Ptychotis Ajowan, Ptychotis Coptica

विशेष विवरण—इसका पेड़ समूचे भारतवर्ष में लगाया जाता है। किन्तु बंगाल में यह विशेष पैदा होती है। अफगानिस्तान फारस और मिश्र आदि देशों में भी इसकी खेती होती है। यह कार्तिक और अगहन में बोयी जाती है। इसका पेड़ लगभग एक दो हाथ ऊँचा होता है। यह औषध और मसाले के काम में आती है। भभका से अर्क खींचा जाता है। उसी में से तेल भी निकलता है। अर्क खींचते समय इसमें से सफेद रंग का चमकीला पदार्थ निकलता है। वह अजवाइन का सत्त अथवा अजवाइन के फूल के नाम से प्रसिद्ध है। यह उज्जैन में विशेष बनाया जाता है।

गुण—यवानी कटुतिक्तोष्णा वातार्श श्लेष्मनाशिनी।
शूलाध्मानकृमिच्छर्दिमर्दिनी दीपनी परा॥ (रा० नि०)

अजवाइन—कटु, तिक्त, गरम तथा वातार्श, कफ, शूल, आध्मान, कृमि और वमन को नष्ट करती है तथा परमदीपन है।

गुण—यवानीशाकमाग्नेय रुच्यंवातकफापहम्।
उष्णं कटु च तिक्तं च दीपनं गुल्मशूलनुत्॥ (शा० नि०)

अजवाइन की पत्ती का शाक—जठराग्निकारक, रुचिकारक, वात-कफनाशक, गरम, चरपरा, कड़वा, दीपन, गुल्म और शूल-नाशक है।

विशेष उपयोग (१) उदर-शूल, अतीसार, खाँसी तथा अजीर्ण—अजवाइन खाकर ऊपर से गरम पानी पीने से नष्ट होते हैं।

(२) शीतपित्त में—अजवाइन और गुड़ खाना चाहिए।

(३) जुकाम और सिरदर्द पर—अजवाइन महीन पीसकर उसकी पोटली बनाकर सूँघे अथवा अजवाइन का धूम्र पान करे।

(४) बहुमूत्र—अजवाइन और तिल खाने से नष्ट होता है।

(५) खाँसी, दमा और कफज्वर पर—अजवाइन, छोटी पीपर, अडूसा तथा खसखस का काढ़ा पीना चाहिए।

(६) गुल्म पर—अजवाइन और काला नमक का चूर्ण मट्ठे के साथ सेवन करें।

(७) उदर-शूल—अजवाइन की पत्ती और काला नमक खाने से नष्ट होता है।

(८) यकृत्, प्लीह और वातगुल्म—अजवाइन की पत्ती और सेंधा नमक प्रतिदिन प्रातःकाल खाने से नष्ट होता है।

(९) अरुचि पर—अजवाइन की पत्ती चने के बेसन के साथ पकौड़ी बनाकर खाना चाहिए।

(१०) विषूचिका पर—अजवाइन की पत्ती, सोंठ, काला-नमक, काली मिर्च और नौसादर एक में पीसकर खाना चाहिए।

चना का शाक

गुण—रुच्य चणकशाक स्याद्दुर्जरं कफवातकृत्।
अम्लं विष्टम्भजनक पित्तनुद्दन्तशोथनुत् ॥ (शा॰ नि॰)

चने का शाक—दुर्जर, रुचिकारक, कफ-वात कारक, खट्टा, विष्टम्भकारक, पित्त नाशक और दन्त-शोथ नाशक है।

मटर का शाक *

गुण—कलायशाक भेदि स्याल्लघु तिक्त त्रिदोषजित्। (शा० नि०)

मटर का शाक—दस्तावर, हलका, तीता और त्रिदोष नाशक है।

गूमा

सं० प० द्रोणपुष्पी, हि० गूमा, म० कुम्मा, गु० कुवा, क० तुम्ब, तै० लतु गतुम्मि, और लै० ल्युकास सिफेलोटस-Leucas Cephalotus

विशेष विवरण—इसका पेड़ प्राय ऊसर या खाइयों पर डेढ़-दो हाथ का होता है। पत्तियाँ छोटी और लम्बी होती हैं। बीच बीच में गाँठ पर गुच्छा-सा होता है। इसी गुच्छे पर सफेद फूल निकलता है।

गुण—द्रोणपुष्पीदलं स्वादु रूक्षं गुरु च पित्तकृत्।
भेदनं कामलाशोथमेहज्वरहरं कटु॥ (शा० नि०)

गूमा के पत्तों का शाक—स्वादिष्ट, रूखा, भारी, पित्तजनक भेदक तथा कामला, शोथ, प्रमेह और ज्वर नाशक तथा कटु है।

* नोट—चना और मटर का विस्तृत विवरण धान्यवर्ग पृष्ठ-संख्या ७१ और ७० में देखना चाहिए।

विशेष उपयोग (१) विषम ज्वर पर—गूमा की पत्ती के रस में काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(२) उदर शूल और अतीसार में—गूमा की पत्ती का रस पीना चाहिए।

(३) वातविकार में—गूमा के रस में शहद मिलाकर एक तोला से छः माशे तक अपनी शक्ति के अनुसार लेना चाहिए। घी और भात खाना चाहिए।

(४) बालकों के कफविकार पर—गूमा के पत्तों का रस तीन माशे, भुना हुआ चौकिया सोहागा दो रत्ती एक में मिलाकर चाटना चाहिए।

(५) चातुर्थक ज्वर—गूमा के रस का अजन करना चाहिए।

(६) कामला में—गूमा के रस में हींग घिसकर अथवा केवल गूमा के रस का अजन करना चाहिए।

(७) शोथ पर—गूमा और नीम की पत्ती पानी में पकाकर बफारा लें। इससे पसीना निकलकर शोथ नष्ट होता है।

(८) आधाशीशी—गूमा का रस नाक में छोड़ना चाहिए।

(९) अफीम का विष—गूमा का शाक साल भर में एक बार अवश्य खाना चाहिए। इससे अफीमचियों का पेट साफ हो-कर हानिकारक सचित विकार नष्ट हो जाता है।

(१०) सर्पविष में—गूमा की पत्ती का रस पीना चाहिए।

कचनार

सं० काञ्चनार, हि० कचनार, य० कांचन, म० कोरल, गु० चम्पाकाटी, फ० कोचाले कचनार, तै० देवकाञ्चन, और लै० बहेरिया वासिएगेटा—Banheria Vasiagata

विशेष विवरण—इसका पेड़ भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र होता है। यह लता के रूप में भी होता है। इसकी डालियाँ प्रायः पतली तथा पत्तियाँ गोल और मुँह पर फटी होती हैं। यह अपनी फली के लिए प्रसिद्ध है। इसकी फली की तरकारी तथा अचार बनाया जाता है। इसके फूलों में मीठी सुगन्ध होती है। फूलों के गिर जाने पर इसमें *लम्बी-लम्बी फलियाँ लगती हैं*। लाल, सफेद तथा पीले, रंग-भेद से इसकी तीन जातियाँ होती हैं। इसकी लकड़ी का रंग लाल होता है इससे रंग बनाने का काम लिया जाता है। लाल फूलवाले को ही संस्कृत में कांचनार कहते हैं। कचनार की जाति के बहुत पेड़ होते हैं। एक प्रकार का कचनार कुराल या कदला कहा जाता है। इसकी गोंद 'सेम की गोंद' या 'सेमलागोंद' के नाम से बिकती है। यह कतीरे की तरह होती है, परन्तु पानी में नहीं घुलती। एक प्रकार का कचनार बनराज कहा जाता है। जिसके छाल के रेशों की रस्सी बनती है।

तथा कृमि, कुष्ठ, गुदभ्रंश, गण्डमाला और व्रण नाशक है।

विशेष उपयोग (१) गण्डमाला पर—कचनार की छाल चावलों की धोअन में पीसकर दो से चार तोले तक दें। अथवा कचनार के काढ़े में सोंठ का चूर्ण मिलाकर चयालिस दिनों तक सेवन करें।

(२) नहरुआ पर—कचनार की छाल पीसकर लेप करें।

(३) दाह पर—कचनार की छाल के रस में जीरा का चूर्ण और कपूर मिलाकर पीना चाहिए।

(४) गण्डमाल फोड़ने के लिए—कचनार की जड़, चित्रक तथा अडूसा पानी में पीसकर सात दिनों तक लेप करें।

(५) अरुचि पर—कचनार की फली उबालकर घी में भूनकर खाना चाहिए।

(६) अतीसार में—कचनार की फली और कच्चा केला की तरकारी खाना चाहिए।

पेठा (कुम्हड़ा)

सं० कूष्माण्ड, हि० पेठा, बं० कुमड़ागाछ, म० कोहोला, गु० भुरंकोळु, क० बारकोहोला, तै० पुल्लादा, फा० भूराकदु, अ० महदेबा, अं० व्हाइट गर्ड मेलन White Gourd Melon और लै० बेनीनकासा सेरिफेरा Beuincasa Cerifera

विशेष विवरण—इसकी लता खूब दूर तक फैलती है। पत्ता

बड़ा, गोल तथा रोएँदार होता है। डण्ठल बड़ा तथा पोला होता है। इसमें घटी के आकार का बड़ा और पीला फूल लगता है। फल गोलाकार तथा बड़ा होता है। जमीन अच्छी होने से एक-एक लता में पचास-साठ फल तक लगते हैं। फूल पहले हरा रहता है। पकने पर पीला होता है। इसे डण्ठल से अलग न किया जाय, तो यह एक वर्ष तक खराब नहीं होता। यह औषधियों के काम में भी आता है। इसका कोहड़ा-पाक, पेठा, बरफी, कूष्माण्डावलेह और कूष्माण्ड तैल आदि बनाए जाते हैं।

> गुण—मूत्राघातहरं प्रमेहशमनं कृच्छ्राश्मरीछेदनम्।
> विण्मूत्रग्लपनं तृषार्तिशमनं जीर्णाङ्गपुष्टिप्रदम्॥
> वृष्यं स्वादुतरं स्वरोचकहरं बल्यं च पित्तापहम्।
> कूष्माण्डप्रवरं वदन्ति भिषजो वल्लीफलानां पुनः॥ (रा॰ नि॰)

पेठा—मूत्राघात हरनेवाला, प्रमेह को शान्त करनेवाला, मूत्रकृच्छ्र और पथरी का नाश करनेवाला; मल, मूत्र तथा तृषा की पीड़ा शान्त करनेवाला, जीर्ण शरीर को पुष्टि देनेवाला, वीर्यवर्द्धक, स्वादिष्ट, अरुचिनाशक, बलवर्द्धक, पित्त नाशक और सब बेलवाले फलों में उत्तम है।

विशेष उपयोग (१) सभी प्रकार के विषों पर—पेठा का रस पीना तथा पेठे का मुरब्बा खाना चाहिए।

(२) शराब और कोदो का नशा—पेठा का रस पीने से उतर जाता है।

(३) मूर्च्छा पर–पेठा के बीज के रस में मुलेठी पिस-कर पिलाना चाहिए।

(४) उन्माद पर–पेठा के रस में बच और कुलिंजन का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(५) कामला पर–पेठा की पत्ती और हल्दी का चूर्ण दही में मिलाकर सात दिनों तक खाना चाहिए।

(६) अम्ल पित्त में–पेठा के रस में चीनी मिलाकर पीना चाहिए।

(७) रक्तजन्य शूल में–पेठा के बीज के रस में दो मासे लाह का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(८) खाँसी तथा श्वास में–पेठा की जड़ का चूर्ण गरम पानी में पीसकर पीना चाहिए।

(९) शूल–पेठा छीलकर टुकड़ा करके कलई के बर्तन में भरकर तथा उसका मुँह ढककर पकाएँ। बाद पानी निकालकर उसे जला दें और महीन पीस लें। आवश्यकता पड़ने पर दो मासे यह पका पेठा, दो मासे सोंठ का चूर्ण पानी में घोलकर प्रतिदिन सेवन करें। इससे असाध्य शूल भी नष्ट हो जाता है।

(१०) पथरी और शर्करा पर–पेठा के रस में हींग और जवाखार मिलाकर पीना चाहिए।

कोहड़ा (काशीफल)

स० पीतकूष्माण्ड, हि० कोहड़ा, काशीफल, य० विलातिकुमड़ा, म० साँवड़ा, गु० पतकोलु, क० कगर, तै० वियागुमडिकाया, फा० कादूरग, अँ० पम्पकीन (Pumpkin) और लै० कुकुर्बिटा मेक्सिमा —Cucurbita Maxima.

विशेष विवरण—यह भी एक कोंहड़े की ही जाति है। इसकी लता प्राय: पचीस-तीस हाथ लम्बी होती है। प्रत्येक में तीस-चालीस फल लगते हैं। अन्य सभी बातें प्राय: पेठा जैसी होती हैं। यह बहुत ही खराब चीज है। इसका व्यवहार न करना ही श्रेयस्कर है।

गुण—अपर पीतकूष्माण्ड गुरु पित्तकरं परम्।
अग्निमांद्यकर स्वादु श्लेष्मघ्न वातकोपनम्॥ (भा० स०)

पीतकूष्माण्ड अर्थात् कोंहड़ा—भारी, पित्तजनक, मन्दाग्निकारक, स्वादिष्ट, कफनाशक और वात को कुपित करनेवाला है।

लौआ

स० अलाबु, हि० लौआ, व० लाउ, म० दुध्या, गु० दुधीउँ, क० कडसयकायि, तै० सीयाबुसडीकाया, फा० कुदुशिरिन कुदु एसरोज, अ० युकिनेहुलुकरा, अँ० व्हाइट गुर्ड—White Gourd, और लै० कुकुर्बिटा लाजिनेरिया—Cucurbita Lagenoria

विशेष विवरण—इसकी लता बड़ी लम्बी होती है। इसका पत्ता पेठा की भाँति गोल तथा फूल सफेद होता है। इसकी अनेक जाति घीआ, लौआ, कद्दू और तितलौकी आदि हैं। इसके फल लम्बे और गोल दो प्रकार के होते हैं। गोल को सूख जाने पर तुम्बा कहते हैं। इसी तुम्बा को कमर में बाँधकर लोग तैरते हैं। इस तुम्बे का एकतारा या सितार बनाया जाता है। कोमल लौआ की तरकारी, रायता आदि अनेक चीजें बनाई जाती हैं। इसमें एक जाति तितलौकी की भी है। यह बहुत ठंढी होती है। कद्दू के बीज का तेल निकाला जाता है। यह शिरोरोग के लिए विशेष लाभदायक है।

गुण—मिष्टतुम्बीफलं हृद्यं पित्तश्लेष्मापहं गुरु।
वृष्यं रुचिकरं प्रोक्तं धातुपुष्टिविवर्द्धनम्॥ (भा० प्र०)

मीठी तुम्बी (लौआ)—हृदय को हितकारी, पित्त, कफ-नाशक, भारी, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक तथा धातु और पुष्टि वर्द्धक है।

विशेष उपयोग (१) बवासीर—लौआ के पत्तों का रस लेप करने से नष्ट होता है।

(२) अरुचि में—लौकी को हींग, जीरा से छौंककर खाना चाहिए।

(३) हृद्रोग में—लौकी केवल घी में भूनकर खाना चाहिए।

ककड़ी

स० कर्कटी, हि० ककड़ी, बं० फॉकुड़, म० गु० कांकड़ी, क० क्येयसौत, ते० दोसकाया, फा० ख्यारजाव, अ० किस्साफ्दम्, अं० कुकुम्बर Cucumber, और लै० कुकुनिस् सेटियस् Cucu mis Sativus

विशेष विवरण—ककड़ी की लता होती है। इसकी जाति के खीरा, फूट आदि हैं। किन्तु प्रत्येक में थोड़ा अन्तर होता है। इन सबों में ककड़ी सर्वोत्तम है। यह कच्ची तथा तरकारी बनाकर खाई जाती है। कच्ची को नजाकती लोग छीलकर नमक मिर्च के साथ खाते हैं। परन्तु यह उनकी गलती है। यदि ककड़ी अधिक कड़ी न हो, तो उसे बिना छीले ही खाना चाहिए। भिगोए हुए आटे में ककड़ी का पानी पड़ जाने से वह फट जाता है।

गुण—कर्कटी शीतला रूक्षा ग्राहिणी मधुरा गुरुः।

रुच्या पित्तहरा साम्ला पक्वा तृष्णाग्निपित्तकृत् ॥ (भा० प्र०)

ककड़ी—शीतल, रूखी, मलरोधक, मधुर, भारी, रुचिकारक, और पित्तनाशक है। पकी ककड़ी—गरम, अग्निवर्द्धक और पित्त कारक है।

विशेष उपयोग (१) मूत्राघात में—ककड़ी का बीज एक तोला एक पाव पानी में पीस और उबालकर लेना चाहिए। अथवा ककड़ी का बीज, जीरा और चीनी पानी में पीसकर लेना चाहिए।

(२) घावों पर—ककड़ी पीस और गरम करके बाँधना चाहिए। अथवा ककड़ी की मोटी छाल दो-तीन दिनों तक बाँधना चाहिए। ऊपर से कपड़े की मोटी गद्दी बाँधना चाहिए।

(३) शराब का नशा—ककड़ी खाने से उतरता है।

(४) पथरी पर—ककड़ी का बीज और कबूतर का विष्टा चावलों के धोवन में पीसकर पीना चाहिए।

(५) गण्डमाला में—पुरानी ककड़ी के रस में बिड़ नमक और सेंधा नमक मिलाकर नास लेना चाहिए।

(६) सफेद स्राव पर—ककड़ी के बीज की गुद्दी एक तोला, सफेद कमल की कली एक तोला पानी में पीसकर तथा जीरा का चूर्ण और मिश्री मिलाकर सात दिनों तक पीना चाहिए।

(७) गरमी में—ककड़ी के भीतर मिश्री भरकर सात दिनों तक खाना चाहिए।

(८) मूत्रकृच्छ्र में—ककड़ी के बीज की गुद्दी, मुलेठी तथा दारुहल्दी चावलों के धोवन में पीसकर पीना चाहिए।

(९) मूत्र विरेचन के लिए—ककड़ी के बीज का चूर्ण तीन माशे, कलमीसोरा डेढ़ माशे फाँककर ऊपर से आध सेर कच्चे दूध में आध सेर पानी मिलाकर खड़े-खड़े पीना तथा घूमना चाहिए। इससे मूत्र-विरेचन होकर मूत्राशय की गरमी निकल जाती है तथा प्रमेह सुजाक आदि रोग दूर हो जाते हैं।

(१०) मूत्र कृच्छ्र में—ककड़ी का बीज, गुलाब का फूल और सफेद कमल की कली पानी में पीस छानकर तथा मिश्री

मिलाकर पीना चाहिए।ⓐ

(११) शीतज्वर पर—ककड़ी खाकर खट्टा मट्ठा पीना, आग तापना, एवं कपड़ा ओढ़कर घाम में बैठना चाहिए। इससे पसीना निकलता है और शीतज्वर नष्ट हो जाता है।ⓐ

(१२) वीर्य पुष्टि के लिए—ककड़ी का बीज, मखाना और बबूल का गोंद घी में भून लें तथा चीनी का सीरा तयारकर उसमें सभी चीजें मिलाकर आधी छटाँक का मोदक बना लें। प्रतिदिन सुबह शाम एक-एक मोदक खाकर ऊपर से दूध पीना चाहिए।

खीरा

स० त्रपुप, हि० खीरा, ब० शँशा, म० सवर्से, गु० वांसलि, क० सर्सेयकायि, तै० दोसकाय, ता० मदेवेहरिकोइणो, फा० शियारखुर्द, अँ० ककुम्बर—Cucumber, और लै० कुकुमिस साटिवस, Cucumis Sativus

विशेष विवरण—खीरा भी ककड़ी की जाति का ही है। यह ककड़ी से मोटा होता है। इसकी तरकारी, रायता आदि पदार्थ

ⓐ नोट—इन दोनों रोगों में इन सब चीजों का उपयोग करते समय देश, काल, रोगी की अवस्था आदि का भली भाँति खूब विचार कर लेना चाहिए। अन्यथा इसका भयंकर परिणाम हो सकता है। नम्बर दस का उपयोग करने से कभी-कभी बड़ा भयकर सुजाव हो जाता है। जिससे बड़ी विकट परिस्थिति उत्पन्न हो जाया करती है।

बनते हैं। अधिकतर लोग इसे नमक-मिर्च के साथ खाते हैं। इसी की जाति का एक बालम खीरा भी होता है। पका खीरा और बालम खीरा न खाना चाहिए। खीरे का बीज औषध के काम आता है।

गुण—मधुरं लघुशीतं च नवं तृट्श्रमदाहजित्।
स्वादु पित्तापहं शीतं रक्तपित्तहरं परम्॥
तत्पक्वमम्लमुष्णं स्यात्पित्तलं कफवातनुत्।
तद्बीजं मूत्रलं शीतं रूक्षं पित्तास्रकृच्छ्रजित्॥ (भा० प्र०)

नवीन खीरा—हलका, नीला, स्वादिष्ट, शीतल तथा तृषा, श्रम, दाह, पित्त और रक्त-पित्त-नाशक है। पक्काखीरा—खट्टा, गरम, पित्तकारक और कफ-वात-नाशक है। खीरा का बीज—मूत्रजनक, शीतल, रूखा तथा रक्त-पित्त और मूत्रकृच्छ्र नाशक है।

विशेष उपयोग (१) उन्माद में—खीरा का बीज, छोटी इलायची और मिश्री जल में पीसकर पीना चाहिए।

(२) प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र पर—खीरा के रस में एक माशा कलमी सोरा मिलाकर पीना चाहिए।

(३) चक्कर पर—खीरा का बीज और मिश्री जल में पीसकर पीना चाहिए।

(४) सिर-दर्द में—खीरा का बीज, मिश्री, गरी, काली मिर्च और घी सब एक में मिलाकर आठ-दस दिनों तक खाना चाहिए।

खरबूजा

स० दशांगुल, हि० खरबूजा, य० खरमुज, म० खरबुज, गु० चशिया शक्करटेटी, फ० पलजसौवे, सं० खरबूज, फा० खुरपुजा, अ० बितिख, अँ० मेलन्—Melon और लै० कुक्युमिस मेलो —Cucumis Melo

विशेष विवरण—इसकी भी लता प्राय ककड़ी की लता के समान होती है। इसका फल गोल, मीठा और सुगंधित होता है। यह प्राय जलाशय, नदियों अथवा बालू की जमीन में होता है। यह भिन्न-भिन्न देशों में पैदा होने और भिन्न-भिन्न स्वाद होने के कारण अनेक नामों से प्रसिद्ध है। यह पक्का शक्कर के साथ खाया जाता है और कच्चे की तरकारी बनती है। जिस खरबूजे का रग भीतर से नीला होता है, उसे 'सरदी' कहते हैं। अधिक मात्रा में खाने से यह गरम करता है। खरबूजा खाकर कभी भी दूध न पीना चाहिए। इससे विषूचिका (हैजा) हो जाता है। इसका बीज अनेक कामों में आता है।

गुण—पक्वम्तु खर्बूज तृप्तिकारक पौष्टिक मतम्।
कफकृन्मूत्रल वर्ष्यं कोष्ठशुद्धिकर गुरु॥
स्निग्ध सुस्वादु शीत च वृष्य दाहश्रमापहम्।
वात पित्त च उन्माद नाशयेदिति सम्मतम्॥
तद्बीजमश्मपुत्रिका क्रिमिघ्नम् च सम्मतम्।
लघु वृद्व च मधुर स्मे क्षार च अम्लकम्॥

रक्तपित्त मूत्रकृच्छ्र करोतीति पुधा जगु। (रत्ना०)

पक्का खरबूजा—रतिकारक, पौष्टिक, कफकारक, मूत्रवर्द्धक, मलकारक, कोष्ठ को शुद्ध करनेवाला, स्निग्ध, सुस्वादु, शीतल, वृष्य तथा दाह, श्रम, वात, पित्त और उन्माद रोग को नष्ट करता है। कच्चा खरबूजा—मधुर, कड़वा और किंचित खट्टा होता है। पुराना खरबूजा – मधुर, क्षारयुक्त, खट्टा तथा रक्तपित्त और मूत्र-कृच्छ्र करनेवाला होता है।

विशेष उपयोग-(१) लू लगने पर-खरबूजे का बीज पीसकर सिर पर लेप करना तथा खरबूजे का रस शरीर पर लेप करना चाहिए।

(२) खरबूजा के दोष—खरबूजा खाकर ऊपर से चीनी अथवा मिश्री का शर्बत पीने से सब दोष नष्ट हो जाते हैं।

(३) अरुचि में—खरबूजे का बीज और मिश्री जल में पीसकर पीना चाहिए।

तरबूज

स० कालिङ्ग, हि० तरबूज, ब० तरमुज, म० कलिंगड, गु० तडबूच, क० कॅंडि, तै० तरबुजपुष्पकाया, फा० हिंदवाना, अ० बत्तिखहिंदी, अँ० वाटर मेलन—Water Melon, और लै० साइ ट्रुलस वलगेरीस Citrullus Vulgaris

विशेष विवरण—तरबूज की लता होती है। यह भी खर-

खूजा की भाँति नदी के किनारे बलुई जमीन में पैदा होता है। इसकी पत्ती पचकोनी, काँटेदार एवं फूल पीले रंग का होता है। फल बड़े, गोल और लम्बे भी होते हैं। इसका कोई-कोई फल एक-एक मन तक का होता है। रंग भेद से इसकी कई जातियाँ होती हैं। एक का छिलका काला होता है और दूसरे का छिलका हरापन लिए हुए कुछ सफेद होता है। उसका फल कुछ लम्बा होता है। पका तरबूज काटने पर भीतर से लाल और सफेद गूदा तथा काले और लाल रंग के बीज निकलते हैं। इसका जल मीठा और स्वादिष्ट होता है। जो तरबूज ऊसर थोड़ा सफेद होता है। वह अधिक मीठा होता है। इसका कच्चा फल तरकारी के काम में आता है और पक्के फल का गूदा खाने, जल पीने और बीज औषध के काम में आता है। यह मारवाड़, मथुरा, आगरा, और फैजाबाद का अधिक उत्तम होता है। अधिक खाने से यह बुद्धि का नाश करता है। इसे कहीं-कहीं कुमतिया भी कहते हैं। इसके बीज का तेल भी निकाला जाता है।

गुण—कालिङ्गं ग्राहि दृक्पित्तशुक्रघ्नं शीतलं गुरु।
पक्वमुष्णं सक्षारं पित्तलं कफवातहृत्॥ (भा॰ प्र॰)

कच्चा तरबूज—मलरोधक, नेत्र, पित्त और शुक्र नाशक, शीतल और भारी है। पका तरबूज गरम, क्षारयुक्त, पित्तजनक और कफवात नाशक है।

विशेष उपयोग (१) बलवृद्धि के लिए—तरबूज के बीज का गूदा छः माशे, मिश्री छः माशे महीन चूर्ण बनाकर

सेवन करना चाहिए।

(२) दाह में—खरबूज खाना चाहिए।

(३) मूत्रकृच्छ्र में—खरबूज का पानी एक पाव; मिश्री और जीरा का चूर्ण मिलाकर सेवन करना चाहिए।

(४) इन्द्रिय का घाव—खरबूज बीच में काटकर एक कतरा निकाल लें। बाद उसमें एक पाव खाँड भरकर वही टुकड़ा लगाकर पुन: बन्द करके रात भर ओस में रख दें। प्रातःकाल उसे निकाल कर सब पानी पी जायँ। इससे इन्द्रिय का घाव और पेशाब की जलन दूर होती है।

तोरई

स० कोशातकी, हि० तोरई, ब० घोषलता, म० शिराली, गु० तुरीयाँ, क० धारवितरोई, तै० बीरकाया, अँ० एक्युटेंगलेड कुकुम्बर—Acuteangled Cucumber, और लै० ल्यफा एक्युटेंग्युला—Luffa Acutengula.

विशेष विवरण—इसकी लता होती है। इसका फूल पीला और फल पाँच छः अंगुल से बित्ता डेढ़ बित्ता लम्बा होता है। यह मीठी और कड़वी दो प्रकार की होती है। तोरई में नौ-दस खड़ी लकीरें होती हैं। कुछ लोगों का कथन है कि जिसमें दस धारी होती है वह मीठी और जिसमें नौ धारी होती है, वह कड़वी होती है। यह आमकारक है।

गुण—धारा कशातकी स्निग्धा मधुरा कफपित्तनुत।
ईषद्वातकरी पथ्या रुचिकृद्बल्यवीर्यदा ॥ (रा० नि०)

तोरई—स्निग्ध, मधुर, कफ-पित्त नाशक, किंचित् वातकारक, पथ्य, रुचिकारक, बल और वीर्य को देनेवाली होती है।

विशेष उपयोग (१) बाघी पर—तोरई को जड़ पानी में घिसकर लगाना अथवा तोरई पीसकर बाँधने से चार प्रहर में बैठ जाती है।

(२) उपदंश के छालों पर—तोरई की लता का रस गाय के मक्खन अथवा एरण्ड तेल में मिलाकर दिन में दो-तीन बार लेप करना चाहिए।

(३) पथरी में—तोरई के लता की जड़ गाय के दूध अथवा ठंडे जल में घिस कर प्रातःकाल तीन दिनों तक पीना चाहिए।

(४) अरुचि में—तोरई का शाक खाना चाहिए।

नेनुआ

स० महाकोशातकी, हि० नेनुआ, बं० हस्तिघोषा, म० घोसाली, गु० गलका, क० अरहिरे, तै० पुच्छावीरकाया, फा० खियार, अं० वाश स्पञ्ज Wash sponge और लै० लुफा पेंटेंड्रा–Luffa Pentandra

विशेष विवरण—नेनुआ की लता लम्बी होती है। इसके पत्ते गोल, फूल पीला, एवं फल कुछ कालापन लिए हरे रंग का

होता है। यह बड़ा और छोटा दो प्रकार का होता है। बड़े को नेनुआ कहते हैं। यह प्राय: आठ-दस अंगुल लम्बा और तीन-चार अंगुल तक मोटा होता है। छोटे को सतपुतिया कहते हैं। यह चार-पाँच अंगुल लम्बी और दो अंगुल तक मोटी होती है। नेनुआ और सतपुतिआ दोनों की तरकारी बनती है।

गुण—हस्तिकोशातकी स्निग्धा मधुराध्मानवातकृत्।

पृष्या कृमिकरी चैव व्रणसंरोपिणी च सा ॥ (रा० नि०)

नेनुआ—स्निग्ध, मधुर, आध्मानकारक, वातवर्द्धक, वृष्य, कृमिकारक और व्रण नाशक है।

सतपुतिया—शीतल, हृद्य, पाक में तीखी एवं कड़वी होती है।

विशेष उपयोग (१) बालकों की छाती के दर्द पर—भूने हुए नेनुआ का रस एक पैसा भर पिलाना चाहिए।

(२) शोफोदर पर—नेनुआ की पत्ती का रस दो तोले पीना तथा सूजन पर लेप करना चाहिए।

(३) शोथ पर—नेनुआ की पत्ती का रस और गोमूत्र गरम करके लेप करना चाहिए।

(४) बाघी, फुटा फोड़ा और उपदंश के घावों का मरहम—नेनुआ की हरी पत्तियों का रस एक सेर, गाय या बकरी का घी एक सेर दोनों को मिलाकर कलईदार बर्तन में पकाएँ। जब केवल घी बाकी रह जाय तब उतारकर छान लें और बर्तन साफ करके पुन: घी को उसी में छोड़कर गरम करें। जब घी अच्छी तरह गरम हो जाय तब उसमें पाँच तोले शुद्ध मोम छोड़

हैं। जब घी और मोम खूब मिल जाय तब उतारकर उसे पानी भरे हुए पात्र में छोड़ दें। एक प्रहर के बाद मरहम ऊपर आकर जम जायगा। बाद उसमें से निकालकर किसी महीन कपड़े में रखकर उसे इधर-उधर चलाएँ। इस तरह करने से उसका पानी निकल जाता है। बस उसे डिब्बे में रखें और आवश्यकतानुसार काम में लाएँ। इस मरहम से घाव शीघ्र भरता है।

(५) कृमि—नेनुआ के रस में अजवाइन का चूर्ण मिलाकर पीने से नष्ट होते हैं।

कड़वी तोरई

स० तिक्तकोशातकी, हि० कड़वी तोरइ, व० झिङ्गा, म० कडू दोडकी, गु० कड़वी तुरीया, फा० काहिर, तै० चेदुविर्काया, प्रा० तुरीयेतल्ल, अँ० बिटर ल्युफा-Bitter Luffa, और लै० ल्युफा अमेरा-Luffa Amera

विशेष विवरण—तोरई की ही भाँति इसकी भी उत्पत्ति है; परन्तु इसका बीज काले रंग का होता है।

गुण—तिक्तकोशातक तिक्तं वातकं कफपित्तजित्।

अहृद्य कटुकं पाके सारकं वान्तिकारकम्॥

एतत्फलं च बीजं च नस्यान्नासाशिरोर्तिजित्। (शा० नि०)

कड़वी तोरई—कड़वी, वातकारक, कफ-पित्त नाशक, अहृद्य, पाक में कटु, सारक और वमनकारक है। इसके फल और बीजों

का नास लेने से सिर की पीड़ा नष्ट होती है।

विशेष उपयोग (१) सब प्रकार के विष–कड़वी तोरई की जड़ अथवा पत्तियों का काढ़ा करके उसमें शहद मिला कर पिलाने से वमन होकर नष्ट हो जाते हैं।

(२) पथरी और सूजन में–कड़वी तोरई का रस मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

(३) कामला में–कड़वी तोरई का महीन चूर्ण सूँघना चाहिए। इससे छींकें आती हैं और पीले रंग का मवाद जैसा पदार्थ नाक से निकलता है। यदि छींक अधिक आएं, तो घी सूँघना चाहिए। यह उपाय तीन दिनों तक करना चाहिए। अथवा कड़वी तोरई में छोटी पीपर और राई भरकर उसे जलाएँ और उसकी राख सूँघें।

(४) पागल कुत्ते का विष–कड़वी तोरई के भीतर का तन्तुमय जाल पीसकर पाव भर पानी में घटा भर भिगो रखें। बाद मलकर छान लें। शक्ति के अनुसार पाँच दिनों तक प्रातःकाल सेवन करें। इससे वमन होकर विष निकल जाता है। संयम चौमासे तक रखें। यह प्रत्येक विष में काम आता है।

(५) दाँतों के दर्द पर–कड़वी तोरई के पेड़ की छाल दाँतों के नीचे रखें।

(६) अधकपारी में—कड़वी तोरई का चूर्ण थोड़ा-थोड़ा सूँघें। इससे नाक से पानी निकलकर पीड़ा दूर हो जाती है।

(७) बवासीर के मसों पर–कड़वी तोरई का चूर्ण मसा

पर लगाने से उसका विकार निकल जाता है और बवासीर अच्छा हो जाता है।

(८) विष पर—कड़वी तोरई का काढ़ा भी औटाकर पीने से वमन होकर विष निकल जाता है।

(९) स्वरभंग में—कड़वी तोरई हुक्के में रखकर पीना चाहिए। इससे मुँह से लार टपककर तुरन्त गला खुल जाता है।

परवल

सं० तिक्तपटोल, राजपटोल, हिं० परवल, परवर, बं० पलता लता, म० कडुपड़वल, गु० पटोलकडु, पबोला, क० काईपड़वल, कल्लपड़वल, तै० अड़वीपटोला, ता० कोम्बुपुडलै, और लै० ट्रिकोसयस डिओइका Trichosanthes Dioica

विशेष विवरण—तिक्तपटोल का फल और पत्ती बहुत कड़वी होती है। इसके पञ्चांग का उपयोग काढ़ा आदि में होता है। राजपटोल की भाड़—प्रायः दक्षिण में होती है। सभी प्रकार के परवलों की एक लता होती है और वह टट्टियों पर चढ़ाई जाती है। उसमें फल लगते हैं फलों की तरकारी बनाई जाती है। यह प्रायः सर्वत्र पैदा होता है। पूरब में पान के भीटों पर इसकी लता चढ़ाई जाती है। यह फल चार-पाँच अंगुल तक लम्बा दोनों ओर पतला और नुकीला होता है। फल के भीतर का बीज मुलायम रहने पर अच्छा होता है, परन्तु फल के पक जाने पर बीज भी पक जाता है और

खाने में बुरा मालूम पड़ता है। ज्वरादिक रोगों में परवल का पथ्य दिया जाता है।

गुण—पटोलः कटुतिक्तोष्णः सरः पित्तबलासजित्।
कफकण्डूतिकुष्ठास्रज्वरदाहार्तिनाशनः ॥ (रा॰ नि॰)

तिक्तपटोल—कटु, तिक्त, उष्ण, सारक तथा पित्त, बलास, कफ, कण्डू, कुष्ठ, रक्तविकार, ज्वर और दाह नाशक है।

इसकी पत्ती—पित्त नाशक, लता—कफ नाशक और इसका फल त्रिदोष नाशक है।

गुण—पटोलं पाचनं हृद्यं वृष्यं लघ्वग्निदीपनम्।
स्निग्धोष्णं हन्ति कासास्रज्वरदोषत्रयकृमीन् ॥
पटोलस्य भवेन्मूलं विरेचनकरं सुखात्।
नालं श्लेष्महरं पत्रं पित्तहारि फलं पुनः ॥
दोषत्रयहरं प्रोक्तं तद्वत्तिक्ता पटोलिका। (भा॰ प्र॰)

राजपटोल—पाचक, हृद्य, वृष्य, हलका, अग्निदीपक, स्निग्ध, गरम, तथा खाँसी, रक्तविकार, ज्वर, त्रिदोष और कृमि नाशक है। इसकी जड़ सुखपूर्वक विरेचन करनेवाली है। इसकी लता—कफ नाशक और पत्ते पित्त नाशक हैं। इसके फल—त्रिदोष नाशक हैं। कड़वे परवल के गुण भी इसी के समान हैं।

विशेष उपयोग (१) घाव—कड़वे परवल और नीम छोड़कर पकाए हुए जल से धोना चाहिए।

(२) आग से जलने पर—कड़वे परवल का काढ़ा और सरसों का तेल पकाकर लगाने से जलन दूर हो जाती है।

(३) सर्वज्वर में—कड़वे परवल और सोंठ का काढ़ा पिलाना चाहिए। प्यास रोकने के लिए काढ़े में मिश्री मिलाकर दें तथा शीतज्वर में तीन माशे शहद मिलाकर दें।

(४) शीतज्वर और सार्वकालिक ज्वर में—कड़वे परवल की पत्ती का रस पहले कलेजे पर तथा बाद सम्पूर्ण शरीर पर मालिश करना चाहिए।

(५) सिर पर बाल लाने के लिए—कड़वे परवल की पत्ती का रस लगाना चाहिए।

(६) पित्तविकार पर—कड़वा परवल, नीम और महुआ की पत्ती का चूर्ण ठंडे जल के साथ देना चाहिए। इससे वमन होकर पित्तविकार नष्ट हो जाता है।

(७) कृमिविकार में—कड़वे परवल की पत्ती और धनियाँ एक-एक तोला एक पाव पानी में रात के समय भिगो दें। सुबह छान लें और शहद मिलाकर दिन में तीन बार पीएँ।

(८) पित्तज्वर तृषा और दाह पर—कड़वे परवल की जड़ का रस चीनी मिलाकर दें। अथवा कड़वे परवल की पत्ती और जौ का काढ़ा शहद मिलाकर दें।

(९) चक्कर पर—कड़वे परवल की पत्ती और सहिंजन की पत्ती नारियल के तेल में तलकर दूध में पीस लें और गरम करके सहन करने योग्य पट्टी बनाकर सिर पर बाँधें।

(१०) विष—कड़वा परवल घिसकर पीने से वमन होकर

विप नष्ट हो जाता है।

(११) पित्तज्वर में–परवल की पत्ती और शहद पीना चाहिए।

(१२) शोथ–परवल की पत्ती का शाक खाने से नष्ट होतो है।

(१३) जीर्णज्वर में–परवल की पत्ती का काढ़ा शहद मिलाकर पीना चाहिए। ❁

कुदरू

स० बिम्बी, तुण्डी, हि० कुन्दरू, ब० तेलाकुच, म० गोड़ तोंडली, गु० घोलामिठा, क० सीहितोंडे, ता० कोवे, तै० दोंडतिगे, और लै० केफालेन्ड्रा इण्डिका–Cephalandra Indica

विशेष विवरण–इसकी भी परवल की भाँति लता होती है। इसकी पत्तियाँ चार-पाँच अंगुल लम्बी और पचकोनी होती हैं। इसका फूल सफेद होता है और फल परवल के आकार के लगते हैं। कच्चेपन में हरे और पकने पर लाल होते हैं। इसी की उपमा कवि लोग ओष्ठ से देते हैं। इसी आधार पर संस्कृत में इसका नाम बिम्बी पड़ा है। इसकी लता पान के भीटों पर चढ़ाई जाती है। यह मीठा और कड़वा दो प्रकार का होता है। कड़वा कुन्दरू प्राय: जंगलों में स्वयं पैदा होता है और बुद्धि नाशक है।

❁ नोट—स्वादुपटोल के गुण और उपयोग भी इसी के समान हैं।

गुण—फलमस्या गुरु स्वादु शीतलं लेखनं मतम्।
मलस्तम्भकरं स्तन्यमुदरे वातसंचयम्॥
रुच्यं पित्त रक्तदोषवातोच्छ्वासं च नाशयेत्।
शोथवृद्धिदाहकासश्वासनाशकरं मतम्॥
पुष्पमस्या कण्डूपित्तक्षयमलानाशकारकम्।
अस्या पर्णोद्भवा शाका शीतला मधुरा लघुः॥
ग्राहका तुवरा तिक्ता पाके कटुवी च वातला।
कफपित्तहरा प्रोक्ता पूर्वैर्वैद्यवरैः स्फुटम्॥
मूलमस्या हिमं मेहनाशनं धातुवर्द्धकम्।
हस्तदाहहरं भ्रान्तिवान्तिनाशकरं मतम्॥ (रला०)

कुंदरू—भारी, स्वादिष्ट, शीतल, लेखन, मलस्तम्भक, स्तन्य कारक, पेट में वायु संचित करनेवाला, रुचिकारक तथा पित्त, रक्त विकार, वात, श्वास, शोथ, वृद्धि, दाह, खाँसी और श्वास नाशक है। कुंदरू का फूल—खुजली, पित्त और कामला नाशक है। इसके पत्तों का शाक—शीतल, मधुर, हलका, ग्राही, कपैला, पाक में चरपरा, वातकारक तथा कफ और पित्त नाशक है। इसकी जड़—शीतल, प्रमेह नाशक, धातुवर्द्धक तथा हाथ पाँवों की दाह, वमन और भ्रम नाशक है।

विशेष उपयोग (१) कानों का मैल—कुंदरू के पत्तों के रस में सरसों का तेल मिलाकर छोड़ने से साफ हो जाता है।

(२) गर्भिणी के रजोदर्शन और गर्भ स्राव के लिए—कुंदरू का डंठल अंगूठा बराबर मोटा लेकर उसकी गाँठें गिनें।

जितने मास का गर्भ हो उतनी गाँठें गिनकर काट लें और ठंडा जल देकर कूटें। एक पाव रस निकालकर उसमें तीन मासे जीरा का चूर्ण और दो मासे चीनी मिलाकर प्रतिदिन दो बार रजोदर्शन से चार दिनों तक दें। यह औषध गर्भपात में न देना चाहिए।

खेखसा

सं० कर्कोटकी, हि० खेखसा, बं० काकरोल, म० कॉंटली, गु० कटोली, क० मडुआगाल, ता० इगारवल्लि, तै० आगोरकर, और लै० मोमोर्डिका डिओइका-Momordica Dioica.

विशेष विवरण-खेखसा की लता चौमासे में जंगलों में होती है। यह दूसरे पेड़ों के सहारे चढ़कर दस-पन्द्रह हाथ लम्बी होती है। फूल पीला होता है। इसका कच्चा फल हरा और कॉंटेदार होता है। पकने पर लाल हो जाता है। इसकी तरकारी पथ्य और स्वादिष्ट होती है। एक प्रकार का बाँझ खेखसा होता है। जिसमें केवल फूल होता है। फल नहीं होता।

गुण—कर्कोटकी रुचिकरा कटुवी चाग्निप्रदीपनी।
तिक्तोष्णा वातकफहृद्विषपित्त विनाशयेत् ॥
फलमस्यास्तु मधुरं लघु पाके कटु स्मृतम्।
अग्निदीप्तिकरं गुल्मशूलपित्तत्रिदोषनुत् ॥
कफकुष्ठकासमेहश्वासज्वरक्रिमीस्तनुत्।
कामलावातदर्वात क्रिमीसहृदयव्यथा ॥

माशयेत्पर्णमस्याश्च रुच्यं वृष्यं त्रिदोषनुत् ।
कृमिज्वरक्षयश्वासकासहिक्कार्शोनाशनम् ॥
कन्दो माक्षिकसंयुक्तः शीर्षरोगे प्रशस्यते । (वि० र०)

खेखसा—रुचिकारक, कटु, अग्निदीपक, गरम तथा वात कफ, विष और पित्त नाशक है। इसका फल—मधुर, हलका, पाक में कटु, अग्निदीपक तथा गुल्म, शूल, पित्त, त्रिदोष, कफ, कुष्ठ, खाँसी, प्रमेह, श्वास, ज्वर, किलास, क्षार का बहना, अरुचि, वात, और हृदय की व्यथा नष्ट करता है। इसके पत्ते—रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक, त्रिदोष नाशक तथा कृमि, ज्वर, क्षय, श्वास, खाँसी, हिचकी और बवासीर का नाश करते हैं। इसकी जड़—शहद के साथ मस्तक रोग में लाभकारी है।

विशेष उपयोग (१) छिपकली का विष—खेखसा की जड़ सात दिनों तक जल में पीसकर पीने से नष्ट होता है।

(२) मूत्रकृच्छ्र और धातु-क्षीणता पर—बाँझ खेखसा की जड़ एक तोला, शहद के साथ सेवन करें।

(३) स्तनरोग पर—बाँझ खेखसा की जड़ पानी में घिसकर लेप करना चाहिए।

(४) सर्प विष में—बाँझ खेखसा की जड़ पानी में पीस कर पीना तथा लेप करना चाहिए। अथवा बाँझ खेखसा की जड़ बकरी के मूत्र की भावना देकर उसे काँजी में पीसकर नास लें।

(५) सब प्रकार के जानवरों का विष—बाँझ खेखसा

और धतूरा की जड़ चावलों के धोवन में घिसकर पीना एवं काटे हुए स्थान पर लगाना चाहिए।

(६) बिच्छू का विष—बाँझ खेखसा की जड़ पानी में पीसकर खाने और लगाने से नष्ट हो जाता है।

(७) मृगी में—बाँझ खेखसा की जड़ घी में घिसकर और चीनी मिलाकर नास लें। इससे मृगी का कीड़ा मरकर नाक से निकल जाता है।

(८) वातजन्य मस्तक-शूल पर—बाँझ खेखसा की जड़ शहद में पीसकर लेप करना चाहिए।

(९) यकृत—खेखसा की जड़ रविवार को लाकर रख दें। ज्यों-ज्यों जड़ सूखेगी त्यों-त्यों यकृत कम होगा।

(१०) रक्तार्श पर—खेखसा की जड़ का चूर्ण सेवन करना चाहिए।

(११) भगन्दर में—खेखसा का रस प्रातःकाल पीना चाहिये।

(१२) अरुचि और प्रमेह में—खेखसा की तरकारी खानी चाहिए।

(१३) गठिया में—खखसा, हींग और राई से छौंककर खाना चाहिए।

करेला

सं० कारवेल्ल, हि० करेला, ब० करला, म० कारलें, गु० कारेला, क० हागल, ते० करिला काकरकाया, फा० कारेलाह अ० किस्सा उलहिमार, अं० बिटरगोर्ड Bittergourd, और लै० मोमोर्डिका करटिया Momordica Charantia.

विशेष विवरण—करेला की लता होती है। इसकी पत्तियाँ पचकोनी फाँकों में कटी होती हैं। फल तीन-चार अंगुल से लेकर बित्ता डेढ़ बित्ता तक लम्बा होता है। इसके छिलके पर उभड़े हुए लम्बे-लम्बे दाने होते हैं। यह हरा और सफेद दो रंग का होता है तथा छोटा-बड़ा दो जाति का होता है। बड़े को करेला और छोटे को करेली कहते हैं। इसकी लता के ऊपर भी फल का अच्छा होना निर्भर करता है। जो लता जमीन पर फैलती है, उसका फल पोला और खराब होता है तथा जो लता ऊपर किसी चीज पर चढ़ा दी जाती है उसका फल ठस और उत्तम होता है। इसकी तरकारी और अचार बनाया जाता है।

गुण—कारवल्लं हिमं भेदि लघु तिक्तमवातलम्।
ज्वरपित्तकफास्रघ्नं पाण्डुमेहकृमीन्हरेत्॥
तद्गुणा कारवेल्ली स्याद्विशेषाद्दीपनी लघुः। (भा० प्र०)

करेला—शीतल, मेदक, हलका, कड़वा, अवातल तथा ज्वर, पित्त, कफ, रक्तविकार, पाण्डु, प्रमेह और कृमि नाशक है। करेली

के गुण भी करेला के समान हैं। यह विशेष करके दीपन और हलकी है।

विशेष उपयोग (१) पित्तविकार पर—करेला की पत्ती का रस पीना चाहिए। इससे वमन होकर पित्त निकल जायगा। यदि वमन न होगा, तो एक या दो दस्त होकर पित्त शान्त हो जायगा। दस्त या कै होने के बाद घी और भात खाना चाहिए।

(२) शीतज्वर में—करेला की पत्ती का रस जीरा का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(३) रतौंधी में—करेला की पत्ती के रस में काली मिर्च घिसकर सायकाल अजन करना चाहिए। इससे दो-तीन दिनों में लाभ मालूम होता है।

(४) पारदजन्य क्षत में—करेला की जड़ पानी में पीसकर पीना चाहिए।

(५) बालकों के पेट फूलने पर—करेला की पत्ती के रस में हल्दी का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए। इससे वमन और विरेचन होकर अफरा नष्ट हो जाता है।

(६) हैजा में—करेला का रस और तिल का तेल एक में मिलाकर पीना चाहिए।

(७) खूनी बवासीर में—करेला या उसकी पत्ती के रस में चीनी मिलाकर पीना चाहिए।

(८) मूत्राघात पर—करेला की पत्ती का रस आध पाव

और भूनी हींग एक माशा, एक में मिलाकर पीना चाहिए।

(९) कृमि में—करेला अथवा उसकी पत्ती का रस पीना लाभदायक है।

(१०) ज्वर में—करेला का रस और शहद पीना चाहिए।

(११) पित्तजन्य वमन में—करेला के रस में मोरपंख जलाकर उसकी राख मिलाकर पीना चाहिए।

(१२) जोड़ों के दर्द पर—करेला का बीज पीसकर घी में भून लें और थोड़ा गरम ही रखकर पट्टी बाँधना चाहिए।

भिण्डी

स० भिण्डा, हि० भिण्डी, ब० स्वनामख्यातफलशाक, म० भेंडे, गु० भींडा, क० बेंडे, ता० वेंडा, तै० बेंडकाया, फा० बामिया, अ० बुआ, इंग्लि० लेडिज फिंगर, ओकरा-Lady's fingers, Okra, और लै० हिबिसकुस एस्क्युलेंटस् Hibiscus Esculentus.

विशेष विवरण—भिण्डी का पेड़ लगभग तीन हाथ लम्बा और एकदम सीधा होता है। फूल फूलने पर प्रत्येक फूल में भिण्डी फरती है। भिण्डी की छः धारी और आठ धारी दो जातियाँ हैं। इसकी तरकारी बनती है। भिण्डी के भीतर का चिकना पदार्थ रंग बनाने के काम में आता है। इसके रेशों के रस्से और कागज आदि बनाए जाते हैं।

गुण—भेण्डा त्वम्लरसा चोष्णा ग्राही च रुचिकारका।

राजनामानिघण्टे च वृष्ये वृष्या परा स्मृता॥ (मि० र०)

भिण्डी—अम्ल, गरम, मलरोधक, रुचिकारक और वृष्य है।

विशेष उपयोग (१) धातु पुष्टि और शक्तिवर्द्धन के लिए—कोमल भिण्डी एक मास तक प्रातःकाल कच्ची ही खाना चाहिए।

(२) आमवात पर—भिण्डी की जड़ और चीनी खाना लाभदायक है।

(३) अरुचि में—भिण्डी का शाक खाना चाहिए।

बैंगन

स० वार्त्ताकु, हि० बैंगन, ब० बेगुनगाछ, म० वांगे, गु० रिंगणा, क० बदने, तै० वेकाया, ता० कुठिरेकई, फा० बादेंगान्, अ० बार्धजान, अँ० ब्रिंजल् Brinjal, और लै० सोलेनम् मेलजीना—Solanum Melongena.

विशेष विवरण—बैंगन का पेड़ दो-तीन हाथ तक ऊँचा होता है। रंग भेद से इसकी अनेक जातियाँ हैं। यह पत्ते के भेद से दो प्रकार का होता है। एक के पत्ते पर काँटा होता है और दूसरे पर काँटा नहीं होता। इसका रंग आसमानी, नीला, लाल, हरा और सफेद होता है। पतला, मोटा, लम्बा और गोल कई

प्रकार का होता है। कहीं-कहीं का बैंगन चार-पाँच सेर तक का होता है। जिसमें बीज कम हो, हलका हो तथा देखने में बड़ा हो वही बैंगन अच्छा होता है, अधिक बीजवाला और पका बैंगन विष के समान होता है। इसकी तरकारी और अचार आदि चीजें बनाई जाती हैं।

गुण—वृन्ताकं स्वादु तीक्ष्णोष्णं कटुपाकमपित्तलम्।
ज्वरवातबलासघ्नं दीपनं शुक्रलं लघु॥
तद्बालं कफपित्तघ्नं वृद्धं पित्तकरं गुरु।
वृन्ताकं पित्तलं किञ्चिदङ्गारपरिपाचितं तद्॥
कफमेदोऽनिलामघ्नमत्यन्तलघु दीपनम्।
तदेव हि गुरु स्निग्धं सतैलं लवणान्वितं॥
अपरं श्वेतवृन्ताकं कुक्कुटाण्डसमं भवेत्।
तदर्शःसु विशेषेण हितं हीनञ्च पूर्वत॥ (भा० प्र०)

बैंगन—स्वादिष्ट, तीक्ष्ण, गरम, पाक में कटु, अपित्तल तथा ज्वर, वात एवं कफ नाशक, दीपन, शुक्रजनक और हलका है। कच्चा बैंगन—कफ-पित्त नाशक है। पका बैंगन—पित्तकारक और भारी है। अंगारों पर भूना हुआ बैंगन—किंचित् पित्तकारक तथा कफ, मेद और वात नाशक, अत्यन्त हलका और दीपन है। वही भूना बैंगन तेल और नमक मिला हुआ—भारी और चिकना है। दूसरा सफेद रंग का बैंगन मुर्गी के अण्डे के समान होता है। वह बवासीरवालों के लिए विशेष हितकर तथा औरों की अपेक्षा हीन गुणवाला है।

विशेष उपयोग (१) नहरुआ पर–भूना हुआ बैंगन दही में मिलाकर सात दिनों तक बाँधना चाहिए।

(२) उदर-शूल में–कोमल बैंगन खाना तथा उसका रस पीना चाहिए।

(३) पेट के भारीपन पर–भूने हुए बैंगन में सज्जी खार मिलाकर पेट पर बाँधना चाहिए।

(४) धतूरा का विष–बैंगन का चार तोले रस पीने से नष्ट होता है।

(५) अण्डवृद्धि पर–बैंगन की जड़ पानी में घिसकर लेप करना चाहिए।

(६) यकृत में–बैंगन भूनकर खाना चाहिए।

(७) निद्राभंग रोग में–भूना हुआ बैंगन शहद में मिलाकर चाटना चाहिए।

(८) फोड़ा अथवा गाँठों का दर्द–भूना हुआ बैंगन बाँधने से नष्ट होता है।

(९) चोट पर–बैंगन, हल्दी, अफीम और सरसों का तेल एक में पकाकर बाँधना चाहिए। इससे विशेष लाभ होता है।

ग्वार की फली

सं० गोराणी, हि० ग्वार की फली, म० गोवारीच्या शेंगा, गु० गुवार और तै० गोरचिक्कुडु।

विशेष विवरण—इसकी कई जातियाँ होती हैं। इसका पेड़ दो-तीन हाथ तक ऊँचा होता है। इसमें पीले रंग के लम्बे फूल लगते हैं। इसकी कोमल पत्तियों का शाक उत्तम होता है। ग्वार की फलियां सुखाकर बीज निकाला जाता है और वह जानवरों को खिलाया जाता है। कहीं-कहीं इसकी दाल भी बनाई जाती है। कोई-कोई इसे अदरक के पेड़ों पर छाया करने के लिए लगाते हैं। सगर्भा या जिस स्त्री का स्तन-पान बालक करता हो, उसे ग्वार की फली न खाना चाहिए। क्योंकि बालक को यह पंगु कर देती है।

गुण—वाकुचिका ह्लिम्बि रूक्षा वातला मधुरा गुरुः।

सरा कफकरी चाग्निदीपनी पित्तनाशिनी ॥ (नि० र०)

ग्वार की फली—रूखी, वातकारक, मधुर, भारी, दस्तावर, कफकारक, अग्निदीपक और पित्त नाशक है।

विशेष उपयोग (१) दाह पर—ग्वार की फलियों का रस और लहसुन का लेप करना चाहिए।

(२) नाड़ी व्रण में—ग्वार की फलियों के रस में कपड़ा भिगोकर थोड़ा-थोड़ा वही रस छोड़ना चाहिए।

सेम

स० निष्पावी, हि० सेम, ब० बारा, म० पेवड़ा, गु० वालोल, ता० मोच्चे कोटे, ते० चिक्कुडु, क० बिन्स, अं० फ्लाट् बीन-Flat bean, और लै० डोलिकोस लबलब—Dolichos Lablab

विशेष विवरण—सेम की अनेक जातियाँ है। रंग-विपर्यय और स्वरूप भेद के कारण जाति-भेद हो गया है। सेम की लता होती है। यह लता बहुत दिनों तक रहती है। इसकी फलियों एव बीजों का शाक बनाया जाता है। इसका आचार भी बनाया जाता है। यह कोमल अवस्था में ही खाने लायक होता है। अधिक खाने से पेट में पीड़ा होती है।

गुण—निष्पावी द्वी हरिच्छुभ्रौ कषायौ मधुरौ रसौ ।
कण्ठ शुद्धिकरौ मेध्यौ दीपनौ रुचिकारकौ ॥ (रा० नि०)

दोनों प्रकार की हरी और सफेद सेम—कपैली, मधुर, कण्ठ शोधक, मेधाजनक, दीपन और रुचिकारक है।

गुण—कोलशिम्बी समीरघ्नी गुर्व्युष्णा कफपित्तकृत् ।
शुक्राग्निमांद्यकृद्वृष्या रुचिकृन्मलविड् गुरुः ॥ (शा० नि०)

गोनिया सेम—वात नाशक, भारी, गरम, कफ-पित्तजनक, शुक्र और अग्निमांद्यकारक, वृष्य, रुचिकारक, मलरोधक और भारी है।

गुण—दधिपुष्पी कटु मधुरा शिशिरा सन्तापपित्तदोषघ्नी ।
वातामयदोषकरी गुरुस्तथा रोचकघ्नी च ॥ (रा० नि०)

करिया सेम—कटु, मधुर, शीतल, सन्ताप निवारक, पित्त-नाशक, वातरोगकारक, भारी और अरुचि नाशक है।

विशेष उपयोग (१) बिच्छू का विष—सेम का रस पिलाने से नष्ट होता है।

(२) मोच पर—सेम और मिलावाँ पीसकर और गरम करके बाँधना चाहिए।

(३) विषमज्वर में—सात वर्ष पुरानी सेम की जड़ कानों में बाँधना चाहिए।

(४) यकृत और प्लीहा में—सेम की पत्ती लगातार सात दिनों तक खाना चाहिए।

(५) विरेचन के लिए—सेम और करेला का रस क्रम से थोड़ी देर बाद पीना चाहिए। शक्ति के अनुसार आध पाव तक दिया जा सकता है। बाद घी पिलाना चाहिए।

सहिजन

म० शिग्रु, हि० सहिजन, गु० सरगवो, म० शेवगा, क० नुग्गिय, तै०मुलग, बा० मोरग, अँ० होर्स रेडिश Horse Radish, और ले० मोरिंगा टेरिगोस्पर्मा—Moringa Pterygosperma

विशेष विवरण—सहिजन का पेड़ बहुत बड़ा होता है। इसकी पत्ती छोटी-छोटी गुलतुर्रो की पत्ती की तरह होती हैं। इसके फूल, गोल, सफेद एव गुच्छेदार होते हैं। इसका फल लम्बा और चिपटा होता है। इसका बीज सफेद और तिकोना होता है। इसके कोमल पत्ते, फूल और फल की तरकारी बनाई जाती है। यह औषध के काम में आता है।

गुण—शोभाञ्जनफलं स्वादु कषायं कफपित्तनुत्।

शूलकुष्ठक्षयश्वासगुल्महारीपनं परम् ॥ (भा० प्र०)

सहिजन की फलियाँ—स्वादिष्ट, कसैली, कफ-पित्त नाशक

तथा शूल, कृमि, क्षय, श्वास और गुल्म नाशक और अत्यन्त दीपन है।

गुण—शिग्रुपत्रमत्र चाक्र दम्य वातकफापहम्।
कट्ष्ण दीपन पथ्य कृमिघ्न पाचनं परम्॥ (शा॰ नि॰)

सहिजन की पत्ती—रुचिकारक, वात-कफ नाशक, कड़वी, गरम, दीपन, पथ्य, कृमि नाशक और परम पाचक है।

विशेष उपयोग (१) सिर दर्द में—सहिजन का बीज पानी में घिसकर नास लेना चाहिए।

(२) नेत्र रोग में—सहिजन के पत्ते का रस शहद में मिलाकर अञ्जन करने से तिमिरादिक सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

(३) सर्प विष पर—सहिजन की छाल, कड़वी तोरई और रीठा पीसकर रस निकाल लें और थोड़ा कालीमीरी का चूर्ण मिलाकर पिला दें।

(४) हिचकी में—सहिजन की छाल का काढ़ा पीएँ।

(५) कानों का बहना—सहिजन के सूखे फूलों का चूर्ण छोड़ने से नष्ट होता है।

(६) मल-मूत्र की कमी—सहिजन के पत्तों के एक पाव रस में एक तोला सेंधा नमक मिलाकर पीने से दूर होती है।

(७) गण्डमाला पर—सहिजन का दूध, सफेद गुलमेंहदी की जड़ और काली मिर्च पानी में पीसकर लेप करना चाहिए।

(८) नारुआ पर—सहिजन की छाल अथवा जड़ पीस-कर लेप करना चाहिए।

(९) वायु में—सहिजन का छाल का रस दो तोला, आधी

का रस एक तोला और शहद छः मासे एक में मिलाकर सात दिन तक पीना चाहिए।

(१०) मुँह के छालों पर—सहिजन के पत्तों को चबाकर रस चूसना चाहिए।

(११) शीघ्र प्रसव के लिये—सहिजन के जड़ का रस और पानी एक में पकाकर पैर के तलुओं पर मलना चाहिए।

(१२) बालकों का पेट बढ़ जाने पर—जगली सहिजन की छाल का रस और घी सम भाग यन्मच भर, तीन दिनों तक पिलाना चाहिए।

(१३) संखिया का विष—दो तोले सहिजन की छाल का रस आध सेर दूध में मिलाकर पीना चाहिए।

(१४) प्लीह में—सहिजन की छाल के काढ़े में छोटी पीपर और काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(१५) कमर की पीड़ा पर—सहिजन की छाल पीसकर और गरम करके बाँधना चाहिए।

(१६) सब प्रकार के वायु पर—जगली सहिजन की जड़ का रस पीना और सहिजन की छाल की पट्टी बाँधना चाहिए।

(१७) आँखों के आने पर—सहिजन की पत्ती का रस शहद मिलाकर लगाना चाहिए।

(१८) अन्तर्विद्रधि में—सहिजन के काढ़े में भूनी हींग का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(१६) लंगड़ेपन पर—सहिजन के पत्तों का रस लेप करना चाहिए।

(२०) विषम ज्वर में—काले सहिजन का चूर्ण जल के साथ सेवन करना चाहिए।

(२१) पथरी में—सहिजन की जड़ का काढ़ा पीएँ।

(२२) सिर-दर्द पर—सहिजन के पत्तों के रस में काली मिर्च पीसकर लेप करना चाहिए।

(२३) फोड़ों पर—सहिजन की छाल घिसकर लेप करें।

(२४) कफजन्य सिर-दर्द पर—सहिजन का बीज पानी में घिसकर नास लेना चाहिए।

(२५) प्रमेह में—सहिजन की फली और मूँग की दाल खाना चाहिए।

(२६) बवासीर में—सहिजन के पत्तों का रस पीएँ।

सिंघाड़ा

स० शृङ्गाटक, हि० सिंघाड़ा, ब० पाणिफल, म० शिंगाड़े, गु० शिंगोडां, क० सिंघाड़े, ते० परिकेगड्डु, फा० सुरंजान, अँ० वाटर केलट्राप Water Caltrop, और लै० ट्रापा विस्पिनोज Trapa Bispinosa.

विशेष विवरण—सिंघाड़ा तालाबों एवं जलाशयों में लगाया जाता है। इसकी जड़ें पानी में दूर तक फैलती हैं। इसके

पत्ते प्राय तीन अगुल चौड़े और कटावदार होते हैं। नीचे का भाग लाल रग का होता है। फूल सफेद रग के और फल तिकोने होते हैं। इनमें दोनों ओर सींग की भांति कांटे निकले रहते हैं। बीच का भाग ऊँचा-नीचा और छिलका मुलायम होता है। भीतर सफेद रग का गूदा निकलता है। यह कच्चा भी खाया जाता है। तरकारी बनाई जाती है। सूख जाने पर पीसकर इसके अनेक पदार्थ बनाए जाते हैं। व्रत के दिनों में हिन्दू लोग इसे फलाहार के काम में लाते हैं।

गुण—शृङ्गाटक हिम स्वादु गुरु वृष्य कषायकम्।
ग्राहि शुक्रानिलश्लेष्मप्रद पित्तास्रदाहनुत्॥ (भा॰ प्र॰)

सिंघाड़ा—शीतल, स्वादिष्ट, भारी, वृष्य, कसैला, मलरोधक शुक्रजनक, वातकारक, कफ नाशक तथा रक्तपित्त और दाह नाशक है।

विशेष उपयोग (१) गर्भिणी के रक्तस्राव में—सिंघाड़ा के हलवा में कपूर और दूध मिलाकर खाना चाहिए।

(२) पेट की दाह पर—कच्चा सिंघाड़ा खाना चाहिए।

(३) वीर्य की वृद्धि के लिए—सिंघाड़े का आटा और बबूल का गोंद घी में भूनकर तथा चीनी मिलाकर आधी छटांक खाकर ऊपर से दूध पीना चाहिए।

मूली

स० मूलक, हि० मूली, ब० मुला, म० गु० मूला, क० मुलगी, ते० शुविदपा, फा० तुख्म तुख्मतुर्ब,अ० फजल् बजरुल,अँ० रेडीश Radish, और लै० रफेनस् सेटिवस-Raphanus Sativus

विशेष विवरण—मूली एक शाक की जाति है। जमीन अच्छी होने पर एक-एक मूली दो तीन सेर तक की होती है। मूली का बीज बोने पर पहले ऊपर अँकुर निकलता है। तब उसके बाद भीतर मूली पैदा होती है। उसी मूली में बीज होता है। मूली और उसके पत्तों का शाक बनाया जाता है। कच्ची भी खाई जाती है। इसका रायता बड़ा स्वादिष्ट होता है। यह सफेद रंग की होती है। मूली का बीज मक्खन में मिलाकर बोने से मूली मक्खन की तरह मुलायम और पत्ते भी अधिक होते हैं।

गुण—मूलकं तीक्ष्णमुष्णञ्च कटूष्णं ग्राहि दीपनम्।

दुर्नामगुल्महृद्रोगवातघ्नं रुचिदं गुरु॥ (रा० नि०)

मूली—तीक्ष्ण, गरम, कटु, उष्ण, ग्राही, दीपन तथा बवासीर, गुल्म, हृद्रोग और वात नाशक एवं रुचिकारक और भारी है।

मुलायम मूली—खारी, कड़वी, उष्ण, लघु, रुचिकारक, दीपक, हृद्य, रेचक, तीक्ष्ण, पाचक मधुर, ग्राही, बलकारक तथा मूत्रदोष, श्वास, खाँसी, अर्श, गुल्म, क्षय, नेत्र-रोग नाभिशूल, कफ, वात, कण्ठ-रोग, त्रिदोष, दाह, शूल, आम, उदर-रोग, पीनस तथा व्रण नाशक है।

मोटी और फटी मूली—गरम, तीक्ष्ण, रुचिकारक, मल-शोषक, तथा कफ, वात, कृमि और गुल्म नाशक है।

पुरानी मूली—शोषक, उष्ण तथा जलन, पित्त और रक्त प्रकोप शामक है।

पक्की मूली—तीक्ष्ण, उष्ण, दीपक तथा भोजन के पहले खाने से पित्त और दाह को उत्तेजित करती है। भोजन के समय खाने से हितकर तथा मलकारक है। यही नमक के साथ खाने से अर्श, शूल और हृद्रोग नाशक है।

मूली की फलियाँ—कुछ उष्ण तथा कफ और वात नाशक हैं।

मूली का फूल—कफ और पित्तकारक है।

सूखी मूली—हलकी तथा सूजन, विषदोष और त्रिदोष नाशक है।

गोल मूली—तीक्ष्ण, उष्ण तथा कफ, वात, पित्त और गुल्म नाशक है।

विशेष उपयोग (१) हिचकी में—सूखी मूली का काढ़ा पीना चाहिए।

(२) **बवासीर में**—पीस मूली और उसके पत्तों के रस में तीन तोले घी मिलाकर सात दिनों तक पीना चाहिए।

(३) **वायु में**—एक तोला मूली का रस और एक तोला शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(४) **अजीर्ण में**—मूली के पत्तों का टुकड़ा करके थोड़ा

नमक मिलाकर मसल करके रस गार दें और पत्ते को चबाकर खा जायँ। इससे अजीर्ण नष्ट हो जाता है।

(५) अम्लपित्त में—मूली और चीनी मिलाकर खाएँ।

(६) पथरी में—चार तोले मूली का बीज, आध सेर पानी में पकाएँ। एक पाव बाकी रहने पर छानकर पी जायँ।

(७) बवासीर में—मूली के पत्तों का रस और गाय का घी मिलाकर एक-एक तोला पीना चाहिए।

(८) बवासीर में—मूली के टुकड़ों को घी में तलकर चीनी के साथ खाना चाहिए।

(९) मकड़ी पर—मूली का बीज चिरचिटा के पत्तों क रस में पीसकर लेप करना चाहिए।

(१०) गण्डमाला पर—मूली का बीज, सन का बीज, सहिजन का बीज, सरसों, जौ और अलसी, मट्ठे में पीसकर लेप करना चाहिए।

(११) पथरी में—मूली के पत्तों के रस में कलमी सोरा मिलाकर पीना चाहिए।

(१२) वातकफ ज्वर में—एक तोला सूखी मूली, दस तोले पानी में पकाएँ। ढाई तोले पानी बाकी रहने पर छानकर पीएँ।

(१३) मूत्राघात पर—मुलायम मूली के पत्तों के रस में कलमी सोरा मिलाकर लिङ्गेन्द्रिय पर लेप करना चाहिए।

(१४) मरदार सिंह के विष पर—मूली और सोआ का शाक खाना चाहिए।

गाजर

सं० गृञ्जन, हिं० ब० म० गु० गाजर, क० सेठी मूल, तै० गृञ्जन, फा० जर्दक, अ० जजर, अँ० कारोट Carrot, और लै० डाक्स केरोटा Daucus Carota.

विशेष विवरण—गाजर का पेड़ हाथ-डेढ़ हाथ ऊँचा हो‍ता है। इसकी पत्तियाँ धनियाँ की तरह होती हैं, किन्तु आकार में उन से बड़ी होती हैं। गाजर मूली की भाँति मोटा, पतला, छोटा, बड़ा और लाल रंग का होता है। साधारणतया इसे लोग कच्चा ही खाते हैं। परन्तु इसका मुरब्बा और बरफी आदि पदार्थ बड़ा स्वादिष्ट और लाभदायक होता है। यह गाय-भैंसों को दूध बढ़ाने के लिए खिलाया जाता है। इसका बीज गर्भपातकारक है।

गुण—गाजरं मधुरं रुच्यं किञ्चित्कटु कफापहम्।
आध्मानकृमिशूलघ्नं दाहपित्ततृषापहम्॥ (रा० नि०)

गाजर—मधुर, रुचिकारक, किंचित् कटु, कफ नाशक तथा आध्मान, कृमि, शूल, दाह, पित्त और तृषा नाशक है।

गाजर का बीज—उष्ण, वृष्य तथा गर्भपातकारक है।

विशेष उपयोग—(१) खुजली पर—गाजर और सेंधा नमक पीसकर और गरम करके लेप करना चाहिए।

(२) मासिक धर्म होने के लिए—गाजर का बीज पानी में पीसकर पाँच दिनों तक पीना चाहिए।

(३) फोड़ा और रक्त की कमी में—गाजर का हलवा दूध के साथ खाना चाहिए।

(४) रक्तपित्त और अम्लपित्त में—उबाला हुआ गाजर घी में भूनकर बिना नमक और मीठे के खाने से लाभ होता है।

(५) वीर्य-वृद्धि के लिए—गाजर उबालकर पानी गार दें और घी में भून लें। बाद बादाम, पिस्ता, छोटी इलायची, चिरौंजी, किशमिश, छुहारा, केसर, रूमीमस्तगी, केवाँच का बीज और मुनक्का साफ करके मिला दें। तथा मिश्री की चाशनी में मिलाकर आधी छटाँक प्रमाण लड्डू बना लें। प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल एक-एक लड्डू खाकर ऊपर से गाय का धारोष्ण दूध पीना चाहिए।

सूरन

सं० अर्शोघ्न, हि० सूरन, बं० ओल, म० सुरण, गु० क० ता० सूरण, तै० मंचाकन्दा, फा० ओल, और लै० एमोर्फोफेलस् पेनिक्युलेटस् Amorphophallus Panicutatus,

विशेष विवरण—सूरन का पेड़ चार-पाँच हाथ तक ऊँचा होता है। पत्तों में बहुत से कटाव होते हैं। यह चैत-वैशाख में बोया जाता है और कार्तिक-अगहन में खोदकर निकाला जाता है। इतने दिनों में इसकी चक्की अधिक बड़ी नहीं होती। इसलिए कुछ चक्कियाँ दो-दो तीन-तीन वर्ष तक छोड़ दी जाती हैं। इसकी पुरानी

पत्तियाँ मन-डेढ़ मन तक होती हैं। इसमें भी दो जातियाँ हैं। एक से अधिक खुजली पैदा होती है और दूसरे से कम। एक जंगली सूरन भी होता है। इसके पेड़ का नीचेवाला हिस्सा पाँच इंच तक मोटा होता है। इसके डंठल का रंग सफेद होता है। बीच बीच में हरे छींटे भी दिखाई पड़ते हैं। सूरन बवासीर का नाश करता है; इसलिए इसे अर्शोघ्न कहते हैं। सूरन के पत्ते और डण्ठल का भी शाक होता है। किन्तु डण्ठल के ऊपर का कड़ा हिस्सा निकाल दिया जाता है। सूरन का आचार बड़ा स्वादिष्ट होता है।

जंगली सूरन—यह कोंकन में प्रसिद्ध है। मृगशिरा नक्षत्र में एक बार जल बरस जाने पर इसे लोग खोदकर निकाल लेते हैं। इसके ऊपर का छिलका निकालकर तरकारी बनाई जाती है। अधिक पुराना हो जाने पर यह किसी काम का नहीं रहता। साधारण सूरन से इसका पेड़ छोटा होता है। पत्ती और पेड़ का स्वरूप भी उससे मिलता-जुलता होता है। इसकी पत्ती जिस समय जमीन से निकाली जाती है, उस समय लाली लिए हुए सफेद रंग होता है। इसके ऊपर का छिलका मोटा और मजबूत होता है। यह देर से पकता है। उबालते समय इसमें इमली अधिक मात्रा में छोड़ना चाहिए। साथ ही छोटे-छोटे टुकड़े करके पकाना चाहिए।

गुण—सूरणो दीपनो रूक्षः कषायः कण्डुकृत्कटुः।
विष्टम्भी विशदो रुच्यः कफार्शःकृन्तनो लघुः॥

विशेषादर्शसि पथ्यः प्लीहगुल्मविनाशनः।
सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते॥
दद्रूणां रक्तपित्तानां कुष्ठिनां न हितो हि सः।
सन्धानो योगसम्प्राप्त सूरणो गुणवत्तमः॥ (भा० प्र०)

सूरन-दीपन, रूखा, कषैला, खुजली पैदा करनेवाला, चरपरा, विष्टम्भकारक, विशद, रुचिकारक, कफ नाशक, अर्श नाशक, हलका, विशेष करके अर्शवाले रोगी को पथ्य तथा प्लीह और गुल्म नाशक है। सब प्रकार के कन्द शाकों में सूरन श्रेष्ठ कहा गया है। सूरन—दाद, रक्तपित्त और कुष्ठवालों के लिए अहित कर है। इसका सन्धान अधिक गुणकारी है।

गुण—वन्यसूरणको रुच्यः कटूष्णः क्रिमिनाशनः।
गुल्मशूलादिदोषघ्नः स चारोचकहारकः॥ (रा० नि०)

जगली सूरन—रुचिकारक, कटु, उष्ण, कृमि नाशक तथा गुल्म-शूलादि रोग नाशक एवं अरुचि नाशक है।

विशेष उपयोग (१) बवासीर में—सूरन को घी में भूनकर खाना चाहिए।

(२) आमातीसार पर—सूरन को घी में भूनकर और चीनी मिलाकर खाना चाहिए।

(३) बवासीर पर—सूरनवटी—सूरन को सुखाकर उसका चूर्ण बत्तिस तोले, चित्रक सोलह तोले, सोंठ चार तोले, काली मिर्चे दो तोले और एक सौ आठ तोले गुड़ मिलाकर गोली बना लें। प्रतिदिन सुबह-शाम एक-एक गोली ठंढे जल के साथ

सेवन करें। इससे सभी प्रकार के भगर अच्छे हो जाते हैं।

(४) नल फूलने पर—जंगली सूरन का चूर्ण घ म चीनी एक तोला एक पाव गाय के गरम दूध में मिलाकर पीवें

(५) बवासीर में—जंगली सूरन का चूर्ण घी में भूनकर मूली के रस की भावना देकर गोली बनालें। सुबह शाम गोली खाना चाहिए।

(६) कर्णमूल पर—जंगली सूरन घिसकर लेप करें।

(७) बवासीर में—सूरन की तरकारी और जौ की रोटी खाना चाहिए।

शकरकन्दी

स० रक्तालु, पिण्डालु, हि० शकरकन्दी, ब० मुवड़ी आलु, म० रतालें, गोड़ रतालें, गु० सकरकन्द, क० पेनिकईडल, तै० गिर गेड्डु, ता० यामस्कोल, फा० जरदाकलाहोरी, अँ० स्वीट पोटाटो

नोट:—एक महाशय को जिन्हें खूनी बवासीर ने बहुत दिनों से पीड़ित कर रखा था। उसके लिए उन्होंने बहुतेरी औषधियाँ की थीं, किन्तु समुचित लाभ न हुआ, तब दीपावली के दिन प्रातःकाल जागकर और पवित्र हो आधी छटाँक सूरन पीसकर गोली बनाई और मक्खन के साथ खाया। दिन भर उपवास किया था। सायंकाल सूरन की तरकारी और भात खाया। उनकी बवासीर अच्छी हो गई। पुनः कोई कष्ट नहीं हुआ।

Sweet Potato और लै० इपोमिया बटाटस् Ipomoea Batatas

विशेष विवरण—यह साधारणतः सूखी जमीन में होता है। प्राय समस्त भारतवर्ष में इसकी उत्पत्ति होती है। व्रत के दिनों में इसका फलाहार किया जाता है। यह लाल और सफेद दो प्रकार का होता है। इसका स्वाद मीठा होता है। पाश्चात्य देशों में इससे चीनी निकाली जाती है। इसीलिए वहाँ पर यह बोया जाता है। भारतीय लोग इसे भून, उबाल और हलवा बनाकर, भिन्न-भिन्न ढङ्ग से खाते हैं। इसकी पत्ती का शाक बनाया जाता है। इसे शाक बनाने के पहले तवा पर गरम कर लेना चाहिए।

गुण—रक्तपिण्डालुकः शीतो मधुराम्लः श्रमापहः।

पित्तदाहापहो वृष्यो बल्पुष्टिकरो गुरुः॥ (रा० नि०)

लाल शाकरकन्दी—शीतल, मधुर, खट्टा, श्रम नाशक, पित्त नाशक, वृष्य, बलकारक, पुष्टिकारक और भारी है।

गुण—पिण्डालुमधुरः शीतो मूत्रकृच्छ्रामयापहः।

दाहशोषप्रमेहघ्नो वृष्यः सन्तर्पणो गुरुः॥ (रा० नि०)

सफेद शाकरकन्दी—मधुर, शीतल, मूत्रकृच्छ्र नाशक, शोष नाशक, दाहनिवारक, प्रमेह नाशक, वृष्य, तृप्तिकारक और भारी है।

विशेष उपयोग (१) बिच्छू के विष पर—शाकरकन्द की पत्ती पीसकर लगाना अथवा सूखी शाकरकन्दी ही लगाना चाहिए।

(२) आग से जलने पर—शाकरकन्दी पीसकर लगायें।

रतालू और अरुई

स० त्रिपर्णी, कन्दपिण्डालु, हि० रतालू, गु० पेंढालु, पोल गोण्डु, क० शिरोगेणसु, बिसेगेणसु, तै० पेंडालु, ता० शिरुविली, और अं० डेयोस्कोरिया पर्प्युरिया Deoscoria Purpurea.

विशेष विवरण—यह भी एक प्रकार का कन्द है। य अधिक नहीं फैलता। इसकी पत्तियाँ छोटी-छोटी, गोल-गोल पा की तरह होती हैं। किन्तु इसमें नोक नहीं होता। जमीन के भीत मोटा और लम्बा कन्द होता है। यह शकरकन्दी की अपेक्ष अधिक मोटा होता है। इसे उबालकर तरकारी बनाकर और भून कर खाते हैं।

अरुई भी एक प्रकार का कन्द है। इसका पत्ता बड़ा औ गोल होता है। इसके पत्तों में नीचे एक डंठल होता है। इसं पत्ते बँधे हुए होते हैं। यह लसदार होती है। कच्ची अरुई खा से मुँह में खुजली पैदा होती है। इसके पत्तों की पकौड़ियाँ, डंठ का शाक और कन्द की तरकारी बनाई जाती है। व्रत के दिनों में इसका फलाहार भी किया जाता है। अरुई को लोग रतालू का भेद बतलाते हैं।

गुण—रतालू—भारी, रुचिकारक, कफकारक, अर्श नाशक, वातकारक, बलकारक और देर में पचनेवाला होता है।

गुण—रातालुर्मधुरः सम्प्रोक्तश्चार्द्रः इति नामतः।

मधुरस्तस्मकः शिशिरो गुरुः बलकरो मतः॥

फफनाशकरश्चैव तैले पक्वे रुचिप्रदः । (नि० र०)

रतालू का ही भेद अरुई है । अरुई—मलस्तम्भक, स्निग्ध, जड़, बलकारक, कफ नाशक और तेल में पकाई हुई अरुई रुचि कारक है ।

विशेष उपयोग (१) बवासीर और रक्तातीसार पर— रतालू धयालकर घी और चीनी के साथ खाना चाहिए ।

आलू

स० गजकर्णालु, हि० आलू, ब० गोलआलू, म० अलवा चा कांदा, गु० अलबी, फ० गेणसु, वै० सारकन्दा, अ० मुर्योफल फाश, ऑ० पोटाटो-Potato, और लै० सोलेनियम् ट्युबरोसम्-Solenium Tuberosum

विशेष विवरण—आलू सर्वत्र पैदा होता है । इसका पेड़ प्राय एक बित्ता का होता है । इसके पत्ते पान की तरह गोल-गोल होते हैं । यह लाल और सफेद दो प्रकार का होता है । सफेद की अपेक्षा लाल उत्तम होता है । लाल रंग का आलू शीघ्र पचनेवाला होता है । इसकी एक जाति पहाड़ी भी है । देशी से पहाड़ी अधिक होता है । इसका स्वाद फीका, देर में पचनेवाला और आमाशय को विकृत करता है । इसका लोग व्रत के दिनों में फलाहार करते हैं । प्राय निघण्टुओं में आलू का गुण शीतल मिलता है, परन्तु यह शीतल नहीं है । बल्कि अत्यन्त गरम है । अतएव

शीतल के स्थान पर गरम समझना चाहिए।

गुण—आलुक शीतल सर्व विष्टम्भि मधुर गुरु।

सृष्टमूत्रमल रूक्ष दुर्जर रक्तपित्तनुत्॥

कफानिलकर बल्य वृष्यं स्वल्पाग्निवर्द्धनम्। (भा० प्र०)

सब प्रकार के आलू—शीतल, विष्टम्भकारक, मधुर, भारी, मल-मूत्रनिस्सारी, रूखे, कठिनता से पचनेवाले, रक्तपित्त नाशक, कफकारक, वादी, मलकारक, वीर्यवर्द्धक और थोड़े अग्निवर्द्धक होते हैं।

विशेष उपयोग (१) नलवायु और गरमी में-आलू की पत्ती का रस तीन दिनों तक पीना चाहिए।

(२) वातगुल्म में—आलू के डण्ठल सहित पत्ती के रस में घी मिलाकर पीना चाहिए।

(३) पित्तज्वर में—आलू की पत्ती के रस में जीरा का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(४) फोड़े पर—आलू के डण्ठल की राख तेल में मिलाकर लगाना चाहिए।

(५) आग से जलने पर—आलू पीसकर लगाना चाहिए।

गूलर

स० उदुम्बर, हि० गूलर, म० यज्ञवृक्ष, म० उम्बर, गु० उमरो, क० अत्ति, ते० मादुमेट्टु, फा० अजीरे आदम, अ०

जमीफ, अं० फ़ुष्टर फ़िग्-Cluster fig, और लै० फाइकस ग्लोमिरेटा Ficus Glomerata

विशेष विवरण—वटादिवर्ग में गूलर है। गूलर का पेड़ वड़-पीपल की भाँति बड़ा होता है। इसकी डाल और पेड़ी से एक प्रकार का दूध निकलता है। इसके पत्ते महुआ के पत्ते के समान होते हैं। पेड़ी और जड़ की छाल ऊपर सफेदी और भीतर ललाई लिए होती है। अश्वत्थ-वर्ग के और पेड़ों के समान इसके सूक्ष्म फूल भी अन्तर्मुख अर्थात् एक कोश के भीतर बन्द रहते हैं। पुरुष-पुष्प और स्त्री-पुष्प के पृथक्-पृथक् कोश होते हैं। गर्भाधान कीड़ों की सहायता से होता है। पुरुष केसर की वृद्धि के साथ-साथ एक प्रकार के कीड़ों की उत्पत्ति होती है, जो पुरुष-पराग को गर्भ केसर में ले जाते हैं। यह नहीं जाना जाता कि ये कीड़े किस प्रकार पराग ले जाते हैं, परन्तु यह निश्चय है कि वे ले अवश्य जाते हैं उसी से गर्भाधान होता है तथा कोश बढ़कर फल के रूप में हो जाता है। यह बिलकुल कोमल होता है। इसके ऊपर कड़ा छिलका नहीं होता। एकदम महीन झिल्ली होती है। गूलर का फल तोड़ने से उसके भीतर परिपक्व गर्भ-केसर और सूक्ष्म बीज दिखाई पड़ते हैं तथा भुनगे या कीड़े भी मिलते हैं। गूलर का फूल कभी दिखाई नहीं पड़ता। यह गोल तथा अजीर की आकृति का होता है। गूलर पकने पर कोई-कोई खाते हैं। कच्चे की तरकारी भी बनती है। फिर भी यह कम ही खाया जाता है। अधिकतर यह औषधि के काम में आता है। इसके पेड़ की

छाया शीतल और सुखद होती है। जहाँ गूलर का पेड़ होता है उसके दाहिनी ओर अथवा पेड़ के नीचे पानी का झरना अथवा स्रोत होता है। प्रायः लोग गूलर के पेड़ के नीचे या उसके पास कुएँ खोदते हैं। गूलर के पेड़ के नीचे का जल अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद होता है। गूलर आमाशय के लिए हानिप्रद एवं भार उत्पन्न करता है। इसके फलों में असंख्य कीड़े रहते हैं इसलिए उसमें से जानवरों को निकालकर खाया जाता है। परन्तु अपने को बुद्धिमान समझनेवाले लोग कीड़े समेत समूचा गूलर खा जाते हैं। इससे स्वास्थ्य की बड़ी हानि होती है।

गुण—उदुम्बरः शीतलः स्याद्भग्नसन्धानकारकः ।
व्रणरोपणकृद्रूक्षो मधुरस्तुवरो गुरुः ॥
अस्थिसन्धानकृद्रम्यः कफपित्तातिसारकृत् ।
योनिरोगं नाशयति वल्कं चैवास्य शीतकम् ॥
दुग्धदं तुवरं गर्भ्यं व्रणनाशकरं स्मृतम् ।
कोमलं चास्य च फलं स्तम्भकृत्तुवरं मतम् ॥
हितकारि तृषापित्तकफरक्तस्रापहम् ।
मध्यमं कोमलं स्वादु शीतलं तुवरं मतम् ॥
पित्तं तृषामादकरं रक्तस्रुतिवमीहरम् ।
महारम समुद्दिष्टमपक्वं तुवरं मतम् ॥
रुच्यं चाम्लं दीपनं स्यान्मांसवृद्धिकरं मतम् ।
रक्तस्रावकं चैव दोषदं च जडं मतम् ॥
तत्पक्वं च कषायं स्यान्मधुरं कृमिकारकम् ।

> जड रुचिप्रदं चातिशीतलं कफकारकम् ॥
> रक्तदोषपित्तदाहक्षुत्तृषाभ्रमप्रमेहहम् ।
> शोषमूर्च्छाहरप्रोक्तं पूर्वैः श्लोकैः निघण्टके ॥ (नि० रा०)

गूलर—शीतल, गर्भसन्धानकारक, व्रण को भरनेवाला, रूखा, मधुर, कषैला, भारी, अस्थि को जोड़नेवाला, व्रण को उज्वल करनेवाला तथा कफ, पित्त, अतीसार और योनिरोग नाशक है। गूलर की छाल—अत्यन्त शीतल, दुग्धवर्द्धक, कषैली, गर्भ को हितकारी और व्रण विनाशक है। गूलर का कोमल फल—स्तम्भक, कषैला, हितकारी तथा तृषा, पित्त, कफ और रक्तजन्य रोगों का नाश करता है। मध्यम कोमल फल—स्वादु, शीतल, कषैला तथा पित्त, तृषा और मोहकारक एवं रक्तस्राव, वमन और प्रदर रोग नाशक है। इसका तरुण फल—कषैला, रुचिकारक, अम्ल, दीपन, मांसवर्द्धक, रक्त को दूषित करनेवाला, दोषजनक और जड़ है। गूलर के पक्के फल—कषैले, मधुर, कृमिकारक, जड़, रुधिकारक, अत्यन्त शीतल, कफकारक तथा रक्त-विकार, पित्त, दाह, क्षुधा, तृषा, भ्रम, प्रमेह, शोष और मूर्च्छा को नष्ट करते हैं।

विशेष उपयोग (१) वायु से अंगों के जकड़ जाने पर—गूलर का दूध लगाकर रूई चिपकाना चाहिए।

(२) रक्तपित्त में—पका गूलर गुड़ अथवा शहद के साथ खाना चाहिए। या गूलर की जड़ पानी में घिसकर और चीनी मिलाकर पीना चाहिए।

(३) वच्छनाग के विष पर—गूलर की छाल का रस

और घी गरम करके पीना चाहिए।

(४) सोमल का विष—गूलर की छाल या पत्तों का रस आध सेर तक पीना चाहिए। यह औषध ढोरों को भी दी जा सकती है।

(५) आँखों के आने पर—गूलर का दूध आँखों की पलकों पर लेप करना चाहिए।

(६) गलशुण्डा पर—गूलर का दूध लगाना चाहिए।

(७) बद पर—गूलर का दूध लगाकर उस पर पतला कागज चिपकाना चाहिए।

(८) शोथ पर—गूलर, बड़, पीपल, पाकर और धुव की छाल घिसकर और घी छोड़कर लेप करना चाहिए।

(९) आमातीसार में—गूलर का दूध चार-पाँच बूँद बताशे में छोड़कर खाना चाहिए। इससे आम और रक्त का गिरना बन्द हो जाता है।

(१०) रक्तातीसार में—गूलर की जड़ का पानी पीना चाहिए।

(११) पथरी पर—गूलर की जड़ का रस पाँच तोले, पानी मिलाकर पीना चाहिए और गूलर की जड़ गाय के दूध में घिस कर लिंगेन्द्रिय पर लेप करना चाहिए।

(१२) गरमी पर—पका गूलर जिसमें कीड़ा न पड़ा हो, मिस्री भरकर प्रतिदिन प्रातःकाल खाना चाहिए।

(१३) सब प्रकार के उपदंश और प्रमेह पर—गूलर

के पेड़ की जड़ मिट्टी से निकाल और साफ करके उसमें थोड़ा छेद कर दें और उसके नीचे एक बर्तन रख दें। चार पहर तक उसका जल एकत्र कर बोतल में भरकर रख दें। शक्ति के अनुसार जीरा का चूर्ण और मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

(१४) बालकों को शीतला की गरमी में—गूलर का रस मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

(१५) गरमी से जीभ के काँटों पर—गूलर की गोंद और मिश्री पीना चाहिए।

(१६) गर्भिणी का अतीसार—गूलर शहद के साथ खाने से नष्ट होता है।

(१७) भस्मक रोग पर—गूलर की छाल स्त्री के दूध में पीसकर पीना चाहिए। अथवा गूलर की जड़ का पानी ताड़ी की तरह निकालकर पीना चाहिए। सात दिनों तक कूआँ, गंगा आदि किसी प्रकार का अन्य जल न पीना चाहिए।

(१८) शीतला की गरमी दूर करने के लिए—गूलर की लाह दूध में पीस और शहद मिलाकर शक्ति के अनुसार पीना चाहिए। यह औषधि शीतला का ज्वर आते ही देनी चाहिए।

(१९) पित्तज्वर में—गूलर की जड़ का रस चीनी मिला कर पीना चाहिए।

(२०) बिच्छू के विष पर—गूलर की पत्ती पीसकर दंश के स्थान पर लेप करना चाहिए।

(२१) विपूचिका में—गूलर का रस पीना चाहिए।

(२२) बवासीर पर—गूलर की जड़ घिसकर लगाना चाहिए।

(२३) कर्णमूल पर—गूलर और कपास का दूध मिला-कर लगाना चाहिए।

(२४) गण्डमाला पर—गूलर की लाह का चूर्ण और चीनी दही के साथ मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल खाना चाहिए।

(२५) मस्तक-शूल और नाक से खून गिरने पर—पके गूलर में चीनी भरकर घी में तलें। बाद काली मिर्च और इलायची का चूर्ण चार-चार रत्ती मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल खाना चाहिए। मुँह पर बैंगन का रस लगाना चाहिए।

(२६) दाह पर—गूलर का दूध चीनी छोड़कर चाटना चाहिए।

आहार-विज्ञान

तृतीय खण्ड, फलवर्ग

फल—कच्चे, पक्के, खट्टे, मीठे, हरे, सूखे, हलके और भारी कई प्रकार के होते हैं। हरे और सूखे अनार एवं बादाम आदि फल—रक्तवर्द्धक होते हैं। कुछ खट्टे और दुर्जर फल रक्त-शोषक एवं कोष्ठ नाशक होते हैं।

आम

स० आम्र, हि० प० आम, म० फा० आया, गु० आयो, फ०
माविनफल, बै० माविडि, ता० मामर, अ० अम्बज, अँ० मैंगो-
Mango, और लै० मैंगीफेरा इण्डिका Mangifora Indica

विशेष विवरण—आम अधिकतर गरम देशों में होता है।
यह भारतवर्ष में ही अधिकता से होता है। उजाड़ पहाड़ी देशों में
भी इसके वृक्ष पाए जाते हैं। इसका वृक्ष छायादार और बड़ा
होता है। आम की कई जातियाँ हैं। अच्छे आमों को 'इरसाल
आम' कहते हैं। कलम करके लगाए हुए आमों को कलमी आम
कहते हैं। कलमी आम का पेड़ छोटा होता है। यों तो आम
की कई जातियाँ हैं; किन्तु मोरवानी और रसाल दो मुख्य
जातियाँ हैं। जिनमें गूदा अधिक होता है, और चाकू से तराशकर
खाया जाता है उसे मोरवाती आम कहते हैं, और जो आम
दबाकर चूसा जाता है उसे रसाल कहते हैं। इसका पेड़
सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहता है। यह वर्ष में एक बार फलता
है। इसका पक्का फल अत्यन्त मधुर और प्रिय होता है। गरीब
किसान लोग, तो अन्न बचाने के लिए आम के दिनों में प्राय
एक समय तो अवश्य ही आम पर बिताते हैं। गरमी के दिनों
में पथिक धूप से आक्रान्त होकर पेड़ की छाया में विश्राम करते
एव मधुर फल खाकर तृप्त हो जाते हैं।। आम के वृक्ष की छाया
शीतल और सुखद होती है। इसकी लकड़ी बहुत से कामों मे

आती है। इसके दूध—गोंद—की राल बनती है। कच्चे आम की चटनी, मुरब्बा और बरफी आदि बनती है। उसे सुखाकर अमचुर बनाते हैं इसका उपयोग खट्टे के स्थान पर करते हैं। इमली के बजाय इसका उपयोग लाभदायक है। इसके भीतर की गुठली औषध के काम में आती है।

आम प्रायः फाल्गुन में बौरने लगता है। वैशाख-जेठ में इसके कच्चे फल बिकते हैं। इसके बाद ही पकना आरम्भ हो जाता है। बनारस का लँगड़ा आम और लखनऊ का सफेदा आम सभी प्रकार के आमों में अधिक उत्तम होते हैं।

गुण—आम्रपुष्पमतीसारकफपित्तप्रमेहनुत् ।
असृग्दुष्टिहरं शीतं रुचिकृद् ग्राहि वातलम् ॥ (भा० प्र०)

आम की मौर—अतीसार, कफ, पित्त, प्रमेह और रक्तविकार नाशक है।

गुण—बालाम्रस्तुवरोऽम्लोष्णः सुगन्धिरम्लकः स्मृतः ।
क्षारस्ययोगाद्रुचिदो ग्राही रूक्षश्च कान्तिदः ॥
पित्तवातकफास्रघ्नदोषानेव करोति सः ।
कण्ठरुग्वातमेहं च योनिदोषव्रणं तथा ॥
अतीसारं प्रमेहं च नाशयेदिति कीर्तितः । (नि० र०)

कच्चा आम—कषैला, गरम, सुगन्धित, खट्टा, क्षार के योग से रुचिकारक, मलरोधक, रूखा, कान्ति बढ़ानेवाला तथा पित्त, वात, कफ और रक्त-विकार को उत्पन्न करनेवाला है तथा कण्ठ-रोग, वात, प्रमेह, योनिदोष, व्रण, अतीसार और प्रमेह नाशक है।

गुण—आम्रमाम त्वचाहीनमातपेतिविशोषितम् ।

अम्लं स्वादु कषायं स्याद्भेदनं कफवातजित् ॥ (भा॰ प्र॰)

कोमल आम छीलकर घाम में सुखाया हुआ—खट्टा, स्वादिष्ट, कषैला, भेदक तथा कफ और वात नाशक है।

गुण—पक्वं तु मधुरं वृष्यं स्निग्धं बलसुखप्रदम् ।

गुरु वातहरं हृद्यं वर्ण्यं शीतमपित्तलम् ॥

कषायानुरसं वह्निश्लेष्मशुक्रविवर्द्धनम् । (भा॰ प्र॰)

पका हुआ आम—मधुर, वृष्य, स्निग्ध, बलवर्द्धक, सुख दायक, भारी, वात नाशक, हृद्य, वर्ण को सुन्दर बनानेवाला, शीतल, अपित्तल, किंचित कषैला तथा अग्नि, कफ और शुक्रवर्द्धक है।

गुण—तदेव वृक्षसंपक्वं गुरु वातहरं परम् ।

मधुराम्लरसं किंचिद्भवेत्पित्तप्रकोपनम् ॥ (भा॰ प्र॰)

वृक्ष में का पका हुआ आम—भारी, वात नाशक, मधुर, किंचित् खट्टा और पित्त को कुपित करनेवाला होता है।

गुण—आम्रस्तो गालितो बल्यो गुरुर्वातहरः सरः ।

अहृद्यस्तर्पणोतीव बृंहणः कफवर्द्धनः ॥ (धा॰ नि॰)

आम का निचोड़ा हुआ रस—बलकारक, भारी, वात नाशक, सारक, अहृद्य, तृप्तिकारक, अत्यन्त बढ़ानेवाला और कफ-बर्द्धक है।

गुण—सैव दुग्धेन संयुक्तः कान्तिदः स्वादुकः स्मृतः ।

धृष्यश्चाम्रे गुणाश्चोक्ता रसेन सदृशा स्मृता ॥ (नि॰ र॰)

दूध के साथ आम का रस—कान्तिकारक, स्वादिष्ट और

वीर्यवर्द्धक है, बाकी गुण रस के समान ही हैं।

गुण—चोषितास्रो, बलवीर्यवृद्धिकृत् परः ।

लघुता शीतता शीघ्रपाकता वातपित्तनुत् ॥

मलबन्धकरश्चैव पूर्ववैश्चैव्यतीरिता । (शा॰ नि॰)

चूसकर खाया हुआ आम—मलकारक, रुचिकारक और वीर्यवर्द्धक है। यथा हलका, शीतल, शीघ्र पाकी, वात-पित्त नाशक और मलवर्द्धक है।

गुण—पक्वः आच्छिन्नाम्रो वाक्यमाधुर्यशीतकृत् ।

रुचिकृच्चिरपाकश्च धातुवृद्धिं करोति सः ॥

मलकर्ता वातपित्तनाशनः परिकीर्तितः । (नि॰ र॰)

चाकू से काटकर खाया हुआ पका आम—अथवा, मधुरता, शीतता, रुचि, चिरपाकी, धातुवृद्धिकारक, बलकारक और वात-पित्त नाशक है।

गुण—पक्वस्य सहकारस्य पटे विस्तारितो रसः ।

घर्मशुष्को मुहुर्दत्त आम्रावर्त इति स्मृतः ॥

आम्रावर्तस्तृषाच्छर्दिवातपित्तहरः सरः ।

रुच्यः सूर्यांशुभिः पाकाल्लघुश्च स हि कीर्तितः ॥ (भा॰ प्र॰)

पके हुए आम के रस को—वस्त्र पर बिछाकर सुखाने और उस पर पुनः ताजा रस छोड़कर सुखाने से अमावट तैयार होता है। अमावट—तृषा, वमन तथा वात-पित्त नाशक, दस्तावर, रुचिकारक और सूर्य की किरणों द्वारा पकने से हलका है।

विशेष उपयोग (१) आमातीसार और हैजा पर—

आम की गुठली भूनकर तथा दही में मिलाकर चाटना चाहिए।

(२) कृमि में—आम की गुठली का चूर्ण फाँकना चाहिए।

(३) गर्भिणी के अतीसार पर—आम की गुठली का चूर्ण फाँकना चाहिए।

(४) रक्तार्श और रक्तप्रदर पर—आम की गुठली का चूर्ण शहद के साथ चाटना चाहिए।

(५) अधिक पसीना आने पर—भूनी हुई आम की गुठली का चूर्ण मलना चाहिए।

(६) सरदी से जोड़ों के दर्द पर—आम पीसकर उब टन की तरह लगाना चाहिए।

(७) बिलनी पर—आम का डण्ठल अथवा पत्ती तोड़ने पर जो रस निकले, उसे लगाना चाहिए।

(८) नए प्रमेह पर—आम की अन्तर छाल का रस चार तोले चूने का पानी मिलाकर सात दिनों तक पीएँ।

(९) नकसीर में—आम की गुठली का रस पीना चाहिए।

(१०) पित्तज्वर पर—आम की जड़ गले अथवा हाथ में बाँधना चाहिए।

(११) दाह और अतीसार पर—आम की अन्तर छाल दही में घोटकर एक तोला तक देना चाहिए।

(१२) रक्तातीसार पर—आम की पत्ती का रस दो तोले, शहद एक तोला, घी छः माशे और दूध एक तोला, एक साथ मिलाकर पीना चाहिए।

(१३) अतीसार में—आम की राल का चूर्ण चीनी और घी के साथ खाना चाहिए।

(१४) उपदंश पर—आम की छाल का रस बकरी के दूध में मिलाकर पीना चाहिए।

(१५) रक्तातीसार में—आम की गुठली, मट्ठा या चावलों की धोवन में पीसकर पीना चाहिए। अथवा आम की छाल दूध में पीसकर और शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(१६) रक्तपित्त में—आम की गुठली के रस की नास लें।

(१७) बवासीर में—आम के सूखे पत्तों का धूम्र-पान करना चाहिए।

(१८) सब प्रकार की गरमी पर—आम की छाल, गूलर के जड़ की छाल और वट वृक्ष की जटा का रस निकालकर जीरा का चूर्ण और मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

(१९) रक्तातीसार पर—आम की अंतर छाल दूध में पीसकर और शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(२०) कानों की पीड़ा में—आम की बौर रेंडी के तेल में पकाकर वही तेल छोड़ना चाहिए।

(२१) सिर के दारुण रोगों पर—आम की गुठली और छोटी हर्रे दूध में घिसकर लेप करना चाहिए।

(२२) संग्रहणी पर—आम, आमड़ा और जामुन, तीनों की छालें सोलह तोले, एक सौ छप्पन तोले पानी में पकाएँ, आधा पानी रह जाने पर छान लें और उसमें सोलह तोले चावल मिलाकर

पुन पकाएँ। चावलों के पक जाने पर खा जाना चाहिए।

(२३) रक्तातीसार पर–आम, जामुन और अर्जुन की छाल चार तोले सुखाकर चूर्ण बना लें। बाद चौबीस तोले पानी के साथ शाम के समय मिट्टी की हाँडी में भिगो दें। सुबह उसे छानकर और शहद मिलाकर पी जाना चाहिए।

(२४) अण्डवृद्धि पर–आम के वृक्ष की गाँठ गोमूत्र में घिसकर लेप करना चाहिए।

(२५) स्वरभंग में—आम के पत्तों का काढ़ा, शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(२६) विषूचिका पर—आम की बौर, दो तोले दही में मिलाकर खाना चाहिए।

(२७) लू लगने पर–कच्चे आमों का पना नमक और जीरा का चूर्ण मिलाकर पीना तथा शरीर पर मलना चाहिए।

(२८) अरुचि में–उबाली हुई आम की गुठली घी में भूनकर नमक के साथ खाना चाहिए।

(२९) कब्जियत पर–अमावट में सेंधा नमक और चीनी मिलाकर खाना चाहिए।

(३०) मुँह के छालों पर–आम की गुठली के तेल में सेलखड़ी मिलाकर लगाना चाहिए।

(३१) वीर्य-वृद्धि के लिए–पके हुए आमों का रस चार सेर, मिश्री एक सेर, गाय का घी एक पाव, सोंठ का चूर्ण आध पाव, काली मिर्च का चूर्ण एक छटाँक, पीपर का चूर्ण आधी

छटाँक और जल एक सेर, सब चीजें एक में मिलाकर कलईदार कढ़ाई में पकाएँ। आम की लकड़ी से चलाते रहें। गाढ़ा हो जाने पर उतार लें। बाद उसमें धनियाँ, सफेद जीरा, स्याह जीरा, पिप्पलामूल, छोटी इलायची का दाना, चीता की छाल, तेजपत्ता, नागरमोथा, दालचीनी, लौंग और जावित्री सब चीजों का चूर्ण एक-एक तोला और शहद आध पाव एकदम शीतल हो जाने पर मिला दें। एक तोला से चार तोले तक खाकर ऊपर से मिश्री मिला हुआ दूध पीना चाहिए। यह आम्रपाक—वीर्य-बल-वर्द्धक, तथा अरुचि, श्वास, रक्तपित्त और अतीसार नाशक है।

आमड़ा

स० आम्रातक, हि० व० आमड़ा, म० अम्बाड़ा, गु० अमेड़ा, क० आंबोडेयकायि, ते० आमाटम्, अँ० होग् प्लम Hog Plum और लै० स्पौन्डिआस मगीफेरा-Spondias Mangifera.

विशेष विवरण—आमड़ा का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। कोंकण तथा कर्नाटक देश में इसके वृक्ष बहुतायत से होते हैं। इसकी पत्तियाँ शरीफे की पत्तियों के समान होती हैं। फल हरा और खट्टा होता है। फलों के भीतर आम के समान गुठली होती है। इसका अचार बनाया जाता है। फल लगने के पहले आम के समान ही इसमें भी बौर लगती है।

गुण—आम्रातमम्ल वातघ्नं गुरूष्णं रुचिकृत्सरम्।

पक्व तु तुवरं स्वादु रसे पाके हिमं स्मृतम् ॥
तर्पणं श्लेष्मलं स्निग्धं वृष्यं विष्टम्भि बृंहणम् ।
गुरु पथ्यं मरुत्पित्तक्षतदाहक्षयास्रजित् ॥ (भा० प्र०)

आमड़ा—खट्टा, वात नाशक, भारी, गरम, रुचिकारक और सारक है। पक्का आमड़ा—कषैला, पाक और रस में स्वादिष्ट, शीतल, तृप्तिकारक, कफकारक, चिकना वीर्यवर्द्धक, विष्टम्भजनक, बढ़ानेवाला, भारी, बलकारक, तथा वात, पित्त, घाव, दाह, क्षय और रक्तविकार नाशक है।

विशेष उपयोग (१) अम्लपित्त पर—आमड़ा की कोमल पत्तियों का रस एक तोला, काली मिर्च छः रत्ती और मिश्री पाँच तोले एक में मिलाकर दिन में दो बार फाँके। सात दिनों तक गरम और खट्टी चीजों का व्यवहार न करें।

(२) अगियासन पर—आमड़ा की छाल तीन तोले, कुरया की छाल दो तोले, चपा की छाल एक तोला, तीनों का रस निकाल लें और उसमें 'गानसुरी' की जड़ घिसकर जानवरों के लिए आध सेर से एक सेर तक तथा मनुष्यों के लिए आध पाव से एक पाव तक अपनी शक्ति के अनुसार पिलाना चाहिए। जब तक रोग का विष कम न हो तब तक देना चाहिए। घी और भात खाने से दवा का असर नष्ट हो जाता है।

अनार

सं० म० दाडिम, हि० अनार, म० क० डालिंब, गु० दाडम, ते० दानिम्मचेट्टु, ता० मादलई चेट्टि, फा० अनारसीरी, अम्र तुरस, अ० रुमानहामीज, रुमानहाहुल, अं० पोमेग्रनेट-Pomegranate, और लै० प्युनीका ग्रनेटम्-Punica Granatum

विशेष विवरण—अनार का वृक्ष भारतवर्ष में सब जगह होता है। अरबस्तान के पास मस्कत प्रदेश के अनार बहुत ही उत्तम होते हैं। उनमें बीज प्राय: बहुत ही कम होता है। ईरान और बिलोचिस्तान में अनार बहुतायत से होता है। एक प्रकार के अनार के वृक्ष में केवल फूल ही लगता है। उसे 'गुलेनार' कहते हैं। दूसरे में फूल और फल दोनों आता है। इसका फूल लाल रंग का होता है। पेड़ अधिक ऊँचा नहीं होता, ऊपर की ओर कुछ फैला होता है, टहनियों में कुछ काँटे भी रहते हैं, फल—खट्टा और मीठा दो प्रकार का होता है। पश्चिम की ओर यह आप-से-आप पैदा होता है, परन्तु इधर कलम लगानी पड़ती है। फूल के बाद फल लगता है। अनार के सेवन से शरीर में बल आता है। इसका फूल, फल, छाल, पत्तियाँ, जड़ तथा फल का छिलका औषध के काम में आता है। कब्जियत के अतिरिक्त पेट की अन्य बीमारियों में अनार का छिलका, अनार का फूल, लौंग, वज, धनियाँ, काली मिर्च आदि सुगन्धित पदार्थों के साथ मिलाकर देते हैं। हकीम लोग मीठा खट्टा और खटमिट्ठा तीन प्रकार का अनार मानते हैं। फल की छाल

और उसके ग्राही गुणों के कारण अनेक रोगों पर इसका उपयोग करते हैं। उनका कथन है कि इसके वृक्ष में जड़ की छाल सबसे अधिक उपयोगी है। पेट के लम्बे और चिपटे कृमियों के लिए यह बड़ी ही उत्तम चीज है। दस्त के रोग में छाल के रस के साथ अफीम मिलाकर देने से बड़ा लाभ होता है।

गुण—दाडिम तुवर चाम्ल मधुर तृप्तिकारकम्।
स्निग्ध च दीपन ग्राहि हृद्य चोष्ण रुचिप्रदम्॥
लघ्वग्निदीपक मोक्त कफकासभ्रमापहम्।
मुखकण्ठत्य पित्त नाशयेदिति कीर्त्तितम्॥
मधुर तत्तृप्तिकर धातुवृद्धिकर लघु।
तुवरं ग्राहक स्निग्ध मेध्य बल्य च माधुरम्॥
पथ्य त्रिदोषतृड्दाहज्वरहृद्रोगनाशनम्।
मुखरोग कण्ठरोग नाशयेदिति कीर्तितम्॥
मधुराम्ल तत्तु रुच्य दीपन च मत लघु।
वातपित्तप्रशमन तदम्ल पित्तल मतम्॥
रक्तपित्तकर चैव कफवातविनाशकम्।
शुष्क बाल च तत्प्रोक्त रुच्य च हृदयप्रियम्॥
वातानुलोमनकर मुनिभि परिकीर्त्तितम्। (नि० र०)

अनार—कपैला, खट्टा, मधुर, तृप्तिकारक, स्निग्ध, दीपन, मलरोधक, हृदय को हित, गरम, रुचिकारक, हलका, अग्निदीपक तथा कफ, खाँसी, भ्रम, मुखरोग, कण्ठरोग और पित्त नाशक है।

मीठा अनार—तृप्तिकारक, धातुवर्द्धक, हलका, कपैला, ग्राही,

स्निग्ध, मेधाजनक, मलवर्द्धक, मधुर, पथ्य तथा त्रिदोष, तृषा, दाह, ज्वर, हृद्रोग, मुखरोग और कण्ठरोग नाशक है। खटमिट्ठा अनार—रुचिकारक, दीपक, हलका, वात और पित्त नाशक है। खट्टा अनार—पित्तकारक, रक्तपित्तजनक, कफ और वात नाशक है। कचा मुरझाया अनार—रुचिकारक, हृदय को प्रिय और वात को अनुलोमन करता है।

विशेष उपयोग (१) बालकों की खाँसी और श्वास पर—अनार के पेड़ की छाल चूसाना तथा अनार के रस की चटनी चटानी चाहिए।

(२) बालकों के अतीसार और संग्रहणी पर—अनार के पेड़ की छाल घिसकर पिलाना चाहिए।

(३) कृमि-रोग में—अनार के जड़ की छाल अथवा फल की छाल का काढ़ा, तिल का तेल मिलाकर तीन दिनों तक पिलाएँ।

(४) उष्ण पित्त पर—अनार के रस में मिश्री मिलाकर चासनी बना लें। आवश्यकतानुसार दो तोले अनारशर्बत और दो तोले पानी मिलाकर पिलाना चाहिए।

(५) आँखों की गरमी पर—अनार का रस छोड़ना चाहिए।

(६) संग्रहणी पर—अनार के रस में माजूफल, लौंग और सोंठ घिसकर पीना चाहिए।

(७) नकसीर और सन्निपात में यदि मुँह से खून गिरता हो, तो—अनार का फूल और सफेद दूब की जड़ का रस अथवा केवल अनार के फूल का रस नाक में छोड़ना और बहुओं

पर मलना चाहिए।

(८) छाती का दर्द—अनार के रस में भून्यामलकी का चूर्ण एक माशा मिलाकर पीने से नष्ट होता है।

(६) मुर्दाशख के विष पर—अनार का रस पीना चाहिए।

(१०) आँखों के आने पर—अनार की पत्तियाँ पीस कर लेप करना चाहिए।

(११) पित्तजन्य रोगों पर—अनार के रस में शक्कर मिलाकर पीना चाहिए।

(१२) तृषा और मुँह के फीकापन पर—अनार के रस में शक्कर मिलाकर पीना और अनार तथा अगूर की चटनी सेवन करनी चाहिए।

(१३) रक्तातीसार पर—अनार तथा इन्द्रयव के पेड़ की छाल का काढ़ा, शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(१४) उपदश के घावों पर—अनार की छाल का चूर्ण लगाना चाहिए।

(१५) त्रिदोषजन्य वमन पर—अनार के रस से, भूने हुए मसूर के आँटे को सानकर उसमें थोड़ा शहद मिलाकर खाएँ।

(१६) कृमि रोग पर—अनार के पेड़ की छाल पाँच तोले, दो सेर पानी में पकाएँ। एक सेर बाकी रहने पर बराबर एक-एक प्याला पिलाएँ। जब तक पेट के केंचुए न निकल जायँ, तब तक बराबर पिलाना चाहिए।

(१७) सूखी खाँसी और छाती के दर्द पर—अनार के

ऊपर का भाग काट लें और उसमें बादाम अथवा बनफ्सा का तेल छोड़कर पकाएँ। पकने पर तेल भीतर जाता रहेगा। तेल कम होने पर और तेल छोड़ना चाहिए। जब तेल का सूखना बन्द हो जाय तब उतारकर धीरे धीरे चूसना चाहिए। अथवा अनार के रस में शक्कर, बबूल का गोंद, बादाम का तेल और गेहूँ का सत मिलाकर तथा गरम करके पीना चाहिए।

(१८) अतीसार, संग्रहणी, मन्दाग्नि, अरुचि और शूल पर—धनियाँ, सोंठ, नागरमोथा, खस, बेल की गुद्दी, आँवला, मोचरस, धव का फूल, लोध की छाल, इन्द्रयव की छाल, जायफल, अतीस, खैर की छाल, अजमोदा, रेंड़ की जड़, जीरा, सौंफ, छोटी पीपल, काकड़ासिंघी, सब चीजें पाँच-पाँच माशे चूर्ण करके अनार में भर दें; ऊपर से आँटा से मुँह बन्द कर दें और अंगारे पर भूनें। बाद आँटा निकालकर सब चीजों सहित पीस लें। महीन होने पर बेर बराबर गोली बनाएँ। इस गोली से उपर्युक्त सभी रोग नष्ट होते हैं।

(१९) घोड़ों का विष—अनार की पत्ती, तिल, हरताल और गुड़ सब चीजें पीस लें और जहाँ घोड़े ने काटा हो लेप करें।

(२०) सूखी खाँसी में—अनार का छिलका मुँह में रख कर रस चूसना चाहिए।

(२१) खाँसी और श्वास पर—अनार और बहेड़ा का छिलका एक-एक मासा, काली मिर्च दो दाना और सेंधा नमक चार रत्ती, एक छटाँक गरम पानी में पीसकर पीना चाहिए।

(२२) अजीर्ण पर—सूखा खट्टा अनार दाना, काला नमक और सफेद जीरा एक-एक माशा, सब का चूर्ण करके गरम पानी के साथ सेवन करना चाहिए।

(२३) रक्तपित्त में—अनार के रस में खूनखराबा मिला कर पीना चाहिए।

(२४) मुँह के छालों पर—अनार का छिलका और माजूफल घिसकर लगाना चाहिए।

(२५) पित्तज्वर में—अनार का रस पीना चाहिए।

केला

स० कदली, हि० केला, ब० कला, म० केल, गु० केल्य, क० मरखाले काड, तै० चक्राकेली, ता० वाले, फा० मावज् मोफ, अ० वना, अँ० प्लेनटेन् Plantain, और लै० मुसा सपिन्टम् Musa Sapientam

विशेष विवरण—केला का पेड़ प्राय सभी देशों में होता है। इसकी जड़ से जो फुनगी निकलती है, उसे निकालकर दूसरी जगह लगा देने से दूसरा पेड़ तैयार हो जाता है। केला की प्राय बीस जातियाँ हैं। गोमांतक, कर्नाटक और बसई प्रान्तों में केला का पाक बहुतायत से बनाया जाता है। बसई प्रान्त के आगाशी ग्राम में केला सुखाकर बाहर भेजा जाता है। कच्चे केले और

फूल की तरकारी बनाई जाती है। छाल कपड़ा रँगने के काम में आती है। इसके पत्ते गज डेढ़ गज तक लम्बे और हाथ भर तक चौड़े होते हैं। केला के पेड़ में डालियाँ नहीं होतीं। अरुई की तरह पेड़ी से ही इसमें पत्ते निकलने आरम्भ हो जाते हैं। इसकी पेड़ी चिकनी, पत्तेदार, छेदोंवाली एव पानी से भरी रहती है। केला के लिए पानी की विशेष आवश्यकता होती है। इसीलिए प्राय केला का पेड़ तर जमीन पर ही लगाया जाता है। वर्ष-डेढ़ वर्ष में केला का पेड़ तैयार हो जाता है। तब उसके नीचे से कलम के आकार का कालापन लिए लाल रग का बहुत बड़ा फूल नीचे की ओर झुका हुआ निकलता है। यह फूल प्रतिदिन एक दल खिलता है। खिलने पर आठ-दस फलियाँ उसके भीतर से निकलती हैं। इन फलियों के सिरे पर पीले रग का फूल निकलता है। इन फलियों की पंक्ति को ही पंजा कहते हैं। प्रत्येक दल के नीचे एक-एक पंजा निकलता है। फूलों के गिर जाने पर यही फलियाँ बढ़कर बड़ी बड़ी हो जाती हैं। पूरे डंठल को जिसमें कई पंजे होते हैं, एक घौद कहा जाता है। केला साधारणतया पकने पर पीला होता है, परन्तु कहीं लाल, गुलाबी और हरे रग का भी मिलता है। केला चार अगुल से डेढ़ बित्ता तक लम्बा पाया जाता है। जावा में एक प्रकार का केला इतना बड़ा होता है, जिसे चार आदमी खाकर सन्तुष्ट हो सकते हैं। केला के पेड़ का रेशा निकालकर कपड़ा बनाया जाता है। लोहा गरमकर केला के मोटे खम्भे में घुसाने से लोहा पक्का हो जाता है। केला के पत्तों का डंठल

जलाकर केला का क्षार बनाया जाता है। कोकन प्रदेश में धोबी लोग साबुन के बजाय इसी के क्षार का उपयोग करते हैं। ग्रामीण लोग औषधि के अभाव में केला के रस की पट्टी बाँधकर घाव अच्छा करते हैं। जगली केले की कन्द का आँटा बनाया जाता है। बगाल में केले के कोमल डठलो की तरकारी बनाई जाती है। डठल के कोमल रेशों से चटाई और कागज भी बनाया जाता है।

गुण—कदली शीतला गुर्वी वृष्या स्निग्धा मधुरा स्मृता।
पित्तरक्तविकार च योनिदोष तथाऽश्मरीम् ॥
रक्तपित्त नाशयतीत्येवमाचार्यैर्माप्तितम् ॥ (शा० नि०)

केला—शीतल, भारी, वीर्यवर्द्धक, चिकना, मधुर तथा पित्त, रक्तविकार, योनिदोष, पथरी और रक्तपित्त नाशक है।

गुण—कोमल कदल शीत मधुर च कषायकम्।
रुच्यमम्ल समुद्दिष्ट पित्तनाशकर च तत् ॥ (शा० नि०)

केला की कोमल फलियाँ—शीतल, मधुर, कषैली, रुचिकारक तथा अम्ल और पित्त नाशक हैं।

गुण—पक्वं तु कदल बल्य तुवरं मधुर गुरु।
शीत वृष्य शुक्रवृद्धिकर सन्तर्पण मतम् ॥
मांसकान्त्यरुचीनां च वर्द्धन दुर्जर मतम्।
कफकृच्च तृषाग्लानिपित्तरक्तघ्नमस्तथा ॥
मेहक्षुधानेत्ररोगबाधक परम मतम्।
मन्दाग्नीनां विकृतिकृद्रूपिभि परिकीर्तितम् ॥ (शा० नि०)

केला की पक्की फलियाँ—बलकारक, कषैली, मधुर,

भारी, शीतल, वीर्यवर्द्धक, वृष्य तथा मांस, कान्ति और रुचि वर्द्धक हैं। दुर्जर, कफकारक तथा ग्लानि, पित्त, रक्त, प्रमेह, क्षुधा और नेत्ररोग नाशक हैं। मन्दाग्निवाले मनुष्यों को विकार उत्पन्न करती हैं। *

गुण—कदल्याः कुसुमं स्निग्धं मधुरं तुवरं गुरु।
वातपित्तहरं शीतं रक्तपित्तक्षयप्रणुत् ॥ (शा० नि०)

केला का फूल—चिकना, मधुर, कषैला, भारी, शीतल, वात, पित्त, रक्तपित्त और क्षयरोग नाशक है।

गुण—रम्भातोयं शीतलं ग्राहि तृष्णाकृच्छ्रान्मेहान्कर्णरोगातिसारान्।
असृक्स्रावं स्फोटकामक्तपित्तं दाहं हन्यादसृग्योनि च शोषान् ॥

केला का जल—शीतल, ग्राही तथा तृषा, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, कर्णरोग, अतीसार, रुधिर का गिरना, स्फोटक, रक्तपित्त, दाह, रक्तविकार, योनिरोग और शोष नाशक है।

विशेष उपयोग (१) विष पर—केला के पेड़ का रस पीना चाहिए।

(२) पागल कुत्ते के विष पर—पके हुए जंगली केलों का बीज खाना तथा उसे ही पीसकर लेप करना चाहिए।

(३) श्वास पर—केलों के भीतर का केसर युक्त पदार्थ

---

* नोट—केला शीघ्र पकाने के लिए—केला की घौद का डण्डल चार-पाँच अंगुल छोड़कर काट दें और थोड़ा सा छेदकर वहीं इलायची का चूर्ण भर दें। अभाव में कपूर भी भर सकते हैं। इससे केला शीघ्र पक जाता है। अधिक इलायची छोड़ने से केला खराब हो जाता है।

निकालकर मिर्च का चूर्ण भरकर रात्रि में रख दें। प्रातःकाल मन्द आँच में सेंककर खाना चाहिए।

(४) शीघ्र प्रसव के लिए—केला का कन्द कमर में बाँधना चाहिए।

(५) हिचकी पर—जंगली केले की पत्तियों की राख एक माशा, एक तोला शहद के साथ मिलाकर चाटना चाहिए।

(६) शोथ पर—पक्का केला और गेहूँ का आँटा जल में घोलकर और गरम करके लेप करना चाहिए।

(७) संखिया के विष पर—केले की जड़ का रस पीएँ।

(८) जीभ में छाले पड़ने पर—पक्का केला गाय के दही के साथ सूर्योदय से पहले खाना चाहिए।

(९) कामला पर—पक्का केला शहद के साथ खाएँ।

(१०) भस्मक रोग पर—केला घी के साथ खाना अथवा केला के पेड़ का रस पीना चाहिए।

(११) प्रदर, सोम और मूत्रातीसार पर—पक्का केला और आँवला का रस, दो भाग शक्कर मिलाकर खाना चाहिए।

(१२) मूत्रकृच्छ्र पर—केले के कन्द का रस गोमूत्र में मिलाकर पीना चाहिए।

(१३) दाह में—केला और कमल के पत्तों पर सोएँ।

(१४) बालक के दाँत अन्य रोगों पर—केले के पेड़ के भीतर की मुलायम चादर के रस में जीरा और शक्कर मिलाकर बालक की शक्ति के अनुसार सात दिनों तक प्रतिदिन चार माशे

से छ: माशे तक पिलाना चाहिए। इस रस को दिन में दस-बीस बार दाद में भी लगाना चाहिए। इससे ज्वर जल्दी उतर जाता है।

(१५) शीतला पर—जंगली केले का बीज भैंस के दूध में पीस और छानकर पीना चाहिए।

(१६) मूत्राघात पर—केले का पानी पाँच तोले, दो तोला घी मिलाकर पीना चाहिए। पानी के साथ पेट में गया हुआ घी पेशाब के साथ निकल जाता है। बस मूत्र-मार्ग खुल जाता है। पुरुषों की अपेक्षा यह योग स्त्रियों को विशेष लाभ पहुँचाता है।

(१७) प्रदर और धातु विकार पर—पका हुआ एक केला, छ: माशे घी के साथ प्रतिदिन सुबह शाम खाना चाहिए। आठ दिनों तक इसका सेवन करने से उपर्युक्त विकार शान्त हो जाते हैं। अधिक शीतलता मालूम पड़ने पर चार बूँद शहद मिलाना चाहिए।

(१८) भोजन में सोमल का विष मिलने पर—केले के पेड़ का रस एक सेर, फिटकिरी दस तोले और सफेद कत्था एक तोला एक में मिलाकर तीन दिनों तक पीना चाहिए।

(१९) पित्तरोग पर—पक्का केला और घी खाएँ।

(२०) मूत्रावरोध पर—एक सेर केला के पानी में एक तोला गेरू घिसकर तथा सेंधा नमक और काली मिर्च का चूर्ण एक-एक माशा मिलाकर पीना चाहिए।

(२१) केला से अजीर्ण होने पर—बड़ी इलायची का दाना खाना चाहिए।

(२२) सदर पर—केला पीसकर और दूध में पकाकर दो-तीन दिनों तक खाना चाहिए।

(२३) वमन पर—केला की जड़ का रस और शहद पीएँ।

(२४) दाह और प्रमेह पर—केला का भीतरी भाग छाया में सुखाकर चूर्ण बना लें, इसे शक्कर मिलाकर पानी के साथ सेवन करना चाहिए।

(२५) अतीसार में—पक्के केले के भीतर दो सरसों बराबर अफीम रखकर खाना चाहिए।

(२६) कब्जियत पर—कच्चा केला उबालकर खाएँ।

(२७) त्रिदोष की शान्ति के लिये—केला और शक्कर एक साथ खाना चाहिए।

नारियल

स० ब० नारिकेल, हि० नारियल, म० श्रीफल, गु० नालीयर, क० टेंगिनभारा, तै० टेंकाया, ता० टेंगामार, फा० जोजहिन्दी नारीगल, अ० नारजिल्, अँ० कोकोनट-Coooanut, और लै० कोकोस न्युसिफेरा-Cocos Nucifera

विशेष विवरण—नारियल का पेड़ चालीस-पचास हाथ ऊँचा होता है। उसके सिरे पर पत्तियाँ होती हैं। फूल सफेद होता है। फल पक्ले सींकों में मजरी की भाँति होते हैं। दक्षिण प्रदेश में नारियल को 'माड' भी कहते हैं। गोमांतक, कर्नाटक, बंगाल,

कालीकट और सह्याद्रि के पास के प्रदेशों में नारियल के पेड़ बहुत बड़े होते हैं। नारियल सात-आठ वर्ष में फलता है। इसमें हर मौसिम में फूल आते हैं। अच्छी जमीन होने से हरएक पेड़ में प्रतिवर्ष पाँच सौ फल लगते हैं। इसके पेड़ का प्रत्येक भाग काम में आता है। पत्तों के सींकों की झाड़ू, फलों के ऊपर की जटा की बहुत मजबूत रस्सी और पाँव-पोश बनते हैं। पत्तों की चटाई बनाई जाती है। पत्तियाँ और जड़ जलाने के काम में आते हैं। नारियल के खोपड़े का कोयला बनता है। भीतर की गिरी बड़ी स्वादिष्ट होती है। इसे लोग बड़े प्रेम से खाते हैं। उसके भीतर का मीठा तथा ठंढा पानी लोग बड़े चाव से पीते हैं। यही गिरी पक जाने पर दूसरा स्वाद धारण करती है। इसका तेल निकाला जाता है। यह तेल खाने, साबुन बनाने, सिर में लगाने तथा दीपक जलाने के काम में आता है। इसके जटा की रस्सी बहुत दिनों तक जल में रहने पर भी नहीं सड़ती। नारियल की जटा साफ करके रुई की जगह गद्दी और तकियों में भरी जाती है। नारियल के फल की आँख में छेद करके गिरी निकाल दी जाती है और उसका बुरा बनाया जाता है।

गुण—नारिकेल गुरु स्निग्धं शीतं वृष्यं च दुर्जरम्।
बस्तिशुद्धिकरं बल्यं बृंहणं कफकारकम्॥
स्वादुविष्टम्भकृच्चोक्तं शोषतृट्पित्तनाशनम्।
वातपित्त रक्तदोषं दाहं चैव विनाशयेत्॥
क्षतक्षयमासृग्दोषतृष्णानुत् ... ॥ (नि० र०)

नारियल—भारी, चिकना, शीतल, वृष्य, दुर्जर, बस्तिशोधक, बलकारक, बृंहण, कफकारक, स्वादिष्ट, उदर फुलानेवाला तथा शोष, तृषा, पित्त, वात-पित्त, रक्तदोष, दाह और क्षतक्षय का नाश करता है।

गुण—पक्वं च नारिकेलं तु दाहकं पित्तकं गुरु।
वृष्यं मलस्तम्भकरं रुचिदं मधुरं मतम्॥
दीपनं बलकृत्प्रोक्तं वीर्य्यस्य च विवर्द्धनम्। (नि० र०)

पका हुआ नारियल—दाहकारक, पित्तकारक, भारी, वृष्य, मलरोधक, रुचिकारक, मधुर, दीपन, बलकारक और वीर्य-वर्द्धक है।

गुण—नारिकेलफलं शुष्कं दुर्जरं दाहकं गुरु।
स्निग्धं मलस्तम्भकरं बलवीर्यरुचिप्रदम्॥ (शा० नि०)

नारियल का सूखा फल—कठिनता से पचनेवाला, दाहकारक, भारी, स्निग्ध, मलस्तम्भक तथा बल, वीर्य और रुचिकारक है।

गुणा—स्निग्धं स्वादु हिमं हृद्यं दीपनं बस्तिशोधनम्।
वृष्यं पित्तपिपासाघ्नं नारिकेलोदकं गुरु॥ (सु० स०)

नारियल का जल—चिकना, स्वादिष्ट, शीतल, हृदय को हितकारी, दीपन, बस्तिशोधक, वृष्य, पित्त तथा पिपासा नाशक और भारी है।

गुण—बालस्य नारिकेलस्य जलं प्रायो विरेचनम्।
शीतं समधुमूर्च्छाघ्नं पित्तज्वरविनाशनम्॥ (रा० व०)

कामल नारियल का जल—प्रायः विरेचक, शीतल तथा

वमन, मूर्च्छा और पित्तज्वर नाशक है।

गुण—नारिकेलस्य पुष्प तु शीतं रक्तातिसारहृत्।
रक्तपित्तं प्रमेहं च सोमरोगं च नाशयेत्॥
मलस्तम्भकरं चापि प्रोक्तं पूर्वमनीषिभिः। (नि० र०)

नारियल का फूल—शीतल तथा रक्तातीसार, रक्तपित्त, प्रमेह और सोमरोग नाशक एवं मलस्तम्भक है।

गुण—नारिकेलफलोद्भूतं तैलं वाजीकरं गुरु।
पोषणं क्षीणधातूनां वातपित्तप्रणाशनम्॥
मूत्राघाते प्रमेहे च श्वासे कासे च यक्ष्मणि।
मेधाक्षेपे च हितदं क्षतानां भरणं तथा॥ (शा० नि०)

नारियल का तेल—वाजीकर, भारी, क्षीणधातुवाले मनुष्यों को पुष्टिकारक, वात-पित्त नाशक तथा मूत्राघात, प्रमेह, श्वास, खाँसी, यक्ष्मा और बुद्धिनाशवाले को हितकर एवं क्षतरोग नाशक है।

विशेष उपयोग (१) गरमी का सिर-दर्द—सूखी नारियल की गिरी पानी में भिगोने के बाद तेल निकालकर लगाने से सिर-दर्द नष्ट होता है।

(२) वायु से जकड़ जाने पर—कच्चा नारियल पीस कर रस निकाल लें और उसे पकाएँ। पकने पर जो तेल निकले उसमें काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर लगाएँ।

(३) घावों पर—पुरानी सूखी गिरी पीसकर रस निकाल लें। उसे किसी कलईदार कड़ाही में पकाएँ और खुरते समय

थोड़ा सेंधा नमक और हल्दी का चूर्ण छोड़ दें। तेल ऊपर आने पर उतारकर छान लें। घाव आवश्यकतानुसार काम में लाएँ। इससे सभी प्रकार के घाव भर जाते हैं।

(४) नहरुआ पर—नारियल के भीतर नौसादर भरकर शाम के समय रख दें। प्रातःकाल उसकी गिरी खाना तथा जल पीना चाहिए। दिन भर उपवास करना और सायंकाल स्नान करके दही भात खाना चाहिए।

(५) गिरगिट के विष पर—नारियल का हरा फूल पानी में घिसकर तथा पृथाम्ल मिलाकर और उसे गरम करके काटे हुए स्थान पर लगाना चाहिए।

(६) भिलावाँ आदि का विष—नारियल की खोपड़ी घिसकर अथवा जलाकर लगाने से नष्ट होता है।

(७) चूहा के विष पर—नारियल की छाल मूली के रस में घिसकर लेप करना चाहिए।

(८) हिचकी और वमन में—नारियल की जटा हुक्का में रखकर तम्बाकू की भाँति उसका धूँआ पीना, अथवा नारियल के जटा की राख शहद के साथ चाटना चाहिए।

(९) खुजली और दाद पर—नारियल के खोपड़े का पाताालयन्त्र से तेल निकालकर लगाएँ। इस तेल का फाया दाँतों के पास दबाने से दाँतों का दर्द दूर हो जाता है।

(१०) खुजली पर—नारियल की गिरी के रस में आँवला-सार गंधक मिलाकर पकाएँ। तेल निकल आने पर उतारकर

रख दें। कढ़ाई में जमी हुई सीठी थोड़ी-थोड़ी खायें। प्रतिदिन रात के समय इस तेल की मालिश करना चाहिए।

(११) अम्लपित्त, पेट के दर्द और यकृत पर—नारियल का पानी दस सेर कलई की कढ़ाई में पकाएँ। शहद के समान गाढ़ा होने पर उतार लें। बाद जायफल, सोंठ, छोटी पीपल और जावित्री का चूर्ण मिलाकर बोतलों में भर दें। चौदह दिनों तक प्रतिदिन सुबह शाम एक तोला से डेढ़ तोले तक चाटें।

(१२) सब प्रकार के वायु पर—एक नारियल का रस निकालकर दो तोले भिलावाँ पीसकर पकाएँ। जब तेल ऊपर आ जाय तब उसे छानकर मालिश करें तथा नीचे बैठी हुई सीठी थोड़ी-थोड़ी खायें। सात अथवा चौदह दिनों में कठिन-से-कठिन वायु का नाश होता है। या नारियल का रस सात तोले, त्रिफला का चूर्ण तीन माशे, और काली मिर्च का चूर्ण दो माशे सब एक में मिलाकर, अथवा केवल नारियल के रस में मिर्च का चूर्ण मिलाकर सुबह-शाम पीना चाहिए।

(१३) उरग्रह और हृद्रोग पर—पाँच तोले नारियल के रस में, भूनी हुई हल्दी एक माशा घिसकर और दो तोले घी मिलाकर पी जायँ, अथवा नारियल के रस में भिलावाँ का तेल दस या पन्द्रह बूँद मिलाकर पी जायँ।

(१४) रक्तप्रमेह पर—जलदार नारियल में छेद करके एक पाव पानी और चार रत्ती फिटकिरी का चूर्ण भर दें और उसका मुँह बन्द करके रात भर ओस में रखें। प्रातःकाल सूर्यो-

दय से पूर्व खूब हिलाकर जल पी जायँ।

(१५) शूल पर—जलदार नारियल में थोड़ा सेंधा नमक भर दें। बाद उस पर कपड़-मिट्टी करके कंडे की आग में फूँक दें। जल जाने पर इसका चूर्ण बनाएँ। छोटी पीपल के साथ अपनी शक्ति के अनुसार सेवन करें। यह परिणाम शूल; वात, पित्त, कफ और सान्निपातिक शूलों में भी लाभ करता है।

(१६) मूत्रकृच्छ्र और रक्तपित्त पर—पके नारियल के जल में निर्मली का बीज, शक्कर और छोटी इलायची का चूर्ण मिलाकर पी जायँ। यह मूत्रकृच्छ्र नाशक है। अथवा नारियल के जल में गुड़ और धनियाँ मिलाकर पी जायँ। यह दाहवाले मूत्र-कृच्छ्र और रक्तपित्त का नाश करता है।

(१७) विरेचन के लिए—लाल चोटीवाला मालाबारी नारियल में छेद करके जमालगोटा की मींगी खूब अच्छी तरह उसके भीतर भर दें। मुँह बन्दकर कपड़ मिट्टी करके गोबर की खाद में एक मास तक गाड़ दें। पश्चात् उसे निकालकर तोड़ डालें और नारियल की गिरी समेत जमालगोटा खरल करके रख लें। आवश्यकतानुसार घिसकर नाभि पर लगाने से दस्त आते हैं। ठंढे जल से नाभि धोने से दस्त बन्द हो जाते हैं।

(१८) जलोदर में—नारियल का जल पीना चाहिए।

(१९) रक्तपित्त में—नारियल के जल में धनियाँ पीस-कर पीना चाहिए।

(२०) अतीसार पर—नारियल के जल में जीरा पीसकर

पीना चाहिए।

(२१) प्रमेह पर—नारियल के जल में हल्दी और आँवले का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

खजूर

स० खर्जूरी, हि० खजूर, ब० खेजूर, म० गु० खजूरी, क० इण्चिह्लु, ते० ईटा चेट्टु, फा० खमरुतब, अ० खुर्मातर, खुर्मानुरुक, अँ० डेट पाम–Date Plam, और लै० फोयनिक्स सेलविस्ट्रीन–Phoenix Sylvistris

विशेष विवरण—खजूर ताड़ के समान ऊँचा होता है। खजूर के पेड़ भारत में बहुतायत से होते हैं। खजूर के पेड़ों में फल लगते हैं; किन्तु यहाँ का जल-वायु उपयुक्त न होने के कारण वह नहीं पक पाता। अरब प्रदेश के रहनेवाले बहुत दिनों तक खजूर खाकर ही व्यतीत करते हैं। मधुखर्जूर, भूमिखर्जूर, पिण्ड खर्जूर और राजखर्जूर इस प्रकार खजूर चार प्रकार का होता है। उनके सिरे पर चार अंगुल से छः-सात अंगुल तक की लम्बी, पतली और नुकीली पत्तियाँ लगती हैं। एक सींक या छड़ी के दोनों ओर पत्तियाँ लगती हैं। पत्तियों की यह छड़ी दो-तीन हाथ तक लम्बी होती है। इसमें जड़ के पास अंकुर निकलते हैं। किन्तु जंगली खजूर में अंकुर नहीं निकलते। जंगली के फल भी किसी काम के नहीं होते। ताड़ की भाँति इसमें से भी एक प्रकार का

सफेद रस या दूध निकलता है। यह रस भी ताड़ी के समान पिया जाता है, तथा गुड़ बनाया जाता है। जो खजूर लगाया जाता है उसे पिण्डखजूर कहते हैं। इसका पेड़ साठ-सत्तर हाथ तक ऊँचा होता है। जब यह छः वर्ष का होता है तब जड़ के पास से छोटे-छोटे अङ्कुर निकलते हैं। आठ वर्ष व्यतीत होने पर बालियाँ निकलती हैं। ये बालियाँ पत्ते के आवरण में लिपटी रहती हैं। पीछे बढ़कर फूलों की घौद हो जाती हैं। फल बड़े-बड़े घौद में लगते हैं। पकने के समय फल पीले होते हैं। बाद फूल आते हैं और अन्त में लाल हो जाते हैं। इसे ही छुहारा कहते हैं। सिंध में पके फल को खुरमा और पकने के पहले तोड़े हुए फल को छुहारा कहते हैं। इसके छाल के रंग से चमड़ा रँगा जाता है। इसके डंठल की छड़ी बनती है। पेड़ से एक प्रकार का गोंद निकलता है। उस गोंद को 'हुकुम बिल' कहते हैं। यह औषध के काम में आता है। सभी प्रकार के खजूर का गुण एक समान होता है। खजूर की गुठली का तेल निकलता है। यह जलाने और औषध के काम में आता है। इसमें पानी मिलाकर पीने से खजूर का गुण सम शीतोष्ण हो जाता है।

गुण—खर्जूरीत्रितय शीत मधुर रसपाकयोः।
स्निग्धं रुचिकर हृद्यं क्षतक्षयहर गुरु॥
तर्पण रक्तपित्तघ्न पुष्टिविष्टम्भशुक्रदम्।
कोष्ठमारुतहृद्बल्य वान्तिवातकफापहम्॥
ज्वराभिघाततृष्णाकासश्वासनिवारकम् ।

मदमूर्च्छामरुत्पित्तमद्योद्भवगदान्तकृत् ॥
महतीभ्यां गुणैरल्पा स्वल्पखर्जूरिका मता।
तस्मादल्पगुणं ज्ञेयमन्यत्खर्जूरिकात्रयम् ॥ (भा० प्र०)

तीनों प्रकार का खजूर—शीतल, रस तथा पाक में मधुर, स्निग्ध, रुचिकारक, हृद्य, क्षतक्षय नाशक, भारी, तृप्तिकारक, रक्तपित्त नाशक, पुष्टिकारक, विष्टम्भी, शुक्रकारक, तथा कोष्ठ के वातरोग, वमन, वात, कफ, ज्वर, अभिघात, क्षुधा, तृषा, कास, श्वास, मद, मूर्च्छा, वात, पित्त और मद्यजन्य रोगों का नाश करता है। दोनों बड़े खजूरों की अपेक्षा छोटा खजूर अल्प गुण वाला है। बाकी सब प्रकार के खजूर छोटे खजूर की अपेक्षा हीन गुण वाले हैं।

गुण—खर्जूरीतरुतोयं मदपित्तकरं भवेत्।
वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं बलशुक्रकृत् ॥ (भा० प्र०)

खजूर की ताड़ी—मदकारक, पित्तकारक, वात-कफ नाशक, रुचिकारक, दीपन, बलकारक और शुक्रकारक है।

विशेष उपयोग (१) विरेचन के लिए—खजूर को रात के समय पानी में भिगो दें। सुबह मल छानकर पी जायँ।

(२) बवासीर पर—खजूर का बीज पीसकर धुआँ दें।

(३) खुजली पर—अधकचा खजूर का बीज जलाकर इसकी राख, कपूर और घी एक में तरल करके लेप करें।

(४) सिर-दर्द पर—खारिक का बीज पिसकर लेप करें।

(५) घोड़े को सर्दी लगने पर- खारिक* के बीज का चूर्ण आँटा के साथ खिलाना चाहिए।

(६) आमवात में—खजूर, एक पाव पानी में भिगोकर दें।

(७) धातु-पुष्टि और पित्त शमन के लिए—बिना बीज का खारिक, बादाम, अनार, पिस्ता, चिरौंजी और शक्कर सब को महीन पीसकर घी में भून लें। आठ दिनों तक खूब तर जगह में रखें। प्रतिदिन प्रातःकाल दो तोले खाना चाहिए।

(८) शीत ज्वर में—खारिक का बीज और काकजंघा की जड़ दोनों को पानी में घिसकर पान के बीड़ा में चार रत्ती की मात्रा ज्वर आने से पहले घंटे-घंटे भर पर देना चाहिए। लगातार तीन दिनों तक सेवन करने से शीत ज्वर नष्ट हो जाता है।

(९) जीर्ण ज्वर में—खारिक, सोंठ, मुनक्का, शक्कर और घी, दूध में उबालकर और छानकर पीना चाहिए।

(१०) दाह पर—खजूर, आध पाव पानी में मसल और छानकर पीना चाहिए।

(११) बेहोशी में—खारिक मक्खन के साथ खाना चाहिए।

(१२) धनुर्वात और वातरक्त पर—खजूर पानी में पीसकर रेंड़ी का तेल मिलाकर पीना चाहिए।

(१३) बालकों की शक्ति के लिए—खजूर छः मासे

---

* नोट—आधा पका और आधा कच्चा सुखाया हुआ खजूर खारिक कहा जाता है।

से तीन तोले तक शक्ति के अनुसार साफ पानी से धोकर गुठली निकाल लें और दूध में भिगो दें। थोड़ी देर बाद मसल और छानकर दिन में तीन-चार बार पिलाना चाहिए। एक मास से कम उम्रवाले बालक को न देना चाहिए।

(१४) सरदी के समय बालकों के लिए—खारिक दूध में घिसकर चटाएँ। अथवा थोड़ा सा घिसकर पिलाएँ। यह छोटे बच्चों के लिए हानिकारक है, क्योंकि इसके सेवन से पेट में जाला बँध जाता है और कोष्ठ में गरमी आ जाती है।

(१५) शराब के नशा पर—खजूर पानी में मसल और छानकर पीना चाहिए।

(१६) प्रदर पर—खारिक के बीज का चूर्ण घी में भूनकर और सफेद चन्दन का चूर्ण मिलाकर सेवन करना चाहिए।

(१७) रक्तपित्त में—खजूर शहद के साथ सेवन करें।

बादाम

सं० वाताद, हि० ब० बादाम, म० गु० बदाम, ते० बेदम, ता० नटचडुम, फा० बदाम शीरीं, बदाम दरख्त, अ० लोजलहलु, लोजलमुर, अँ० स्वीट आमन्ड-Sweet Almond, और लै० प्रूनस एमिग्डेलस् Prunus Amygdalus.

विशेष विवरण—एशिया खण्ड में मस्कत, आराकान, ईरान, मक्का, मदीना और शिराज आदि नगरों में बादाम होता है। अब

इसका पेड़ लगाया जाने लगा है। इसकी पत्तियाँ लाल, कायफल की भाँति; परन्तु उससे कुछ छोटी होती हैं। इसमें छोटे छोटे फल लगते हैं। ऊपर का कड़ा छिलका तोड़ने पर भीतर गुलाबी छिलके में लिपटी हुई बादाम की गिरी होती है। यह गिरी बहुत मीठी एवं अनेकों चीजें इससे तैयार की जाती हैं। इसका उपयोग, खाने के अतिरिक्त औषध में भी होता है। यह कई प्रकार का होता है। किसी का छिलका यहाँ तक मुलायम होता है कि उँगलियों से दबा देने मात्र से टूट जाता है और किसी का छिलका इतना कड़ा होता है कि बिना किसी पत्थर के टुकड़े के नहीं टूटता। इस प्रकार कागजी और कठुआ दो तरह का बादाम होता है। इसके अतिरिक्त एक प्रकार का कड़वा बादाम भी होता है। उसकी गिरी बहुत कड़वी होती है और खाने के काम में नहीं आती। उसका तेल निकालकर औषध के काम में लाया जाता है। यही खूब साफ किया हुआ घड़ी आदि मशीन के पुर्जों में दिया जाता है। कड़वा बादाम स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। बादाम के पेड़ से एक प्रकार का गोंद निकलता है।

गुण—वातादः सारकश्चोष्णो गुरुस्निग्धः कफप्रदः।
स्निग्धः स्वादुश्च तुवरः शुक्रलो वातनाशनः॥
उष्णवीर्यं वातघ्नं सारकं गुरु पित्तकृत्।
कफपित्तकरं चैव वातनाशकमुत्तमम्॥
तत्पक्वं मधुरं वृष्यं सुस्निग्धं पौष्टिकं मतम्।
शुक्रलं कफकारी च रक्तपित्तं व्यपोहति॥

वातम्कं वातपित्तस्य पूर्वैर्वैद्यैरीरितम् ।
शुष्कं च तत्फलं प्रोक्तं मधुरं धातुवर्द्धकम् ॥
स्निग्धं वृष्यं च वल्यं च पौष्टिकं कफकारि च ।
वातपित्तस्य शमनं प्रोक्तं गुणविशारदैः ॥ (नि० र०)

बादाम—सारक, गरम, भारी, अम्ल, कफकारक, स्निग्ध स्वादिष्ट, कषैला, शुक्रजनक, वात नाशक और उष्णवीर्य है। कच्चा बादाम—सारक, भारी, पित्तजनक तथा कफ-पित्तकारक और वात नाशक है। पक्का बादाम—मधुर, वृष्य, स्निग्ध, पुष्टिकारक, शुक्रजनक, कफकारक तथा रक्तपित्त और वात-पित्त नाशक है। सूखा बादाम—मधुर, धातुवर्द्धक, स्निग्ध, वृष्य, बलकारक, पुष्टिकारक, कफकारक और वात पित्त नाशक है।

गुण—वातादतैलं मृदुरेचनं स्याद्वाजीकरं मूर्द्धगदं प्रहन्यात्।
पित्तानिलघ्नं लघु दाहनाशि लावण्यदं मेहकरं सुशीतम् ॥

बादाम का तेल—हलका विरेचक, वाजीकर, मस्तकरोग नाशक, पित्तघ्न, वात नाशक, हलका, दाह नाशक, लावण्यतादायक, प्रमेहकारक और शीतल है।

विशेष उपयोग (१) भिलावों के छालों पर—बादाम घिसकर लेप करना चाहिए।

(२) खनखजूरा के काँटों पर—बादाम का तेल लगाना चाहिए।

(३) दाँतों की मजबूती के लिए—बादाम के छिलके की राख में सेंधा नमक मिलाकर मंजन करना चाहिए।

(४) शिरोरोग पर—बादाम और केसर गाय के घी में घिसकर नास लें। अथवा बादाम की खीर प्रतिदिन प्रातःकाल तीन दिनों तक सेवन करें। बादाम और कपूर दूध में घिसकर सिर पर लेप करना चाहिए।

(५) धातु-वृद्धि और मस्तक रोग पर—बादाम की गिरी, चीनी, छोटी इलायची, कंकोल, शहद सम भाग, गाय का घी डेढ़ तोले और गाय का मक्खन एक तोला सब चीजें एक में मिलाकर प्रतिदिन सुबह शाम पाँच दिनों तक खाना चाहिए।

(६) मस्तिष्क की गरमी पर—बिना छिलका का बादाम आँच पर सेंक लें और चीनी के साथ खूब चबाकर खायें। एक घंटा बाद मक्खन और मिश्री खायें। दिन में तीन बार सिर पर बादाम का तेल लगाएँ।

(७) वातव्याधि में—बादाम घी में तल लें और नमक मिर्च लगाकर खायें। इससे लकवा, अर्दित आदि समस्त वात व्याधि में लाभ होता है।

(८) पीनस रोग में—बादाम जल में महीन पीस लें। बाद थोड़ा काली मिर्च का चूर्ण मिला और गरम करके पी जायँ।

(९) बल और वीर्य की वृद्धि के लिए—आध पाव बादाम खूब महीन पीसकर, एक पाव मिश्री की चाशनी में पकाएँ। जब वह गाढ़ा होने लगे तब एक छटाँक घी छोड़कर चम्मच से चलाते रहें। बाद एक तोला छोटी इलायची का चूर्ण और दस चाँदी का वर्क मिलाकर सुरक होने तक चलाते रहें। शीतल होने

पर आधी छटाँक सुबह-शाम खाकर ऊपर से मिश्री मिला हुआ गाय का दूध पीना चाहिए।

(१०) बल, वीर्य और मस्तिष्क शक्ति के लिए-बादाम की छिलका निकाली हुई गिरी दूध में महीन पीसकर पकाएँ। उसी समय थोड़ा घी और चीनी छोड़ दें। पक जाने पर उतार लें। शीतल होने पर खाना चाहिए।

(११) कर्ण-रोग पर-बादाम का गुलाबी छिलका निकालकर पीसें। साथ ही थोड़ी मिश्री भी मिला दें। खूब महीन हो जाने पर गोला बनाकर हाथ से दबाएँ। उसका तेल निकल आएगा। यह तेल कानों में छोड़ना और सिर पर लगाना चाहिए।

सेव और नाशपाती

स० महाबदर, हि० सेब, ब० सेउ, म० मोठें बोर, गु० शेब, फा० सेब, अ० तुफाह, अँ० ऍपल् Apple, और लै० पाइरस्-मेलस्-Pyrus Malus

विशेष विवरण-नाशपाती का पेड़ अधिक बड़ा नहीं होता। इसकी पत्तियाँ अमरूद के बराबर; परन्तु उससे कुछ चिकनी और चमकीली होती हैं। फूल सफेद और केसर कुछ बैंगनी होती है। फल गोल, परन्तु गूदे की बनावट दानेदार होती है। फल के भीतर बीच में चार कोशों के भीतर बीज रहते हैं। यह सफेद और कड़ा गूदेदार होता है। इसका टुकड़ा मिश्री के टुकड़े

के समान होता है। काश्मीर की नाशपाती अच्छी होती है। यहाँ इसके पेड़ जंगलों में भी पाए जाते हैं। नाशपाती के पेड़ यूरप, अमेरिका के उन सब स्थानों में होते हैं, जहाँ सरदी अधिक नहीं पड़ती। भारत में हिमालय के किनारे प्राय: सर्वत्र दक्षिण में नीलगिरि, बंगलोर आदि स्थानों में इसके पेड़ लगाए जाते हैं।

सेव का पेड़ कुछ बड़ा होता है। इसकी लकड़ी पीलापन और ललाई लिए हुए सफेद रंग की, नरम, चिकनी, चमकीली और मजबूत होती है। बर्मा में इस पर नक्काशी का काम होता है। इसकी छाल और जड़ औषधि के काम में आती है। यह बीजू और कलमी दो प्रकार का होता है।

नाशपाती और सेव दोनों ही खाये जाते हैं। इनका मुरब्बा भी बनता है, किन्तु नाशपाती की अपेक्षा सेव रोगी को अधिक दिया जाता है।

गुण—सेवं समीरपित्तघ्नं बृंहणं कफकृद्गुरु।

रसे पाके च मधुरं शिशिरं रुचिशुक्रकृत्॥ (भा० प्र०)

सेव—वात पित्त नाशक, बृंहण, कफकारक, भारी; रस और पाक में मधुर, शीतल तथा रुचि और शुक्रकारक है।

गुण—अमृतस्य फलं धातुवर्द्धकं मधुरं गुरु।

रुच्यं चाम्लं वातहरं त्रिदोषस्य च शामकम्॥ (शा० नि०)

नाशपाती—धातुवर्द्धक, मधुर, भारी, रुचिकारक, अम्ल, वात नाशक और त्रिदोषशामक है।

विशेष उपयोग (१) अरुचि और कब्जियत में—

अधकच्चे सेव का शाक खाने से लाभ होता है।

(२) अतीसार में—सेव का मुरब्बा लाभदायक है।

(३) बल और वीर्य की वृद्धि के लिए—सेव खाएं।

अमरूद

सं० पेरुक, हि० अमरूद, ब० प्यारासती, म० पाँढ़रे पेरु, गु० जामफल, तै० म्रामिमड्ड, फा० अमरुत, अ० कमराटी, अं० ग्वावा ह्वाइट, ग्वावा रेड-Guava White; Guava Red, और लै० सीडिय पाइरिफेर, सिडिय पोमिफेर Psidium Pyriforum Psidium Pomiforum

विशेष विवरण—अमरूद का पेड़ सर्वत्र; किन्तु भारत में अधिक होता है। इसके पेड़ में दो-तीन वर्ष बाद फल लगता है। इसका पेड़ कमजोर, टहनियाँ पतली और पत्तियाँ पाँच-छः अंगुल तक लम्बी होती हैं। इसका फल कच्चा-कषैला और पक्का-मीठा होता है। फल के भीतर छोटे-छोटे बहुत बीज होते हैं। यह लाल और सफेद दो प्रकार का होता है। इसका फल रेचक और बहुत ठंडा होता है। यह कच्चा और पक्का दोनों खाया जाता है। अमरूद अधिक खाने से तुरत ज्वर आ जाता है। इसकी पत्तियाँ और छाल रँगने तथा चमड़ा सिझाने के काम में आती हैं। मदकची लोग इसकी पत्तियाँ अफीम में मिलाकर मदक बनाते हैं। अमरूद की पुरानी लकड़ी बन्दूक का कुन्दा बनाने के काम

में आती है। इसकी लकड़ी बहुत चिकनी और मजबूत होती है।

गुण—सतोमृतफलं स्वादु तुवरं चातिशीतलम्।
तीक्ष्णं गुरु कफकरं वातदोन्मादनाशकम्॥
वृष्यं रुचिशुक्रकरं त्रिदोषघ्नं प्रकीर्तितम्। (नि० र०)

अमरूद—स्वादिष्ट, कषैला, अत्यन्त शीतल, तीक्ष्ण, भारी, कफकारक, वातवर्द्धक, उन्माद नाशक, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक, शुक्रजनक और त्रिदोष नाशक है।

विशेष उपयोग (१) उदरशूल पर—अमरूद की मुलायम पत्ती पीसकर पीना चाहिए।

(२) भाँग का नशा—अमरूद खाने तथा उसकी पत्ती का रस पीने से उतर जाता है।

(३) ठढक के लिए—अमरूद का बीज निकालकर गोली बना लें। आवश्यकतानुसार गुलाब जल में चीनी और गोली घोलकर पीना चाहिए।

(४) जानवरों का श्रम दूर करने के लिए—अमरूद की पत्तियों और केले की छाल का रस सम भाग पिलाना चाहिए।

(५) दाँतों के दर्द पर—अमरूद की पत्ती के काढ़े से कुल्ला करना चाहिए।

(६) मुँह के छालों पर—अमरूद की पत्ती और खैर चबाना चाहिए।

नारंगी, संतरा

स० नारंग, हि० नारंगी, संतरा, ब० नारंगालेबु, म० नारिंग, सन्त्रे नीबू, गु० नारंगीलिंबु, सन्त्रां, क० मायवल्ला, तै० नारञ्जिचेट्टु, ता० किचिलि, फा० अ० नारञ्ज, अँ० ऑरेंज-Orange, और लै० साइट्रस औरैंटियम्-Citrus Aurantium

विशेष विवरण—नारंगी का पेड़ नीबू जैसा ही होता है। फल में अन्तर होता है। नारंगी का छिलका कोमल, पीलापन लिए हुए लाल का रंग होता है। गूदा से अधिक सटा न रहने के कारण सहज ही अलग हो जाता है। भीतर पतली फाँकें होती हैं। एक पतली सी झिल्ली के भीतर रस में भरे हुए कण होते हैं। इसके फूल की सुगन्ध बड़ी मधुर होती है। संतरा भी नारंगी का ही भेद है। इसे गुजराती में सन्त्रां और मराठी में सन्त्रे नीबू कहते हैं। यह नारंगी की अपेक्षा बड़ा और अधिक मीठा होता है। संतरा नागपुर, सिलहट, सिक्किम, नैपाल और गढ़वाल आदि का अच्छा होता है। नारंगी खट्टी, संतरा खटमिट्ठा होता है। नारंगी की छाल भी बहुत उपयोगी है।

गुण—नारंग कफपित्तामकारक दुर्जर सरम्।

अत्यम्ल वातहरक चान्युष्ण च मत गुणैः॥

मधुरं ह्यामधुरं हृद्यमम्ल बल्यदम्।

विषाद गुरु दष्प च सर चोष्णमुगन्धिकम्॥

स्वादु चाम कृमीन्वातं श्रम दूलं च नाशयेत्। (नि० र०)

नारंगी-कफ, पित्त और आमकारक, कठिनता से पचने-वाली, दस्तावर, अत्यन्त अम्ल, वात नाशक, अत्यन्त उष्ण और मधुर है। खट्टी नारंगी—हृदय को हित, अम्ल, मलवर्द्धक, विशद, भारी, रुचिकारक, सारक, उष्ण, सुगंधित, स्वादिष्ट तथा आम, कृमि, वात, भ्रम और शूल नाशक है।

सतरा—कफकारक, हृदय को हित, रक्तवर्द्धक और शीतल है।

विशेष उपयोग (१) खुजली, चेचक के दाग और झाँई पर—नारंगी का छिलका, पीली सरसों, पोस्त का दाना, काला तिल और चिरौंजी सब चीजें दूध में पीसकर उबटन करना चाहिए। इसी में भड़भाँड़ की जड़ मिलाकर उबटन करने से उपदश के दाग भी मिट जाते हैं।

(२) तृषा पर—सतरा का रस शर्बत में मिलाकर पीएँ।

(३) पित्तज्वर पर—सतरा खाना लाभदायक है।

(४) रक्तपित्त में—मीठा सतरा खाने से लाभ होता है।

(५) अग्निमांद्य में—सतरा सेंधा नमक के साथ खाएँ।

बिजोरा नीबू

सं० बीजपूर, हि० बिजोरा नीबू, बं० टावालेबु, म० बीओरलिंबु, गु० बीजोरूँ, तै० दबा काया, फा० तुरज, अ० उतरज, अँ० साइट्रस-Citrus, और लै० साइट्रस लिमोनम्-Citrus Limonum

विशेष विवरण—यह वृक्ष नीबू की जाति का ही है; परन्तु

इसका पत्ता आकार में नीबू के पत्ते के समान, किन्तु उससे बड़ा होता है। इसका फूल सफेद एवं फल बड़ा होता है। यह खट्टा और मीठा दो जाति का होता है। इसका छिलका बहुत मोटा होता है। इसके फल के अग्रभाग में छोटी बिन्दी होती है। इसका फल जितना अधिक पुराना होगा उतना ही अधिक गुणद और सुगन्धवाला होगा। इसका रंग पीला और गूदा लाल होता है। यह कुछ कड़वाहट लिए मीठा होता है। भीतर का गूदा एकदम मीठा होता है। इसका पाक, मुरब्बा और शर्बत आदि बनाया जाता है। मुरब्बे में इलायची, जावित्री आदि छोड़कर वर्षा तक चलाते हैं। बिजोरा नीबू अनेक रोगों में लाभदायक है।

गुण—मातुलुंगफलं चाम्लमुष्णं कण्ठविशोधकम्।
तीक्ष्णं लघु प्रियं चाग्निदीपकं रुचिकारकम्॥
स्वादुकं जिह्वाहृदयशोधकं पित्तवातनुत्।
कफश्वासतृषाकासाहिक्का चैव विनाशयेत्॥
अरुचिं रक्तपित्तं च नाशयेदिति कीर्तितम्।
तथा बालं मातुलुंगं पित्तवातकफप्रदम्॥
रक्तकारकं चैते मध्यमस्यापि ते गुणाः।
पक्वं महागर्भकरं हृद्यं बल्यं च पौष्टिकम्॥
शूलाजीर्णविबन्धघ्नं वातं श्वासं कफं जयेत्।
अग्निमान्द्यं च शोफं च श्वासारोचकनाशकम्॥
फलत्वक् दुर्जरा तिक्ता तीक्ष्णोष्णा स्निग्धा गुरुः।
कृमिवातकफान्हन्ति लघ्वम्लं साधुपीडितः॥

गुरुर्वातोर्द्धविकरः स्निग्धः कफकर स्मृत ।
वातपित्तहरः प्रोक्तः प्रोक्तोन्मर्मागको मधु ॥
वात शूल कफ छर्दिमरोचकस्य च नाशकः ।
केसर दीपन मेध्य लघु ग्राहि रुचिप्रदम् ॥
गुल्मोदरश्वासकासाहिक्कापातमदात्ययान् ।
मद्शोषविबन्धार्शोविषतीव्र नाशयत्यलम् ॥
केसरस्य रसः पार्श्ववस्तिशूलकफारुचीः ।
वात च श्वासकास च छर्दिचैव विनाशयेत् ॥
बीज तु मातुलुङ्गस्य गर्भद दुर्जर गुरु ।
उष्ण तिक्त दीपन च मस्यमर्शोरुजापहम् ॥
वातपित्तशोफकफामाशयेविति कीर्तितम् ।
फलमज्जा गुरु शीता स्वाद्वी स्निग्धा बलप्रदा ॥
वातपित्ते नाशयेच्च मूत्रमर्शोह्लीहरम् ।
विपूची मन्दयन्थ च शूलं चैव विनाशयेत् ॥
पुष्प तु मातुलुङ्गस्य दीपन ग्राहि शीतकम् ।
लघु वात रक्तपित्त नाशयेदिति कीर्तितम् ॥ (शा० नि०)

बिजोरा नीबू—खट्टा, गरम, कण्ठशोधक, तीक्ष्ण, हलका, प्रिय, अग्निदीपक, रुचिकारक, स्वादिष्ट, जिह्वा एव हृदय को शुद्ध करनेवाला तथा पित्त, वात, कफ, श्वास, तृषा, खाँसी, हिचकी, अरुचि और रक्तपित्त नाशक है। कोमल बिजोरा नीबू—पित्त, वात, कफ और रक्तविकारों को उत्पन्न करता है। मध्यम अवस्था के नीबू का गुण भी कोमल नीबू के समान है। पक्का बिजोरा

नीबू—देह को सुन्दर करनेवाला, हृदय को हितकारी, बलकारक, पुष्टिजनक तथा शूल, अजीर्ण, विबन्ध, वात, श्वास, कफ, मन्दाग्नि, सूजन, खाँसी और अरुचि नाशक है। नीबू का छिलका—दुर्जर, कड़वा, तीक्ष्ण, गरम, स्निग्ध, भारी तथा वात और कफ नाशक है। नीबू के छिलके का रस—स्वादिष्ट, शीतल, भारी, धातुवर्द्धक, स्निग्ध, कफकारक और वात-पित्त नाशक है। नीबू के छिलके के भीतर का भाग—मधुर तथा वात, शूल, कफ, वमन और अरुचि नाशक है। नीबू का केशर—दीपन, मेधाकारक, हलका, मलरोधक, रुचिकारक तथा गुल्म, उदर-रोग, श्वास, खाँसी, हिचकी, वात, मदात्यय, उन्माद, शोथ, विबन्ध, अर्श और वमन नाशक है। नीबू के केशर का रस—पार्श्व, बस्तिशूल, कफ, अरुचि, वात, श्वास, खाँसी और वमन नाशक है। नीबू का बीज—गर्भदायक, अत्यन्त कठिनता से पचनेवाला, भारी, गरम, दीपन, बलवर्द्धक तथा बवासीर, वात, पित्त, वमन और कफ नाशक है।

तोला घी के साथ चटाना चाहिए। बिजौरा नीबू की जड़ कमर में बाँधने से भी शीघ्र प्रसव होता है।

(३) मृगी पर–बिजोरा नीबू और मेंवड़ी के रस की तीन दिनों तक नास लेना चाहिए।

(४) बालकों को दूध फटकने पर–बिजोरा नीबू की जड़ दूध में घिसकर दें तथा एक टुकड़ा गले में बाँधें।

(५) दाह और पित्त की शान्ति के लिए–बिजोरा नीबू के रस में चीनी मिलाकर शर्बत बना लें। आवश्यकतानुसार ठंढे जल के साथ थोड़ा सेवन करें।

(६) गर्भाशय की शुद्धि के लिए–बिजोरा नीबू का बीज और मोचरस की जड़ दूध में पीस-छानकर रजस्वला होने से चार दिनों तक सेवन करें।

(७) हिचकी पर–बिजोरा नीबू के रस में शहद और काला नमक मिलाकर सेवन करें। अथवा सोंठ, आँवला, छोटी पीपर और शहद मिलाकर सेवन करें।

(८) शूल पर–बिजोरा नीबू के फल, अथवा जड़ का रस शहद और जवाखार मिलाकर सेवन करें। इससे कुक्षि-शूल, हृदय-शूल और वस्ति-शूल नष्ट होते हैं।

(९) वमन पर–बिजोरा नीबू की जड़ जल में घिसकर और शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(१०) वमन और दस्त पर–बिजोरा नीबू की जड़, अनार की जड़ और केशर जल में पीसकर पीना चाहिए।

(११) कर्ण शूल पर—बिजोरा नीबू, आम और कांजी का रस गरम करके छोड़ना चाहिए।

(१२) गर्भाधान के लिए—बिजोरा नीबू की जड़ और सफेद घुमची की जड़ घी में घिसकर चाटना चाहिए।

(१३) हृद्रोग, शूल और क्षय पर—बिजोरा नीबू के रस में छोटी पीपर का चूर्ण और मक्खन मिलाकर सेवन करें।

(१४) गर्भधारण के लिए—बिजोरा नीबू और रेंड़ का बीज घी में पीसकर सेवन करें। अथवा एक पका बिजोरा नीबू का बीज ऋतुकाल में खाएँ।

(१५) कानों के बहने पर—बिजोरा नीबू के रस में सज्जी खार मिलाकर कानों में छोड़ना चाहिए।

(१६) शराब के नशे पर—बिजोरा नीबू के भीतर का केशर और अनारदाना खाना चाहिए।

(१७) अरुचि पर—बिजोरा नीबू का केशर शहद के साथ सेवन करना चाहिए।

(१८) मुख, कफ, वात, शोष, जड़ता और अरुचि रोग पर—बिजोरा नीबू का केशर और सेंधानमक कानी मिर्च के साथ पीसकर गोली बनाएँ और मुख में रखकर चूसें।

(१९) भ्रम और पित्त विकार पर—बिजोरा नीबू छीलकर उसका टुकड़ा बनाएँ। बाद दोलायन्त्र में उसे उबाल लें। उसके बाद उसका पानी धीरे से गार दें। बाद चीनी की चाशनी में छोड़ दें। इस तरह इसका मुरब्बा तैयार हो जायगा और यह

भ्रम एव पित्त-विकार आदि को दूर करेगा। अथवा ऊपर की विधि के अनुसार बिजोरा नीबू पकाकर सुखा लें। फिर घी में तलें, उसके बाद वंशलोचन आठ भाग, छोटी इलायची चार भाग, तज दो भाग, छोटी पीपर एक भाग तथा जायफल, जावित्री, केशर, सम भाग चूर्ण बना लें। बाद चीनी की चाशनी में सब चीजों को मिलाकर बर्फी बना लें। प्रतिदिन सुबह शाम दो तोले खाना चाहिए।

(२०) पथरी पर—बिजोरा नीबू और सेंधा नमक खाएँ।

(२१) यकृत पर—बिजोरा नीबू के भीतर का अंश दो तोले और काला नमक छः माशे प्रतिदिन दो बार खाना चाहिए।

कागजी नीबू

स० निम्बूक, हि० कागजी नीबू, ब० लेबु, म० कागदी लिंबु गु० कागदी लिंबु, क० लिंबू, ते० निम्मपडु, ता० एलुमिच्चे, फा० लिमुनेतुर्श, लिमुनेशिरिं, अ० लिमुने हाजिम, अँ० लेमन Lemon, और लै० लेमोन एसिड, साइट्स एसिडा-Lemonum Acidum, Citrus Acida.

विशेष विवरण—नीबू का पेड़, बीज और कलम दोनों के लगाने से होता है। इसका पेड़ पन्द्रह-बीस फीट तक ऊँचा होता है। नीबू के पेड़ में तीसरे या चौथे वर्ष फल लगने लगता है। इसकी पत्तियाँ मोटी और दोनों ओर नुकीली होती हैं।

ऊपर का रंग अधिक गहरा और नीचे का थोड़ा फीका होता है। इसकी लम्बाई चार-पाँच अगुल होती है। फूल छोटे-छोटे और सफेद रंग के होते हैं। फूलों में बहुत से पराग और केशर होते हैं। फल गोल या लम्बा होता है। इसकी सुगंध बड़ी प्यारी होती है। नीबू कच्चा हरा और पका पीले रंग का होता है। साधारण तया नीबू खट्टा और स्वादिष्ट होता है। नीबू का उपयोग अनेक कामों में होता है। इसके रस की भावनाएँ अनेक औषधियों में दी जाती हैं।

गुण—निम्बूकमम्लं वातघ्नं दीपनं पाचनं लघु।
निम्बुकं कृमिसमूहनाशनं तीक्ष्णमम्लमुदरग्रहापहम्॥
वातपित्तकफशूलिनं हितं कष्टनष्टरुचिरोचनं परम्।

नीबू—खट्टा, वात नाशक, दीपन, पाचन, हलका, कृमि समूह नाशक, तीक्ष्ण, उदर-रोग नाशक, ग्रहणी तथा वात पित्त, कफ और शूल में हितकारी, अरुचि नाशक और रोचक है।

विशेष उपयोग (१) अजीर्ण पर—नीबू, अदरक और सेंधा नमक भोजन के पहले खाना चाहिए। इससे अजीर्ण नष्ट होकर अग्नि दीप्त होती है तथा वायु, कफ, मलबद्धता और आमवात का नाश होता है।

(२) विषूचिका से बचने के लिए—दो नीबू का रस प्रतिदिन भोजन में अथवा चीनी के साथ सेवन करें।

(३) पाचन के लिए—नीबू और सेंधा नमक नीचे ऊपर भरकर रख दें। जब नीबू गल जाय तब थोड़ा-थोड़ा खाना

चाहिए इससे अजीर्ण-विकार नष्ट हो जाता है। अग्नि दीप्त होती है और मुख का स्वाद मन आता है।

(४) हैजा पर—नीबू के रस में चीनी छोड़कर शर्बत तैयार कर लें। अथवा नीबू और प्याज के रस में चीनी छोड़कर शर्बत तैयार कर लें। आवश्यकता पड़ने पर थोड़ा-थोड़ा चटाएँ।

(५) आँख आने पर—नीबू के रस में जमालगोटा की जड़ और अफीम लोहे के तवे पर रगड़कर आँखों पर लेप करें। अथवा लोहकीट और जमालगोटा की जड़ नीबू चीरकर उसके भीतर भर दें और हल्दी के रंग से रंगे हुए कपड़े में उसकी पोटली बाँधें और आँखों पर उसका लोया दें। इससे नेत्रों के अनेक विकार नष्ट हो जाते हैं।

(६) पित्त शमन के लिए—नीबू के रस में चीनी मिला-कर सेवन करना चाहिए।

(७) तूतिया का विष—जंबीरी नीबू * का रस चीनी के साथ लेना चाहिए।

(८) अम्लपित्त पर—जंबीरी नीबू का रस सायंकाल के समय सेवन करना चाहिए।

---

* नोट—जंबीरी नीबू भी इसी नीबू की जाति का है; किन्तु गुण में थोड़ा अन्तर है। जंबीरी नीबू—खट्टा, कड़वा, रेचक, उष्ण तथा कफ और पित्त नाशक है। कागजी नीबू की अपेक्षा यह कम खट्टा होता है।

चकोतरा नीबू

विशेष विवरण—चकोतरा नीबू बिजोरा नीबू की जाति का है। इसके पेड़, पत्ते और फूल सभी नीबू की भाँति होते हैं। इसके डंठल पर काँटे होते हैं। इसका फल कागजी नीबू की अपेक्षा बड़ा होता है। कोई-कोई इसे जम्बीरी नीबू का ही बड़ा भेद मानते हैं। इसके स्वाद में किंचित खट्टापन होता है। इसकी फाँकें पकी हुई सुनहले रंग की होती हैं। इसका पका फल संतरा के रंग का लाली लिए होता है। गरमी में यह फल बहुत अच्छा होता है।

गुण—मधुर, स्वादिष्ट, शीतल, तर्पण, रुचा, वृष्य, पुष्टिकारक, दुर्जर, धातुवर्द्धक, ग्राही तथा वात, पित्त, कफ, वमन, शोष, विषरोग, रक्तरोग, अरुचि और भ्रम नाशक है।

विशेष उपयोग (१) वमन पर—सूखे चकोतरा की छाल शहद में मिलाकर चाटना चाहिए।

इमली

सं० चिंचा, हि० इमली, बं० तेंतुल, म० चिंच, गु० आँबली, फा० तुरिंजे, ते० चिंता चेट्टु, ता० पुलि, अ० तमर हिंदी, अं० टेमेरिंड ट्री Tamarind Tree और लै० टमेरिंडस् इंडिकस् Tamarindus Indicus

विशेष विवरण—इमली का पेड़ समस्त भारत तथा अमेरिका, अफ्रिका और एशिया के अनेक देशों में पाया

है। इसका पेड़ बड़ा, पत्ती छोटी-छोटी सींकों में दोनों ओर एवं फूल पीले रंग के गुच्छों में होवे हैं। फूल में कुछ लाल छींटे भी होवे हैं। यह अपने आठवें वर्ष में फलती है। यह माघ और फागुन तक पककर तैयार हो जाती है। इसकी फलियाँ कटार की भाँति तिरछी और लम्बी होती हैं। फलियों पर सूखे छिलके भी होवे हैं। छिलका छीलने से भीतर का गूदा निकलता है। गूदे के भीतर बीज होता है। इसे चिआँ कहते हैं। चिआँ ऊपर लाल छिलकेदार और भीतर सफेद गूदेवाला होता है। इमली पकने पर ऊपर लाल और भीतर सफेद होती है। इमली चटनी, तरकारी, दाल आदि अनेक पदार्थों में खट्टापन के लिए छोड़ी जाती है। इसकी चटनी किसी भी प्रकार की बनाई हुई बहुत स्वादिष्ट होती है। खट्टेपन के कारण मुख को स्वच्छ करती है। इसके पत्ता से भात और बरा आदि खाया जाता है। नई इमली की अपेक्षा पुरानी पथ्यकर है। इसके चिआँ को भून पीसकर गरीब लोग आँटा बनाकर खाते हैं। चिआँ से एक प्रकार का तेल निकलता है। लड़के चिआँ से अनेक तरह के खेल खेलते हैं। इमली की लकड़ी चिकनी होती है। इसका कोयला भी बनता है।

गुण—चिंचाम्लसारो गुरूष्णोऽम्ल पित्तकफप्रद ।
रक्तकोपनकारी च वातनाशकरो मतः ॥
चिंचापुष्पं तु मधुरं स्वाद्वम्लं च रुचिप्रदम् ।
विशदं चाग्निमदकं लघु वातकफापहम् ॥
प्रमेहघ्नं समुद्दिष्टं पर्णं शोथहरं मतम् ।

रक्तदोषहरं चैव फलं चाम्लं तु कोमलम् ॥
अत्यम्लं ग्राहकं चोष्णं रम्यं चाग्निप्रदीपकम् ।
रक्तपित्तस्य पित्तस्य कफरक्तस्य कोपनम् ॥
वातनाशकरं प्रोक्तं तरुणं वातलं मतम् ।
कफपित्तकरं चैव तरुणं मधुरं सरम् ॥
अम्लं हृद्यं भेदकं च मलस्तम्भकरं मतम् ।
दीपनं रुचिदं चोष्णं रूक्षं बस्तिविशोधनम् ॥
व्रणदोषं कफं वातं क्रमीं श्चैव विनाशयेत् ।
शुष्कं चिञ्चाफलं हृद्यं लघु भ्रान्तिश्रमापहम् ।
तृषाहरं श्रमहरं कृमिनाशकरं मतम् ।

इमली का पेड़—भारी, गरम, खट्टा, पित्तजनक, कफकारक, रक्तप्रकोपक और वात नाशक है। इमली के फूल—कसैले, स्वादिष्ट, अम्ल, रुचिकारक, विशद, अग्निदीपक, हलका तथा वात, कफ और प्रमेह नाशक है। इमली के पत्ते—सूजन और रक्तविकार नाशक हैं। कच्ची इमली—अत्यन्त खट्टी, मलग्राहक, गरम, रुचिकारक, अग्निदीपक, वात नाशक तथा रक्तपित्त, कफ और रक्त को कुपित करनेवाली है। नई इमली—वात और पित्त को उत्पन्न करनेवाली है। पकी इमली—मधुर, सारक, खट्टी, हृदय को हितकारी, भेदक, मलस्तम्भक, दीपन, रुचिकारक, गरम, रूखी, बस्तिशोधक, तथा व्रणदोष, कफ, वात, और कृमि नाशक है। सूखी इमली—हृदय को हितकारी, हलकी तथा श्रम, भ्रान्ति, तृषा और कृमि नाशक है।

विशेष उपयोग (१) बवासीर पर–इमली के छाल का चूर्ण सुबह शाम गाय के दही के साथ सेवन करना चाहिए ।

(२) प्रमेह पर–इमली के छाल की राख छः मासे आध पाव नारियल के जल में मिलाकर दिन में दो बार सेवन करना चाहिए। इसी प्रकार पाँच दिनों तक सेवन करना चाहिए। मूली अवश्य खानी चाहिए।

(३) पाण्डुरोग पर–इमली के छाल की राख एक तोला से पाँच तोले तक बकरी के मूत्र के साथ देना चाहिए।

(४) गले की सूजन पर–इमली का चिआँ ठंढे पानी में घिसकर तालू पर लेप करना चाहिए।

(५) बिच्छू के दंश पर–चिआँ घी में सेंककर फिर दंश पर लगाएँ। यह चिआँ विष चूसकर आप ही गिर पड़ता है।

(६) श्वास कास पर–इमली का चिआँ खूब सेंकें। बाद छिलका निकालकर सफेद भाग को चूर्ण करके उसमें ताजा घी और शहद विषम मात्रा में मिलाकर सेवन करें।

(७) शूल पर–इमली के छाल की राख अथवा इमली के छाल का चूर्ण गरम पानी के साथ सेवन करें।

(८) चेचक रोकने के लिए–इमली का चिआँ और हल्दी का चूर्ण ठंढे पानी के साथ सेवन करना चाहिए।

(९) मूसा के विष पर–इमली चार तोले, चूल्हों की कजली दो तोले, पुराने घी में घोटकर सात दिनों तक लगाएँ।

(१०) अतीसार पर–इमली की पत्ती एक तोला, तीन

धोये चावलों की धोवन में पीसकर तथा मिट्टी के बर्तन में छौंककर पीना चाहिए।

(११) आँखों के आने पर—इमली की पत्ती रुई के फाहे में बाँधकर और कपड़-मिट्टी करके पकाएँ। उसका रस निकालकर उसमें भूनी हुई फिटकिरी और अफीम छोड़कर लोहे के तवे पर लोहे के बर्तन से घोटकर अंजन बनाएँ। आवश्यकतानुसार रुई पर रखकर पानी से तर करके आँखों पर लगाएँ।

(१२) अग्निमांद्य पर—इमली की छाल जंगली कंडों में जलाकर राख कर लें। रात में सोते समय छः माशे गरम पानी के साथ सेवन करना चाहिए।

(१३) भूख कम लगती हो, तो—इमली की पत्ती की चटनी चाटना चाहिए।

(१४) सिंगरिफ के विष पर—इमली का चिर्या आध सेर, चार सेर पानी में उबालकर सात दिनों तक कुल्ला करें।

(१५) नागफनी के विष पर—इमली की पत्ती पीसकर लेप करना चाहिए।

(१६) बैल का पैर सूजने पर—इमली की पत्ती और दीमक के बाँबी की मिट्टी पानी में उबालकर पोटली बनाकर उसी से सेंकना चाहिए।

(१७) कर्ण शूल पर—इमली नोनही जमीन पर जला कर राख कर लें और थोड़ी पानी में घोलकर लेप करें।

(१८) मदार के विष पर—इमली की पत्ती पीसकर लेप

करना चाहिए।

(१६) बालकों के रक्तातीसार पर–इमली के छाल का चूर्ण तीन माशे से छः माशे तक गाय के दही के साथ तीन दिनों तक सुबह-शाम चटाना चाहिए।

(२०) भाँग के नशा पर–इमली का पानी पीना चाहिए।

(२१) विषूचिका पर–इमली नौ तोले, मिलावाँ आठ तोले, सफेद प्याज के रस में पीस-छानकर पिलाना चाहिए। इससे विषैला कीड़ा मर जाता है।

(२२) अरुचि और पित्त पर–अच्छी तरह पकी हुई इमली ठंढे पानी में मलकर छान लें और चीनी मिलाकर पिलाएँ। बाद जल में इलायची, लौंग, कपूर और मिर्च का चूर्ण मिलाकर कुल्ला करें। इससे अरुचि का नाश और पित्त का शमन होता है।

(२३) कोष्ठबद्धता और पित्त पर–इमली एक सेर, दो सेर पानी में चार पहर तक भिगो दें। पीछे वह पानी छानकर आधा जला दें। बाद दो सेर चीनी छोड़कर चाशनी बनाएँ। प्रतिदिन शक्ति के अनुसार दो तोले से पाँच तोले तक सेवन करें। कोष्ठबद्धतावाले को रात में और पित्तवाले को प्रातःकाल सेवन करना चाहिए।

कटहल

सं० पनस, हिं० कटहल, बं० काँटाल, म० फणस, गु० फणस, क० हलसिनहण्णु, तै० पनसकायि, ता० पला, अँ० इण्डियन

जाक ट्री Indian Jack Tree, और लै० आर्टोकार्पस् इन्टेग्रिफो-लिया Artocorpus Integrifolia.

विशेष विवरण—कटहल का पेड़ बड़ा होता है। पाँच-छः वर्ष में यह फलने लगता है। यह पेड़ पूर्वी और पश्चिमी घाटों की पहाड़ियों पर आप-से-आप होता है। इसकी अंडाकार पत्तियाँ चार पाँच अंगुल तक लम्बी, कड़ी, मोटी और ऊपर की ओर श्यामता लिए हरे रंग की होती हैं। इसमें बड़े-बड़े फल लगते हैं। फलों की लम्बाई प्राय: हाथ-डेढ़ हाथ तक और घेरा भी इतना ही होता है। ऊपर का छिलका मोटा, नुकीला और काँटेदार होता है। फल के बीच में लम्बेचल बड़े-बड़े बीज होते हैं। उन बीजों के ऊपर एक पतला और कड़ा छिलका होता है, उसके ऊपर मोटे रेशोंवाला एक प्रकार का कोआ होता है। उसके चारों ओर कटहल का गूदा होता है। इसके पकने पर गूदा खराब हो जाता है। कोआ बड़ा सुन्दर होता है। इसे लोग बड़े चाव से खाते हैं। कटहल नीच से ऊपर तक फलता है। इसके पेड़ की छाल से बड़ा अच्छा दूध निकलता है। उस दूध से रबड़ बन सकता है। इसकी छाल और गुच्छा को उबालने से पीला रंग बनता है। बर्मीज लोग इसी रंग से अपना वस्त्र रंगते हैं। किसी-किसी बड़े पेड़ में पाँच सौ तक फल लगते हैं। कटहल बहुत काम में आता है। कच्चे कटहल की तरकारी बनाई जाती है। कटहल का बीज भी खाया जाता है। बीज की तरकारी और आचार बनाया जाता है। कटहल का आचार भी बड़ा स्वादिष्ट होता है। कटहल को खर्बूजा भूँजने से पहले उसमें

जरासा छेद कर देना चाहिए। अन्यथा जोर से फूटकर उछलता है और पासवर्त्तियों के जलने की आशंका रहती है। बीज मिट्टी लगाकर सुखाते हैं और वर्षा में भूनकर खाते हैं। दक्षिण कोंकण में अनेक लोग तीन-चार महीनों तक केवल कटहल ही खाकर रहते हैं। कटहल का समय व्यतीत हो जाने पर उसका बीज खाते हैं। कटहल के ऊपर का छिलका जानवरों को खिलाने से दूध अधिक होता है। इसके बीज के ऊपर के कोए की खीर, रोटी और कढ़ी बनाकर खाते हैं। इसकी लकड़ी पीली और सागवान की तरह मजबूत होती है। कटहल की लकड़ी मकान एवं कुर्सी, आलमारी और पलँग आदि बनाने के काम में आती है। कटहल की जाति का ही एक पेड़ और होता है। उसका पत्ता बड़ा और फल खाने के काम में आता है। इसकी लकड़ी कटहल की अपेक्षा बहुत मजबूत होती है। कटहल का पका कोआ खाकर पान न खाना चाहिए, क्योंकि पान खाने से पेट फूलकर मृत्यु हो जाती है।

गुण—पनसं शीतलं पक्वं स्निग्धं पित्तानिलापहम्।
तर्पणं बृंहणं स्वादु मांसलं श्लेष्मलं भृशम्॥
बल्यं शुक्रप्रदं हन्ति रक्तपित्तक्षतक्षयान्।
आमं तदेव विष्टम्भि वातलं तुवरं गुरु॥
दाहकृन्मधुरं बल्यं कफमेदोविवर्द्धनम्।
पनसोद्भूतबीजानि वृष्याणि मधुराणि च॥
गुरूणि बद्धवर्चांसि सृष्टमूत्राणि संवदेत्।
मज्जा पनसजो वृष्यो वातपित्तकफापहः॥ (भा० प्र०)

पक्का कटहल—शीतल, स्निग्ध, पित्त-वात नाशक, तृप्तिकारक, हृद्य, स्वादिष्ट, मांसवर्द्धक, कफकारक, बलवर्द्धक, शुक्रजनक तथा रक्तपित्त और क्षतक्षय नाशक है। कच्चा कटहल—विष्टम्भकारक, वातकारक, कसैला, भारी, दाहकारक, मधुर, बलकारक, कफ नाशक और मेद नाशक है। कटहल का कोआ—वीर्यवर्द्धक, मधुर, भारी, मलवर्द्धक और मूत्रनिस्सारक है। कटहल का बीज—वीर्यवर्द्धक तथा वात, पित्त और कफ नाशक है।

विशेष उपयोग (१) मुँह फटने पर—कटहल की छाल घिसकर लगाना चाहिए।

(२) शोफोदर पर—कटहल का अङ्कुर और जंगली गूलर की छाल एक पाव पानी में पीस-छानकर पीना चाहिए।

(३) बालकों के आमातीसार और संग्रहणी पर—कटहल और आम के पेड़ की छाल पानी में भिगोकर छान लें। शक्ति के अनुसार एक तोला से तीन तोले तक, दो मासे चूना का पानी मिलाकर पिलाना चाहिए।

(४) कण्ठ रोग पर—कटहल की प्रत्येक डाल के कोने पर नुकीली कली होती है, उसे पीसकर उसका रस गले में छोड़ना; अथवा उसकी गोली मुँह में रखकर चूसना चाहिए।

(५) रक्तातीसार और विषूचिका पर—कटहल और आम की छाल के रस में चूना का पानी मिलाकर पीना चाहिए।

(६) कटहल के अजीर्ण पर—नारियल की गिरी खाएँ।

(७) कटहल से पेट [illegible]

बड़हर

स० गु० लकुच, हि० बड़हर, ब० डेभो, म० वटार, और लै० आर्टोकार्पस लकुचा Artocarpus Locoocha

विशेष विवरण—यों तो बड़हर का पेड़ प्राय सभी जगह होता है, किन्तु कर्नाटक और गोमातक प्रान्त में अधिक होता है। अन्य स्थानों में अच्छा नहीं होता। बड़हर का पेड़ बड़ा होता है। इसका पत्ता छ:-सात अंगुल तक लम्बा और पाँच-छ: अंगुल तक चौड़ा, कर्कश एव कुटकी के पत्ते से कुछ मोटा होता है। फूल पीला, गोल-गोल होता है। उसमें पखुड़ियाँ नहीं होतीं। फल पकने पर पीला और छोटे शरीफा के बराबर; परन्तु बेडौल होता है। खाने में खट-मिट्ठा मालूम होता है। पके गूदे का रंग पीलापन लिए लाल होता है। बड़हर पकने के पहले टुकड़े करके सुखाते हैं। इसका उपयोग इमली और आम के अभाव में करते हैं। बड़हर के फूल का शाक बनाया जाता है। बड़हर की लकड़ी कड़ी और पीले रंग की होती है। यह नाव तथा सजावट का सामान बनाने के काम में आती है। आसाम में इसकी छाल से दाँत साफ करते हैं। इसकी छाल पित्त-शामक होने के कारण पथ्यकर है। बड़हर के फूल और फल का आचार और तरकारी बनाई जाती है। पक्का फल नमक के साथ खाया जाता है। इसका मुरब्बा भी बनता है।

गुण—आम लकुचमुष्णं च गुरु विष्टम्भकृत्तथा।

मधुरं च तथाम्लं च दोषत्रितयरक्तकृत् ॥

शुक्राग्निनाशन चापि नेत्रयोरहितं स्मृतम् ।
सुपक्वं लघु मधुरमम्लं चानिलपित्तहृत् ॥
कफवह्निकरं रुच्यं वृष्यं विष्टम्भकं च तत् । (भा० प्र०)

कच्चा बड़हर—गरम, भारी, विष्टम्भकारक, मधुर, खट्टा, त्रिदोषकारक, रक्त-विकारकारक, नेत्रों को अहितकारी तथा शुक्र और अग्नि नाशक है। पका बड़हर—मधुर, खट्टा, वात-पित्त नाशक, कफकारक, अग्निवर्द्धक, रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक और विष्टम्भकारक है।

विशेष उपयोग (१) शीतला, पित्त और अरुचि पर—बड़हर के पानी में चीनी, जीरा और काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(२) प्रसूता के लिए—बड़हर का रस पथ्यकारक है।

(३) त्रिदोष में—कच्चे बड़हर के रस में आँवला का रस सम भाग मिलाकर पीना चाहिए।

(४) अरुचि में—पका बड़हर और सेंधा नमक खाएँ।

अखरोट

स० अक्षोट, हि० अखरोट, ब० आक्रोट, म० आक्रोड, गु० आखोड, क० आखोट, फा० चार्मगज, अ० जोजअकुफम, अँ० वालनट Walnut, और लै० जगलन्स रिजिया-Juglans Regia.

विशेष विवरण—इसके वृक्ष हिमालय के पास काबुल, चीन और ईरान आदि देशों में अधिकता से होते हैं। इसके पेड़

की ऊँचाई लगभग पचास फीट होती है। इसके पत्ते अण्डाकार पाँच-सात इन्च लम्बे और कुछ मोटे होते हैं। फूल सफेद रंग के गुच्छों में होते हैं। फल गोल-गोल मैनफल के समान होते हैं। फल तोड़ने पर गिरी निकलती है। यह गिरी बादाम के समान मीठी होती है। इसके पेड़ में तीस-चालीस वर्ष बाद फल लगते हैं। यहाँ यह सुखाकर आता है। इसकी छाल रंगने तथा पत्ता और डंठल पशुओं के खाने के काम आता है।

गुण—अक्षोटो मधुरः किञ्चिदम्लः स्निग्धश्च शीतलः।
वीर्यवृद्धिकरश्चोष्णो रुचिदः कफपित्तकृत्॥
गुरुः प्रियो बलकरः कफकृन्मलबद्धकृत्।
वातपित्त क्षय वात हृद्रोग रक्तदोषकम्॥
रक्तवात च दाह च नाशयेदिति कीर्तितम्। (नि० १०)

अखरोट—मधुर, किंचित खट्टा, स्निग्ध, शीतल, वीर्यवर्द्धक, उष्ण, रुचिकारक, कफ-पित्तकारक, भारी, प्रिय, बलकारक, कफकारक, मलबद्धक तथा वात-पित्त, क्षय, वात, हृद्रोग, रक्तदोष, वातरक्त और दाह नाशक है।

विशेष उपयोग (१) बवासीर पर—अखरोट के तेल में कपड़ा भिगोकर गुदा में रखने से दर्द दूर होता है।

(२) मृगी पर—अखरोट की अन्तर छाल मेउड़ी के रस में घिसकर अंजन करना और नास लेना चाहिए।

(३) वातशोथ पर—अखरोट काँजी में घिसकर लेप करना चाहिए।

(४) दूध बढ़ाने के लिए—अखरोट का पत्ता और गेहूँ का आँटा सम भाग मलकर पूड़ी बना लें और दूध के साथ खाएँ।

(५) अर्श, गुल्म और कृमि पर—कच्चे अखरोट का रस पिलाना चाहिए।

(६) मलशुद्धि के लिए—अखरोट के फल की छाल का काढ़ा अथवा अखरोट का तेल दो-तीन तोले पीना चाहिए।

सुपारी

स० पूगीफल, हि० म० सुपारी, ब० गुपारी, गु० सोपारी, क० अडमेकर, तै० पाक काया, फा० पापिल, अ० फोफिल, अँ० बिटल नट पाम-Betelnut Palm, और लै० एरिका केटेचु Areca Catechu.

विशेष विवरण—सुपारी का पेड़ तीस-चालीस हाथ तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते ताड़ के समान झब्बदार और एक-से-दो फुट तक लम्बे होते हैं। सींक पाँच-छः फुट लम्बा होता है। इसमें छोटे-छोटे फूल लगते हैं। फल बेर या दो इंच के घेरे में अण्डाकार होता है। उस पर नारियल के समान छिलका होता है। इसका पेड़ सह्याद्रि पर्वत के सब देशों होता है। परन्तु मंगलोर, वालेचेरी, कोचीन, तुलसी, गोमाँतक और श्रीवर्धन में अधिक होता है। श्रीवर्धन से सफेद सुपारी आती है। यह बहुत अच्छी होती है। सुपारी का वृक्ष चिकना होता है। सुपारी छीलकर

उबालने से लाल सुपारी बन जाती है। बिना उबाले छीलकर सुखाई सफेद सुपारी कही जाती है। यही उबाली हुई चिकनी सुपारी कही जाती है। सुपारी यों ही अथवा पान में छोड़कर खाई जाती है। इसे तोड़ने से चिकना रस निकलता है। यह रस लकड़ी और नाव पर लगाया जाता है। इसके उबालने पर जो पानी बचता है, उसे सुखाकर सुपारी का फूल कहते हैं। प्रसूता के लिए जो मसालेदार सुपारी बनाई जाती है, उसमें इसका उपयोग होता है। जो आधी सुपारी आती है, वह भी इसकी एक जाति है।

गुण—पूगीफलं मोहकरं स्वादु रुच्यं कषायकम्।
रूक्षं सरं च मधुरं गुरु पथ्यं च दीपनम्॥
किंचित्कटु च समोक्ष मुखवैरस्यनाशकम्।
कृमिं क्लेदं त्रिदोषघ्नं मलं वातं कफं तथा॥
पित्तं दुर्गन्धतां चैव नाशयेदिति कीर्तितम्।
आर्द्रं पूगीफलं मोक्षं गुरुं कण्ठशुद्धिकृत्॥
अभिष्यंदि सरं चैव गुरु दृष्ट्याग्निमांद्यकृत्।
रक्तदोषं मुखमलं पित्तं चामं कफं तथा॥
आध्मानमुदरं चैव नाशयेदिति कीर्तितम्।
शुष्कं पूगीफलं रुच्यं पाचकं रेचकं तथा॥
स्निग्धं च वातलं चैव कण्ठरुक्षं त्रिदोषनुत्।
पर्णं बिना केवलं तु भक्षितं शोफपाण्डुकृत्॥
पक्वं चार्द्रं पूगफलं छेदकं च त्रिदोषहृत्।
शुष्कं पक्वीकृतं तत्तु स्निग्धं वातकरं मतम्॥

त्रिदोषनाशक चैव तद्वाल सर्वदोषहृत् । (शा० वि०)

सुपारी—मोहकारक, स्वादिष्ट, रुचिकारक, कसैली रूखी, सारक, मधुर, भारी, पथ्य, दीपन, किंचित् चरपरी, मुख की विरसता दूर करनेवाली तथा वमन, क्लेद, त्रिदोष, मल, वात कफ, पित्त और दुर्गन्ध नाशक है। कच्ची सुपारी—कसैली, कफ शोषक, अभिष्यन्दि, सारक, भारी, दृष्टि-शक्ति नाशक, मन्दाग्नि कारक तथा रक्त-विकार, मुखमल, पित्त, आम, कफ, आध्मान और उदर-रोग नाशक है। सूखी सुपारी—रुचिकारक, पाचक, रे... स्निग्ध, वातकारक तथा कण्ठरोग और त्रिदोष नाशक है। पान की सुपारी—सूजन और पाण्डुरोग पैदा करती है। हुई कच्ची सुपारी—छेदक और त्रिदोष नाशक है। पकाई सूखी सुपारी—स्निग्ध, वातकारक और त्रिदोष नाशक है। सुपारी—सर्वदोष नाशक है।

विशेष उपयोग (१) वमन पर—सुपारी की राख, ... की राख और नीम की राख पानी में मिलाकर तथा बिजोरा की जड़ घिसकर पीना चाहिए।

(२) मूत्राघात पर—सुपारी के छिलके की राख मिलाकर बस्ति पर लेप करना चाहिए।

(३) आमवात में—सुपारी रात के समय भिगो दें प्रातःकाल पीसकर पुरानी इमली का पना मिलाएँ और पी जायँ बाद गरम-गरम पानी थोड़ी-थोड़ी देर पर पीना चाहिए। ... दस्त होकर आमवात नष्ट हो जाता है।

(४) आधासीसी पर—आधी सुपारी घिसकर लेप करना चाहिए।

(५) विसर्प और चकत्तों पर—चिकनी सुपारी का चूर्ण, अथवा चिकनी सुपारी पानी में घिसकर लेप करना चाहिए।

(६) कृमि पर—सुपारी का चूर्ण गरम पानी के साथ दें।

(७) खुजली पर—सुपारी के छिलके की राख तिल के तेल में मिलाकर लगाना चाहिए।

(८) गला सूजने पर—चिकनी सुपारी, इमली का चिआँ और गूगुल गरम पानी में घिसकर दिन में दो-तीन बार लेप करें।

कैथ

स० कपित्थ, हि० कैथ, ब० कपितबेल, म० कँवठ, गु० कोठ बडी, फ० वेल्लु, तै० एलॉगाकाय, अं० वुड एपल Wood Apple, और लै० फेरोनिया एलिफेंटिनम्-Feronia Elephantinum

विशेष विवरण—यों तो कैथ का पेड़ प्रायः सर्वत्र होता है, परन्तु दक्षिण एवं गुजरात में अधिक होता है। यह बेल के पेड़ के समान काँटेवाला होता है। इसकी पत्तियाँ छोटी, जड़ की ओर लम्बी और आगे गोल होती हैं। कैथ का फल बहुत छोटे बेल के आकार का होता है। इसके ऊपर का छिलका कड़ा और मटमैले रंग का होता है। इसका फूल छोटा और सफेद होता है। फल खाने में खट मिट्ठा और कपैला होता है। पका कैथ यों ही अथवा

गुड़ या चीनी के साथ खाया जाता है। कच्चा कैथ चटनी और आचार के काम में आता है। पक्के का मुरब्बा भी बनता है। कहा जाता है कि हाथी, कैथ को बिना चबाए निगल जाता है और लीद के साथ समूचा कैथ निकलता है, परन्तु उसमें गूदा नहीं रहता। कैथ की लकड़ी पीलापन लिए सफेद और मजबूत होती है।

गुण—कपित्थं मधुरं चाम्लं तुवरं ग्राहि शीतलम्।
वृष्यं तिक्तं पित्तवातश्रमनाशकरं मतम्॥
फलमामं कपित्थस्य ग्राहिचोष्णं च रूक्षकम्।
तथाम्लं तुवरं चैव छेदनं वातपित्तहृत्॥
जिह्वाजाड्यकरं रुच्यं विषस्वरकफापहृत्।
तत्पक्वं रुचिदं चाम्लं कषायं ग्राहि माधुरम्॥
कण्ठशुद्धिकरं शीतं गुरु वृष्यं च दुर्जरम्।
श्वासं क्षयं रक्तरुजं वान्तिं वातं श्रमं तथा॥
हिध्मानं च विषं हन्ति तृषां दोषत्रयं तथा।
हिक्कां कासं नाशयति वीर्जं च हृदयव्यापहम्॥
पीपल्यर्या विषं चैव विसर्पं चैव नाशयेत्।
बीजतैलं च तुवरं ग्राहकं स्वादु पित्तनुत्॥
आस्योर्विषं कफं चैव हिक्कां वान्तिं च नाशयेत्।
विषनाशकरं पुष्पं पर्णं चान्यतिसारनुत्॥
हिक्कां नाशयतीत्येव प्रोक्तं पूर्वमहर्षिभिः। (नि० र०)

कैथ—मधुर, खट्टा, कषैला, ग्राही, शीतल, वीर्यवर्द्धक, तथा पित्त और वात नाशक है। कच्चा कैथ—ग्राही, गरम, [illegible]

हलका, खट्टा, कपैला, लेखन तथा वात, पित्त, जिह्वा की जड़ता-कारक, रुचिकारक तथा विष, स्वर और कफ नाशक है। पका कैथ —रुचिकारक, खट्टा, कपैला, माही, मधुर, कण्ठशोधक, शीतल, भारी, वीर्यवर्द्धक, देर से पचनेवाला तथा श्वास, क्षय, रक्त-दोष, वमन, वायु, भ्रम, विष, ग्लानि, तृषा, त्रिदोष, हिचकी और खाँसी को नष्ट करता है। कैथ का बीज—हृद्रोग, मस्तक-शूल, विष और विसर्प नाशक है। कैथ के बीजों का तेल—कपैला, माही, स्वादिष्ट, पित्त नाशक तथा मूसे का विष, कफ, हिचकी और वमन नाशक है। कैथ का फूल—विष नाशक है। कैथ की पत्तियाँ—वमन, अतीसार और हिचकी नाशक हैं।

विशेष उपयोग (१) पित्त शमन के लिए–कैथ का गूदा चीनी के साथ खाना; अथवा कैथ की पत्ती का रस दूध में मिलाकर पीना चाहिए।

(२) कामला पर–कैथ की पत्ती का रस दूध का छींटा देकर निकालकर प्रतिदिन प्रातःकाल एक छटाँक पीना चाहिए।

(३) प्रदर पर–कैथ और बाँस की पत्ती का चूर्ण शहद के साथ सेवन करना चाहिए।

(४) गरमी से धातु गिरता हो, तो–कैथ की पत्ती का चूर्ण दूध और मिश्री के साथ देना चाहिए।

(५) मूसा के विष पर–कैथ के बीज का तेल लगाएँ।

(६) पित्तज फुंसियों पर–कैथ की पत्तियाँ पानी में पीसकर, अथवा दही में मिलाकर लेप करना चाहिए। पत्तियों का

थोड़ा सा रस मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

(७) शरीर में एकत्रित रसायन पर—कैथ की पत्ती, चौलाई की पत्ती और केला का फूल, सम भाग सोलह गुन पानी में पकाया जाय। अष्टमांश बाकी रहने पर प्रतिदिन दोनों समय चौदह दिनों तक ताजा काढ़ा बनाकर पीना चाहिए। तेल, खट्टा, नमक और लाल मिर्च न खाना चाहिए। स्नान न करना चाहिए। पन्द्रहवें दिन सर्वाङ्ग में बकरी की लेंड़ी गोमूत्र में घोलकर लेप करना और चार घड़ी बाद स्नान करना चाहिए।

(८) हिचकी और श्वास पर—कैथ का रस, शहद और छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(९) अजीर्ण पर—कैथ के गूदे में सोंठ, मिर्च और पीपर का चूर्ण तथा शहद और चीनी मिलाकर सेवन करना चाहिए।

कमरख

स० कर्मरङ्ग, हि० कमरख, ब० काम राङ्गा, म० कर्मरें, गु० कमरक खाटा मीठां थे छे, क० कर्मर, अँ० करबोला-Carambola, और लै० एवरिया करबोला-Averrhoea Carambola.

विशेष विवरण—कमरख का पेड़ प्रायः सर्वत्र होता है; परन्तु कोंकण प्रान्त में बहुत होता है। इसका पेड़ मझोला और पत्तियाँ एक-डेढ़ अंगुल तक चौड़ी, दो अंगुल तक लम्बी, कुछ नुकीली तथा पतली एक सींकों में लगती हैं।

फूल गिरजाने के बाद लम्बा-लम्बा पाँच फाँकवाला फल लगता है। यह कच्चा-हरा और पक्का-पीला होता है। कच्चा-खट्टा और पक्का-खटमिट्ठा होता है। यह कसैला अधिक होता है। इसीलिए इसका पका फल चूना लगाकर खाया जाता है। कच्चा फल रंगाई के काम में आता है। इससे लोहे के मुर्चे का रंग दूर हो जाता है। कमरख के पेड़ की छाया बहुत शीतल और सुखद होती है। इसका पेड़ सदैव हरा रहता है। फल भी बहुतायत से लगते हैं। कमरख का आचार और मुरब्बा अच्छा होता है। इसकी चटनी भी बनाई जाती है। मिर्च, जीरा और नमक लगाकर खाने से यह अधिक स्वादिष्ट होता है। पक्का कमरख यों भी खाया जाता है। कमरख के फल, पत्तियाँ और जड़ औषध के काम में आती हैं। कमरख खुजली के लिए अत्यन्त उपयोगी माना जाता है।

गुण—कर्मारस्य फलं चाम्लं ग्राह्यम्लं वातनाशकम् ।
उष्णं पित्तकरं चैव तत्पक्वं मधुरं मतम् ॥
अम्लं च बलपुष्टीनां रुचेश्चैव तु वर्धकम् । (नि० र०)

कच्चा कमरख—ग्राही, खट्टा, वात नाशक, गरम और पित्त-कारक है। पक्का कमरख—मधुर, खट्टा, बलकारक, पुष्टिकारक और रुचिवर्द्धक है।

विशेष उपयोग (१) खुजली पर—कमरख की पत्ती दही में पीसकर स्नान करने से दो घंटे पूर्व लगाना चाहिए।

(२) पित्त शान्ति के लिए—पके कमरख के रस में चीनी मिलाकर चाशनी बनालें। आवश्यकतानुसार गरमी के दिनों

में थोड़ा शर्बत पानी में मिलाकर पीना चाहिए।

(३) अरुचि में—पके कमरख की चटनी सेंधा नमक मिलाकर चाटनी चाहिए।

हरफारेवड़ी

स० लवली, हि० हरफारेवड़ी, म० नोयाड, म० काय आवले, और गु० खाटी आंवली।

विशेष विवरण—इसका वृक्ष बड़ा होता है। पत्ता कसौंदी के पत्ते के समान एवं लम्बा होता है। इसमें अगूर के गुच्छे की भाँति फल गुच्छो में लगते हैं। यह यों ही खाया जाता है। इसका अचार भी बनता है।

गुण—लवलीफलमर्शोघ्नं कफपित्तहरं गुरु।
विशदं रोचनं रूक्षं स्वाद्वम्लं तुवरं रसे॥ (भा० प्र०)

हरफा रेवड़ी—रक्त-विकार, बवासीर और कफ-पित्त नाशक, भारी, विशद, रोचक, रूखी, स्वादिष्ट, खट्टी और कषैली होती है।

विशेष उपयोग (१) दस्त के लिए—हरफारेवड़ी की छाल के रस में मिर्च, बेलपत्र और पाँच लौंगों का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए। किसी प्रकार का कष्ट होने पर भी भात खाएँ।

(२) शीतपित्त पर—हरफारेवड़ी के पत्तियों का अथवा हरफारेवड़ी के रस में मिर्च का चूर्ण मिलाकर लेप करना चाहिए।

(३) नाड़ीव्रण पर—हरफारेवड़ी की छाल का रस दो

तोले, तीन तोले इमली के छाल का रस और पाँच तोले गाय का घी मिलाकर पाँच-सात दिनों तक सेवन करना चाहिए।

करौंदा

स० करमर्दक, हि० करौंदा, य० करमूचा, म० करवदा, गु० करमदा, क० काराजग, तै० पारिक चेट्टु, अँ० जस्मिनफ्लावर्ड केरिसा-Jasmine-flowered Carisa, और लै० केरिसा कोरन्डास Carissa Corandas

विशेष विवरण—इसका पेड़ पहाड़ों पर अधिक होता है। इसके पेड़ में काँटे होते हैं। करौंदा का फल गोल, थोड़ा लम्बा और थोड़ी कालिमा लिए लाल रंग का होता है। कच्चे फल की चटनी, आचार और मुरब्बा बनता है। इसकी लकड़ी जलाने के काम में आती है। फल पकने पर भी खट्टा होता है। कड़वी जाति का भी एक करौंदा होता है। करौंदा दो प्रकार का होता है। एक पकने पर काला और दूसरा लाल, सफेद। इसमें जुही की भाँति सफेद फूल लगते हैं। इनमें मधुर गंध होती है। फल गुच्छों में लगते हैं। पंजाब में इसके पेड़ से लाह निकाली जाती है। फल रंग के काम में आता है। इसकी डालियों को छीलने से एक प्रकार का चिकना और तरल पदार्थ निकलता है।

गुण—करमर्दक त्वाममम्ल गुरु तृषापहम्।
उष्ण रुचिकरं प्रोक्तं रक्तपित्तकफप्रदम्॥

तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघु पित्तसमीरजित् । (भा० प्र०)

दोनों प्रकार का कच्चा करौंदा—खट्टा, भारी, तृषा नाशक, गरम, रुचिकारक तथा रक्तपित्त और कफकारक है। पक्व करौंदा—मधुर, रुचिकारक, हलका तथा पित्त और वात नाशक है।

विशेष उपयोग (१) विष परीक्षा के लिए—करौंदा की जड़ पानी में घिसकर पीना चाहिए। विष का प्रकोप होने पर वमन न होगा। अन्यथा वमन हो जायगा।

(२) खुजली पर—कच्चे करौंदा की जड़ पानी अथवा तिल के तेल में घिसकर लगाना चाहिए।

(३) घाव के कीड़ों पर—कच्चे करौंदा की जड़ पानी में चन्दन के समान महीन घिसकर लेप करना चाहिए। पतला करके घाव के भीतर छोड़ना भी चाहिए।

(४) सर्पदंश पर—कच्चे करौंदा की जड़ पानी में घिस कर पीना चाहिए।

(५) विषमज्वर में—कच्चा करौंदा की जड़ पानी में घिसकर लेप करना चाहिए।

(६) शोफोदर पर—कच्चे करौंदा की जड़ गोमूत्र में पीसकर पीना चाहिए।

(७) अरुचि—करौंदा की चटनी चाटने से नष्ट होती है।

बेर

सं० बदरी, हिं० बेर, बं० बरई, म० बोर, गु० बोरडी, क० बेरलु, तै० रेगुचेट्टु, ता० रेयन्दि, फा० कुनार, अ० सीदरनवक, अं० जुजब-Jujub, और लै० झिझिफस जुजबा Zizyphus Jujuba.

विशेष विवरण—बेर का पेड़ प्रायः समस्त भारत में होता है। इसके पेड़ में काँटा होता है। छोटी, बड़ी एवं जगली आदि इसकी अनेक जातियाँ हैं। जगली को झरबेरी और कलमी को पेमदीबेर कहते हैं। बेर की एक और भी छोटी जाति है। इसे महाराष्ट्र में घोण्टी कहते हैं। बेर के पेड़ों में लाह खूब होती है। इसकी पत्तियाँ जानवर खाते हैं। छाल चमड़ा सिझाने के काम में आती है। बंगाल में इसकी पत्तियों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। इसकी लकड़ी कड़ी और कुछ लाल रंग की होती है। यह प्रायः खेती का सामान और मकान बनाने के काम में आती है। इसमें लम्बे फल लगते हैं। बेर के भीतर बड़ा कड़ा बीज होता है। बेर कच्चा-हरा और पक्का—पीला एवं मीठा होता है। कलम लगाकर फल बढ़ाया जाता है।

गुण—पच्यमानं सुमधुरं सौवीरं बदरं महत्।
सौवीरं बदरं शीतं भेदनं गुरु शुक्रलम्॥
बृंहणं पित्तदाहास्रक्षयतृष्णानिवारणम्।
सौवीरास्ल्यं सपक्वं मधुरं कोलमुच्यते॥

कोलं तु बदरं दाहि रुच्यमुष्णं च वातहृत्।
कफपित्तकरं चापि गुरु सारकमीरितम्॥
कर्कन्धूः क्षुद्रबदरं कथितं पूर्वसूरिभिः।
अम्लं स्यात्क्षुद्रबदरं कषायं मधुरं मनाक्॥
स्निग्धं गुरु च तिक्तं च वातपित्तापहं स्मृतम्।
शुष्कं भेदनमग्निकृत्सर्वं लघु तृष्णाक्लमास्रजित्॥ (भा० प्र०)

बड़ा और पककर मीठा हो गया हो, ऐसे बेर को सौवीर कहते हैं। सौवीर–बड़ा बेर—शीतल, भेदक, भारी, शुक्र जनक, पुष्टिकारक तथा पित्त, दाह, रक्तविकार, क्षय और तृषा शामक है। बड़े बेर से छोटे और उसे पककर मीठे हो जाने पर कोल कहते हैं। कोल, छोटे बेर—दाहजनक, रुचिकारक, गरम, वात नाशक, कफ-पित्तकारक, भारी और सारक हैं। छोटे बेर को कर्कन्धू कहते हैं। छोटा बेर—खट्टा, कषैला, मधुर, स्निग्ध, भारी, कड़वा और वात-पित्त नाशक है। सब प्रकार के सूखे बेर—भेदक, अग्निजनक, हलके तथा तृषा, श्रम और रक्त-दोष शामक हैं।

गुण—बदरीफलमज्जा तु तुवरा मधुरा मता।
शुक्रदा बलदा वृष्या कासश्वासतृषापहा॥
वातघ्नी छर्दिदाहघ्नी पित्तघ्ना मुनिभिर्मता। (नि० र०)

बेर की मींग—कषैली, मधुर, शुक्रजनक, बलवर्द्धक, वीर्य वर्द्धक तथा खाँसी, श्वास, तृषा, वात, वमन, दाह और पित्त नाशक है

गुण—बदरस्य पत्रलेपो ज्वरदाहविनाशनः।
त्वचा विस्फोटशमनी बीजं नेत्रामयापहम्॥ (रा० नि०)

बेर के पत्तों का लेप—ज्वर और दाह नाशक है। बेर की छाल—फोड़े को दूर करती है। बेर की मींग—नेत्ररोग निवारक है।

विशेप उपयोग (१) स्वर भंग पर—बेर की जड़ मुख में रखकर रस चूसना, अथवा बेर की पत्ती सेंककर सेंधा नमक के साथ खाना चाहिए।

(२) वालतोड़ पर—बेर की पत्ती पीसकर लगाना चाहिए।

(३) रक्तातीसार पर—बेर की छाल दूध में पीसकर और शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(४) मूत्रकृच्छ्र पर—पका बेर और जीरा खाना चाहिए।

(५) कण्ठरोग पर—जगली बेर की छाल घिसकर दिन में दो बार सेवन करना चाहिए।

(६) भस्मकरोग में—बेर के बीज अथवा छाल पानी में पीसकर पीना चाहिए।

(७) चेचक रोकने के लिए—बेर की पत्ती का रस भैंस के दूध में पीसकर पीना चाहिए।

(८) रक्तातीसार पर—बेर की जड़ और तेल सम भाग बकरी के दूध में देना चाहिए।

(९) रक्तक्षय, छाती का दर्द और क्षय पर—बेर अथवा पीपर की लाह दो तोले, पानी में पीसकर उससे चौगुने पेठा के रस में मिलाकर पिलाना चाहिए।

(१०) बिच्छू के विप पर—बेर और गूलर की पत्ती की गोली बनाकर दंश स्थान पर बाँधना चाहिए। अथवा पलास

का बीज और बेर का बीज मदार के दूध में भिगोकर बीज के ऊपर का छिलका निकालकर गोली बनाएँ। पानी में घिसकर दर्द स्थान पर लगाना चाहिए।

(११) वमन पर—बेर का बीज, बड़ का अकुर, मुरेठी और भूना हुआ चावल, काढ़ा करके एव शहद और चीनी मिलाकर पीना चाहिए।

(१२) उदर-शूल और कब्जियत पर—सूखे बेर का चूर्ण छ मारो और काला नमक दो मारो गरम पानी के साथ सेवन करना चाहिए।

चिरोंजी

स० प्रियाल, हि० चिरौंजी, ब० चिरोंजी पियाल, म० गु० चारोली, क० चार बीज, तै० सारुपपु, ता० काटमरा, फा० बुकलेखाजा, अ० हबुस्समाना, और लै० बुकेननिया लेटिफोलिया Buchanania Latifolia.

विशेष विवरण—चिरोंजी पेड़ का नाम नहीं है। यह पियार के फल की गिरी है। पियार का पेड़ साधारण, मझोला होता है। कोंकण, नागपुर और मालाबार प्रान्त में इसका पेड़ बहुत होता है। इसका पत्ता लम्बा और महुआ के पत्ते के समान होता है। इसके पत्ते पत्तल बनाने के काम में आते हैं। इसकी छाया बहुत ही शीतल होती है। इसकी लकड़ी खिलौना आदि बनाने के काम

में आती है। इसमें पहले आम के समान बौर लगती है। उसके गिरजाने पर फालसा के समान गोल-गोल फल लगते हैं। इन फलों के ऊपर का गूदा मीठा होता है। भीतर एक कड़े छिलके के बाद चिरौंजी होती है। यह बड़ी स्वादिष्ट और प्रिय होती है। इसका पेड़ चीरने पर एक प्रकार का गोंद निकलता है। कहीं-कहीं यह गोंद कपड़े में माड़ी देने के काम आता है। छाल वारनिश का काम देती है। इसका पेड़ जंगलों में आप-से-आप होता है। यह मिठाई और पकवानों में छोड़ी जाती है। इसका तेल निकाला जाता है; यह बादाम के तेल की तरह काम में आता है।

गुण—चारोळी मधुरा वृष्या चाम्ला गुर्वी सरा मता।
मलस्तम्भकरी स्निग्धा शीतला धातुवर्द्धिनी॥
कफकृद्दुर्जरा बल्या प्रिया वातविनाशिनी।
पित्तदाहज्वरतृषाक्षतरक्तप्रकृदोषनुत्॥
क्षतक्षय नाशयति तन्मज्जा मधुरा मता।
वृष्या च दाहपित्तघ्नी तत्तैलं मधुरं गुरु॥
किञ्चिदुष्णं कफकरं पित्तवातविनाशनम्। (नि० र०)

चिरौंजी—मधुर, वृष्य, भारी, अम्ल, सारक, मलस्तम्भक, स्निग्ध, शीतल, धातुवर्द्धक, कफकारक, दुर्जर, बलवर्द्धक, प्रिय, वात नाशक तथा पित्त, दाह, ज्वर, तृषा, क्षत-रोग, रक्तविकार और क्षतक्षय नाशक है। चिरौंजी की गिरी—मधुर, वीर्यवर्द्धक, दाह और पित्त नाशक है। चिरौंजी का तेल—मधुर, भारी, किंचित् गरम, कफकारक और पित्त-वात नाशक है।

विशेष उपयोग (१) रक्तातीसार पर—पियार की छाल दूध में पीसकर और शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(२) शीतपित्त पर—चिरौंजी दूध में पीसकर लेप करें

(३) मुहाँसों पर—चिरौंजी और नारंगी का छिलका दूध में पीसकर उबटन करना चाहिए।

खिरनी

स० राजादन, हि० खिरनी, ब० क्षीरिणी, म० खिरणी, गु० रायण, क० खेरो मारिले, ता० पल्ल, अँ० ओबटुस् लीव्ड माईमुसोप्स-Obtus Leaved Mimusaps, और लै० माईमुसोप्स हेक्सान्ड्रा-Mimusops Hexandra

विशेष विवरण—खिरनी का पेड़ ऊँचा, छतनार और बड़ा होता है। यह प्रायः सर्वत्र; परन्तु अधिकतर गुजरात में पाया जाता है। इसकी पत्ती बकुल की पत्ती की भाँति होती है। इसका फल निमकौड़ी की तरह होता है। इसमें से दूध निकलता है। इसका पका फल मीठा और स्वादिष्ट होता है। खिरनी की लकड़ी मजबूत और चिकनी होती है। रेशमी कपड़ों पर कुन्दी करनेवाले इसका औजार बनवाते हैं।

गुण—राजादनं हिमं स्निग्धं कषायं मधुरं गुरु।
स्वाद्वम्लपाकं समाहि वृष्यं विष्टम्भि बृंहणम् ॥
रोचनं मांसलं हन्ति दोषत्रयमदभ्रमान्।

मूर्च्छामोहतृषादाह रक्तपित्तक्षतक्षयान् ॥ (रा० नि०)

खिरनी—शीतल, स्निग्ध, कषैली, मधुर, भारी, स्वादिष्ट, पाक में अम्ल, मलरोधक, वीर्यवर्द्धक, विष्टम्भजनक, हृद्य, रोचक, मांसवर्द्धक, तथा त्रिदोष, मद, भ्रम, मूर्च्छा, मोह, तृषा, दाह, रक्तपित्त और क्षतक्षय नाशक है।

विशेष उपयोग (१) मृगी पर—खिरनी के पेड़ की गाँठ सेंककर रस निकालें, बाद उसमें शहद और छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(२) वात, पित्त, प्रदर और रक्तपित्त पर—खिरनी और कैथ की पत्ती घी में भूनकर चूर्ण बनालें और आवश्यकतानुसार सेवन करें।

(३) मासिक-धर्म होने के लिए—खिरनी के बीज की पोटली योनि में रखना चाहिए।

शरीफा

स० आतृप्त, हि० शरीफा, ब० आता, म० ते० सीताफल, गु० शीताफल, फा० काज, अ० सरीफा, अँ० कस्टर्ड एपल Custard Apple, और ले० एनोना स्केमोसा Anona Squamosa.

विशेष विवरण—शरीफा का पेड़ प्रायः बड़ा और समस्त भारत में होता है। यह जंगलों में अधिक पाया जाता है। इसकी छाल पतली, खाकी रंग की और लकड़ी कुछ मैलापन लिए सफेद

होती है। इसके पत्ते अमरूद के पत्तों के समान गोल और लट
टेढ़े होते हैं। इसमें एक प्रकार का त्रिदल फूल लगता है। ''
नीचे की ओर झुका रहता है। फूल तरकारी बनाने के काम आ
है। इसकी छाल, जड़ और पत्तियाँ औषध के काम आती हैं।
इसकी छाल अधिक रेचक होती है। बीज से एक प्रकार का तेल
निकलता है। इसमें से तीन प्रकार के गोंद निकलते हैं। इस वृ
में चार-पाँच वर्ष बाद फल लगते हैं। शरीफा में गोल, आँख
छिलका, हरा और काले रंग का होता है। उसके भीतर सफेद र
का गूदा होता है। उसमें काले और लम्बे बीज होते हैं। इस
सफेद भाग मीठा और स्वादिष्ट होता है।

गुण—सीताफलं तु मधुरं शीतं हृद्यं बलप्रदम्।
वातलं कफकृत्स्वादु पुष्टिकृत्पित्तनाशनम् ॥ (नि० र०)

शरीफा—मधुर, शीतल, हृदय को हितकारी, बलकारक
वातकारक, कफकारक, स्वादिष्ट, पुष्टिकारक और पित्त नाशक है।

विशेष उपयोग (१) सिर की जूँ मारने के लिए—शरीफे
का बीज महीन पीसकर सिर पर लेप करके मोटा कपड़ा बाँधना
चाहिए, किन्तु किसी प्रकार भी आँखों में न लगना चाहिए।
अन्यथा इससे आँखें खराब हो जाती हैं।

(२) मूत्राघात में—शरीफा की जड़ पानी में घिसकर पीयें।

(३) दाह पर—पका शरीफा रात भर ओस में रखकर
सुबह खाना चाहिए।

अननास

स० अननास, फौसुकसक्षक, हि० गु० अननास, च० अनानस, म० अननस, फ० अनासु, ता० तै० पारोगवालेतु, अँ० पाइन ऐपल-Pine-Apple, और लै० अनोना सेटिवास Anona Sativas

विशेष विवरण—अननास पहले भारतवर्ष में नहीं होता था; किन्तु थोड़े दिनों से यह विदेश से आया है, क्योंकि निघण्टु रत्नाकर के अतिरिक्त इसका विवरण अन्यत्र नहीं मिलता। अब भी यह बगाल प्रान्त में अधिक होता है। इसका पत्ता केवड़ा के पत्ते के समान होता है। इसका पेड़ अधिकतर खेतों के किनारे लगाया जाता है। इसमें काँटा होता है। इस पेड़ के बीच में फल होता है। इसमें सब जगह काँटा होता है। इसकी डाल काटकर जमीन पर लगाने से दूसरा पेड़ तैयार हो जाता है। इसके फल का रग लाल अथवा पीला होता है। यह खाने में स्वादिष्ट होता है। इसका मुरब्बा बनाया जाता है। इसके बीच का कड़ा भाग निकाल देना चाहिए। वह हानिकारक होता है। यदि कभी उसके बीच का भाग खाने में आजाय, तो उसके ऊपर प्याज, दही और चीनी खाना चाहिए। इसके पत्तों की चौरी बहुत सुन्दर बनती है। उपवास में अननास न खाना चाहिए। उपवास में यह विषतुल्य काम करता है। अननास गर्भिणी को न खाना चाहिए।

गुण—अमनासमपक्वं तु रुच्यं हृद्यं गुल्मेवम्।

कफपित्तकर चैव प्रोक्त चाश्मरोचकम् ॥
श्रम क्लम नाशयति तत्पक्व स्वादु पित्तहम् ।
रसास्रपविकार च नाशयेदिति कीर्तितम् ॥ (नि० र०)

कच्चा अननास—रुचिकारक, हृदय को हितकारी, भारी, कफ-पित्तकारक, श्रम रोचक तथा भ्रम और क्लम नाशक है। पक्का अननास—स्वादिष्ट, पित्त नाशक तथा रसविकार और बात-विकार नाशक है।

विशेष उपयोग (१) अजीर्ण पर—पका अननास नमक, मिर्च के साथ खाना चाहिए।

(२) कृमि पर—अननास खाना चाहिए।

(३) बहुमूत्र पर—पके अननास के बीच का भाग और छिलका निकालकर बाकी का रस निकाल लें और उसमें जीरा, जायफल, छोटी पीपर, काला नमक और अभ्रक का चूर्ण मिलाकर शक्ति के अनुसार पीना चाहिए। किन्तु अभ्रक बहुत कम मात्रा में देना चाहिए। अथवा अननास में छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर खाना चाहिए।

(४) पेट में बाल गया हो, तो—पका अननास खाना चाहिए। इससे बाल जन्य पीड़ा दूर हो जाती है।

पिस्ता

स० निकोचक, हि० गु० पिस्ता, य० पेस्ता गाद्द, म० पिस्ते,

फा० पिस्तां, अ० फिस्तक, अँ० पिस्टेशिओनट Pistachio-nut, और लै० पिस्टेशिया वेरा-Pistacia Vera

विशेष विवरण—पिस्ता का वृक्ष बड़ा होता है। यह पर्शिया, बुखारा और अफ़गानिस्तान के जंगलों में अधिक होता है। इस पर पतली छाल होती है। इसके पत्ते गुलचोनी के पत्तों के समान चौड़े होते हैं। एक सींक में तीन-तीन पत्ते होते हैं। पत्तों की नसें बहुत साफ होती हैं। रूमीमस्तगी के समान एक प्रकार का गोंद इसके पेड़ से निकलता है। पिस्ता के पत्तों पर भी काकड़ासिंगी के समान एक प्रकार की लाही जमती है। यह रेशम रंगने के काम आती है। पिस्ता के पेड़ पर महुआ के समान फल लगता है। इस फल पर छिलका पतला; परन्तु कड़ा होता है। फल की गिरी का रंग हरा होता है। उस पर कुछ लाल छींटे भी होते हैं। छाल समेत पिस्ता बोने से पेड़ लगता है। पिस्ता खाने में किंचित् कषैला और स्वादिष्ट होता है। इसे मिठाई और पाक आदि में छोड़ते हैं। इसका तेल पित्तशामक होता है। इस तेल का उपयोग रेशम पर चिरमिज़ी रंग चढ़ाने में होता है।

गुण—निकोचक गुरु स्निग्धं वृष्योष्णं धातुवर्द्धकम्।
रक्तप्रसादनं स्वादु बल्यं पित्तकरं मतम्॥
तिक्तं सरं च कफवातगुल्मत्रिदोषजित्। (नि० र०)

पिस्ता—भारी, स्निग्ध, वृष्य, गरम, धातुवर्द्धक, रक्त-शोधक, स्वादिष्ट, बलवर्द्धक, पित्तकारक, कड़वा, सारक, कफ नाशक तथा वात, गुल्म और त्रिदोष नाशक है।

विशेष उपयोग (१) वल-वृद्धि के लिए-पिस्ता बादाम, चिरौंजी और खसखस महीन पीसकर दूध में पकावें गाय का घी और चीनी मिलाकर सेवन करें।

(२) गठिया-पिस्ता खाने से नष्ट होती है।

(३) स्मरण-शक्ति के लिए-पिस्ता, बादाम, पके नारियल की गिरी, चीनी और घी एक साथ मिलाकर खाना एवं ऊपर से गाय का धारोष्ण दूध पीना चाहिए।

अजीर

स० अजीर, फाल्गुम्बरिका, हि० म० फा० अजीर, ब० आँजीर पेयारा, गु० अजरि, क० अंजिरी, ते० मेडी पड्डु, अ० तीन, अं० फिग्ट्री Figtree, और लै० फाइकस केरिया-Ficus Carica.

विशेष विवरण-अजीर का पेड़ विशेषतः उष्ण देश में होता है। अरबिस्तान, ईरान, तुर्किस्तान, ग्रीक और अफ्रिका के दक्षिण भाग में अजीर का पेड़ बहुत होता है। यह एक गूलर की ही जाति का फल है। इसकी बाहरी और भीतरी दोनों ही आकृति गूलर के समान होती है। गूलर की ही तरह इसमें भी फूल नहीं होता। पेड़ दस हाथ से अधिक ऊँचा नहीं होता। अजीर का पत्ता मोटा होता है। इसके कच्चे फल की तरकारी बनती है। पक्के अजीर का मुरब्बा बनता है। यह पित्त-शामक और रक्तवर्द्धक है। अजीर में रक्त बढ़ाने की विशेष शक्ति होती

है। निर्बल मनुष्यों को इसे प्रातःकाल खाना चाहिए। जाड़े में मुँह फटने पर अजीर के पत्ती की राख लगानी चाहिए। एक में गुथे हुए अरबिस्तान से इसके फल भारत में अधिक आते हैं। अजीर पर रंग चढ़ाने के लिए सुखाते समय गंधक का धूआँ देते हैं, अथवा नमक और शोरा मिले गरम पानी में डुबा देते हैं। भारत में पूना के पास खेड़ शिवपुर ग्राम में अजीर सबसे अच्छा होता है, परन्तु फारस और अरब का अजीर भारतीय अजीर से अधिक अच्छा होता है। अंजीर की शान्ति बादाम से होती है।

गुण—अजीरकं गुरु हिमं मधुरं च वात-
पित्तास्त्ररोगहरणं करणं रुचीनाम्।
सुस्वादु पाकरसयोर्गुरु शीतलं च
श्लेष्मामवातकरमस्त्रविकारहारि ॥ (शा० नि०)

अंजीर—भारी, ठण्डा, मधुर, वात नाशक, रक्तपित्त नाशक, रुचिकारक, पाक और रस में स्वादिष्ट एवं भारी, शीतल, कफ तथा आमवातकारक, और रक्त-विकार नाशक है।

विशेष उपयोग (१) शरीर की गरमी दूर करने और रक्त बढ़ाने के लिए—पके अजीर को छीलकर एक प्याला में भर दें और दूसरे में चीनी भर दें। पन्द्रह दिनों तक प्रातःकाल इसे खाना चाहिए।

(२) पुष्टि के लिए—अजीर और बादाम की गिरी गरम पानी में भिगो दें। बाद छिलका निकालकर मिश्री, इलायची, केसर, चिरौंजी, पिस्ता और बलदाना सम भाग लेकर गाय के घी

में भिगो दें। प्रतिदिन प्रातःकाल दो तोले तक खाना चाहिए। आठ वर्ष से अधिक उम्र के बालकों और निर्बलों के लिए हितकर, शीतल, रक्तवर्द्धक और धातुवर्द्धक है।

(३) गले और जीभ की सूजन पर—अजीर के क्वाथ का लेप करना चाहिए।

(४) फोड़ा और वद पर—ताजी अजीर पीसकर बाँधें।

(५) विरेचन के लिए—रात में सोते समय दो-तीन अजीर खाकर दूध पीना चाहिए। इससे प्रातःकाल साफ दस्त होता है।

(६) प्लीह और गुल्म पर—तीन अजीर, मकरू, सर फोका और सेंधा नमक दो-दो माशे एक पाव जल में पकाएँ। एक छटाँक बाकी रहने पर छानकर सुबह शाम पीना चाहिए। अधिक दस्त होने पर अजीर की मात्रा कम कर देनी चाहिए अन्यथा अतीसार और संग्रहणी होने का भय है।

फालसा

सं० परूषक, हि० म० बं० फालसा, ब० फलसा, गु० फ़ालसा फ० चेट्टदा, तै० पुटिका, फा० पालसा, अँ० एशियाटिक ग्रेविया Asiatic Grewia, और लै० ग्रेविया एशियाटिका-Grewia Asiatica.

विशेष विवरण—फालसा का पेड़ बहुत बड़ा नहीं होता इसका पेड़ उत्तर भारत में अधिक पाया जाता है। फालसा के

पेड़ में छड़ी के आकार की सीधी-सीधी डालियाँ चारों ओर लगती हैं। डालियों के दोनों ओर सात-आठ अंगुल लम्बे-चौड़े पत्ते लगते हैं। पत्तों का रंग ऊपरी भाग से नीचे का हलका होता है। डालियों में बराबर पीले-पीले फूलों के गुच्छे लगते हैं। फूलों के गिर जाने पर छोटे-छोटे फल लगते हैं। पकने पर फलों का रंग ललाई लिए भूरा होता है और स्वाद में खट मिट्ठा होता है। एक फल में एक या दो बीज होते हैं। इसे बीज समेत खाना चाहिए। गरमी में फालसा की ठंढाई पीनी चाहिए।

गुण—परूषकं कषायाम्लमामपित्तकर लघु।
सत्पकं मधुरं पाके शीतं विष्टम्भि बृंहणम्॥
हृद्यं तृट्पित्तदाहास्रज्वरक्षयसमीरहृत्॥ (भा० प्र०)

कच्चा फालसा—कषैला, खट्टा, पित्तकारक और हलका है। पका फालसा—मधुर, शीतल, विष्टम्भकारक, पुष्टिजनक, हृदय को हितकारी तथा तृषा, पित्त, दाह, रक्त-विकार, ज्वर, क्षय और वात नाशक है।

गुण—परूषत्वक्प्रमेहघ्नी योनिमेढ्रप्रदाहनुत्।
मूत्रदोष प्रशमनी शीतपित्तानिलापहा॥ (भा० सं०)

फालसा की छाल—प्रमेह नाशक, योनि और लिंग की दाह को नाश करनेवाली, मूत्र-दोष को नाश करनेवाली तथा शीतपित्त और वात नाशक है।

विशेष उपयोग (१) मूढ़ और मृतगर्भ निकालने के लिए—फालसा के जड़ का लेप नाभि, बस्ति और योनि पर करें।

में भिगो दें। प्रतिदिन प्रातःकाल दो तोले तक खाना चाहिए। आठ वर्ष से अधिक उम्र के बालकों और निर्बलों के लिए हितकर, शीतल, रक्तवर्द्धक और धातुवर्द्धक है।

(३) गले और जीभ की सूजन पर—अजीर के काढ़ा का लेप करना चाहिए।

(४) फोड़ा और वद पर—ताजी अजीर पीसकर बाँधें।

(५) विरेचन के लिए—रात में सोते समय दो-तीन अजीर खाकर दूध पीना चाहिए। इससे प्रातःकाल साफ दस्त होता है।

(६) प्लीह और गुल्म पर—तीन अजीर, मकोय, सरफोंका और सेंधा नमक दो-दो मासे एक पाव जल में पकाएँ। एक छटाँक बाकी रहने पर छानकर सुबह-शाम पीना चाहिए। अधिक दस्त होने पर अजीर की मात्रा कम कर देनी चाहिए अन्यथा अतीसार और संग्रहणी होने का भय है।

फालसा

स० परूषक, हि० म० बं० फालसा, म० फलसा, गु० फालसा, क० बेट्टहा, तै० पुटिका, फा० पालसा, अँ० एशियाटिक ग्रेविया Asiatic Grewia और लै० ग्रेविया एशियाटिका-Grewia Asiatica.

विशेष विवरण—फालसा का पेड़ बहुत बड़ा नहीं होता। इसका पेड़ उत्तर भारत में अधिक पाया जाता है। फालसा के

पेड़ में छड़ी के आकार की सीधी-सीधी डालियाँ चारों ओर लगती हैं। डालियों के दोनों ओर सात-आठ अंगुल लम्बे-चौड़े पत्ते लगते हैं। पत्तों का रंग ऊपरी भाग से नीचे का हलका होता है। डालियों में बराबर पीले-पीले फूलों के गुच्छे लगते हैं। फूलों के गिर जाने पर छोटे-छोटे फल लगते हैं। पकने पर फलों का रंग ललाई लिए भूरा होता है और स्वाद में खट मिट्ठा होता है। एक फल में एक या दो बीज होते हैं। इसे बीज समेत खाना चाहिए। गरमी में फालसा की ठंढाई पीनी चाहिए।

गुण—परूषकं कषायाम्लमामपित्तकरं लघु।
तत्पक्वं मधुरं पाके शीतं विष्टम्भि बृंहणम्॥
हृद्यं पित्तदाहास्रज्वरक्षयसमीरहृत्॥ (भा० प्र०)

कच्चा फालसा—कसैला, खट्टा, पित्तकारक और हलका है। पक्का फालसा—मधुर, शीतल, विष्टम्भकारक, पुष्टिजनक, हृदय को हितकारी तथा तृषा, पित्त, दाह, रक्त-विकार, ज्वर, क्षय और वात नाशक है।

गुण—परूषत्वक्प्रमेहघ्नी योनिमेढ्रप्रदाहनुत्।
मूत्रदोषप्रशमनी शीतपित्तानिलापहा॥ (भा० स०)

फालसा की छाल—प्रमेह नाशक, योनि और लिंग की दाह को नाश करनेवाली, मूत्र-दोष को नाश करनेवाली तथा शीतपित्त और वात नाशक है।

विशेष उपयोग (१) मूढ़ और मृतगर्भ निकालने के लिए—फालसा के जड़ का लेप नाभि, बस्ति और योनि पर करें।

(२) दाह की शान्ति के लिए—पका फालसा चीनी के साथ खाना चाहिए।

(३) पित्त विकार और हृद्रोग पर—पका फालसा का रस; पानी, जीरा, सोंठ और चीनी मिलाकर पीना चाहिए।

(४) अरुचि में—फालसा, सेंधा नमक और काली मिर्च के साथ खाना चाहिए।

(५) मूत्रकृच्छ्र और प्रमेह पर—फालसा की छाल एक तोला, एक पाव पानी में शाम के समय भिगो दें। प्रातःकाल उसे मल-छानकर मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

सहतूत

सं० तूत, हि० सहतूत, ब० तूँत, म० तूर्ते, गु० शेतूत, क० मधुकद्र इचेद्धि, ते० कम्बलिचेद्द्रु, फा० शाहतूत, अ० तूत, अँ० मलबेरिज् Mulberries, और लै० मोरस इण्डिका Morus Indica.

विशेष विवरण—सहतूत का पेड़ चीन में अधिक होता है भारतवर्ष में यह कहीं-कहीं पाया जाता है। इसका पेड़ बहुत बड़ा नहीं होता। यह काला, लाल और सफेद तीन जाति का होता है काले और लाल सहतूत में फल वर्षा ऋतु में आते हैं। इसका फल मीठा होता है। काले और लाल सहतूत का फल रेशम के कीड़े के पालने के काम आता है। वे कीड़े इसका पत्ता खाकर रेशम पैदा करते हैं। चीन में रेशम बहुत पैदा होता है। इसके प

फालसा के पत्तों से मिलते-जुलते, परन्तु उससे कुछ लम्बे और मोटे होते हैं। किसी किसी पत्ते के सिरे पर फाँकें भी फटी होती हैं। फूल मजरी के रूप में लगते हैं। उन्हीं मजरियों से बढ़कर ये लम्बे-लम्बे फल लगते हैं। इन फलों के ऊपर गोल दाने होते हैं। उनके ऊपर रोएँ से मालूम पड़ते हैं। फलों के भेद से सहतूत कई प्रकार का होता है। किसी के फल छोटे, गोल, किसी के लम्बे; किसी के हरे और किसी के लाल अथवा काले होते हैं। सहतूत यूरप, एशिया के अनेक भागों में भी पाया जाता है। इधर पजाब, बगाल आदि में इसपर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। इसकी लकड़ी भारी और मजबूत होती है। यह खेती, खिलौने और नाव आदि के बनाने में काम आती है। सहतूत का शर्बत भी बनाया जाता है।

गुण—तूल पक्व गुरु स्वादु हिम पित्तानिलापहम्।
तदेवाम गुरु सरमम्लोष्ण रक्तपित्तकृत्॥ (भा० प्र०)

पका सहतूत—भारी, स्वादिष्ट, शीतल तथा पित्त और वात नाशक है। कच्चा सहतूत—भारी, सारक, खट्टा, गरम और रक्त-पित्त कारक है।

विशेष उपयोग (१) पित्त और रक्त-विकार की शान्ति के लिए—गरमी के दिनों में सहतूत दोपहर के समय खाना चाहिए।

(२) रक्तपित्त, अम्लपित्त, कब्जियत और गरमी की शान्ति के लिए—सहतूत के रस में चीनी मिलाकर चाशनी

पनमर्ले और प्रतिदिन प्रातःकाल दो तोले की मात्रा पानी में मिला कर पीना चाहिए।

(३) भूख लगने और पीले रंग के पेशाब की शान्ति के लिए—पके सहतूत का रस चीनी के शर्बत में मिला कर पीना चाहिए।

लिसोड़ा

स० श्लेष्मातक, हि० लिसोड़ा, ब० बहुयार, म० शेलवट, गु० गुन्दोमोटो, गु दीनानी, क० चेल्लुगोंदिगी, तै० नाकेरु, ता० विरि, फा० सिपिस्तान्, अ० सेफिस्तान वृक्ष, अँ० सेबेस्टन प्लम Sebosten Plum, और लै०-कोर्डिया मिक्सा-Cordia Myxa

विशेष विवरण- लिसोड़ा दो-तीन प्रकार का होता है। इसका पेड़ जंगल और बागों में होता है। लिसोड़ा कच्चा हरे ० का और पक्का लाल होता है। यह सुपारी बराबर होता है लिसोड़ा के भीतर से गोंद की तरह रस निकलता है। इसका शाक और आचार बनता है। पका लिसोड़ा खाने में मीठा होता है। यह पौष्टिक है; परन्तु अधिक खाने से खाँसी पैदा होती है। लिसोड़ा से सफेद गोंद निकलता है। लिसोड़ा गुच्छेदार होता है। पकने पर भीतर लसदार गूदा होता है। यह गोंद की भाँति चिपकता है। इसे हकीमलोग खाँसी में देते हैं। इसके पत्ते बीड़ी बनाने के काम आते हैं। छाल के रेशे से रस्से बटे जाते हैं। भीतर की लकड़ी बड़ी

मजबूत होती है और नाव तथा खेती का सामान बनाने के काम आती है।

गुण—श्लेष्मातं कटु शीतलं च तुवरं स्यात्पाचकं माधुरं ।
स्निग्धं केश्यपथ्यसतं त्वथ कृमीन्छूलामरक्तापहम् ॥
विस्फोटव्रणपित्तमाद्यमकरं वीसर्पसर्वं विषं हन्ति ।
ह्रस्वं फलं तु शीतमधुरं तिक्तं लघुस्तूवरम् ॥
वायोर्वृद्धिकरं च पित्तशमनं विष्टम्भि रुच्यं तथा ।
रक्तार्ति कफनाशनं च गदितं पक्वं तथा माधुरम् ॥
स्निग्धं शीतमपूर्णं निगदितं विष्टम्भि रूक्षं गुरु ।
वायोर्नाशकरं च पित्तशमनं स्यादुक्तदोषापहम् ॥ (नि॰ र॰)

लिसोड़ा—कड़वा, शीतल, कषैला, पाचक, मधुर, स्निग्ध, केशों को हितकारी, कफकारक तथा कृमि, शूल, आमरक्त, विस्फोट, व्रण, पित्त, वीसर्प और सब प्रकार के विषों का नाश करता है। कच्चा लिसोड़ा—शीतल, मधुर, तिक्त, हलका, कषैला, वातवर्द्धक, पित्त शामक, विष्टम्भी, रुचिकारक तथा रक्तविकार, नेत्रविकार और कफ नाशक है। पक्का लिसोड़ा—मधुर, स्निग्ध, शीतल, पुष्टिकारक, विष्टम्भकारक, भारी, वात नाशक, पित्त-शामक और रक्तविकार नाशक है।

विशेष उपयोग (१) अतीसार पर—लिसोड़ा की छाल पानी में घिसकर पीना चाहिए।

(२) विषूचिका पर—लिसोड़ा की छाल और चणक-क्षार पानी में घिसकर पीना चाहिए।

(३) खाँसी—पका लिसोड़ा का काढ़ा पीने से नष्ट होती है।

अगूर, किसमिस और दाख

स० द्राक्षा, हि० अगूर, किसमिस, दाख, म० किसमिस, मनक्का; अंगुर, म० द्राक्ष, किसमिस, गु० घराख, किसमिस, क० द्राक्षे, ते० द्राक्षा, किसमिस, ता० कोडिमण्डी, फा० अगूर, मुनक्का, दानेमबीज, अ० कीसमिस, एनब्जबवि, हबुसजबीब, अँ० ग्रेप रेजिन्स-Grape Raisins, और लै०-वाइटिस वेनिफेरा Vitis Venifera.

विशेष विवरण—अगूर की लता होती है। यह दीवारों पर फैलाई जाती है। यह लगाने से तीन वर्ष बाद फलती है। इसकी पत्तियाँ कोंहड़ा या नेनुआ की पत्तियों से मिलती-जुलती होती हैं। इसके फल छोटे, बड़े, लम्बे, गोल कई आकार के होते हैं। फल गुच्छों में लगते हैं। इसका पेड़ प्राय सब जगह होता है। भारत में हरा, काला और सफेद तीन प्रकार का होता है। सबों में मीठा, सफेद अगूर होता है। भारतीय अगूर हरे रंग का होता है। अफगानिस्तान, पर्शिया और मस्कव आदि देशों में अगूर बहुत होता है। यह बड़ा-छोटा दो प्रकार का होता है। उपर्युक्त देशों से ही भारत में हरा और सूखा अगूर बिकने आता है। किसमिस, मुनक्का और आबजोश, अगूर को ही सुखाकर बनाया जाता है। किसमिसवाला अगूर बिना बीज

का होता है। सुखाकर किसमिस बनाते हैं। मुनक्कावाला अंगूर काला और बड़ा होता है। केछारवाले हरे अंगूर को चूना और सज्जीखार के साथ गरम पानी में डुबाकर आबजोश और किसमिसी को सुखाकर किसमिस बनाते है। काले बीजवाले अंगूर को सुखाकर मुनक्का बनाया जाता है। अंगूर की पत्ती जानवरों को खिलाई जाती है। लकड़ी का कहीं-कहीं काला रंग बनाया जाता है।

गुण—द्राक्षा पक्वा सरा शीता चक्षुष्या बृंहणी गुरुः।
स्वादुपाकरसा स्वर्या तुवरा सृष्टमूत्रविट्॥
कोष्ठमारुतकृद्वृष्या कफपुष्टिरुचिप्रदा।
हन्ति तृष्णाज्वरश्वासवातवातास्रकामलाः॥
कृच्छ्रास्रपित्तसम्मोहदाहशोषमदात्ययान्।
आमा स्वल्पगुणा गुर्वी सैवाम्ला रक्तपित्तकृत्॥
वृष्या स्याद्गोस्तनी द्राक्षा गुर्वी च कफपित्तनुत्।
अबीजान्या स्वल्पतरा गोस्तनी सदृशी गुणैः॥
द्राक्षापर्वतजा लघ्वी साम्ला श्लेष्माम्लपित्तकृत्।
द्राक्षा पर्वतजा यादृक् तादृशी करमर्दिका॥ (भा० प्र०)

पक्की दाख—सारक, शीतल, नेत्रों को हितकारी, बृंहण, भारी, रस और पाक में स्वादिष्ट, स्वरशोधक, कषैली, मूत्र और मल को निकालनेवाली, कोष्ठ में वात करनेवाली, वृष्य, कफकारक, पुष्टिकारक, रुचिकारक तथा तृषा, ज्वर, श्वास, वात, वातरक्त, कामला, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, मोह, दाह, शोथ और मदात्ययरोग नाशक है। अंगूर—स्वल्प गुणवाला, भारी, खट्टा और रक्तपित्त-

कारक है। कालीदाख—वीर्यवर्द्धक, भारी और कफ-पित्त नाशक है। किशमिश—कालीदाख के समान गुणोंवाली है। पर्वतीदाख-हलकी, खट्टी, कफ और अम्लपित्तकारक है। करमर्दिका दाख-पर्वतीदाख के समान गुणोंवाली है।

विशेष उपयोग (१) अम्लपित्त, कलेजे की जलन, तृषा, मंदाग्नि और आमवात पर—अंगूर और छोटी हर्रे सम भाग उसके बराबर चीनी मिलाकर प्रतिदिन एक तोला खाना चाहिए।

(२) धतूरा का विष—अंगूर का सिरका दूध में खाने से नष्ट होता है।

(३) हरताल और पीतल के विष पर—छोटा अंगूर एक तोला, एक पाव दूध में मिलाकर वमन कराने के बाद पीवें।

(४) धातुक्षय पर—अंगूर, चीनी, शहद और छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर खाना चाहिए।

(५) तृषा पर—कालीदाख और मुलेठी का काढ़ा पीवें।

(६) मूर्छा पर—अंगूर और आँवला के काढ़े में शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(७) सन्निपातज्वर में यदि जीभ में छाले पड़े हों, तो-दाख, शहद में घोटकर जीभ पर लगाना चाहिए।

(८) मूत्र विरेचन के लिए—कालीदाख रात के समय जल में भिगो दें, प्रातःकाल छान लें और जीरा का चूर्ण मिलाकर अपनी शक्ति के अनुसार एक सेर तक पीना चाहिए।

(९) क्षतजन्य कास पर—कालीदाख एक पाव,

ताजा घी एक पाव और शहद एक छटाँक, मिट्टी के बर्तन में भर-कर धान के ढेर में गाड़ दें। पन्द्रह दिन अथवा एक महीना बाद निकालकर सुबह शाम दो तोले तक खाना चाहिए।

(१०) शूल पर—अंगूर और अड़सा का काढ़ा पीएँ।

(११) जीभ, तालू गला और मुँह के सूखने पर—मुनक्का और आँवला पीसकर घी में मिलाकर मुँह के भीतर लगाना चाहिए और दोनों की गोली मुँह में रखकर चूसना चाहिए।

(१२) पित्तज्वर में—अंगूर और अमिलतास का काढ़ा पीना चाहिए।

(१३) चेचक और गोखरू की गरमी निकालने के लिए—आठ तोले किसमिस, एक तोला गुरिच का सत, तीन तोले चीनी और एक तोला जीरा का चूर्ण करके मिट्टी के बर्तन में भरकर गाय के घी से तर करें, प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल छः माशे से दो तोले तक सेवन करना चाहिए।

(१४) मस्तक की गरमी और पित्त की शांति के लिए—किसमिस दो तोले, गाय के आध सेर दूध में पकाकर रात में सोते समय पीना चाहिए।

(१५) मूत्रकृच्छ्र पर—काली दाख पानी में भिगो दें और चीनी मिलाकर पी जायँ।

(१६) पित्त विकार पर—काली दाख, रात के समय पानी में भिगो दें। सुबह मल छानकर जीरा का चूर्ण और चीनी मिलाकर पीना चाहिए।

(१७) पित्त शमन के लिए—अगूर और शहद खाएँ।

(१८) मूत्रकृच्छ्र और भूमरमीर पर—दाख का फाढ़ा पीना चाहिए।

(१९) मन्दज्वर पर—कालीदाख दस दाना, काली मिर्च पाँच दाना और मिश्री दो तोले, आध पाव पानी में पीसकर सुबह शाम पीना चाहिए।

(२०) खाँसी और श्वास पर—दाख सेंककर नमक मिर्च के साथ खाना चाहिए।

(२१) मंदाग्नि, बद्धकोष्ठता, यक्ष्मा, ज्वर, खाँसी, श्वास, मूर्च्छा, तृषा, जुकाम और बवासीर पर—कालीदाख सवा सेर, गुड़ पाँच सेर, धव का फूल बीस तोले, वायविडङ्ग, प्रियगु का फूल, छोटी इलायची, दालचीनी, छोटी पीपर, तेजपत्ता, नाग केसर और काली मिर्च दो-दो तोले सब चीजों को साफ और कूट करके मिट्टी के बर्तन में भर दें। ऊपर से गरम जल दस सेर छोड़कर मुँह बन्द करके बीस दिनों तक जमीन में गाड़ दें। बाद छानकर रख लें। एक तोला से दो तोले तक चौगुने जल के साथ सुबह शाम पीना चाहिए।

नोट:—क्षिगार्ता पर—एक जैन गोरजी का किया हुआ अनुभवी उप चार—आधसेर दाख, रात के समय पानी में भिगो दें। प्रातःकाल उसे और बीया निकालकर दाख ले लें और उसमें मजीठ, चन्दन का चूरा और छोटी इलायची ढाई-ढाई तोले और सोनामुखी दस तोले मिला और पीसकर बत्तीस गोलियाँ बनाएँ। प्रतिदिन सुबह एक-एक गोली खाना चाहिए।

मूँगफली

स० मण्डपी, हि० मूँगफली, म० भुईमुग्याचारोंगा, गु० मांडवी, फा० मुलीयन मेल, अ० शेपवान, अँ० ग्राउण्डनट् पिनट्-Ground-nut, Peanut, और लै० आरेकिस हिपोजिया Arachis Hypogeae

विशेष विवरण—इसकी खेती प्राय भारतवर्ष में सभी जगह होती है। इसका पेड़ तीन-चार फुट तक ऊँचा होकर चारों ओर फैलता है। इसके डठल रोएँदार होते हैं। सींकों पर दो-दो जोड़े पत्ते होते हैं। ये चकवड़ के पत्तों के समान आकार के होते हैं; परन्तु उससे कुछ लम्बे होते हैं। सूर्यास्त होने पर इसके पत्ते आपस में जुड़ जाते हैं। सूर्योदय होने पर पुन अलग हो जाते हैं। इसमें अरहर के फूल जैसे चमकीले और पीले रंग के दो-तीन फूल लगते हैं। इसके ऊपर कड़ा और खुरदरा छिलका होता है। उसके भीतर गोल और लम्बी, लाल छिलकेवाली गिरी निकलती है। यह कुछ कपैली, मीठी और स्वादिष्ट होती है। यह कच्चा अथवा ऊपर के कड़े छिलके समेत भाड़ में भूनकर और छीलकर खाया जाता है। इससे तेल भी निकलता है। यह तेल आजकल घी में मिलाया जाता है।

गुण—मण्डपी मधुरा स्निग्धा वातघ्ना कफकारिका।
ग्राहिका बलवर्चोदा तथैव तद्गुण स्मृतम्॥ (शा० नि०)

मूँगफली—मधुर, स्निग्ध, वातल, कफकारक, मलरोधक

और मल को बाँधनेवाली है। मूँगफली के तेल का गुण भी इसी के समान है।

विशेष उपयोग (१) दाद पर—मूँगफली की गिरी पारिजात के रस अथवा पानी में घिसकर लगाना चाहिए।

(२) मधुमेह—मूँगफली के आटे की रोटी खानी चाहिए।

काजू

स० काजूतक, हि० काजू, म० काजचें झाड़, गु० काजुमसिया, लै० गवमामोक, फा० बादाम फिरंगी, अँ काशेवनट्-Cachewnut, और लै० एनाकार्डियम ओक्सडेन्टली Anacardium Occedentale

विशेष विवरण—यह वृक्ष अफ्रिका एवं भारत में मलाबार, गोमातक और कर्नाटक आदि में अधिक होता है। इसका पेड़ अधिक बड़ा नहीं होता। यह सफेद और काली दो जाति का होता है। पथिक लोग पथ से श्राक्षान्त होने पर इसकी सुखद छाया में बैठकर श्रम दूर करते और इसके फल खाकर भूख मिटाते हैं। इसकी छाल बहुत खरखरी और लकड़ी लाल होती है। इसकी लकड़ी सन्दूक आदि बनाने के काम में आती है। इसके फलों की गिरी भूनकर खाई जाती है। इसके फल के ऊपरवाले कड़े छिलके से एक प्रकार का तेल निकलता है। यह तेजाब की भाँति तेज होता है। इस तेल के शरीर में लगने से छाले पड़ जाते हैं। यह

तेल, पुस्तकों पर छिड़क देने से दीमकों का डर नहीं रहता। यह मीठा और स्वादिष्ट होता है। अधिक खाने से हानि करता है। इसके पेड़ से एक प्रकार का दूध निकलता है, यह नाव में लगाया जाता है। इससे नाव पर जल का प्रभाव नहीं पड़ता।

गुण—काजूतकस्तु तुवरो मधुरोष्णो लघुः स्मृतः।
धातुवृद्धिकरो वातकफगुल्मोदरज्वरान्॥
कृमिव्रणाग्निमांद्यानि कुष्ठं च श्वेतकुष्ठकम्।
समहण्यर्शआमाद्याशयेदिति कीर्तितः॥ (नि॰ र॰)

काजू—कषैला, मधुर, गरम, हलका, धातुवर्द्धक तथा वात, कफ, गुल्म, उदर-रोग, ज्वर, कृमि, व्रण, मदाग्नि, कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, संग्रहणी, बवासीर और अफरा नाशक है।

विशेष उपयोग (१) पैरों की कमजोरी पर—हरे काजू का दूध लगाना चाहिए।

(२) घाव शीघ्र फोड़ने के लिए—काजू और चीवर का फल घिसकर लेप करना चाहिए।

(३) जलविकार पर—काजू का डंठल अंकुर समेत नमक, मिर्च के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल तीन-चार दिनों तक खाना चाहिए।

(४) वीर्य की वृद्धि के लिए—काजू और बबूल का गोंद घी में भूनकर चीनी की चाशनी में मिलाकर रख दें। सुबह शाम खाकर ऊपर से दूध पीना चाहिए।

(५) गुल्मरोग में—काजू और सेंधा नमक खाना चाहिए।

जामुन

स० जम्बू, हि० जामुन, ब० जामगाछ, म० जांमूल, गु० ॰ क० निरलु, तै० नेरडु, ता० जवुनावल, अँ जांयल ट्री Tree और लै० युजिनिया जाम्बोलेना Eugenia Jambolana

विशेष विवरण—जामुन का पेड़ बड़ा होता है। लकड़ी का छिलका सफेद होता है। पत्तियाँ आठ-दस अंगुल लम्बी, तीन-चार अंगुल चौड़ी, बहुत चिकनी, मोटे दल की और चमकीली होती हैं। वैसाख-जेठ में इसमें मंजरी लगती है। गिरजाने पर गुच्छों में सरसों बराबर के फल लगते हैं। वे पर दो-तीन अंगुल तक के लम्बे-बेर के बराबर फल लगते हैं। बरसात के आरम्भ में ये सब पकने लगते हैं। पकने बैंगनी रंग के तथा खूब पक जाने पर काले होते हैं। भीतर लिए सफेद होते हैं। फल के भीतर एक कड़ा बीज होता है। इसका स्वाद कषैला होता है। जामुन की अनेक जातियाँ हैं। जंगली जामुन का फल छोटा और खट्टा होता है। नदी के ॰ जामुन के पत्ते कनेर के पत्ते के समान होते हैं। बड़ी जामुन पत्ते पीपल के पत्ते के समान होते हैं। जिस जामुन का पेड़ ॰ में होता है, उसका फल बड़ा और मीठा होता है। अधिक खाने से हानि होती है। जामुन की छाया बड़ी शीतल और ॰ होती है। जामुन की लकड़ी चिकनी और मजबूत होती है। पानी में भी नहीं सड़ती। तालाब में सेवार पड़ जाने पर ॰

माद छोड़ते हैं। इससे सेवार नष्ट होकर जल साफ हो जाता है।

जामुन का सिरका बनाया जाता है। यह सिरका गुल्म, अती सार, उदर-रोग और विपूचिका में लाभदायक है। जामुन खाकर दूध पीने से विपूचिका रोग होता है।*

गुण—जम्बूफलस्तु तुवरो ग्राही मधुर पाचकः।
मलस्तम्भकरो रूक्षो रुधिरपित्तदाहहा ॥

---

* नोट—जामुन का सिरका पेट की पीड़ा नाश करनेवाला है। साथ ही बहुमूत्रकारक भी है। इसके रस को शराब में मिलाकर प्राचीन वैद्यक ग्रंथों के अनुसार एक प्रकार का आसव तैयार किया जाता है। इसकी छाल—फीकी और स्तम्भक होने के कारण अन्य औषधियों के साथ बफाकर दाँतों के दर्द की दवा और घाव धोने के काम में आते हैं। छोटे बालकों का दस्त रोकने के लिए जामुन की छाल का रस दूध में मिलाकर देते हैं। मखजन अलअदविया के लेखक का मत है कि पित्तजन्य अतीसार में जामुन खाने से अधिक लाभ होता है। गले की सूजन में भी लाभ होता है। इन्फ्लुएंजा रोग पर भी इसका रस लाभदायक है। छाल, बीज और पत्तियाँ बहुत ग्राही हैं। पके जामुन को निचोड़कर उसका शर्बत पीने से पेट की पीड़ा अच्छी होती है। यह शर्बत पुराने दस्त के रोगों पर भी काम करता है।

चरक में जामुन और उसकी छाल को मूत्रसंग्राही और मल बदलने वाला कहा है। सुश्रुत में इसे रक्तपित्तहारक, दाह नाशक, रूक्ष, योनि दोष नाशक और मलस्तम्भक कहा है। जामुन का सिरका प्लीहा नाशक है। जामुन का बीज, औषधियों के योग से बहुमूत्र और मधुमेह नाशक है।

भस्मा कण्ठ्य' कृमिश्वासशोषातीसारकासहा ।

रक्तदोषं कफं चैव व्रणं चैव विनाशयेत् ॥ (शा० नि०)

जामुन के पेड़ की छाल—कषैली, मलरोधक, मधुर, पाचक, मलस्तम्भक, रूखी, रुचिकारक तथा पित्त और दाह नाशक, खट्टी, कण्ठ को हितकारी तथा कृमि, श्वास, शोष, अतीसार, खाँसी, रक्त-दोष, कफ और व्रण नाशक है।

गुण—जाम्बवं गुरु विष्टम्भि कषाय स्वादु शीतलम् ।

अग्निसंदूपणं रूक्ष वातलं कफपित्तजित् ॥ (शा० नि०)

जामुन का फल—भारी, विष्टम्भकारक, कषैला, स्वादिष्ट शीतल, अग्नि-दूषक, रूखा, वातकारक तथा कफ और पित्त नाशक है।

गुण—जम्ममज्जा मधुरा ग्राही विशेषान्मधुमेहहा ।

तदङ्कुरा हिमा रूक्षा ग्राहकाध्मानकारका ॥ (शा० नि०)

जामुन का बीज—मधुर, ग्राही और विशेष करके मधुमेह नाशक है। जामुन का अंकुर—शीतल, रूखा, ग्राही और आध्मान कारक है।

विशेष उपयोग (१) गरमी की छोटी-छोटी फुंसियों पर—जामुन का बीज पानी में घिसकर लगाना चाहिए।

(२) रक्तातीसार पर—जामुन की छाल अथवा पत्ती के रस में, क्रम से छाल में दूध, शहद और पत्ती में दूध, शहद और घी मिलाकर पीना चाहिए।

(३) बिच्छू के दंश पर—जामुन की पत्ती का रस

लगाना चाहिए।

(४) पित्त पर—जामुन की पत्ती का रस और गुड़ एक एक तोला गरम करके खाना चाहिए।

(५) गर्भिणी के अतीसार पर—जामुन और आम की छाल के काढ़े में धनियों का चूर्ण और जौ का आँटा एक एक तोला मिलाकर पीना चाहिए, अथवा जामुन खाना चाहिए।

(६) मधुमेह पर—जामुन की छाल अथवा जामुन के बीज का चूर्ण दो तोले तक खाना चाहिए। अथवा पन्द्रह दिनों तक जामुन खाना चाहिए।

(७) मुखरोग पर—जामुन, बबूल, बेर और मौलसिरी की छाल में से कोई भी छाल, जल में पका और ठंडा करके कुल्ला करना चाहिए। इनकी पतली टहनियों से दातुन करना चाहिए। इससे मुखरोग नष्ट होकर दाँत मजबूत होते हैं।

(८) अतीसार पर—जामुन की छाल का रस पीएँ।

(९) वत्सनाग का विष—जामुन के छाल का रस और काँजी सम भाग मिलाकर पीने से नष्ट होता है।

(१०) पित्तविकार पर—जामुन के छाल का रस दूध में मिलाकर पीना चाहिए। इससे वमन होकर पित्त निकल जाता है। घी और भात खाने से शान्त होता है।

(११) पेट में बाल और लोहा जाने पर—जामुन खाना चाहिए।

(१२) वमन पर—जामुन के छाल की राख, शहद के

साथ सेवन करनी चाहिए।

(१३) अतीसार, विषूचिका और उदर-रोग आदि पर—जामुन का रस छानकर बोतलों में भरकर रख दें। जैसे-जैसे अधिक खट्टा होगा, वैसे-वैसे अधिक गुणदायक होगा। यही जामुन का सिरका कहा जाता है। इसे छ: माशे से दो तोले तक दें।

(१४) मधुमेह पर—जामुन का बीज और गुड़मार की पत्ती, सम भाग ठंडे जल के साथ सेवन करना चाहिए।

(१५) अरुचि पर—जामुन नमक-मिर्च के साथ खाएँ।

कसेरू

सं० कसेरु, हि० कसेरू, ब० केशुर, म० कचरा, गु० कचरो, क० सेकिन्गुड्डे, तै० इट्टिकोति, और लै० सिर्पस् ग्रोसस-Scirpus Grossus.

विशेष विवरण—तालाब के आस-पास, दो-तीन हाथ नीचे कीचड़ में मोथा का पेड़ होता है। उसी के जड़ को कसेरू कहते हैं। घास सूखने पर कीचड़ में से इसे निकालते हैं। कसेरू छीलकर खाया जाता है। कसेरू और पौंड़े का रस दूध में पकाकर खाया जाता है। इसे 'दूध कसेरू' कहते हैं। कसेरू का रस, दूध और चीनी मिलाकर पीया जाता है। कसेरू का छिलका काला और रोएँदार होता है। कसेरू बड़ा स्वादिष्ट होता है। यह दो प्रकार का होता है।

गुण—कसेरुकद्वयं शीतं मधुरं तुवरं गुरु ।
पित्तशोणितदाहघ्नं नयनामयनाशनम् ॥
ग्राहि शुक्रानिलश्लेष्मारुचिस्तन्यकरं स्मृतम् । (भा० प्र०)

दोनों प्रकार का कसेरू—शीतल, मधुर, कपैला, भारी, रक्तपित्त नाशक, दाह नाशक, नेत्र-रोग हरनेवाला, मल-रोधक, शुक्रजनक तथा वात, कफ, रुचि और स्तनों में दूध पैदा करता है।

विशेष उपयोग (१) बल और वीर्य की वृद्धि के लिए—कसेरू का रस, दूध और चीनी के साथ मिलाकर पीएँ ।

(२) पित्त शमन के लिए—कसेरू के रस में चीनी मिलाकर चासनी पका लें; प्रतिदिन सुबह-शाम दो तोले तक पानी में मिलाकर पीना चाहिए ।

(३) दाह और प्यास पर—कसेरू खाना चाहिए ।

कदंब

सं० कदम्बक, हिं० गु० ता० अ० कदंब, बं० कदम गाछ, म० कलंब, क० कडव, तै० कडिमि चेट्टु, अँ० वाइल्ड सिनकोना-Wild Cinchona, और लै० ऐंथोसिफलस् केडंबा Anthocephalus Cadumba.

विशेष विवरण—कदंब का पेड़ सब जगह होता है। इसका पत्ता महुआ के पत्ता के समान; परन्तु उससे छोटा और चमकीला होता है। इसमें गोल-गोल लड्डू जैसे पीले रंग के फूल लगते हैं।

पीछे किरणों के गिर जाने पर गोल और हरा फल रह जाता है। यह पकने पर कुछ लाल हो जाता है। इसका स्वाद—खट-मिट्ठा होता है। इसकी चटनी और अचार बनता है। इसके लकड़ी की नाव आदि बनाई जाती हैं। प्राचीन समय में इसके फलों की एक प्रकार की मदिरा बनाई जाती थी, जिसे 'कादम्बरी' कहा जाता था। इस वृक्ष पर गोंद भी होती है।

गुण—कदम्बः कटुकस्तिक्तो मधुरस्तुवरः पटुः ।
शुक्रवृद्धिकरः शीतो गुरुर्विष्टम्भकारकः ॥
रूक्षः स्तन्यप्रदो ग्राही वर्णकृद्योनिदोषहा ।
रक्तरुङ्मूत्रकृच्छ्रं च वातपित्तं कफं व्रणम् ॥
दाहं विषं नाशयति अंकुरस्तस्य तूवरः ।
शीतवीर्यो दीपनश्च रुच्योरोचकापहः ॥
रक्तपित्तातिसारघ्नः फलं रुच्यं गुरु स्मृतम् ।
उष्णवीर्यं कफकरं तत्पक्वं कफपित्तजित् ॥
वातनाशकरं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । (शा॰ नि॰)

कदम्ब—चरपरा, कड़वा, मधुर, कषैला, खारी, शुक्रवर्द्धक, शीतल, भारी, विष्टम्भकारक, रूखा, स्तनों में दूध बढ़ानेवाला, मलरोधक, वर्णकारक तथा योनिरोग, रक्तरोग, मूत्रकृच्छ्र, वात, पित्त, कफ, व्रण, दाह और विष नाशक है। कदम्ब का अंकुर—कषैला, शीतवीर्य, अग्निदीपक, हलका तथा अरुचि, रक्तपित्त और अतीसार नाशक है। कदम्ब का फल—रुचिकारक, भारी, उष्णवीर्य और कफकारक है। कदम्ब का पका फल—कफ, पित्तकारक और

मात नाशक है।

विशेष उपयोग (१) बालकों का गला बैठ जाने पर—इसमें पहले ज्वर होता है। कान के किनारे एव नसकोरों पर धक-धक होता है। मलद्वार से जल्दी-जल्दी पानी निकलता है। प्यास अधिक लगती है। तालु में गढ़ा पड़ने लगता है। इसकी शान्ति के लिए—कदय की छाल का रस, पानी का छींटा देकर निकाला जाय, बाद जीरा का चूर्ण और मिश्री मिलाकर पिला दें। यही रस पाँच-छ बार तालु पर भी लगाना चाहिए। चौथे दिन उसे स्नान कराकर करेला का तेल सिर पर लगाना चाहिए। कदय की छाल पानी में उबालकर स्नान कराना चाहिए।

(२) आँखों की पीड़ा पर—कदय की छाल और नीबू के रस में अफीम तथा फिटकिरी घोटकर गरम करके लगाएँ।

(३) मुख-रोग पर—कदय की छाल उबालकर कुल्ला करना चाहिए।

(४) अरुचि—कदय की चटनी चाटने से नष्ट होती है।

(५) दाह पर—कदय का रस और शर्बत पीना चाहिए।

मकोय

स० काकमाची, हि० मकोय, ब० मदन, म० लघुकावली, गु० पीलुडी, क० कावइकाक, ते० मल्लुस, ता० कारे, फा० रोबातरोस, अ०एनबुससालब, और लै० सालनम् नाइग्रम्-Solanum Nigrum.

विशेष विवरण—मकोय का पेड़ सीधा ऊपर को बढ़ता है। इसमें काँटे भी होते हैं। छोटे और सफेद फूल लगते हैं। मकोय का फल गुच्छों में लगता है। फल के ऊपर सफेद रंग का आवरण होता है। उस आवरण को निकालकर मकोय खाई जाती है। यह दो प्रकार की होती है। एक लाली लिए पीली और दूसरी काले रंग की छोटी होती है। बड़ी मकोय खाने के काम में आती है। छोटी मकोय को काली मकोय कहते हैं। यह औषध के काम में आती है। इस छोटी मकोय की पत्ती कई रोग विशेष पर आश्चर्यजनक लाभ करती है। मकोय—खट-मिट्ठी और पाचक होती है। इसकी पत्तो के रस से लिखा हुआ हरी स्याही का लिखा मालूम पड़ता है।

गुण—काकमाची त्रिदोषघ्नी स्निग्धोष्णा स्वरशुक्रदा ।

तिक्ता रसायनी शोथकुष्ठार्शोज्वरमेहजित् ॥

कटुर्नेत्रहिता हिक्काछर्दिहृद्रोगनाशिनी । (भा० प्र०)

मकोय—त्रिदोष नाशक, स्निग्ध, गरम, स्वरजनक, शुक्र कारक, कड़वी, रसायन, चरपरी, नेत्रों को हितकारी तथा सूजन, कुष्ठ, बवासीर, ज्वर, प्रमेह, हिचकी, वमन और हृद्रोग नाशक है।

विशेष उपयोग (१) शोफोदर पर—मकोय की पत्ती का रस लगाना चाहिए।

(२) पित्त पर—मकोय की पत्ती का शाक खायें।

(३) अफीम के विष पर—मकोय की पत्ती का रस पीयें।

(४) कान में कोई जानवर चला गया हो, तो—

मकोय की पत्ती का रस छोड़ना चाहिए।

पपीता

स० मातकुम्भफल, हि० पपीता, ब० वातातिलेखु, म० पोपैया, गु० पोपयो, एरडकाकड़ी, क० पप्पलसु, ते० पोपइचेट्टु, ता० पप्पाई, अँ० पपाव ट्री Papaw Tree, और लै० केरिका पापैया-Carica Papaya.

विशेष विवरण—इसका पेड़ सभी प्रान्तों में होता है। अधिक-से-अधिक पचीस-तीस फीट तक लम्बा होता है। इसमें इधर-उधर और बीच में से ठस नहीं निकलते। इसके पत्ते रेंड के पत्तों की तरह होते हैं। छाल का रग सफेद होता है। फल पत्तों के बीच में नीचे को लटका रहता है। इसका फल प्राय लम्बा होता है। कोई-कोई गोल भी होता है। फल के ऊपर हरा छिलका होता है। यह पकने पर पीला होता है। कच्चा—भीतर सफेद और पक्का—पीला होता है। कच्चे की तरकारी और पक्का यों ही खाया जाता है। इसके बीच में काले-काले बीज निकलते हैं। फल और बीज के बीच एक पतली सी झिल्ली होती है। यह मीठा और स्वादिष्ट होता है। इसके फल, व ठस और पेड़ में से एक प्रकार का दूध निकलता है। यह कई रोगों में लाभदायक है। यह दूध मांस गलाने की विशेष शक्ति रखता है। मांसाहारी लोग कच्चा पपीता मांस के साथ पकाते हैं। इसके विषय में कहा जाता है कि

पपीता के पत्ते में यदि थोड़ी देर तक मांस लपेटकर रख दिया जाय, तो मांस बहुत कुछ गल जाता है। इसके अधपके फल के दूध इकट्ठा करके पपेन नाम की औषध तैयार की जाती है। मन्दाग्नि में लाभदायक होती है। पपीता विदेशी फल है। में यह दो प्रकार का माना जाता है। एक का फल अधिक और मीठा होता है। दूसरे का कुछ छोटा और कम मीठा है। इसकी लकड़ी बहुत मुलायम होती है। पत्ते का डण्ठल से पोला होता है।

गुण—वातकुम्भफलं प्रोक्तं कफवातप्रकोपनम्।

तत्पक्वं मधुरं रुच्यं पित्तनाशकरं गुरु ॥ (शा० नि०)

कच्चा पपीता—मलरोधक, कफ और वात कुपित करता है। पक्का पपीता—मधुर, रुचिकारक, पित्त नाशक और भारी है।

विशेष उपयोग (१) दाद पर—कच्चे पपीता का रस लगाना चाहिए।

(२) बवासीर पर—कच्चे पपीता का रस, मसों पर दिनों तक लगाना चाहिए। इससे मसा कटकर गिर जाता है बवासीर नष्ट हो जाती है।

(३) प्लीहा पर—पपीता की पुल्टिस बाँधना चाहिए पपीता का रस चम्मचभर चीनी मिलाकर दिन में तीन बार पीएँ

(४) कृमि पर—पपीता का रस चम्मचभर चीनी मिलाकर पीना चाहिए। बालकों को दो-एक बूँद ही देना चाहिए।

(५) यकृत, प्लीह, वात और रक्तगुल्म पर—पपीता

र्ग दूध, पाँच बूँद से ग्यारह बूँद तक बताशा में रखकर खाएँ।

(६) कब्जियत पर—कच्चे पपीते का शाक और पका पीता खाना चाहिए।

बेल

स० व० बिल्व, हि० म० बेल, गु० बिलोबिलु, क० बेलठु, तै० रेडीपण्डुबिल्व, ता० बिल्वपामरम, अ० अनार हिन्दी, अँ० गाल, क्वीन्स Bengal Quince, और लै० एगल मारमेलाम egle Marmelos

विशेष विवरण—बेल का पेड़ बड़ा एवं भारत में सर्वत्र होता इसमें त्रिदल पत्ती होती है। यह पत्ती महादेव को चढ़ाई जाती इसमें गोल कैथ की तरह फल होता है। कच्चे बेल का आचार र मुरब्बा बनाया जाता है। कच्चा बेल सुखाकर बेल की गुदी नाम से बाजार में बिकता है। पका बेल स्वादिष्ट होता है। बेल वृक्ष की छाया—शीतल, सुखद और आरोग्यदायक होती है। चा—बेल हरा और पका—पीला होता है। इसकी डालियों में टे होते हैं। इसका फूल सुगंधित और सफेद होता है। बेल के र बहुत बीज होते हैं। ग्रीष्मऋतु के आरम्भ में इसकी पुरानी त्याँ गिर जातीं तथा नई आती हैं। इसकी लकड़ी पवित्र तथा पध के काम आती है। इसके जड़ की छाल दशमूल में प्रधान ी जाती है। इसकी छाल, जड़, फल और पत्तियाँ अनेक

औषधों के काम आती हैं।

डाक्टर डीमक का कथन है कि यह फल पौष्टिक और रु घक मालूम पड़ता है। इसके सेवन से हल्का सा जुलाब पेट साफ हो जाता है। छाल और जड़ का काढ़ा बार-बार वाले ज्वर में दिया जाता है। बेल की पुल्टिस बाँधने स का दुखना नष्ट हो जाता है। कच्चे बेल की गुद्दी पीसकर पेट की पीड़ा शान्त होती है। पके फल की गुद्दी, इमली के देने से ठहक होती है। वृक्ष की छाल का काढ़ा हृदय बन्द करने के काम में आता है। पत्ती-श्वास रोग में दी जाव

डाक्टर ग्रीन का कथन है कि पक्के बेल का शर्बत सवेरे पीने से अजीर्ण नष्ट होता है। कच्चा बेल छः घंटे भूनकर खाने से दस्त और वमन बंद होता है। रक्तविकार की गुद्दी पाँच तोले, पाँच से साढ़े सात तोले तक पानी, और बर्फ छोड़कर दो तीन बार पीने से अच्छा लाभ होता है।

मखजन अलविया का मत है कि बेल की पत्ती का रस घात और ज्वर में शहद के साथ और कामला में काली मिर्च देने से लाभ होता है। ये बेल के फल को ग्राही, शक्तिवर्द्धक मानते हैं। इसके सेवन से बवासीर होती है इसे चीनी के साथ खाना चाहिए। अधपका फल, आँच में कर गूदे में चीनी और गुलाबजल मिलाकर सवेरे भोजन पीने से दस्त बंद होता है।

गुण—बिल्वस्तु मधुरो हृद्यः कषायोष्णो रुचिप्रदः।

दीपनो ग्राहको रूक्षः पित्तकृत्तिक्तकः कटुः ॥
गुरुः पाचनकर्त्ता च वातातीसारजूर्तिहा ।
बाल बिल्वफलं स्निग्धं गुरु रुच्यं च दीपनम् ॥
ग्राहकं पाचकं तिक्तं लघु चोष्णं च तुवरम् ।
शूलामवातसंग्रहणीकफातीसारनाशनम् ॥
तरुणं तु फलं बैल्वं ग्राहि तुवरमम्लकम् ।
स्निग्धं च कटु तीक्ष्णं च उष्णं च लघु दीपनम् ॥
पाचकं कफवातोघविनाशकं हृदयप्रियम् ।
पक्वं बैल्वं दाहकरं मधुरं गुरु तुवरम् ॥
विष्टम्भकारि तिक्तोष्णं ग्राहकं कटु दोषलम् ।
दुर्जरं वातलं चाग्निमांद्यकृत्पित्तनिर्मितम् ॥
बिल्वमूलं तु मधुरं त्रिदोषघ्नं विशूलनुत् ।
लघु कृच्छ्रहरं वातकफपित्तस्य नाशकम् ॥
पर्णानि ग्राहकाणि स्युर्वातनाशकराणि च ॥

बेल—मधुर, हृदय को हितकारी, कपैला, गरम, रुचिकारक, [illegible]न, ग्राही, रूखा, पित्तकारक, कड़वा, चरपरा, भारी, पाचक [illegible] वात, अतीसार और ज्वर नाशक है। बेल का कच्चा फल—[illegible]ग्ध, भारी, रुचिकारक, दीपक, मलरोधक, पाचक, कड़वा, [illegible]का, गरम, कपैला तथा शूल, आमवात, संग्रहणी और कफा-[illegible]सार नाशक है। बेल का तरुण फल—ग्राही, कपैला, खट्टा, [illegible]ग्ध, चरपरा, तीक्ष्ण, गरम, हलका, दीपन, पाचन, हृदय को [illegible]कारी तथा कफ और वात नाशक है। बेल का पका फल—

दाहजनक, मधुर, भारी, कषैला, विष्टम्भकारक, कड़वा, ग्राही, चरपरा, त्रिदोषकारक, देर से पचनेवाला, वातकारक मन्दाग्नि करनेवाला है। बेल की जड़—मधुर तथा त्रिदोष, और शूल नाशक, हलकी तथा मूत्रकृच्छ्र, वायु, कफ और नाशक है। बेल की पत्तियाँ—ग्राही और वात नाशक हैं।

विशेष उपयोग (१) बालकों का
का गूदा खाने से नष्ट होता है।

(२) वातगुल्म पर—कोमल बेल और गुड़
सेवन करना चाहिए। इससे गुल्म, वायु, शरीर की
और पेट की सरदी दूर होती है।

(३) सर्पदंश पर—बेल, कैथ और चौलाई का रस पी

(४) कृमि पर—बेलपत्र का रस पीना चाहिए।

(५) अम्लपित्त के कारण गले की जलन हो,
बेलपत्र का रस, तोला-डेढ़ तोला दिन में चार-५।

(६) बहिरेपन पर—बेल गोमूत्र में पीसकर तेल में
और वही तेल छानकर कानों में छोड़ना चाहिए।

(७) आम और संग्रहणी पर—कच्चा सुखाया
बेल, सौंफ और सोंठ का काढ़ा पिलाना चाहिए।

(८) धातु पुष्टि के लिए—बेल की छाल का
जीरा का चूर्ण, गाय के दूध में मिलाकर पीना चाहिए।

(९) गले की पीड़ा पर—पके बेल का गूदा खाना
पान का काढ़ा दूध मिलाकर पीना चाहिए।

(१०) रक्तातीसार पर—कच्चे, सूखे बेल का चूर्ण गुड़ साथ खाना चाहिए।

(११) सब प्रकार के अतीसार पर—कच्चा बेल और ाम की गुठली का काढ़ा, चीनी और शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(१२) मुँह आने पर—हरा बेल पानी में उबालकर कुल्ला रना चाहिए।

(१३) गर्भिणी के वमन पर—बेल की गुद्दी, धनियाँ पानी में मिलाकर पीना चाहिए।

(१४) सब प्रकार के अतीसार पर—बेल और आम छाल के काढ़ा में चीनी और शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(१५) वमन और अतीसार पर—बेल और आम की ;ठली के रस में चीनी और शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(१६) विषमज्वर पर—बेलपत्र और गुड़ की गोली खलाना चाहिए।

(१७) धातु गिरने पर—एक पाव बेलपत्र पानी का ींटा देकर पीसें और रस निकाल लें। बाद जीरा छ मासे और ीनी एक तोला मिलाकर सात दिनों तक पीना चाहिए।

(१८) गर्भिणी का वमन और अतीसार पर—कच्चा ूखा बेल और सोंठ के काढ़े में जौ का आँटा मिलाकर खिलाएँ।

(१९) बालकों की संग्रहणी पर—बेल और सोंठ का ूर्ण, गुड़ के साथ खिलाना चाहिए।

(२०) विषूचिका पर—बेल की गुद्दी का चूर्ण और

पुराने गुड़ की गोली छः-छः माशे की बनाएँ। एक-एक गोली गरम पानी के साथ दें। इससे दस्त बन्द होता है।

(२१) त्रिदोषज वमन पर—बेल की छाल का क्वाथ शहद मिलाकर पिलाना चाहिए।

(२२) मेदरोग पर—बेल, छोटी अंगेरण, पाटला की जड़ का काढ़ा शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(२३) धातु पुष्टि के लिए—पातालयन्त्र द्वारा बेल का अर्क निकालकर पीना चाहिए।

(२४) शरीर की दुर्गन्धि पर—बेलपत्र का रस

(२५) सूजन, बद्धकोष्ठता, बवासीर, और कामला पर—बेलपत्र का रस पीना चाहिए।

(२६) चौथियाज्वर पर—बेल और मधुमक्खी चूर्ण, पहला बियानवाली तथा सफेद बछड़ेवाली गाय के दूध में जिस रविवार को ज्वर की पारी हो, चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए इससे जीर्ण, विषम और चौथिया ज्वर नष्ट होता है।

(२७) जीर्ण ज्वर पर—बेल की जड़ दूध में पिलाना चाहिए।

(२८) विषूचिका पर—बेल और सोंठ का काढ़ा; बेल, सोंठ और कायफल का काढ़ा पिलाना चाहिए।

(२९) गर्भिणी के अतीसार पर—बेल, जायफल मुलेठी पानी में घिसकर पीना चाहिए।

आहार-विज्ञान

चतुर्थ खण्ड

दुग्ध, दधि, नवनीत और घृतवर्ग

गाय, भैंस, बकरी आदि जानवरों के दूध, दही, मक्खन और घी होते हैं, किन्तु इन सबों में गाय का दूध, दही, मक्खन और घी उत्तम और स्वास्थ्यप्रद होता है। दूध और दही के कई भेद होते हैं। मनुष्य के सभी स्निग्ध खाद्यों में घी सर्वश्रेष्ठ है।

दूध

स० दुग्ध, हि० म० दूध, ब० गु० दुध, क० हालु, ते० पालु, फा० शीरे, अ० लबनुल, अँ० मिल्क-Milk, और लै० लॅक्टस Lactus

विशेष विवरण—दूध के समान पौष्टिक एव अत्यन्त गुणद वस्तु ससार में दूसरी नहीं है। मृत्युलोक में दूध ही अमृत है। दूध भी कई प्रकार का होता है। उन सबों में मनुष्य के लिए पहले माता का दूध सर्वश्रेष्ठ है। माता का दूध छूटने के बाद ही गाय के दूध से अन्य कोई दूध श्रेष्ठ नहीं है। मातृविहीन बालक भी गाय का दूध पीकर जीता है। इसीलिए दूध को बालजीवन भी कहते हैं। दूध वह वस्तु है, जिसकी आवश्यकता पैदा होने से लेकर मरण पर्यन्त होती है। मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक-शक्ति बढ़ानेवाला एक मात्र दूध ही है। जहाँ प्राचीन समय में ऋषि-मुनि दूध खाकर ही तृप्त होते और तपस्या करते थे; वहाँ आज गोमांस भक्षियों के राज्य के कारण शुद्ध दूध और घृत का अभाव ही है। इसी गोहत्या के कारण आज जहाँ बड़े-बड़े घरों में भी शुद्ध घी देखने को नहीं मिलता, वहाँ प्राचीन समय में छोटी-से-छोटी श्रेणी का मनुष्य भी पूर्णतृप्त होकर दूध और घी खाता था। भारतीय कृषि की अवनति का एकमात्र कारण गोवध ही है। जब तक भारत में पूर्णरूप से गोवध बन्द न होगा तब तक गरीब किसान भाइयों को भरपेट भोजन न मिलेगा।

गुण—दुग्ध सुमधुर स्निग्धं वातपित्तहर सरम् ।
सद्यः शुक्रकर शीत सात्म्य सर्वशरीरिणाम् ॥
जीवन बृंहण बल्यं मेध्य वाजीकरं परम् ।
वयःस्थापनमायुष्यं सन्धिकारि रसायनम् ॥
विरेकवान्तिवस्तीनां तुल्यमोजो विवर्धनम् ।
जीर्णज्वरे मनोरोगे शोषमूर्च्छाभ्रमेषु च ॥
ग्रहण्यां पाण्डुरोगे च दाहतृपि हृदामये ।
शूलोदावर्तगुल्मेषु बस्तिरोगगुदाङ्कुरे ॥
रक्तपित्तातिसारे च योनिरोगश्रमक्लमे ।
गर्भस्रावे च सतत हित मुनिवरैः स्मृतम् ॥
बालवृद्ध क्षतक्षीणा क्षुद्व्यवायकृशाश्च ये ।
तेभ्यः सदातिशयित हितमेतदुदाहृतम् ॥
निद्राहीन्यम्लपानानि यानि भुक्ते हि मानवः ।
तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं भोजनान्ते पयः पिबेत् ॥ (भा० प्र०)

दूध—मधुर, स्निग्ध, वात-पित्त नाशक, सारक, सद्य शुक्रकारक, शीतल, सभी के लिए सात्म्य, जीवन, बृंहण, बलकारक, मेधाजनक, वाजीकर, वयस्थापक, आयुष्यकारक, संधिकर्ता और रसायन है। ओज बढ़ाने में वमन, विरेचन और वस्ति के समान गुण हैं। जीर्णज्वर, मनरोग, शोष, मूर्च्छा, भ्रम, ग्रहणी, पाण्डु रोग, दाह, तृषा, हृदयरोग, शूल, उदावर्त, गुल्मरोग, वस्तिरोग, बवासीर, रक्तपित्त, अतीसार, योनिरोग, श्रम, क्लम और गर्भस्राव में अत्यन्त हितकारी है। बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण, भूख और मैथुन

से क्षीण मनुष्यों के लिए—दूध सदैव हितकारी है। दाहजनक अन्न और पान करनेवाले मनुष्यों को दाह की शान्ति के लिए भोजन के अन्त में दूध पीना चाहिए।

रंग भेद—काली, लाल, सफेद, पीली, चितकबरी और जाङ्गल भेद से बहुत तरह की गायें होती हैं। रंग और देश के अनुसार उनके दूध में परिवर्तन हो जाता है।

गुण—कृष्णायां गोर्भवेद्दुग्धं वातहारि गुणाधिकम्।
पीतायाः हरते पित्तं तथा वातहरं भवेत्॥
श्लेष्मलं गुरु शुक्लाया रक्तचित्रा च वातहृत्॥ (शा० नि०)

काली गाय का दूध—वात नाशक और अधिक गुणोंवाला है। पीली गाय का दूध—पित्त और वात नाशक है। सफेद गाय का दूध—कफकारक और भारी है। लाल और चितकबरी गाय का दूध—वात नाशक है।

गुण—जाङ्गलानूपशैलेषु चरन्तीनां पयोत्तमम्।
पयो गुरुतरं स्नेहो यथाहारं प्रवर्तते॥ (शा० नि०)

जंगल, अनूप और पर्वतों में चरनेवाली गायों का दूध—क्रम से भारी होता है। जैसा आहार वे करती हैं वैसा ही घी निकलता है।

गुण—स्वल्पाशनभक्षणतश्च क्षीरं गुरु कफप्रदम्।
तत्तु पथ्यं परं पुष्टं सुस्थानां गुणदायकम्॥
पलालतृणकार्पासबीजजातं गुणैर्हितम्। (भा० प्र०)

अल्प आहार करनेवाली गायों का दूध—भारी, कफका

रक्त, वर्ण को सुन्दर करनेवाला, परमपूज्य और स्वस्थ मनुष्यों के लिए गुणदायक है। प्याल, तृण और कपास का बीज खानेवाली गायों का दूध—अत्यन्त हितकारक है।

गुण—तरुणीनां गवां दुग्धं मधुरं च रसायनम्।
त्रिदोषशमनं चैव वृद्धाया दुर्बलं मतम्॥
सगर्भाया: समुद्दिष्टं त्रिमासोर्ध्वं च पित्तकम्।
क्षारं च मधुरं चैव मतं वै शोषकारणम्॥
प्रथमं च प्रसूताया निस्सारं गुणहीनकम्।
नूतनप्रसूतागोदुग्धं रूक्षं दाहकरं मतम्॥
रक्तदोषस्य जनकं पित्तकं च मतं बुधैः।
चिरप्रसूतादुग्धं तु मधुरं दाहकं पटु॥ (नि० र०)

तरुणी गाय का दूध—मधुर, रसायन और त्रिदोष नाशक है। वृद्ध गाय का दूध—दुर्बल है। जिस गाय को प्रसव हुए तीन मास व्यतीत हो चुके हों, उस गाय का दूध—पित्तकारक, खारी, मधुर और शोषकारक है। प्रथम प्रसूता गाय का दूध—निस्सार और गुणहीन होता है। नवीन प्रसूता गाय का दूध—रूखा, दाहकारक, रक्त को कुपित करनेवाला और पित्तकारक है। बहुत दिनों की प्रसूता गाय का दूध—मधुर, दाहकारक और नमकीन होता है।

गुण—वत्स वर्णसवर्णाया धवली कृष्णगोऽपि।
हस्वाया माषपर्णीया ऊर्ध्वश्रृङ्गी च या भवेत्॥
तासां गवां हितं क्षीरं मतं ताम्राणमेव वा। (शा० नि०)

जिन गायों का रंग बछड़े के रंग से मिलता है, उन

गायों का दूध, काली और सफेद गायों का दूध—प्रशंसा योग्य है। जो गाय, ईख और शहद का पेड़ खाती है, उसका दूध और जिन गायों के सींग ऊपर को उठे होते हैं, उनका दूध—पक्का और कच्चा दोनों हालत में हितकारी है।

गुण—धारोष्णं गोपयो बल्यं लघु शीतं सुधासमम्।
दीपनं च त्रिदोषघ्नं तद्धाराशिशिरं त्यजेत्॥ (भा० प्र०)

गाय का धारोष्ण दूध—* बलकारक, हलका, शीतल, अमृत के समान गुण करनेवाला, अग्नि दीपक और त्रिदोष नाशक है। यही थोड़ी देर बाद शीतल हो जाने पर त्याज्य है।

गुण—गोदुग्धप्रभवं किंवा छागीदुग्धसमुद्भवम्।
भवेत्फेनं त्रिदोषघ्नं रोचनं बलवर्द्धनम्॥
वह्निवृद्धिकरं वृष्यं सद्यस्तृप्तिकरं लघु।
अतीसारेऽग्निमांद्ये च ज्वरे जीर्णे प्रशस्यते॥ (भा० प्र०)

गाय का दूध अथवा बकरी का दूध मथकर बनाया हुआ फेन—त्रिदोष नाशक, रोचक, बलवर्द्धक, अग्नि दीपक, वृष्य, तत्काल तृप्तिकारक, हलका तथा अतीसार, मन्दाग्नि और जीर्ण ज्वर में हितकारी है।

गुण—सन्तानिका गुरुः शीता वृष्या पित्तास्रदाहनुत्।
तर्पणी च हृद्या स्निग्धा बलसवक्र्शुक्रदा॥ (शा० मि०)

---

* नोट—गाय का धारोष्ण दूध—जिस समय दुहा जाय उसी समय बिना जमीन पर रखे ही दुहनेवाले के हाथ से लेकर पी जाना चाहिए। जमीन पर रखने के बाद फिर गरम किए बिना न पीना चाहिए।

मलाई—भारी, शीतल, वृष्य, रक्तपित्त एवं दाह विनाशक, तृप्तिकारक, पुष्टिजनक, स्निग्ध तथा कफ, मल और शुक्रकारक है।

गुण—पयसः केवलस्यापि पदार्था बद्धपयसा।

हिताः सुगन्धिमाः पुष्टिधातुवृद्धिकराग्निदाः॥ (नि० र०)

केवल दूध के बने पदार्थ—पेड़ा, बरफी, रबड़ी आदि-मलकारक, वीर्यवर्द्धक, हितकारी, सुगन्धिजनक, धातुवर्द्धक, पुष्टिकारक और अग्निवर्द्धक हैं।

विशेष उपयोग (१) आधाशीशी पर—गाय के दूध का खोआ खाना चाहिए, अथवा गाय के दूध में बादाम और चीनी पकाकर खाना चाहिए।

(२) धतूरा और कनेल के विष पर—एक पाव गाय के दूध में एक तोला चीनी मिलाकर पीना चाहिए।

(३) संखिया, तूतिया, बच्छनाग और मुरदा शंख आदि के विष पर—दूध अथवा दूध में चीनी मिलाकर तब तक पीना चाहिए, जब तक वमन न हो जाय।

(४) मैनशिल के विष पर—दूध में शहद मिलाकर तीन दिनों तक पीना चाहिए।

(५) कोदो के विष पर—कच्चा दूध पीना चाहिए।

(६) कौंच का चूर्ण खाजाने पर—दूध पीएँ।

(७) पुष्टि, बल तथा वीर्य-वृद्धि के लिए—गरम दूध में गाय का घी और चीनी मिलाकर पीना चाहिए। यह पथ्य, तेजवर्द्धक और परम पौष्टिक प्रयोग है।

(८) गंधक के विष पर–दूध में घी मिलाकर पीएँ ।

(९) जीर्णज्वर पर–दूध में गाय का घी, सोंठ, छुहारा और काला मुनक्का उबालकर पीना चाहिए ।

(१०) मूत्रकृच्छ्र और शर्करारोग पर–दूध में गुड़, अथवा घी और चीनी मिलाकर एव गरम करके पीना चाहिए । अथवा गरम दूध में घी और चीनी सम भाग मिलाकर पीएँ ।

(११) आँखों की जलन पर–गाय के दूध में रूई का फाया भिगोकर ऊपर फिटकिरी की बुकनी रखकर आँखों पर बाँधना चाहिए ।

(१२) शक्ति के लिए–गाय के दूध में घी और शहद विषम मात्रा में मिलाकर पीना चाहिए ।

(१३) पित्त विकार पर–दूध सात तोले और छः मासे सोंठ का चूर्ण मिलाकर पकाएँ, खोआ तैयार हो जाने पर चीनी मिलाकर लड्डू बनाएँ, प्रतिदिन रात में सोते समय कुछ दिनों तक एक-एक लड्डू खाएँ । किन्तु उसके ऊपर से पानी न पीएँ ।

(१४) चेचक का ज्वर–धारोष्ण दूध में घी और मिश्री मिलाकर पीने से शान्त हो जाता है ।

(१५) हृद्रोग पर–दूध में दस-से-पन्द्रह बूँद तक मिलावाँ का तेल मिलाकर पीना चाहिए ।

(१६) रक्तपित्त की शान्ति के लिए–दूध में पाँच गुना पानी मिलाकर पकाएँ । केवल दूध बाकी रह जाने पर पीएँ ।

(१७) हड्डी जोड़ने के लिए–पुरानी प्रसूता गाय के

दूध में चीनी मिलाकर पकाएँ। बाद घी तथा लाह का चूर्ण मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पीना चाहिए। अथवा दूध में—लाह, गेहूँ का आँटा, अर्जुन वृक्ष के जड़ की छाल का चूर्ण और घी मिलाकर पीना चाहिए। इससे टूटी हड्डी जुड़ जाती है।

(१८) जुकाम पर—गाय के गरम दूध में मिश्री और मिर्च का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(१९) रक्तज और पित्तज शिररोग पर—गाय के दूध में रूई की मोटी पट्टी भिगोकर सिर पर रखकर कपड़ा से बाँधना चाहिए। दिन भर दूध से उसे तर करते रहें। शाम के समय पट्टी खोल दें और सिर धोकर मक्खन लगायें। दो-तीन दिनों तक यही प्रयोग करते रहना चाहिए।

(२०) प्रवाहिका और रक्तपित्त की शान्ति के लिए—दूध और पानी सम भाग मिलाकर पकाएँ। केवल दूध बाकी रहने पर पीएँ। यह दूध—उदर-शूल, वायु, प्रवाहिका, रक्तपित्त और पिपासा शामक है। साथ ही अमृत के समान है। सभी प्रकार के रक्तपित्त पर इसका उपयोग करना चाहिए।

(२१) पाण्डुरोग, क्षय और संग्रहणी पर—दूध लोहे के पात्र में गरम करके सात दिनों तक पीना चाहिए। पथ्य और संयम से रहना चाहिए।

(२२) हिचकी पर—गरम दूध पीना चाहिए।

(२३) मूत्रावरोधज उदावर्त्त में—दूध और पानी पीएँ।

(२४) थकान दूर करने के लिए—गरम दूध पीएँ।

(२५) सिर-दर्द पर—गाय के दूध में सोंठ घिसकर लेप करना तथा ऊपर रूई चिपकाना चाहिए।

(२६) वीर्य-वृद्धि के लिए—गाय के दूध में सतावर का रस मिलाकर पीना चाहिए।

(२७) बवासीर पर—गाय का कच्चा दूध तलुओं पर लगाना चाहिए।

(२८) प्रमेह पर—आँवला के रस में हल्दी का चूर्ण मिलाकर पीने के बाद, गाय का दूध पीना चाहिए।

भैंस का दूध

गुण—माहिष मधुरं गव्यात्स्निग्धं शुक्रकरं गुरु।

निद्राकरमभिष्यन्दि क्षुधाधिक्यकरं हिमम्॥ (भा॰ प्र॰)

भैंस का दूध—गाय के दूध की अपेक्षा मधुर, स्निग्ध, शुक्र-जनक, भारी, निद्राकारक, अभिष्यन्दि, क्षुधावर्द्धक और शीतल है।

विशेष उपयोग (१) निद्राभंग रोग पर—भैंस के दूध में चीनी मिलाकर पीना चाहिए।

(२) बालक अरुचि पर—भैंस का दूध पीना चाहिए।

बकरी का दूध

गुण—छागीनामल्पकायत्वात्कटुतिक्तनिषेवणात्।

नात्यम्बुपानाद्व्यायामात्सर्वरोगापहं पयः॥

दूध में चीनी मिलाकर पकाएँ। बाद घी तथा लाह का चूर्ण मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पीना चाहिए। अथवा दूध में—लाह, गेहूँ का आँटा, अर्जुन वृक्ष के जड़ की छाल का चूर्ण और घी मिलाकर पीना चाहिए। इससे टूटी हड्डी जुड़ जाती है।

(१८) जुकाम पर—गाय के गरम दूध में मिश्री और मिर्च का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(१९) रक्तज और पित्तज शिररोग पर—गाय के दूध में रूई की मोटी पट्टी भिगोकर सिर पर रखकर कपड़ा से बाँधना चाहिए। दिन भर दूध से उसे तर करते रहें। शाम के समय पट्टी खोल दें और सिर धोकर मक्खन लगाएँ। दो-तीन दिनों तक यही प्रयोग करते रहना चाहिए।

(२०) प्रवाहिका और रक्तपित्त की शान्ति के लिए—दूध और पानी सम भाग मिलाकर पकाएँ। केवल दूध बाकी रहने पर पीएँ। यह दूध—उदर-शूल, वायु, प्रवाहिका, रक्तपित्त और पिपासा शामक है। साथ ही अमृत के समान है। सभी प्रकार के रक्तपित्त पर इसका उपयोग करना चाहिए।

(२१) पाण्डुरोग, क्षय और संग्रहणी पर—दूध लोहे के पात्र में गरम करके सात दिनों तक पीना चाहिए। पथ्य और संयम से रहना चाहिए।

(२२) हिचकी पर—गरम दूध पीना चाहिए।

(२३) मूत्रावरोधज उदावर्त्त में—दूध और पानी पीएँ।

(२४) थकान दूर करने के लिए—गरम दूध पीएँ।

गुड़ मिला दही—तृप्तिकारक, धातुवर्द्धक, भारी और वात-नाशक है।

गुण—दध्नस्तूपरि यो भागो घनः स्नेहसमन्वितः ।
स लोके सर इत्युक्तो दध्नो मण्डस्तु मस्त्विति ॥
सरः स्वादुर्गुरुर्वृष्यो वातवह्निप्रणाशनः ।
साम्लो बस्तिप्रशमनः पित्तश्लेष्मविवर्द्धनः ॥
मस्तु क्लमहरं बल्यं लघु भक्ताभिलाषकृत् ।
स्रोतोविशोधनं ह्लादि कफतृष्णानिलापहम् ॥
अवृष्यं प्रीणनं शीघ्रं भिनत्ति मलसञ्चयम् ।

दही के ऊपर के गाढ़े भाग को मलाई कहते हैं। दही से जो जल निकलता है उसे मस्तु कहते हैं। दही की मलाई—स्वादिष्ट, भारी, वीर्यवर्द्धक, वात नाशक, अग्निमांद्यकारक, खट्टा, वस्तिरोग नाशक तथा पित्त और कफवर्द्धक है। दही का पानी—श्रम नाशक, बलकारक, भोजन में रुचि पैदा करनेवाला, शरीर की स्रोतों को शुद्ध करनेवाला, आनन्दजनक, कफ नाशक, तृषा नाशक, वात विनाशक, अवृष्य, तृप्तिकारक और शीघ्र संचित मल को भेदन करनेवाला है।

विशेष उपयोग (१) विषूचिका पर—गाय के दही, अथवा छाछ में सम भाग पानी मिलाकर पीना चाहिए।

(२) काँच का चूर्ण खा जाने पर—गाय का दही खाएँ।

(३) तृषारोग पर—गाय के दही में ईंट गरम करके छौंक दें और थोड़ा-थोड़ा वही दही खाएँ।

मूत्र, त्रिदोष और दाहकारक है। जो दूध जमकर गाढ़ा हो गया हो, मधुर रस मालूम पड़े तथा खट्टापन न मालूम पड़े, ऐसा दही स्वादु कहा जाता है। स्वादु दही—अत्यन्त अभिष्यन्दि, वृष्य, मेदजनक, कफकारक, वात नाशक, पाक में मधुर और रक्तपित्त कारक है। अम्ल-मधुर रस युक्त, गाढ़ा और किंचित् कषैले दही को स्वाद्वम्ल कहते हैं। स्वाद्वम्ल दही का गुण सामान्य दही के समान है। जिस दही में मधुरता नाश होकर खट्टापन आ गया हो, उसे अम्ल दही कहते हैं। खट्टा दही—दीपन, रक्तपित्त और कफ कारक है। जो दही अधिक खट्टा हो, दाँतों को कोठ कर दे, खाते समय रोमांच हो और कण्ठ में दाह पैदा करे, उसे अत्यन्त अम्ल दही कहते हैं। यह दही—दीपन तथा रक्त-विकार, वात और पित्त कारक है।

गुण—पक्वदुग्धभव रुच्य दधि स्निग्ध गुणोत्तमम्।
पित्तानिलापहं सर्वधात्वग्निबलवर्धनम् ॥ (शा॰ नि॰)

पकाए हुए दूध का दही—रुचिकारक, स्निग्ध, गुणों में श्रेष्ठ, पित्त-वात नाशक तथा सम्पूर्ण धातु, अग्नि और बलवर्द्धक है।

गुण—सितायुक्तं दधि प्रोक्तं पित्तदाहतृषाहरम्।
रक्तदोषहरं चैव मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ (शा॰ नि॰)

चीनी मिला दही—पित्त, दाह, तृषा और रक्त-विकार नाशक है।

गुण—गुडयुक्तं दधि प्रोक्तं तर्पणं वातनाशकम्।
गुर्वाभिष्यन्दि चैव मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ (नि॰ र॰)

गुड़ मिला दही—तृप्तिकारक, धातुवर्द्धक, भारी और वात-नाशक है।

गुण—दध्नस्तूपरि यो भागो घनः स्नेहसमन्वितः ।
स लोके सर इत्युक्तो दध्नो मण्डस्तु मस्त्विति ॥
सरः स्वादुर्गुरुर्वृष्यो वातवन्हिप्रणाशनः ।
साम्लो बस्तिप्रशमनः पित्तश्लेष्मविवर्द्धनः ॥
मस्तु क्लमहरं बल्यं लघु भक्ताभिलाषकृत् ।
स्रोतोविशोधनं ह्लादि कफतृष्णानिलापहम् ॥
अवृष्यं प्रीणनं शीघ्रं भिनत्ति मलसंचयम् ।

दही के ऊपर के गाढ़े भाग को मलाई कहते हैं। दही से जो जल निकलता है उसे मस्तु कहते हैं। दही की मलाई—स्वादिष्ट, भारी, वीर्यवर्द्धक, वात नाशक, अग्निमांद्यकारक, खट्टा, वस्तिरोग नाशक तथा पित्त और कफवर्द्धक है। दही का पानी—श्रम नाशक, बलकारक, भोजन में रुचि पैदा करनेवाला, शरीर की स्रोतों को शुद्ध करनेवाला, आनन्दजनक, कफ नाशक, तृपा नाशक, वात विनाशक, अवृष्य, तृप्तिकारक और शीघ्र संचित मल को भेदन करनेवाला है।

विशेष उपयोग (१) विषूचिका पर—गाय के दही, अथवा छाछ में सम भाग पानी मिलाकर पीना चाहिए।

(२) कौंच का चूर्ण खा जाने पर—गाय का दही खाएँ।

(३) तृषारोग पर—गाय के दही में ईंट गरम करके छौंक दें और थोड़ा-थोड़ा यही दही खाएँ।

मूत्र, त्रिदोष और दाहकारक है। जो दूध जमकर गाढ़ा हो गया हो, मधुर रस मालूम पड़े तथा खट्टापन न मालूम पड़े, ऐसा दही स्वादु कहा जाता है। स्वादु दही—अत्यन्त अभिष्यन्दि, वृष्य, मेदजनक, कफकारक, वात नाशक, पाक में मधुर और रक्तपित्त कारक है। अम्ल-मधुर रस युक्त, गाढ़ा और किंचित् कसैले दही को स्वाद्वम्ल कहते हैं। स्वाद्वम्ल दही का गुण सामान्य दही के समान है। जिस दही में मधुरता नाश होकर खट्टापन आ गया हो, उसे अम्ल दही कहते हैं। खट्टा दही—दीपन, रक्तपित्त और कफ कारक है। जो दही अधिक खट्टा हो, दाँतों को कोठ कर दे, खाते समय रोमांच हो और कण्ठ में दाह पैदा करे, उसे अत्यन्त खट्टा दही कहते हैं। यह दही—दीपन तथा रक्त-विकार, वात और पित्त कारक है।

गुण—पक्वदुग्धभव रुच्यं दधि स्निग्धं गुणोत्तमम्।
पित्तानिलापहं सर्वधात्वग्निबलवर्द्धनम्॥ (शा नि॰)

पकाए हुए दूध का दही—रुचिकारक, स्निग्ध, गुणों में श्रेष्ठ, पित्त-वात नाशक तथा सम्पूर्ण धातु, अग्नि और बलवर्द्धक है।

गुण—सितायुक्तं दधि प्रोक्तं पित्तदाहतृषापहम्।
रक्तदोषहरं चैव मुनिभिः परिकीर्त्तितम्॥ (शा॰ नि॰)

चीनी मिला दही—पित्त, दाह, तृषा और रक्त-विकार नाशक है।

गुण—गुडयुक्तं दधि प्रोक्तं तर्पणं धातुवर्द्धकम्।
गुरुर्वातहरं चैव मुनिभिः परिकीर्त्तितम्॥ (नि॰ र॰)

गुड़ मिला दही—तृप्तिकारक, धातुवर्द्धक, भारी और वात-नाशक है।

गुण—दध्नस्तूपरि यो भागो घन स्नेहसमन्वितः।
स लोके सर इत्युक्तो दध्नो मण्डस्तु मस्त्विति॥
सरः स्वादुर्गुरुर्वृष्यो वातवन्हिप्रणाशनः।
साम्लो वस्तिप्रशमनः पित्तश्लेष्मविवर्द्धनः॥
मस्तु क्लमहरं बल्यं लघु भक्ताभिलाषकृत्।
स्रोतोविशोधनं ह्लादि कफतृष्णानिलापहम्॥
अवृष्यं प्रीणनं शीघ्रं भिनत्ति मलसञ्चयम्।

दही के ऊपर के गाढ़े भाग को मलाई कहते हैं। दही से जो जल निकलता है उसे मस्तु कहते हैं। दही की मलाई—स्वादिष्ट, भारी, वीर्यवर्द्धक, वात नाशक, अग्निमांद्यकारक, खट्टा, वस्तिरोग नाशक तथा पित्त और कफवर्द्धक है। दही का पानी—श्रम नाशक, बलकारक, भोजन में रुचि पैदा करनेवाला, शरीर की स्रोतों को शुद्ध करनेवाला, आनन्दजनक, कफ नाशक, तृषा नाशक, वात विनाशक, अवृष्य, तृप्तिकारक और शीघ्र संचित मल को भेदन करनेवाला है।

विशेष उपयोग (१) विषूचिका पर—गाय के दही, अथवा छाछ में सम भाग पानी मिलाकर पीना चाहिए।

(२) कौंच का चूर्ण खा जाने पर—गाय का दही खाएँ।

(३) तृपारोग पर—गाय के दही में ईंट गरम करके छौंक दें और थोड़ा थोड़ा यही दही खाएँ।

(४) कनैल के विष पर—दही में चीनी मिलाकर खावें।

(५) सूर्यावर्त्त अर्धावभेदक पर—दही और भात सूर्योदय से पूर्व तीन दिनों तक खाना चाहिए।

(६) तृषा शमन के लिए—गाय का मीठा दही एक सौ अट्ठाइस तोले, चीनी चौंसठ तोले, घी पाँच तोले; काली मिर्च, सोंठ और छोटी इलायची दो-दो तोले, सब एक में मिलाकर कपड़े के बर्तन में रखें और थोड़ा-थोड़ा खावें। अथवा पहले दही कपड़े में बाँधकर पानी निकाल लें। बाद उपर्युक्त सब चीजें मिलाकर सिखरन तैयार कर लें। यह दाह, तृषा और पित्त शामक है।

भैंस का दही

गुण—माहिष्यास्तु दधि प्रोक्तं रक्तपित्तप्रसादनम्।
वृष्यं स्निग्धं च मधुरं शोधनं कफकारकम्॥
गुर्वभिष्यन्दि बल्यं स्याच्छुक्लं च प्रकीर्तितम्।
पित्तं वातं श्रमं चैव नाशयेदिति कीर्तितम्॥ (नि० र०)

भैंस का दही—रक्तपित्तकारक, वृष्य, स्निग्ध, मधुर, शोधन, कफकारक, भारी, अभिष्यन्दि, बलकारक, शुक्रजनक तथा पित्त, वात और श्रम नाशक है।

बकरी का दही

गुण—दध्याजं कफवातघ्नं लघूष्णं नेत्रदोषजित्।

दुर्नामदवासकासघ्न रुच्यं दीपन पाचनम् ॥ (रा० नि०)

बकरी का दही—कफ, वात, नेत्र विकार, बवासीर, श्वास और कास नाशक, हलका, रुचिकारक, दीपन और पाचन है।

छाछ (मट्ठा)

स० तक्र, हि० छाछ, मट्ठा, व० घोल, म० ताक, गु० छास, क० मज्जिगे, तै० चल्ला, फा० मस्त, मठा, और अ० हमीज।

गाय का मट्ठा

गुण—यान्युक्तानि दधीन्यष्टौ सद्गुणं तक्रमादिशेत्। (भा० प्र०)

पहले जो आठ प्रकार के दही कहे गए हैं—उन्हीं के गुणों के अनुसार उन दहियों के मट्ठों का भी गुण है।

गुण—गव्यं त्रिदोषशमन पथ्ये श्रेष्ठ समुच्यते।
दीपन रुचिकृन्मेध्यमर्शोदरविकारजित् ॥ (रा० नि०)

गाय का मट्ठा—त्रिदोष नाशक, पथ्यों में उत्तम, दीपन, रुचिकारक, मेधाजनक तथा बवासीर और उदर-विकार नाशक है।

विशेष उपयोग (१) दाह पर—गाय के मट्ठे में कपड़ा भिगोकर शरीर पर बार-बार मलना चाहिए।

(२) संग्रहणी, अतीसार और बवासीर पर—गाय का मट्ठा पीना चाहिए। इससे बल, पुष्टि और वर्ण बढ़ता है। वात तथा कफजन्य व्याधियाँ नष्ट होती हैं।

(३) यकृद्‌दोषता पर—गाय के मट्ठे में अजवाइन और काला नमक छोड़कर पीना चाहिए।

(४) बवासीर पर—गाय के मट्ठे में चित्रक की छाल का रस मिलाकर पीना चाहिए।

(५) बवासीर पर—गाय के मट्ठे में सोंठ, मिर्च, छोटी पीपर और काला नमक मिलाकर पीना चाहिए।

(६) संग्रहणी पर—गाय के मट्ठे में सफेद मुसली एक तोला पीसकर पीएँ और मट्ठा एवं भात खाएँ।

(७) संग्रहणी पर—गाय के मट्ठे में सोंठ एवं पीपर की बुकनी और काला नमक मिलाकर पीना चाहिए।

(८) मूँगफली के अजीर्ण पर—मट्ठा पीना चाहिए।

(९) पेट के वायु पर—गाय के मट्ठे में नमक और छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(१०) पित्त शमन के लिए—गाय का मट्ठा, मिर्च का चूर्ण और चीनी मिलाकर पीना चाहिए।

(११) कफोदर पर—गाय के मट्ठा में सोंठ, मिर्च, पीपर, अजवाइन, जीरा और सेंधा नमक मिलाकर पीना चाहिए।

भैंस का मट्ठा

गुण—माहिष कफकृत्किंचिदत शोफकरं गुणात्।
शस्त प्लीहार्शोग्रहणीदोषेऽतीसारिणामपि ॥ (हा० सं०)

भैंस का मट्ठा—कफकारक, कुछ गाढ़ा, मनुष्यों को सूजन करनेवाला तथा प्लीहा, बवासीर, संग्रहणी और अतीसार नाशक है।

बकरी का मट्ठा

गुण—छागल लघु सस्निग्ध त्रिदोषशमन परम् ।

गुल्मार्शोग्रहणीशूलपाण्डुरामयविनाशनम् ॥ (हा० स०)

बकरी का मट्ठा—हलका, स्निग्ध, त्रिदोष-शामक तथा गुल्म, बवासीर, संग्रहणी, शूल और पाण्डुरोग नाशक है।

विशेष उपयोग (१) संग्रहणी पर—भैंस और बकरी के मट्ठे में सोंठ और छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

मक्खन

स० नवनीत, हि० नवनी, मक्खन, ब० ननी, माखन, म० लोणी, गु० माखण, क० बेराणी, तै० वेन्ना, फा० मसका, अ० जुबूद, अँ० बटर Butter, और लै० बुटिरम्-Butyrum

गाय का मक्खन

गुण—नवनीतं हितं गव्यं वृष्यं वर्णबलाग्निकृत् ।

सग्राहि वातपित्तासृक्क्षयार्शोर्दितकासजित् ॥

तद्धितं बालके वृद्धे विशेषादमृतं शिशोः । (भा० नि०)

गाय का मक्खन—हितकारी, वृष्य, वर्णकारक, बलकारक,

अग्नि दीपक, ग्राही तथा वात, पित्त, रक्त-विकार, क्षय, बवासीर, अर्दित और खाँसी नष्ट करता है। बालक और वृद्ध को हितकर और विशेष करके बालकों के लिए अमृत के समान गुणकारक है।

विशेष उपयोग (१) क्षय के बाद शक्ति आने के लिए—गाय का मक्खन, मिश्री, शहद और सोने का वर्क खायें।

(२) आँखों की जलन में—गाय का मक्खन लगायें।

(३) मामूली ज्वर में—गाय का मक्खन और मिश्री खायें।

(४) चेचक के बाद बालकों के ज्वर पर—गाय के मक्खन में मिश्री और जीरा का चूर्ण मिलाकर सुपारी बराबर गोली बनाएँ। प्रतिदिन सुबह-शाम एक-एक गोली खिलाएँ।

(५) कानों की गरमी पर—गाय का मक्खन थोड़ा गरम करके कानों में छोड़ना चाहिए।

(६) भिलावों का धुँआ लगने और उसका तेल आँखों में पड़ने पर—गाय का मक्खन लगाना चाहिए।

(७) कनैल के विष पर—गाय का गरम मक्खन खायें।

(८) रक्तातीसार पर—गाय का मक्खन, शहद और मिश्री खाना चाहिए।

(९) बवासीर पर—गाय का मक्खन तिल मिलाकर खाना चाहिए। इससे दाँत और शरीर भी मजबूत होता है।

(१०) सिर की गरमी पर—गाय का मक्खन लगाएँ।

(११) चक्कर पर—गाय का मक्खन और मिश्री खायें।

भैंस का मक्खन

गुण—माहिष नवनीतन्तु कषाय मधुर रसे ।
शीत वृष्यप्रद बल्यं ग्राहि पित्तघ्न तुन्दरम् ॥

भैंस का मक्खन—कषैला, मधुर, शीतल, वीर्यवर्द्धक, बल कारक, ग्राही, पित्त नाशक और उदर बढ़ानेवाला है ।

बकरी का मक्खन

गुण—नवनीतमजामासु मधुरं तुवरं लघु ।
चक्षुष्य दीपन बल्य हितकृत्क्षयकासनुत् ॥
गुल्म प्रमेह शूल च कण्डू नेत्ररुज ज्वरम् ।
पाण्डुं च श्वित्रकुष्ठं च नाशयेदिति कीर्त्तितम् ॥ (नि० र०)

बकरी का मक्खन—मधुर, कषैला, हलका, नेत्रों को हितकारी, दीपन, बलकारक, हितकारक तथा क्षय, खाँसी, गुल्म, प्रमेह, शूल, खुजली, नेत्ररोग, ज्वर, पाण्डुरोग और सफेद कोढ़ का नाश करता है ।

विशेष उपयोग (१) कानों की दाह पर—भैंस और बकरी का मक्खन गरम करके छोड़ना चाहिए ।

(२) रक्तार्श पर—दोनों प्रकार के मक्खन के साथ तिल अथवा नागकेसर और मिश्री मिलाकर खाना चाहिए ।

(३) रक्तातीसार पर—दोनों प्रकार के मक्खन के साथ मिश्री और शहद मिलाकर खाना चाहिए ।

घी

स० ब० घृत, हि० गु० घी, म० तूप, ते० नेई, फा० रोग़ने ज़र्द, अ० समन् ज़ुब्दुल बक़र, अँ० क्लेरीफाइड बटर-Clarified Butter, और लै० बुटीरम् डेप्युरेटम् Butyrum Depuratum.

गाय का घी

विशेष विवरण—गाय, भैंस और बकरी आदि सभी जानवरों के घी में गाय का ही घी काम में लाना चाहिए। सभी प्रकार के फोड़े या किसी भी लगानेवाली दवा में, जहाँ जैसा विधान हो गाय का पुराना अथवा धोया हुआ घी देना चाहिए। पुराना अथवा धोया घी भूलकर भी खाने के काम में न लाना चाहिए।

गुण—धीकान्तिस्मृतिदायकं बलकरं मेधाप्रदं पुष्टिकृत्—
वातश्लेष्महरं श्रमोपशमनं पित्तापहं हृद्धितम्।
वह्नेर्दीप्तिकरं विपाकमधुरं वृष्यं वपुःस्थैर्यदं—
गव्यं हव्यतमं घृतं बहुगुणं भोग्यं भवेद्भाग्यतः॥ (रा० नि०)

गाय का घी—कान्ति और स्मरण-शक्ति दायक, बलकारक, मेधाजनक, पुष्टिकारक, वात-कफ नाशक, श्रम निवारक, पित्त नाशक, हृदय को हितकारी, अग्नि दीपक, पाक में मधुर, वृष्य, शरीर को स्थिर करनेवाला, हव्यतम, बहुत गुणोंवाला और भाग्य से ही यह मिलता है।

गुण—सद्योत्तं घृतं मोक्तं दाहमोहज्वरापहम्। (शा० नि०)

सौवार का धोया घी—दाह, मोह और ज्वर नाशक है।

गुण—वर्षान्मूर्ध्वमवेदाज्य पुराणं सर्वत्रिदोषनुत्।
मूर्च्छाकुष्ठविषोन्मादापस्मारतिमिरापहम्॥
यथायथा खिल सर्पि पुराणमधिकं भवेत्।
तथातथा गुणैः स्वैःस्वैरधिकं तदुदाहृतम्॥ (भा० प्र०)

एक वर्ष से अधिक समय का घी पुराना घी कहा जाता है। पुरा घी—त्रिदोष, मूर्च्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद, मृगी और तिमिर रोग नाशक है। ज्यों-ज्यों घी पुराना होता जायगा, त्यों-त्यों जिस घी के जो-जो गुण कहे हैं, उन गुणों से अधिक गुण-वाला होता जायगा।

विशेष उपयोग (१) आधाशीशी पर—गाय के ताजे घी की नास सुबह शाम सात दिनों तक लेनी चाहिए।

(२) नकसीर पर—गाय के ताजे घी की नास लें।

(३) पित्तज सिर-दर्द पर—गाय का ताजा घी लगाएँ।

(४) हाथ पैरों की जलन पर—गाय का ताजा घी लगाएँ।

(५) ज्वरजन्य शारीरिक दाह पर—सौ बार का धोया हुआ गाय का घी लगाना चाहिए।

(६) धतूरा और रसकपूर का विष—गाय का ताजा घी खूब खाने से वमन होकर विष नष्ट हो जाता है।

(७) शराब के नशा पर—गाय का घी और चीनी खाएँ।

(८) गर्भिणी के रक्तस्राव पर—सौवार का धोया घी शरीर पर लगाना चाहिए।

घी

स० ब० घृत, हि० गु० घी, म० तूप, ते० नेई, फा० रोग्ने ज़र्द, अ० समन् जुब्दुल बकर, अँ० क्लेरीफाइड बटर-Clarified Butter, और लै० बुटीरम् डेप्युरेटम्-Butyrum Depuratum.

गाय का घी

विशेष विवरण—गाय, भैंस और बकरी आदि सभी जानवरों के घी में गाय का ही घी काम में लाना चाहिए। सभी प्रकार के फोड़े या किसी भी लगानेवाली दवा में, जहाँ जैसा विधान हो गाय का पुराना अथवा धोया हुआ घी देना चाहिए। पुराना अथवा धोया घी भूलकर भी खाने के काम में न लाना चाहिए।

गुण—धीकान्तिस्मृतिदायकं बलकरं मेधाप्रदं पुष्टिकृत्—
वातश्लेष्महरं श्रमोपशमनं पित्तापहं हृद्धितम्।
वह्नेर्वृद्धिकरं विपाकमधुरं वृष्यं वपुःस्थैर्यदं—
गव्यं हव्यतमं घृतं बहुगुणं भोग्यं भवेद्भाग्यतः॥ (रा० नि०)

गाय का घी—कान्ति और स्मरण-शक्ति दायक, बलकारक, मेधाजनक, पुष्टिकारक, वात-कफ नाशक, श्रम निवारक, पित्त नाशक, हृदय को हितकारी, अग्नि दीपक, पाक में मधुर, वृष्य, शरीर को स्थिर करनेवाला, हव्यतम, बहुत गुणोंवाला और भाग्य से ही यह मिलता है।

गुण—शतधौतं घृतं प्रोक्तं दाहमोहज्वरापहम्। (शा० नि०)

सौवार का धोया घी—दाह, मोह और ज्वर नाशक है।

गुण—वर्णादृष्यंमवेदाज्य पुराण सत्रिदोषनुत्।

मूर्छाकुष्ठविषोन्मादापस्मारतिमिरापहम् ॥

यथायथा खिल सर्पि पुराणमधिक भवेत्।

तथातथा गुणै स्वैस्वैरधिकं तदुदाहृतम् ॥ (भा० प्र०)

एक वर्ष से अधिक समय का घी पुराना घी कहा जाता है। पुरा घी—त्रिदोष, मूर्च्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद, मृगी और तिमिर रोग नाशक है। ज्यों-ज्यों घी पुराना होता जायगा, त्यों-त्यों जिस घी के जो-जो गुण कहे हैं, उन गुणों से अधिक गुण वाला होता जायगा।

विशेष उपयोग (१) आधाशीशी पर—गाय के ताजे घी की नास सुबह शाम सात दिनों तक लेनी चाहिए।

(२) नकसीर पर—गाय के ताजे घी की नास लें।

(३) पित्तज सिर-दर्द पर—गाय का ताजा घी लगाएँ।

(४) हाथ पैरों की जलन पर—गाय का ताजा घी लगाएँ।

(५) ज्वरजन्य शारीरिक दाह पर—सौ बार का धोया हुआ गाय का घी लगाना चाहिए।

(६) धतूरा और रसकपूर का विष—गाय का ताजा घी खूब खाने से वमन होकर विष नष्ट हो जाता है।

(७) शराब के नशा पर—गाय का घी और चीनी खाएँ।

(८) गर्भिणी के रक्तस्राव पर—सौवार का धोया घी शरीर पर लगाना चाहिए।

(९) चौथियाज्वर, उन्माद और मृगी पर—गाय का घी, दही और दूध एक साथ पकाकर पीना चाहिए।

(१०) आग से जलने पर—सौ बार का धोया घी लगाएँ।

(११) सिर-दर्द पर—गाय का घी दूध मिलाकर भक्षण करना चाहिए। इससे नेत्रों की लाली भी दूर होती है।

(१२) बालकों की छाती पर कफ जम गया हो, तो —गाय का पुराना घी छाती पर मलना चाहिए।

(१३) गरमी से रक्त खराब होने पर—गाय का घी दस तोले, बकरी का पाँच तोले, पीतल की थाली में सौ बार पानी से धोया जाय। बाद ढाई तोले फिटकिरी का लावा मिलाकर मिट्टी के बर्तन में रखें। पहले रक्त खराब होकर शरीर लाल होता है। बाद काला हो जाता है। छाले भी पड़ जाते हैं। दवा लगाने से पहले जोंक लगाकर रक्त निकलवाना चाहिए। फिर तुरन्त ही घी लगाना चाहिए। इससे शरीर की गरमी नष्ट हो जाती है और सदैव के लिए रक्त शुद्ध हो जाता है।

(१४) तृषा पर—गाय का घी दूध में मिलाकर पीएँ।

(१५) दाह में—गाय का घी सौ या हजार बार का धोया लगाना चाहिए।

(१६) सन्निपात और विसर्प पर—गाय का सौबार का धोया घी लगाना चाहिए।

(१७) गरमी पर—गाय के घी में सीपभस्म खरल करके लगाना चाहिए।

(१८) वातज्वर पर—गाय का पुराना घी मालिश करें।

(१९) धातु रोगी के लिए—स्त्री सहवास करने के बाद श्वास शान्त होने से पहले पाँच तोले गाय का घी पीना चाहिए। इससे धातु बढ़ती और पुष्ट होती है।

भैंस का घी

गुण—सर्पिर्माहिषमुत्तमं धृतिकरं सौख्यप्रदं कान्तिकृत्-
वातश्लेष्मनिबर्हणं बलकरं वर्णप्रदाने क्षमम्।
दुर्नामग्रहणीविकारशमनं मन्दाग्निसंदीपनं चक्षुष्यं-
नवगव्यतः परमिदं हृद्यं मनोहारि च॥ (रा० नि०)

भैंस का घी—उत्तम, धृतिकारक, सुखकारक, कान्तिजनक, वात-कफ नाशक, बलकारक, वर्णदायक, बवासीर और संग्रहणी-नाशक, अग्नि दीपक, नेत्रों को हितकारक तथा नवीन गाय के घी से हृदय को परम हितकारी और मनोहर है।

बकरी का घी

गुण—आजमाज्यं करोत्यग्निं चक्षुष्यं बलवर्धनम्।
श्वासे कासे क्षये चापि हितं पाके भवेत्कटु॥
कफार्तोराजयक्ष्माणां नाशनं परिकीर्तितम्। (हा० स०)

(९) चौथियाज्वर, उन्माद और मृगी पर—गाय का घी, दही और दूध एक साथ पकाकर पीना चाहिए।

(१०) आग से जलने पर—सौ बार का धोया घी लगाएँ।

(११) सिर-दर्द पर—गाय का घी दूध मिलाकर मंजन करना चाहिए। इससे नेत्रों की लाली भी दूर होती है।

(१२) बालकों की छाती पर कफ जम गया हो, तो —गाय का पुराना घी छाती पर मलना चाहिए।

(१३) गरमी से रक्त खराब होने पर—गाय का घी दस तोले, बकरी का पाँच तोले, पीतल की थाली में सौ बार पानी से धोया जाय। बाद ढाई तोले फिटकिरी का लावा मिलाकर मिट्टी के बर्तन में रखें। पहले रक्त खराब होकर शरीर लाल होता है। बाद काला हो जाता है। छाले भी पड़ जाते हैं। दवा लगाने से पहले जोंक लगाकर रक्त निकलवाना चाहिए। फिर तुरन्त ही घी लगाना चाहिए। इससे शरीर की गरमी नष्ट हो जाती है और सदैव के लिए रक्त शुद्ध हो जाता है।

(१४) तृषा पर—गाय का घी दूध में मिलाकर पीएँ।

(१५) दाह में—गाय का घी सौ या हजार बार का धोया लगाना चाहिए।

(१६) सन्निपात और विसर्प पर—गाय का सौबार का धोया घी लगाना चाहिए।

(१७) गरमी पर—गाय के घी में सीपभस्म खरल करके लगाना चाहिए।

(१८) वातज्वर पर—गाय का पुराना घी मालिश करें।

(१९) धातु रोगी के लिए—स्त्री सहवास करने के बाद श्वास शान्त होने से पहले पाँच तोले गाय का घी पीना चाहिए। इससे धातु बढ़ती और पुष्ट होती है।

भैंस का घी

गुण—सर्पिर्माहिषमुत्तमं धृतिकरं सौख्यप्रदं कान्तिकृत्—
वातश्लेष्मनिबर्हणं बलकरं वर्णप्रदाने क्षमम्।
दुर्नामग्रहणीविकारशमनं मन्दानलोद्दीपनं चक्षुष्य—
मवगव्यतः परमिदं हृद्यं मनोहारि च ॥ (रा० नि०)

भैंस का घी—उत्तम, धृतिकारक, सुखकारक, कान्तिजनक, वात-कफ नाशक, बलकारक, वर्णदायक, बवासीर और संग्रहणी-नाशक, अग्नि दीपक, नेत्रों को हितकारक तथा नवीन गाय के घी से हृदय को परम हितकारी और मनोहर है।

बकरी का घी

गुण—आजमाज्यं करोत्यग्निं चक्षुष्यं बलवर्द्धनम्।
श्वासे कासे क्षये चापि हितं पाके भवेत्कटु ॥
कफार्शोरागयक्ष्माणां नाशनं परिकीर्तितम्। (हा० सं०)

बकरी का घी—अग्निजनक, नेत्रों को हितकारी, बलवर्द्धक तथा श्वास, खाँसी और क्षयरोग में हितकारी, पाक में कटु एवं कफ और राजयक्ष्मा नाशक है।

आहार-विज्ञान

पंचम खण्ड, परिशिष्टवर्ग

आहार में ईख, अदरख, पुदीना, धनियाँ, लाल मिर्चा और काली मिर्च आदि चीजों की आवश्यकता पड़ती है। भोजन के बाद पान, इलायची, कत्था आदि चीजें भी मुख शुद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। क्योंकि भोजन के बाद पान आदि खाने से मसूढ़ों से जो लार निकलती है, वह पाचन-क्रिया में अत्यन्त सहायता पहुँचाती है।

ईख, गन्ना

स० इक्षु, हि० ईख, गन्ना, ब० आक, म० ऊस, गु० शेरडी, क० फब्विनमेरु, तै० चिरकु, फा० नेशकर, अ० कसबुस् शक्कर, अँ० सुगर केन-Sugar Cane, और लै० सेक्केर आफिसिनेशम्-Saccharum Officinasum

विशेष विवरण—ईख जगत प्रसिद्ध है। यह समस्त भारत में होती है। पाँच-छः हाथ लम्बी और इच-डेढ़ इंच तक मोटी होती है। थोड़ी-थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं। यह सफेद, लाल और काली कई जाति की होती है। छोटी और पतली को ईख कहते हैं। बड़ी को गन्ना कहते हैं। ईख की अपेक्षा गन्ना अधिक मीठा, गुण दायक और तृप्तिकारक होता है। ईख, गन्ना की अपेक्षा अधिक मात्रा में होती है। ईख से ही राब, गुड़, चोनी और मिश्री होती है। इसकी गरेड़ी और पेरा हुआ रस पीया जाता है। ईख का कोई भी भाग व्यर्थ नहीं जाता। पशी वगैरह जानवरों के खाने के काम आती है। रस पेरे जाने के बाद ईख की सीठी भी जानवरों के खाने के काम आती है।

गुण—इक्षवो रक्तपित्तघ्ना बल्या वृष्या कफप्रदा।

विपाके मधुराः स्निग्धा गुरवो मूत्रला हिमाः॥ (शा० नि०)

ईख—रक्तपित्त नाशक, बलकारक, वृष्य, कफकारक, पाक में मधुर, स्निग्ध, भारी, मूत्रजनक और शीतल है।

गुण—इक्षुमूलेऽतिमधुरो मध्ये मधुर एव च।

ग्रन्थौ त्वग्यग्रभागे च विज्ञेयो लवणो रसः ॥ (शा॰ नि॰)

ईख की जड़—अत्यन्त मधुर, मध्य भी मधुर तथा गाँठ, छिलका और अग्रभाग में लवण रस रहता है।

गुण—स्निग्धश्च सतर्पणश्च हृण्यश्च सञ्जीवनः स्वादुरसः श्रमघ्न।

वृष्यश्च पित्तास्रहरश्च भवेच्च दाहविदाही कफकृत्सितेक्षुः॥

सफेद ईख—स्निग्ध, तृप्तिकारक, हृद्य, संजीवन, स्वादिष्ट, श्रम नाशक, वृष्य, रक्तपित्त-शामक, भीतर के दाह को शान्त करने वाली और कफकारक है।

गुण—तद्वत्सुकृष्णो हि भवेद्गुणैश्च वृष्यो भवेत्तर्पणदाहहर्ता।

सक्षारकिञ्चिन्मधुरोरसेन शोषापहर्त्ता व्रणशोफकर्ता॥

काली ईख भी सफेद ईख के समान गुणोंवाली है। साथ ही काली ईख—वृष्य, तृप्तिकारक, दाह विनाशक, क्षारयुक्त मधुर रसान्वित, शोष नाशक तथा व्रण और शोफकारक है।

गुण—बालस्त्विक्षुः कफं कुर्यान्मेदोमेहकरश्च सः।

युवा तु वातहृत्स्वादुरीषत्तीक्ष्णश्च पित्तनुत्॥

रक्तपित्तहरो वृद्धः क्षतहृद्बलवीर्यकृत्। (शा॰ नि॰)

कच्ची ईख—कफकारक, मेदजनक और प्रमेहकारक है। युवा ईख—वात नाशक, स्वादिष्ट, किंचित्तीक्ष्ण और पित्त नाशक है। पकी पुरानी ईख—रक्तपित्त तथा क्षत नाशक एवं बल और वीर्यकारक है।

गुण—दन्तनिष्पीडितस्येक्षो रसः पित्तास्त्रनाशनः।

शर्करासमवीर्यः स्यादविदाही कफप्रदः॥ (शा॰ नि॰)

दाँत से चूसी हुई ईख का रस—रक्तपित्त नाशक, शर्करा-

के समान वीर्यवाला, दाह-रहित और कफकारक है।

गुण—तस्मादविदाही विष्टम्भी गुरु स्यात्यांत्रिकोरस। (शा० नि०)

खराब, सड़ी और कीड़ों की खाई हुई ईख का रस—दाहकारक, विष्टम्भी और भारी होता है।

गुण—रसः पर्युषितो दुष्टो ह्यम्लो वातापहो गुरुः।
कफपित्तकरः शोषी भेदनश्चातिमूत्रकः॥ (शा० नि०)

ईख का बासी रस—खराब, खट्टा, वात नाशक, भारी, कफ-पित्तकारक, शोषजनक, भेदक और मूत्रकारक है।

गुण—पक्वो रसो गुरुः स्निग्धः सुतीक्ष्णः कफवातनुत्।
गुल्मानाहप्रशमनो किंचित्पित्तकरः स्मृतः॥ (भा० प्र०)

ईख का पकाया हुआ रस—भारी, स्निग्ध, तीक्ष्ण, कफ-वात नाशक, गुल्म और आनाह-शामक तथा पित्तकारक है।

विशेष उपयोग (१) कामला रोग पर—ईख प्रातःकाल चूसें, अथवा ईख का रस रात भर ओस में रखकर सुबह पीवें।

(२) मन्दज्वर पर—जंगली ईख चूसें या ईख का रस पीवें।

(३) हिचकी पर—ईख का रस पीना चाहिए।

गुड़

स० हि० व० गुड़, म० गूळ, गु० गोल, क० होसवेल्लद हेलरु, तै० बेल्लामु, फा० कंदेसिया, अ० कंदेअस्वद, और अँ० ट्रीकल; मोलासीस-Treacle, Molasses

गुण—नूतनो गुडो मधुः सारो गुरुश्चोष्णश्च समलः।
रक्तस्त्रिपित्तदोषाणामहितो मूत्रशोधनः॥
वृष्यः स्निग्धः सरः प्रोक्तः कृमिमेदकरो मतः।
शुक्रमज्जामांसरक्तकारकोऽग्निदीपनः॥
पित्तघ्नो भेदको वातश्वासकासकफापहः।
स शुद्धो रक्तकफकृत्स्वादुः स्निग्धश्च वातहा॥
मलमूत्रे यथामार्गं प्रवर्तयति योजसा।
स चैकहायनो रुच्यः पथ्यश्चाग्निप्रदीपकः॥
मूत्रविट्शुद्धिकरो हृद्यः स्वादुश्च पौष्टिकः।
रसायनो लघुः स्निग्धो वृष्यो मेहप्रमापहः॥
त्रिदोषपाण्डुसन्तापपित्तवातापहो मतः।
समोगेन ज्वरहरस्त्र्यब्दजीर्णो लघुः स्मृतः॥
सर्वदोषहरः श्रेष्ठः पुराणेषु च सत्तमः।
अरिष्टादिषु योज्यः स्यात्पूर्वं हीनगुणाः स्मृताः॥ (नि०

नया गुड़—मधुर, सारक, भारी, गरम, रक्त और पित्त रोगि
को अहितकारी, मूत्रशोधक, वीर्यवर्द्धक, चिकना, सारक तथा कृ
मेद, शुक्र, मज्जा, मांस और रक्तकारक, अग्नि दीपक, पित्तजन
भेदक तथा वात, श्वास, खाँसी और कफ नाशक है। शुद्ध कि
हुआ गुड़—रक्तकारक, कफकारक, स्वादिष्ट, चिकना, वात नाश
और मल-मूत्र को यथा मार्ग लानेवाला है। एक वर्ष का पुरान
गुड़—रुचिकारक, पथ्य, अग्नि दीपक, मूत्र और मल को शु
करनेवाला, हृदय को हितकारी, स्वादिष्ट, पुष्टिकारक, रसायन,

हलका, स्निग्ध, वृष्य तथा प्रमेह, व्रण, त्रिदोष, आनाह, सन्ताप, पित्त, वात और सयोग से ज्वर नाशक भी है। तीन वर्ष का पुराना गुड़—हलका, सर्वदोष नाशक, उत्तम और सब प्रकार के पुराने गुड़ों में श्रेष्ठ है। इसे अरिष्ट आदि चीजों में छोड़ना चाहिए। तीन वर्ष से अधिक पुराना गुड़—हीन गुणोंवाला होता है।

विशेष उपयोग (१) मूत्रकृच्छ्र पर—दूध में गुड़ छोड़कर और गरम करके पीना चाहिए।

(२) सूर्यावर्त्त अर्धावभेदक पर—एक तोला गुड़ में छ माशे घी मिलाकर सुबह खाना चाहिए। काला तिल दूध में पीस कर सिर पर लेप करना चाहिए। यह प्रयोग तीन दिनों तक करना चाहिए।

(३) फाँच और काँटा गड़ने पर—गुड़ और अजवा इन गरम करके बाँधना चाहिए।

(४) कनखजूरा के काटने पर—गुड़ जलाकर लगाएँ।

(५) दस्त के लिए—गुड़, भैंस के धारोष्ण दूध में मिलाकर खड़े-खड़े पीना चाहिए। एक पहर तक बैठना न चाहिए।

(६) हिचकी पर—गुड़ के पानी में सोंठ घिसकर सूँघना तथा थोड़ी देर बाद सोना चाहिए, अथवा दूध में लालचन्दन और नमक घिसकर सूँघना चाहिए।

(७) मासिक धर्म के लिए—पुराना गुड़ दो तोले, काला तिल एक तोला, आध सेर चूना के पानी में पकाएँ। आध पाव बाकी रहने पर छानकर पीना चाहिए।

खाँड़

स० खण्ड, हि० ब० गु० खाँड़, म० साखर, क० मालखण्ड, तै० पौंचदारा, फा० अ० शक्कर, अँ० सुगर-Sugar, और लै० साकोरम्-Saccharum

गुण—वातपित्तहर शीत स्निग्ध बल्य मुखप्रियम् ।
चक्षुष्य श्लेष्मकृप्रोक्त खण्ड वृष्यतम मतम् ॥ (शा० नि०)

खाँड़—वात-पित्त नाशक, शीतल, स्निग्ध, बलकारक, मुख प्रिय, नेत्रों को हितकारी, कफकारक, और वीर्यवर्द्धक है।

चीनी, मिश्री

स० शर्करा, हि० चीनी, मिश्री, ब० चिनी, मिछरी, म० पिठी-साखर, खडीसाखर, गु० शाकर, क० गुडगुडा सुगीतु, तै० फाटिके पौंचादारा, फा० खड़ीशक्कर नबात, अ० सक्करे अबियद, अँ० शुगर कैंडी Sugar Candy, और लै० साक्करम् प्युरिफिकटम् Sacchurum Purificatum.

गुण—शर्करा शीतवीर्या च विपाके मधुरा सरा ।
दाहतृट्छर्दिमूर्च्छास्त्रकृमिकोपविनाशिनी ॥ (गणनि०)

चीनी—शीतवीर्य, पाक में मधुर, सारक तथा दाह, तृषा, वमन, मूर्च्छा, रक्त-विकार और कृमि नाशक है।

गुण—मूर्च्छामोहतृषापस्मारोपशमनी दाहज्वरविध्वंसिनी
श्वासच्छर्दिमदात्ययभ्रमहरी हृद्या च संतर्पणी ।

क्षीण रेखिसि पावके च विषमे क्षीणे क्षते दुर्बले
दुर्वातेपि च रक्तपित्तगदे सेव्या सदा शर्करा। (बृ० दे०)

मिश्री—मूर्च्छा, मोह, तृषा, शोष, दाह, ज्वर, श्वास, वमन, मदात्यय और छम नाशक, हृदय को हितकारी, तृप्तिकारक तथा क्षीणवीर्य, विषमाग्नि, क्षीण, क्षत, दुर्बल, वातरक्त और रक्तपित्त में सदैव सेवन करनी चाहिए।

विशेष उपयोग (१) दाहयुक्त मूत्रकृच्छ्र पर—चीनी और घी गरम दूध में छोड़कर पीना चाहिए।

(२) मूत्रकृच्छ्र पर—चीनी दही में मिलाकर खाएँ।

(३) तृषा पर—चीनी का शर्बत पीना चाहिए।

(४) धुँओं से नेत्र विकार में—चीनी लगाएँ।

(५) दस्त रोकने के लिए—चीनी का गरम शर्बत पीयँ।

(६) धातु गिरने पर—मिश्री सात तोले और चौकिया सोहागा का लावा सात मासे, सात दिनों तक प्रतिदिन सुबह एक तोला खाना चाहिए।

(७) वीर्य की वृद्धि के लिए—मिश्री गरम दूध में मिलाकर पीना चाहिए।

अदरख

स० आर्द्रक, हि० आदी, अदरख, म० आदा, म० आले, गु० आदु, क० तै० अल्ल, फा० जिंजिबिलरतब, अ० जिंजिबिलतर,

अँ० जिंजर रूट्-Ginger Root, और लै० जिंजिबर ओफिसि-नेलिस-Gingiber Officinallis

विशेष विवरण—आदी का पेड़ लगभग एक-डेढ़ हाथ तक का होता है। इसकी पत्तियाँ लम्बी और जड़ होती है। इसी जड़ को आदी कहते हैं। यही उबालकर सुखाई हुई सोंठ कही जाती है। बंगाल, मद्रास और जामेकाबेट आदि स्थानों से सोंठ सब जगह अधिक मात्रा में आती है। सोंठ दो प्रकार की होती है। एक सफेद और दूसरी लाल। सोंठ का तेल भी बनाया जाता है। आदी के अभाव में सोंठ का उपयोग किया जाता है।

गुण—आर्द्रिका भेदनी गुर्वी तीक्ष्णोष्णा दीपनी मता।
कटुका मधुरा पाके रूक्षा वातकफापहा॥ (भा० प्र०)

आदी—भेदक, भारी, तीक्ष्ण, गरम, दीपन, चरपरी, पाक में मधुर रूखी, वात और कफ नाशक है।

विशेष उपयोग (१) खाँसी, श्वास, मंदाग्नि और अरुचि पर—आदी का रस, * जल और चीनी मिलाकर पकाया जाय, जमने लायक चाशनी तैयार होने पर इलायची, जायफल, जावित्री और लौंग का चूर्ण मिलाकर बरफी जमा दें। इसे आदी-पाक कहते हैं। चार माशे से छः माशे तक खाना चाहिए।

---

* नोट—आदी का रस काम में लाने के पहले थोड़ी देर तक शीशे अथवा पत्थर के बर्तन में रख दें। बाद धीरे से दूसरे बर्तन में रस निकालें और उसके नीचे जो सफेद रंग का पदार्थ जमा रहता है उसे फेंक दें। यह पदार्थ—धातु और रक्त को खराब करता है।

(२) अजीर्ण पर—आदी तथा नीबू के रस में सेंधा नमक मिलाकर पीना चाहिए। इससे अजीर्ण, मदाग्नि, वायु, मल बद्धता और आमवात नष्ट होते हैं।

(३) खाँसी और श्वास पर—आदी के रस में शहद मिलाकर पीना चाहिए।

(४) उष्णवात पर—आदी का रस शहद मिलाकर पीएँ।

(५) अतीसार पर—आदी का रस नाभि पर लगाएँ।

(६) उदररोग पर—आदी का रस पानी मिलाकर पीएँ।

(७) मदाग्नि पर—आदी और नीबू के रस में सेंधा नमक मिलाकर भोजन से पहले पीना चाहिए।

(८) खाँसी पर—आदी और नीबू के रस में शहद और छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर दिन में तीन बार पीना चाहिए।

(९) जुकाम पर—आदी या सोंठ, तज और मिश्री का काढ़ा पीना चाहिए।

(१०) कमर, जांघ, पीठ आदि की पीड़ा, वायु, गुल्म, शूल, उदावर्त्त, गृध्रसी और हनुग्रह पर—आदी के रस में घी मिलाकर पीना चाहिए।

(११) वमन पर—आदी और प्याज का रस पीएँ।

(१२) बहुमूत्र पर—आदी के रस में मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

(१३) भ्रम और पित्त पर—आदी का रस दो तोले, गाय के दूध में मिलाकर पकाएँ। आधा रह जाने पर मिश्री मिला

कर रात में सोते समय पीना चाहिए।

(१४) भ्रम और पित्त पर—आदी का रस एक तोला, आँवला का रस, चीनी, और गाय का घी दो-दो तोले, सब मिलाकर पकाएँ। आधा रह जाने पर प्रतिदिन सुबह शाम पीएँ।

(१५) अरुचि पर—आदी और सेंधा नमक खाएँ।

(१६) मदाग्नि पर—आदी पीसकर उसकी टिकिया बनाएँ और उसे सेंककर खाएँ।

इलायची

सं० बृहत एला, सूक्ष्म एला, हि० बड़ी इलायची, छोटी इलायची, ब० बड़ इलाइच, छोट एलाच, म० वेलदोडे, वेलची, गु० मोटी एलची, कागदी एलची, क० परडूलकी, ते० एलुक्कचेट्टु, एलाक्कु, ता० एलम, फा० हले कलाँ, हेल, अ० काकल किबार, काकिले हमार, अँ० लार्ज कार्डामोम, लेसर कार्डामोम-Largo Cardamom, Lesser Cardamom, और ले० एमोम सुखुलेटम, इलेटेरिया कार्डामोम Amomum Sukhulatum, Elettaria Cardamom.

विशेष विवरण—इसका उत्पत्ति स्थान भारतवर्ष तथा अन्य उष्ण प्रदेश हैं। यह मालाबार, कोचीन, मंगलोर, मैसूर और प्राय सम्पूर्ण कर्नाटक प्रान्त में होती है। मालाबार में इलायची का पेड़ आप से ही पैदा होता है। इलायची साधारणतया दो प्रकार की

होती है। छोटी और बड़ी। बड़ी इलायची—मसाला, मिठाई, औषध और खाने के काम आती। छोटी इलायची—मिठाई, औषध और खाने के काम आती है। छोटी इलायची का पेड़ आदी के पेड़ के समान होता है। रात में इलायची नहीं खानी चाहिए। अधिक इलायची खाने से यदि किसी प्रकार की तकलीफ मालूम पड़े, तो गुलाब का फूल खाना चाहिए। बड़ी इलायची का पेड़ पाँच-सात फीट लम्बा होता है। यह काले रंग की बड़ी-बड़ी होती है। इसका छिलका भी औषध के काम आता है। छोटी इलायची सफेद और हरी दो प्रकार की होती है, किन्तु हरी रसीली और अधिक गुणद होती है।

गुण—स्थूलैला कटुका पाके रसे चानलकृल्लघुः।

रूक्षोष्णा श्लेष्मपित्तास्रकण्डूश्वासतृषापहा॥

हृल्लासविषबस्त्यास्यशिरोरुग्वमिकासनुत्। (भा० प्र०)

बड़ी इलायची—पाक और रस में चरपरी, अग्नि दीपक, हलकी, रूखी, उष्ण तथा कफ, पित्त, रक्त, खुजली, श्वास, तृषा, वमकाई, विष, बस्तिरोग, मुखरोग, शिरोरोग, वमन और कास नाशक है।

गुण—सूक्ष्मैला च शीता च रसे कट्वी लघुः स्मृता।

सुगन्धिः पित्तला चैव मुखमस्तकशोधिनी॥

गर्भपातकरी रूक्षा वातश्वासकफापहा।

कासार्शः क्षयविषबस्तिकण्ठरुग्‌ हरेत्॥

मूत्राश्मरी व्रणं कण्डूं नाशयेदिति कीर्तिता। (नि० र०)

छोटी इलायची–कड़वी, शीतल, रस में चरपरी, हलकी, सुगंधि, पित्तजनक, मुख और मस्तक शोधनेवाली, गर्भ गिराने-वाली, रूखी तथा वात, श्वास, खाँसी, बवासीर, क्षय, विष-विकार, बस्तिरोग, कण्ठरोग, मूत्ररमरी, घाव और खुजली नाशक है।

विशेष उपयोग (१) पेशाब के साथ धातु गिरने पर–बड़ी इलायची और हींग भूनी हुई का तीन रत्ती चूर्ण दूध और घी के साथ सेवन करना चाहिए।

(२) बिच्छू के विष पर–छोटी इलायची का चूर्ण कानों में छोड़ना चाहिए।

(३) जमालगोटा के विष पर–बड़ी इलायची, दही में पीसकर खाना चाहिए।

(४) नेत्रों की जलन और कम दीखने पर–इलायची और चीनी का चूर्ण, चार माशे रेंड़ी का तेल मिलाकर सुबह जल्दी सेवन करना चाहिए।

(५) रक्तप्रदर, रक्तार्श और प्रमेह पर–छोटी इलायची, केसर, जायफल, बंसलोचन, नागकेसर और शंखपुष्पी का सम भाग चूर्ण बनाकर चौदह दिनों तक सुबह-शाम दो माशे चूर्ण, दो माशे शहद, छः माशे गाय का घी और तीन माशे चीनी मिला कर सेवन करना चाहिए। रात में सोते समय आध सेर गरम दूध में चीनी मिलाकर पीना चाहिए। गुड़, तेल, गरम और खट्टी चीजें न खानी चाहिए।

(६) कफजन्य रोगों पर–बड़ी इलायची का दाना,

सेंधा नमक, घी और शहद मिलाकर देना चाहिए।

(७) धातु पुष्टि के लिए—छोटी इलायची का दाना, जावित्री, बादाम की गिरी, गाय का मक्खन और चीनी मिलाकर सुबह सेवन करना चाहिए।

(८) मूत्रकृच्छ्र पर—इलायची का चूर्ण शहद के साथ दें।

(९) उदावर्त रोग पर—इलायची कच्ची और भूनी हुई का चूर्ण बनाकर शहद के साथ देना चाहिए।

(१०) मुखरोग पर—इलायची और फिटकिरी का लावा मुँह में रखकर दिन में चार-पाँच बार लार गिराना चाहिए।

(११) सब प्रकार के शूल पर—इलायची, हींग, जवाखार और सेंधा नमक काढ़ा करके रेंड़ी का तेल मिलाकर देना चाहिए। इससे कमर, हृदय, उदर, नाभि, पीठ, मस्तक, कान और कोखे की पीड़ा नष्ट होती है।

(१२) मूत्रकृच्छ्र पर—इलायची का चूर्ण, गोमूत्र, शहद और केला के रस में मिलाकर देना चाहिए।

(१३) वमन पर—बड़ी इलायची के छिलके की राख शहद के साथ मिलाकर चटानी चाहिए।

धनियाँ

स० धन्याक, हि० धनियाँ, म० धने, म० कोथिंबीर, गु० धाणा, क० कोथम्बुरी, तै० कोथमिलु, ता० कोतमल्लि, फा० गुश्नेकश्नीज,

अ० कश्नुरा, अँ० कोरीयंडर सीड-Coriander Seed, और लै० कोरीएंड्रम सेटाइवम्-Coriandrum Sativum

विशेष विवरण—धनियाँ का पेड़ प्रायः हाथ भर तक लम्बा होता है। इसकी टहनियाँ बहुत मुलायम होती हैं। पत्तियाँ बहुत छोटी, गोल और कटावदार होती हैं। पत्तियों की सुगन्ध अत्यन्त मनोहर होती है। टहनियों के छोर पर इधर-उधर कई सींकें निकलती हैं। इनके सिरों पर छत्रों की भाँति फैले हुए सफेद फूलों के गुच्छे लगते हैं। फूलों के गिर जाने पर गेहूँ से छोटे और लम्बे फल लगते हैं। यह तरकारी, अचार, मसाला और औषध के काम आती है। यूरप में धनियाँ का तेल भभके द्वारा निकाला जाता है। हरी धनियाँ की चटनी बनाई जाती है। यह भी औषध के काम में आती है।

गुण—धान्यकं तुवरं स्निग्धमवृष्यं मूत्रलं लघु।
तिक्तं कटूष्णवीर्यं च दीपनं पाचनं स्मृतम्॥
ज्वरघ्नं रोचकं ग्राहि स्वादुपाकि त्रिदोषनुत्।
आर्द्रं तु तद्गुणं स्वादु विशेषात्पित्तनाशनम्॥
तृष्णादाहवमिश्वासकासकार्श्यकृमिप्रणुत् । (शा० नि०)

धनियाँ—कषैली, स्निग्ध, अवृष्य, मूत्रजनक, हलकी, कड़वी, चरपरी, उष्णवीर्य, दीपन, पाचक, ज्वर नाशक, रोचक, पाक के समय स्वादिष्ट तथा त्रिदोष, तृषा, दाह, वमन, श्वास, खाँसी, कृशता और कृमिरोग नाशक है। हरी धनियाँ का गुण भी इसी के समान है, किन्तु यह विशेष करके पित्त नाशक है।

विशेष उपयोग (१) मिलावाँ से शरीर खराब होने पर—धनियाँ पीसकर लगाना चाहिए।

(२) चेचक की गरमी निकालने के लिए—धनियाँ और जीरा चौगुने जल में रात के समय मिट्टी के पर्तन में भिगो दें। सुबह उस जल में चीनी मिलाकर पीना चाहिए। इससे कोष्ठ शुद्ध होकर गरमी शान्त हो जाती है।

(३) आमातीसार पर—धनियाँ और सोंठ के काढ़े में रेंड़ की जड़ का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(४) अरुचि पर—धनियाँ, इलायची, मिर्च का चूर्ण, घी और चीनी के साथ खाना चाहिए।

(५) दाह और तृषा पर—इलायची पानी में पीसकर पीना चाहिए।

(६) मदाग्नि, श्वास, विषमज्वर और अजीर्ण पर—धनियाँ, लौंग, निशोथ और सोंठ का चूर्ण गरम जल के साथ सेवन करना चाहिए।

(७) ज्वर पर—धनियाँ, देवदारु, सोंठ, भटकटैया और वनमटा का काढ़ा पीना चाहिए।

(८) पित्तज्वर और अन्तर्दाह पर—धनियाँ और चावल रात के समय जल में भिगो दें। प्रातःकाल पकाकर पी जाएँ।

(९) दाह पर—धनियाँ रात के समय जल में भिगो दें। सुबह एक तोला चीनी मिलाकर वही जल पी जाना चाहिए।

(१०) मूत्राघात पर—धनियाँ और गोखुरू का काढ़ा

घी मिलाकर पीना चाहिए।

(११) जमालगोटा के विष पर—धनियों का चूर्ण चीनी और दही के साथ सेवन करना चाहिए।

(१२) गर्भिणी के वमन पर—धनियों का चूर्ण तीन माशे और चीनी एक तोला, चावलों की धोवन के साथ पीना चाहिए। अथवा धनियों की चटनी और चीनी, चावलों की धोवन के साथ सेवन करना चाहिए।

(१३) रक्तपित्त में—धनियाँ और मुनक्का का काढ़ा पीएँ।

(१४) बालकों के उदरशूल, आमातीसार और अजीर्ण पर—धनियाँ और सोंठ का काढ़ा पिलाना चाहिए।

(१५) बालकों की आँख आने पर—धनियों की पोटली पानी में भिगोकर आँखों पर बार-बार लगाना चाहिए।

(१६) लू से बचने के लिए—धनियों के जल में चीनी मिलाकर पीना चाहिए।

(१७) बालकों के खाँसी और श्वास पर—धनियाँ और चीनी चावलों के धोवन के साथ देना चाहिए।

(१८) तृषा पर—धनियों के जल में शहद और सोंठ मिलाकर पीना चाहिए।

पुदीना

स० सुगधिपत्र, हि० पुदीना, म० म० पुदिना, गु० फोदिनो,

फा० नोअना, अ० हवा, अँ० दि मार्स मिन्ट The Marsh Mint, और लै० मेन्था अरवेन्सिस-Mentha Arvensis

विशेष विवरण—इसका पेड़ छोटा होता है। पुदीना की पत्ती तुलसी की भाँति; परन्तु उससे बड़ी, गोल और कटावदार होती है। देखने और छूने में खरखरी होती है। पत्तियों की सुगन्ध बड़ी मनोहर होती है। इसका फूल सफेद और बीज छोटा होता है। इसका बीज बोया नहीं जाता। केवल डंठल लगा देने मात्र से यह लग जाता है। यह भारतवर्ष का नहीं है। बल्कि बाहर का है। पिपरमेंट पुदीना का ही सत्त है। पुदीना साधारणतया तीन प्रकार का होता है। एक मामूली, दूसरा जल, तीसरा पहाड़ी पुदीना होता है। इसकी चटनी बनाई जाती है। इसकी पैदाइश चीन की है।

गुण—पुदिमस्तु गुरु स्वादू रुच्यो हृद्यः सुखावहः।
मलमूत्रस्तम्भकरा कफकासमदापहः॥
अग्निमांद्यविषूचिघ्नः समहण्यतिसारहा।
जीर्णज्वर कृमींश्चैव नाशमेवेति कीर्त्तितम्॥ (नि० र०)

पुदीना—भारी, स्वादिष्ट, रुचिकारक, हृदय को हितकारी, सुख को देनेवाला, मल मूत्ररोधक तथा कफ, खाँसी, मद, मन्दाग्नि, विषूचिका, संग्रहणी, अतीसार, जीर्णज्वर और कृमि नाशक है।

विशेष उपयोग (१) शीत, विषम और सामान्य ज्वर पर—पुदीना और आदी का काढ़ा अथवा दोनों का रस पीना चाहिए।

(२) मन्दज्वर पर–पुदीना और जंगली तुलसी, अथवा काली तुलसी के रस में तीन माशे चीनी मिलाकर पीना चाहिए।

(३) वायु तथा कृमि पर–पुदीना का रस पीना चाहिए।

(४) पीनस पर–पुदीना के रस की नास लें।

(५) दाह पर–पुदीना का रस लगाएँ।

(६) अतीसार, खाँसी और विषूचिका पर–पुदीना का रस पीना चाहिए।

(७) उदर-शूल पर–पुदीना और आदी का रस सम भाग एक तोला सेंधा नमक मिलाकर पीना चाहिए।

(८) बिच्छू का विष—पुदीना का रस अथवा पुदीना को पत्ती पान के साथ खाने से नष्ट होता है।

(९) अरुचि पर—पुदीना, मिर्च, सेंधा नमक, हींग, काला मुनक्का, जीरा और छुहारा की चटनी खानी चाहिए।

(१०) अजीर्ण पर—पुदीना के अर्क में काला नमक मिलाकर पीना चाहिए।

(११) विषूचिका पर–पुदीना और सौंफ का अर्क पीएँ।

लाल मिरिच (मिर्चा)

सं० कटुवीरा, हि० लाल मिरिच, मिर्चा, म० लंकामरिच, म० लाल मिरची, गु० मरची, फ० स्पएरिनकाई, फा० फिलफिलेसुर्ख, अं० कायनपेपर Cayennapepper और लै० क्यापसिकं

अनम्-Capsicum Annum

विशेष विवरण—मिर्चा का पेड़ कमर बराबर ऊँचा होता है। इसकी पत्ती आगे की ओर चौड़ी और पीछे की ओर सकरी होती है। फूल सफेद होते हैं। यह कच्चा—हरा और पक्का—लाल होता है। यह बहुत कड़वा होता है। यही सुखाकर बाजार में बिकता है। यह साधारणतया कई प्रकार का होता है। लवगी मिर्चा—छोटा और बहुत तीता होता है। मिर्चा प्रतिदिन भोजन के काम आता है। मिर्चा स्वादिष्ट अवश्य होता है, परन्तु इससे हानि भी बहुत होती है। दक्षिण प्रान्त में तथा माहेश्वरी लोग मिर्चा बहुत खाते हैं। मिर्चा—मसाला, चटनी, तरकारी और आचार आदि में काम आता है। इसका रस लगाने से जलन होती है, लेप से छाले पड़ते हैं।

गुण—कटुवीराग्निजननी फलासघ्नी च दाहिनी।
हन्त्यजीर्णं विषूचीञ्च व्रण क्रिमि सुदारुणम्॥
तन्द्रां मोह प्रलापञ्च स्वरभेदमरोचकम्। (शा० नि०)

मिर्चा—अग्नि दीपक, कफ नाशक, दाहजनक तथा अजीर्ण, हैजा, बड़ा तथा खराब व्रण, तन्द्रा, मोह, प्रलाप, स्वरभेद और अरुचि नाशक है।

विशेष उपयोग (१) कफज उदर शूल पर—मिर्चा का बीज गरम पानी में पीसकर पिलाना चाहिए। रक्त-विकार और पित्त-प्रकृति वाले को न देना चाहिए।

(२) विषूचिका पर—मिर्चा का चूर्ण और सेंधा नमक

पानी में पकाकर वही जल छानकर गरम-गरम पीना चाहिए।

(३) खटमलों का नाश करने के लिए-मिर्चों का काढ़ा करके गरम-गरम छोड़ना चाहिए।

(४) पागल कुत्ते का विष-लाल मिर्चा पीसकर घाव पर लगाना चाहिए। इससे विष नष्ट होकर घाव अच्छा हो जाता है।

मिर्च

स० मरिच, सितमरिच, हि० काली मिर्च, सफेद मिर्च, ब० गोल मरिच, म० मिरें पाढ़रें, गु० मरी, धोलीमरी, क० मेणसु, तै० मरिया, ता० मिलगु, फा० पिलपिले अस्वद, हल पिले गिर्द, अ० फिलफिले अवीद, अँ० ब्लेक पेपर-Black pepper, और लै० पाईपर नाइग्रम्-Piper Nigrum.

विशेष विवरण-मिर्च की लता होती है। यह पान की लता के समान बोई जाती है। यह मालाबार और कोंकण प्रान्तों में बहुत होती है। इसकी पत्तियाँ पान के समान होती हैं। इसकी लता में मिर्च गुच्छों में लगती है। यह काली और सफेद दो प्रकार की होती है। अच्छी तरह पकने पर सोही हुई मिर्च सफेद होती है। इसकी लता पर जो लम्बी-लम्बी फलियाँ लगती हैं, उसे गजपीपर कहते हैं। गजपीपर औषध के काम आता है। मिर्च मसाला, खाने और औषध के काम आती है। इसकी जड़ को चवक कहते हैं। इसकी लता चालीस-पचास वर्षों तक रहती और फल देती है।

गुण—मरिच कटुक तीक्ष्ण दीपन कफवातजित् ।
उष्ण पित्तकर रूक्ष श्वास शूलकृमीन्हरेत् ॥
तदार्द्र मधुर पाके नात्युष्ण कटुक गुरु ।
किञ्चित्तीक्ष्णगुण श्लेष्मप्रसेकि स्यादपित्तलम् ॥ (भा० प्र०)

मिर्च—कड़वी, तीक्ष्ण, दीपन, कफ-वात नाशक, गरम, पित्त-जनक, रूखी तथा श्वास, शूल और कृमि नाशक है। कच्ची मिर्च—पाक में मधुर, किंचित् उष्ण, चरपरी, भारी, किंचित् तीक्ष्ण, कफ को निकालनेवाली और पित्तकारक नहीं है।

गुण—कटूष्ण श्वेतमरिच विषघ्नं भूतनाशनम् ।
अवृष्य दृष्टिरोगघ्न युक्त्या चैव रसायनम् ॥ (रा० नि०)

सफेद मिर्च—कड़वी, गरम, विष नाशक, भूत नाशक, अवृष्य, दृष्टिरोग विनाशक और योग से रसायन है।

विशेष उपयोग (१) वायु से जकड़ जाने पर—मिर्च पानी में पीसकर लेप करके केला का पत्ता रखकर बाँधें।

(२) खुजली पर—मिर्च और आमलासारगंधक, घी में घोटकर घाम में बैठ करके लेप करना चाहिए।

(३) शीतपित्त पर—मिर्च घी में पीसकर लेप करना और खाना चाहिए।

(४) खाँसी पर—मिर्च का चूर्ण चार रत्ती, तीन माशे शहद और चीनी के साथ सेवन करना चाहिए।

(५) विषमज्वर पर—मिर्च का चूर्ण, तुलसी के रस और शहद के साथ देना चाहिए।

(६) सिर-दर्द पर—मिर्च, करज के तेल में पीसकर लेप करना चाहिए।

(७) विषूचिका पर—मिर्च का चूर्ण गरम पानी में मिलाकर पीना; अथवा मिर्च दस रत्ती, भूनी हींग दस रत्ती और अफ़ीम एक माशा, सब को पीसकर बारह गोलियाँ बनाएँ। घटा-घटा भर पर एक-एक गोली पानी के साथ देना चाहिए। तीन चार गोलियों से अधिक न देना चाहिए।

(८) खाँसी पर—मिर्च और दूध एक साथ पकाकर पीएँ।

(६) हरताल के विष पर—मिर्च पानी में पीसकर लेप करें।

(१०) संखिया के विष पर—मिर्च का चूर्ण छ माशा, आध पाव मक्खन के साथ खाना चाहिए।

(११) ज़ुकाम पर—मिर्च का चूर्ण और चीनी गरम दूध में मिलाकर पीना चाहिए।

(१२) मूत्राघात पर—सफ़ेद मिर्च का खूब महीन चूर्ण मूँग बराबर लेकर घी में घोटें। बाद इन्द्रिय का मुख ऊपर करके छिद्र द्वारा बूँद-बूँद औषधि छोड़ें। यह बस्ति में पहुँचकर पेशाब अवश्य लाएगी। दो-चार बार छोड़ने ही से रोग अच्छा हो जाता है। पेशाब के बाद जलन मालूम पड़ने पर पतला घी छोड़ना चाहिए। गरमी वाले पुरुषों तथा बिना गरमी वाली स्त्रियों को भी यह न करना चाहिए।

(१३) संग्रहणी, बवासीर, उदररोग, प्लीहा, मंदाग्नि और गुल्म पर—मिर्च, चीता और काला नमक का चूर्ण मट्ठे के

साथ सेवन करना चाहिए।

(१४) आधाशीशी पर—मिर्च और चावल, मोंगरा के रस में पीसकर लेप करना चाहिए, अथवा निगुंण्डी के रस में मिर्च घिसकर नास लेना चाहिए।

(१५) सब प्रकार के ज्वर पर—मिर्च छः मासे और चीनी दो तोले, चालीस तोले पानी में पकाएँ। पाँच तोले बाकी रहने पर छानकर पीना चाहिए।

(१६) वायु विकार की शान्ति के लिए—मिर्च और लहसुन महीन पीसकर भोजन के समय प्रथम ग्रास में घी भात के साथ खाना चाहिए।

(१७) स्वरभंग पर—मिर्च का चूर्ण घी में मिलाकर भोजन के साथ पीना चाहिए।

साबूदाना

हि० गु० साबूदाना, म० सागु, साबुदारुयार्षे म्हाड, अं० स्पागो Sago, और लै० सेगस् लेवस् Sagus Laevus

विशेष विवरण—सागू, ताड़ की जाति का एक वृक्ष है। यह जावा, सुमात्रा में अधिक होता है। बंगाल और दक्षिण में भी होता है। इसके कई भेद हैं। एक को माड़ भी कहते हैं। इसका पेड़ बीस-चालीस हाथ तक लम्बा होता है। इसके पत्ते ताड़ की अपेक्षा कुछ लम्बे होते हैं। साबूदाना, सुडौल एवं गोल होता है। इस पेड़ के रेशों से रस्से आदि बनते हैं। कहीं-कहीं इसमें से एक प्रकार का

मादक द्रव पदार्थ निकाला जाता है। उस रस से गुड़ भी बनाया जाता है। जब यह पेड़ पुराना होता है, तब इसके मोटे तने में आटे की तरह का एक सफेद पदार्थ जम जाता है। बस उसे काट कर निकाल लेते हैं और पीसकर छोटे-छोटे दाने बनाए जाते हैं। उस सफेद पदार्थ को न निकालने से पेड़ सूख जाता है। कुछ पेड़ ऐसे होते हैं, जिनके तने को फाटकर उसका गूदा निकाल लेते हैं और उसे पानी में कूटकर दाने बनाते हैं। इन्हीं दो प्रकार के दानों को साबूदाना कहते हैं। इस पेड़ का तना पानी में जल्दी नहीं सड़ता, इसलिए इसे खोखला करके नाली का काम लेते हैं। कहीं-कहीं उपर्युक्त पदार्थ को पीसकर चलनी से छान लेते हैं और उससे दाने बनाते हैं।

गुण—साबूदाना—पाचक, पौष्टिक, शीघ्र पचनेवाला और हलका है। इसे निर्बल और रोगियों को दूध या पानी में पकाकर पथ्य के रूप में देना चाहिए।

पान

स० ताम्बूल, हि० ब० गु० पान, म० नागवेल, फ० नागरवल्ली, तै० तामलपाकु, ता०-वेट्टिली, फा० बर्गतंबोल, अ० तान, अं० बिटल्लीफ-Betelleaf, और लै० पिपेर बिटले Piper Betle

विशेष विवरण—पान सर्वत्र प्रसिद्ध है। यह केवल भारतवर्ष में खाया जाता है। पान की लता सीमाप्रान्त और पञ्जाब प्रदेश को छोड़कर जावा, स्याम और सिंहल आदि देशों में भी

होती है। पान का व्यवहार बहुत अधिक है। आजकल पान से ही आतिथ्य-सत्कार किया जाता है। पान—पूजन, खाने और औषध के काम आता है। पान—बंगला, मगही, साँची, कपूरी, महोबी, मद्रासी, कलकतिया, बनारसी और गयावाली आदि अनेक भेद हैं। गया का मगही पान सबसे अच्छा समझा जाता है। इसकी नसें बहुत पतली और मुलायम होती हैं। यह मुँह में रखते ही गल जाता है। गया के पान से बढ़कर अन्य दूसरा पान नहीं होता। कथा—पान हरा और पक्का—सफेद होता है। आजकल जिस प्रकार पान खाया जाता है। इससे स्वास्थ्य नष्ट होने के अतिरिक्त किसी प्रकार का लाभ नहीं होता। हाँ, थोड़ा खाने से लाभ अवश्य होता है।

गुण—ताम्बूल विशद रुच्य तीक्ष्णोष्ण तुवर सरम्।

वश्यं तिक्त कटु क्षार रक्तपित्तकर लघु॥

बल्य श्लेष्मास्यदौर्गन्ध्यमलवातश्रमापहम्। (भा० प्र०)

पान—विशद, रुचिकारक, तीक्ष्ण, गरम, कषैला, सारक, वशीकरण, चरपरा, क्षार, रक्तपित्तकारक, हलका, बलकारक तथा कफ, मुख की दुर्गन्धि, मल, वात और श्रम नाशक है।

विशेष उपयोग (१) सर्पदंश पर—पान के लता की जड़, पान में छोड़कर खानी चाहिए। इससे वमन होकर विष नष्ट हो जाता है। दो-तीन बार खाने से अवश्य वमन होता है।

(२) नल फूलने पर—सफेद पान और सहिंजन का रस, तीन दिनों तक पीना चाहिए।

(३) कुचला का विष—काले पान के डण्ठल का रस एक पाव तक तीन दिनों में पीने से नष्ट होता है।

(४) पारा का विष—पान की लता, भाँगरा और तुलसी का रस, मक्खी के दूध में मिलाकर तीन दिनों तक सुबह से दोपहर तक लेप करें और दोपहर के बाद ठंडे जल से स्नान करें।

(५) सरदी की खाँसी पर—नागरवेल की फली का चूर्ण शहद के साथ देना चाहिए।

(६) सियार का विष—नागरवेल की जड़ पानी में पीसकर पीना चाहिए। इससे वमन होकर विष नष्ट हो जाता है।

खैर (कत्था)

स० खदिर, हि० खैर, कत्था, ब० खयेर गाछ, म० खैर, गु० खेरियो, क० कॅपिन खैर, तै० चण्डचेद्‌द्रु, फा० अ० फाव, अँ० कटेचु Catechu, और लै० एकेशिया काटेचु Acacia Catechu

विशेष विवरण—खैर जगली पेड़ है। सह्याद्रि प्रदेश के नीचे इसका पेड़ बहुत होता है। इसकी पत्ती समी की पत्ती के समान होती है। इसके भीतर की लकड़ी भूरे रंग की होती है। बबूल की भाँति इसमें भी गोंद निकलता है। यह औषध के काम आता है। इसी लकड़ी का सत्त, खैर (कत्था) होता है। यह पान में डाल कर खाया जाता तथा औषध के काम आता है। खैर की लकड़ी बहुत मजबूत होती है। खैर कई प्रकार का होता है, किन्तु सबों में सफेद खैर उत्तम होता है।

गुण—खदिरः शीतलो दन्त्यः कण्डूकासारुचिप्रणुत् ।
तिक्तः कषायो मेदोघ्नः कृमिमेहज्वरव्रणान् ॥
श्वित्रशोथामपित्तास्रपाण्डुकुष्ठकफान्हरेत् । (भा० प्र०)

खैर—शीतल, दाँतों को मजबूत करनेवाला, कड़वा, कषैला तथा कण्डू, खाँसी, अरुचि, मेद, कृमि, प्रमेह, ज्वर, घाव, सफेद कोढ़, शोथ, आम, रक्तपित्त, पाण्डुरोग, कुष्ठ और कफ नाशक है।

गुण—निर्यासस्तस्य मधुरो बल्यः शुक्रविवर्द्धनः ।
सारस्तु विशदो मध्यो मुखरोगकफास्रजित् ॥ (म० वि०)

खैर का गोंद—मधुर, बलकारक और शुक्रवर्द्धक है। खैर का सत्त—विशद, व्रण को हितकारी तथा मुखरोग, कफ और रक्तविकार नाशक है।

विशेष उपयोग (१) कोढ़ पर—खैर के पचांग के काढ़े से स्नान, पान और भोजन सभी काम करने चाहिएँ। खैर घिसकर लगाने से भी लाभ होता है।

(२) गरमी पर—खैर और आसन के काढ़े में त्रिफला का चूर्ण मिलाकर पीने से सब प्रकार का उपदश नष्ट हो जाता है।

(३) भगंदर पर—खैर की छाल और त्रिफला के काढ़े में भैंस का घी और वायविडंग का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(४) संखिया के विष पर—गाय के दूध में खैर घिसकर पीना चाहिए।

(५) उष्ण प्रमेह पर—खैर, बबूल और समी का अकुर एक तोला, सम भाग गाय के दूध का छींटा देकर पीस करके पाँच

तोले रस में चार रत्ती जीरा का चूर्ण और छ: मारो मिश्री मिला-कर सुबह-शाम सात दिनों तक पीना चाहिए।

(६) बदमाश घोड़ा ठीक करने के लिए—खैर पाँच तोले प्रतिदिन उसे खिलाना चाहिए।

(७) थकावट दूर करने के लिए—खैर की छाल का रस, हींग मिलाकर पीना चाहिए।

(८) प्रमेह और दाह पर—खैर का अकुर दो तोले और जीरा पाँच मारो, गाय के दूध में पीस छानकर चीनी मिला-कर दिन में दो बार पीना चाहिए।

(९) खाँसी पर—खैर की अन्दर छाल चार रत्ती, बहेड़ा का छिलका दो रत्ती और लौंग एक रत्ती का चूर्ण शहद के साथ दें।

(१०) कानों का बहना—सफेद खैर गरम पानी में भोज कर बार बाँधकर कानों में छोड़ें। बाद कपड़े से पोंछें।

(११) पित्त-बिकार पर—खैर की मुलायम पत्ती एक तोला और तीन मारो सोंठ, गाय के ताजे दूध में पीस छानकर तीन दिनों तक सुबह सेवन करना चाहिए।

(१२) सफेद कोढ़ पर—खैर की छाल और इमली के काढ़े में बकुन्ची का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

(१३) खाँसी पर—सफेद खैर मुँह में रखकर चूसें।

समाप्त

भस्म और रस

मूल्य एक रुपया भर का

वज्र भस्म (हीरा)	२५००)	बृहत् कस्तूरी भैरव	३०)
महाराज मृगाङ्क	१५०)	विजय पर्पटी	३०)
हिरण्यगर्भ पोट्टली रस	११०)	स्वर्ण पर्पटी	२५)
रत्नगर्भ पोट्टली रस	१००)	सुधानिधि रस	२०)
वैक्रान्त भस्म	१००)	नागेश्वर रस	२०)
स्वर्ण भस्म	८०)	कामिनी-विद्रावण रस	१५)
सिद्धमकरध्वज	७०)	दाक्ष्यवल्लभ रस	१५)
षड्गुण बलिजारित		रससिन्दूर	१०)
मकरध्वज	४०)	प्रदरान्तक लौह	२५)
द्विगुण बलिजारित मकरध्वज	२०)	त्रिवंग भस्म	१०)
मुक्ता गुलाबजल का घुटा	७०)	स्वर्ण वंग	१०)
मुक्ता भस्म	५०)	रस चन्द्रामृत	६)
बृहत् वातचिन्तामणि	५०)	वसन्ततिलक रस	५)
मालती वसन्त	५)	बृहल्लोकनाथ रस	५)
चतुर्मुख चिन्तामणि	४०)	मण्डूर भस्म	५)
लौह भस्म १०००	४०)	नाग भस्म	५)
लौह भस्म ५००	२५	वंग भस्म	५)
लौह भस्म २००	१०)	रजत भस्म	५)
अभ्रक भस्म १०००	४०)	कान्त सिन्दूर	५)
अभ्रक भस्म ५००	२५)	ताम्र भस्म	४)
अभ्रक भस्म ३००	१५)	इच्छाभेदी नवगुण	४)
वसन्तकुसुमाकर रस	४०)	सर्वाङ्गसुन्दर	३)
ज्वराशनि रस	३०)	श्वासकुठार ..	३)

मूल्य एक रुपया भर का

स्वर्णमाक्षिक भस्म	३)	कामेश्वर	१)
प्रवालपिष्टी	३)	ज्वरभैरव रस	१)
प्रवाल भस्म (मूँगा)	२॥)	इच्छाभेदी त्रिगुण	१)
गोदन्ती हरताल भस्म	२)	इच्छाभेदी समान	१)
कफकुठार	२)	शङ्ख भस्म	१)
ज्वरांकुश रस	२)	कपर्दक भस्म (कौड़ी)	१)
रत्नेश्वर	२)	शुक्ति भस्म (सीप)	१)

वटी चूर्ण और तैल

बृहत् मृगाङ्क वटी	५०)	अग्निवाड़वका वटी	१)
चन्द्रोदय वटी	५०)	आनन्दभैरव वटी	१)
विषमज्वरघ्नी वटी	१०)	सञ्जीवनी वटी	१)
ग्रहणीकपाट	१५)	गन्धक वटी	१)
चन्द्रप्रभा वटी	१०)	हिंग्वादि वटी	१)
महाशंख वटी	५)	लवणादि वटी	१)
शुण्ठ वटी	५)	कुचिलादि वटी	१)
रामबाण वटी	२)	मृत्युञ्जय वटी	१)

मूल्य एक छटाँक का

लवणभास्कर चूर्ण	॥)	सुदर्शन चूर्ण	।=)
हिंग्वाष्टक चूर्ण	॥=)	पञ्चसकार चूर्ण	।)

मूल्य १ सेर ८० भर का

महानारायण तैल	२०)	महालाक्षादि तैल	१६)
महाचन्दनादि तैल	२०)	मरिचादि तैल	१०)
मध्यमनारायण तैल	१२)	षड्बिन्दु तैल	६)

दीर्घ जीवन

यह पुस्तक आप को बतायेगी कि हवा, भोजन, पानी, वस्त्र, गृह, व्यायाम आदि क्या हैं, उनके क्या कार्य हैं, उनमें कैसे बिगाड़ पैदा होता है और वे किन रूपों में हमारे जीवन को सुखी, हमारी आत्मा को प्रसन्न तथा हमारी आयु को दीर्घ बना सकते हैं। लम्बी आयु के अभिलाषी प्रत्येकव्यक्ति को इस पुस्तक की हरएक पंक्ति अपने हृदय-पटल पर अंकित कर लेनी चाहिये। चार आने की यह पुस्तक आप को वैद्यों, डाक्टरों और हकीमों की शरण में जाने का मौका न देगी। मूल्य केवल ।)

सौंफ चिकित्सा

यदि आप सौंफ जैसे पदार्थ से सम्पूर्ण रोगों का नाश करना चाहते हैं, आप यदि यह जानना चाहते हैं कि सौंफ का उपयोग कैसे करना चाहिये, तो "सौंफ-चिकित्सा" को मँगाकर एकबार अवश्य पढ़िये। इसका प्रत्येक शब्द हृदय-पटल पर अंकित करने लायक है। इसके पढ़ लेने से प्रमेह, प्रदर, मूत्ररोग, अजीर्ण, विषूचिका, रक्तपित्त, हिचकी, श्वास, अतीसार और ज्वर आदि रोगों को आप सौंफ द्वारा ही भगाने में समर्थ हो जायेंगे। मूल्य केवल ।)

अमृतपान

यदि आप सहज प्राकृतिक उपाय उप जलपान से बड़े-बड़े भीषण रोगों को जैसे अग्निमांद्य, उदररोग, मलावरोध, शूल, अम्लपित्त, उदावर्त, संग्रहणी, मूत्राघात, ज्वर, गण्डमाला, नेत्ररोग, शिरोरोग, अर्श, शोथ, रक्तपित्त, मेदरोग और प्रतिश्याय आदि दूर करना चाहते हैं, यदि आप यह जानना चाहते हैं कि अमृत-पान क्या वस्तु है और वह किस प्रकार करना चाहिए, तो इस पुस्तक को मँगाकर अवश्य पढ़िए। मूल्य केवल ।)

सफलता का रहस्य

यह पुस्तक अँग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक मिस्टर वर्नार मेकफैडन की 'हाऊ सक्सेस इज़ वन्' (HOW SUCCESS IS WON) का हिन्दी अनुवाद है। इस पुस्तक में बतलाया गया है कि मादक वस्तुओं का त्याग, सच्ची स्वतन्त्रता, अच्छी सोसाइटी, कर्मण्यता, एकाग्रता और सच्चरित्रता आदि क्या हैं और मनुष्य को अपने जीवन में किस तरह सफलता मिल सकती है, यदि सफलता मिलती है, तो वह किस तरह और जीवन में कितनी बार मिलती है। सफलता के कौन-कौन अङ्ग हैं। सफलता के लिये स्वास्थ्य की कितनी आवश्यकता है। यदि इन सब बातों को जानना चाहते हैं कि इन में क्या रहस्य है, तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। भाषा सरल तथा उत्तम है। मूल्य केवल १)

सिर का दर्द

यह पुस्तक बतलायेगी कि मस्तिष्क की रचना कैसी है, उसमें जो सूक्ष्म तन्तु हैं, उनकी क्या क्रियायें हैं, उन तन्तुओं में खराबी क्यों होती है, सिर में दर्द क्यों होने लगता है, कितने प्रकार का सिर-दर्द उत्पन्न होता है। डाक्टरी तथा वैद्यक के मतानुसार उसका विवेचन क्या है, इन दोनों मतों के अनुसार उसकी चिकित्सा क्या है और सिर-दर्द का प्राकृतिक उपाय क्या है। यदि इन सब बातों के जानने की इच्छा हो, तो आज ही एक प्रति मँगाकर पढ़िए। मूल्य केवल ॥)

भयंकर डकैती

आपने हिन्दी में बहुत से जासूसी उपन्यास पढ़े होंगे, लेकिन आप ने ऐसा उपन्यास न पढ़ा होगा, जिसे पढ़ना शुरूकर खतम किये बिना जी न माने और खतम करके भी बार-बार पढ़ने की अभिलाषा बनी ही रहे, यदि आप डाकुओं के हुनर, उनकी दिलेरी और जवाँमर्दी का जीता-जागता चित्र देखना चाहते हों, यदि आप पुलिस की मुस्तैदी और जासूसों की कुशलता, उनका अदम्य साहस, उत्साह, धैर्य और कष्ट-सहिष्णुता का करश्मा देखना चाहते हों, यदि आप शिक्षा और मनोरंजन का बढ़िया मेल चाहते हों, तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। तिरंगे चित्रों से विभूषित। मूल्य केवल ॥)
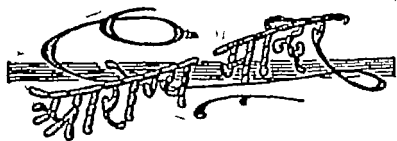
ले०—देश के बड़े-बड़े धुरन्धर पचासों विद्वान्

यदि आप अपने परिवार को दीर्घजीवी बनना चाहते हैं, यदि आप यह जानना चाहते हैं कि-चूना, चोकर, कपास, जामुन, थूहर, इमली, प्याज, तुलसी आदि का उपयोग कैसे करना चाहिए, वे हमारे जीवन के लिए कितने आवश्यक हैं उनसे स्वास्थ्य-वर्द्धन कैसे हो सकता है; तो इसे अवश्य पढ़िए। देश के बड़े-बड़े विद्वानों एवं अनुभवी चिकित्सकों ने इसकी मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है।

देखिये-काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय के प्रोफे०, नागरी-प्रचारिणी सभा के जन्म-दाता राय-साहब, बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० लिखते हैं:-"आरोग्य-मन्दिर" में अनेक विद्वानों के अनुभूत बातों का संग्रह है। छोटे-मोटे और सुलभ योग इसमें एक लिखे हैं जिनसे गृहस्थों का बड़ा उपकार होगा। भाषा सरल तथा सुन्दर है। ऐसे संग्रह की हिन्दी में बड़ी आवश्यकता थी। इसे घर में रखने से एक सामान्य वैद्य का काम निकल सकता है।

पुस्तक की छपाई आदि उत्तम है। पृष्ठ ४५०, मूल्य २), सजिल्द २॥)

सहायक-साहित्य-मन्दिर

बुलानाला, बनारस सिटी

प्रकाशक—
केदारनाथ गुप्त बी० ए० सी० टी०
प्रोप्राइटर छात्रहितकारी पुस्तक-माला,
दारागंज प्रयाग

मुद्रक—
बाबू विश्वम्भरनाथ भार्गव,
स्टैन्डर्ड प्रेस इलाहाबाद।

महात्मा नारायण स्वामीजी ।

B. P. Allahabad
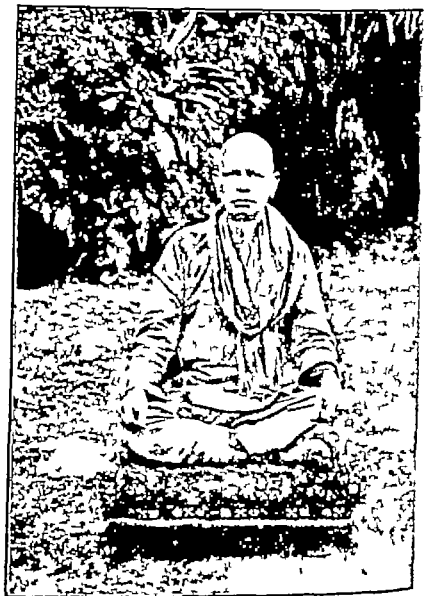
आर्य-समाज के स्तम्भ, गुरुकुल वृन्दावन के प्राण
अनुपम त्यागी, प्रसिद्ध वक्ता और फलाहार
के जबर्दस्त समर्थक

महात्मा नारायण स्वामी

के कर-कमलों
में

श्रद्धापूर्वक समर्पित

केशवकुमार ठाकुर

छात्रहितकारी पुस्तक-माला की पुस्तकें

१ ईश्वरीय बोध—परमहंस स्वामी रामकृष्ण के उपदेशों का संग्रह। मूल्य ॥।)

२. सफलता की कुञ्जी—स्वामी रामतीर्थ के एक लेख का अनुवाद। मूल्य।)

३ मनुष्य जीवन की उपयोगिता—जीवन को सुखमय बनाने वाली पुस्तक। मूल्य ॥=)

४ भारत के दशरत्न—जीवनियों का संग्रह। मूल्य।)

५ ब्रह्मचर्य्य ही जीवन है—ब्रह्मचर्य्य पर एक अनुपम पुस्तक। मूल्य ॥।)

६ वीर राजपूत—एक ऐतिहासिक उपन्यास। मूल्य १)

७ हम सौ वर्ष कैसे जीवें—स्वास्थ्य पर एक उत्तम पुस्तक। मूल्य १)

८. महात्मा टालस्टाय की वैज्ञानिक कहानियाँ। मूल्य।)

९ वीरों की सच्ची कहानियाँ—महा पुरुषों की वीरता पूर्ण सच्ची घटनाएँ। मूल्य ॥।)

१० आहुतियाँ—देश और धर्म पर बलिदान होने वाले वीरों की कहानियाँ। मूल्य ॥।)

११ जगमगाते हीरे—जीवनियों का अपूर्व संग्रह। मूल्य १)

१२ पढ़ो और हँसो—विनोद की एक उत्तम पुस्तक। मूल्य ॥)

१३ कुसुमकुञ्ज—कविता की अनूठी पुस्तक। मूल्य ।=)

१४. चार चिन्तामणि कोष—रामनाम से सम्बन्ध रखने वाली तुलसीदास की कवितायें। मूल्य ।=)

मनुष्य शरीर की श्रेष्ठता—शरीर विज्ञानपर एक अनुपम पुस्तक। मूल्य ।=)

मैनेजर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला
दारागंज प्रयाग।

भूमिका

छात्र हितकारी पुस्तक माला के सचालक महोदय से, जिस समय इस पुस्तक के लिखने की आज्ञा मिली थी, वह समय मेरे लिए शान्त-जीवन का था, हाल में ही मैंने गार्हस्थ्य विषय पर एक पुस्तक लिख कर समाप्त की थी, इसलिए कुछ विश्राम करके इस पुस्तक के लिखने का विचार किया।

पुस्तक की सहायता के लिए, मैं पुस्तकालयों, बड़ी बड़ी दूकानों में भटकने लगा, किन्तु कहीं कुछ न मिला। कई एक डाक्टरों और वैद्यों से बातें कीं, कुछ आयुर्वेदिक ग्रन्थों और डाक्टरी की पुस्तकों के सम्बन्ध में, बातें मालूम हुईं, परन्तु साथ ही यह भी मालूम हुआ कि अँगरेज़ी में भी, इसके सम्बन्ध में कोई एक पुस्तक पूर्ण नहीं है। कुछ बातें और विशेषकर फलों के गुण डाक्टरी की पुस्तकों में मिलेंगे जिनसे एक डाक्टर ही लाभ उठा सकता है। मैं स्वयं कोई डाक्टर नहीं था, बड़ी कठिनाई जान पड़ने लगी। माला के व्यवस्थापक श्री गणेश पाण्डेय तो बड़े उद्यमशील व्यक्ति हैं, उन्होंने इसके लिए अनेक मुझे मार्ग बताए और उन्होंने स्वयं संग्रह करके मुझे कुछ पुस्तकें दीं। हिन्दी तथा अन्य किसी प्रान्तिक भाषा में इसके सम्बन्ध में मौलिक कोई ग्रंथ था ही नहीं। मुझे अँगरेजी और संस्कृत की कुछ पुस्तकें मिलीं। अंगरेज़ी और बँगला में कुछ लेख भी ऐसे मिले, जिनको मैंने उपयोगी समझा।

इसपर भी हमारे पाण्डेय जी को संतोष न हुआ। पुस्तक के सम्बन्ध में, कितनी और कौन-कौन सी बातें, कहाँ और कैसे

मालूम होसकती हैं, इसके लिए, उन्होंने रात-रातभर सोचना और भिन्न भिन्न लोगों से पता लगाना आरम्भ कर दिया। उनके खोजे हुए पतों पर दौड़ना मेरा काम था। फिर क्या था, फलों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने तथा उसके लिए सहायक ग्रन्थों को खोजने के लिए, आज यदि मुझे वनस्पति-शास्त्र के अनुभवी किसी अमेरिकन प्रोफ़ेसर के पास जाना पड़ा है, तो कल एग्रीकेल्चरल कालेज के प्रिन्सपल से मिलना निश्चित है ! और परसों के लिए पाण्डेयजी ने कुछ बुक-स्टाल्स के पते मेरे लिए ढूँढ़कर रख छोड़े हैं !!

श्रीयुत पाण्डेयजी के इस उदार परिश्रम के लिए मैं आभारी हूँ, किन्तु इस दौड़ धूप से जो लाभ होना चाहिए था, न हुआ। पुस्तक के कुछ अंशों को पूर्ण करने के लिए, कहीं कुछ आधार न मिला। इसका कुछ और भी कारण है और वह यह कि इस प्रकार की पुस्तक लिखने के लिए वर्षों के खोज की आवश्यकता होती है। इस बात से यह पुस्तक जल्दी लिखी गई। इस प्रकार की पुस्तकों में साहित्यिक रचना नहीं होती, केवल खोज और अनुसन्धान की बातें होती हैं। पुस्तक लेखक, इस प्रकार की बातों में, अधिकतर क्या भूलें करते हैं, उसपर प्रकाश डालते हुए एक अनुभवी अंग्रेज़ ने जो मुझसे बात की, उसका मुझपर बहुत प्रभाव पड़ा। उसने बताया कि जो नियम और उपनियम, किसी बात के लिए योरप में निश्चित किये गये हैं, वे केवल योरप के लिए होते हैं, किन्तु उन्हीं बातों पर लिखने के लिए भारतवर्ष के हिन्दी या बंगला के लेखक उन्हीं नियमों का उल्लेख करके पुस्तकों के पन्ने भर देते हैं ऐसा करने में प्रायः बड़ी भूलें हो जाती हैं। किसी एक वृक्ष को लगाने के लिए योरप में कुछ बातें निश्चित की गई, उनको हमने मालूम किया और उन्हीं के आधार पर इस देश में, उस पौदे को लगाया।

दो-चार दिनों में वह पौधा सूख गया! कारण स्पष्ट है। वे नियम जिस मिट्टी, वायु, जल और मौसिम के आधार पर निश्चित किये गए थे, वह तो यहाँ सब के सब उलटे हैं, फिर वे नियम कैसे चल सकते हैं! न तो वह यहाँ पर मिट्टी है, न वह जल है और न वह वायु है, फिर वह नियम क्या कर सकता है? बात यह है कि सारी बातें अनुभव और परीक्षा पर निर्भर हैं।

इसी आधार पर, फलों के गुणों के सम्बन्ध में, बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी है। वैद्यक, यूनानी और डाक्टरी के भिन्नभिन्न मतों को लेकर, एक एक फल पर पर्याप्त रूप से लिखा गया है। इससे कहीं-कहीं पर, एक ही फल पर मत वैषम्य हो गया है, इस विषमता को दूर करने के लिए मेरे पास कोई साधन न था।

साधारणतया पाठक इस विषय से अनभिज्ञ होते हैं, उनको किसी प्रकार की असावधानी न हो, इसकेलिए खूब प्रयत्न किया गया है, फिर भी जो त्रुटियाँ हैं, उनके सम्बन्ध में अपने अनुभवी पाठकों, उदार लेखकों और समालोचकों से आशा है कि वे उनके सम्बन्ध में लेखक और प्रकाशक को अपरिचित न रहने देंगे और उनके परिचित कराने पर, पुस्तक के दूसरे संस्करण में, उनकी पूर्ति भी कर दी जायगी।

पुस्तक के विषय के प्रेमी पाठकों से निवेदन है कि वे इस को प्रारम्भ से लेकर अन्त तक, एक बार ध्यानपूर्वक अवश्य पढ़ जाँय। इसके बाद भी, यदि उनके मनोभावों पर, आहार और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में, सात्विक जीवन का कोई प्रभाव न पड़े तो उन्हें समझ लेना चाहिये कि पुस्तक के विषय के भावों को ठीक ठीक प्रदर्शन करने में लेखक असमर्थ रहा।

विनीत—

केशवकुमार ठाकुर

कृतज्ञता-ज्ञापन

पुस्तक लिखने में, अपने अनुभव और विचारों के साथ-साथ, जिन पुस्तकों से सहायता ली है अथवा जिनके देखने की आवश्यकता पड़ी है, उनकी तालिका नीचे दी जाती है। जिन महानुभावों ने पुस्तकें देकर अथवा, अपने अनुभव बताकर सहायता की है, उनकी उदारता के लिए, हृदय से आभार।

पुस्तकों के नाम

१—मि० ए० ई० पायस की आहार विषयक पुस्तक

२—पथ्य-गुण (बँगला पुस्तक)

३—Guide to health (महात्मा गाँधी की पुस्तक)

४—The new science of healing में फलों के सम्बन्ध में मि० लुई कुह्नी के विचार

५—Fruit diet (एक डाक्टर की लिखी हुई अँगरेज़ी पुस्तक)

६—शालिग्राम निघंटु (प्रस्तुत विषय पर संस्कृत का सबसे बड़ा ग्रंथ)

७—मुस्तानुलमुफ़रिदात (प्रस्तुत विषय पर यूनानी की पुस्तक)

८—श्री शंकरदास जी शास्त्री पदे का 'आर्यभिषक्'

९—फलों के सम्बन्ध में अँगरेजी और बँगला के कुछ लेख

—लेखक

विषय-सूची

पहला अध्याय

विषय	पृष्ठ
१—जीवन-शक्ति	१
२—हमारे भोजन के पदार्थ	८
३—हमारी भूख और उसका परिणाम	२५
४—हम बीमार क्यों पड़ते हैं ?	३७
५—फलाहार क्यों सर्वोत्तम है ?	५०
(भोजन के प्रत्येक पदार्थ की वैज्ञानिक विवेचना)	
६—फलों के सम्बन्ध में संसार के विद्वान्	६६
७—संसार की जातियों में फलाहार का प्रभाव	७६

दूसरा अध्याय

विषय	पृष्ठ
८—फल और भारतवर्ष	९०
९—आम	९३
१०—बादाम ...	९९
११—अमरूद	१०४
१२—नींबू	१०७
१३—नारंगी ✓	११२
१४—अखरोट ..	११४
१५—पिपाविस ..	११६
१६—आलूबुख़ारा	११९
१७—अंगूर	१२१
१८—इमली	१२६
१९—अनार ...	१३१
२०—नारियल ✓	१३३
२१—खजूर या छुहारा ✓	१३६
२२—चिरौंजी ...	१४०
२३—महुआ	१४३
२४—कटहल ..	१४६
२५—केला	१५०

फल, उनके गुण तथा उपयोग

पहला अध्याय

जीवन-शक्ति

रेलगाड़ी को छोटे और बड़े-सभी जानते हैं, यदि उसके सम्बन्ध में प्रश्न किया जाय कि रेलगाड़ी की शक्ति क्या है? तो प्रायः सभी लोग संदिग्ध हो उठेंगे। वे सोचने लगेंगे, रेल गाड़ी की शक्ति क्या हो सकती है। यदि इस प्रश्न के स्थान पर पूछा जाय कि रेलगाड़ी क्या खाती है तो सभी लोग कह उठेंगे कि कोयला और पानी। अब प्रश्न यह है कि यदि उसको कोयला और पानी न दिया जाय तो? सभी लोग कहेंगे, तो वह फिर चल न सकेगी। इस प्रकार, रेलगाड़ी की शक्ति क्या है, इस प्रश्न का उत्तर निकला, उसका भोजन कोयला और पानी। यदि उसका भोजन उसको न दिया जाय तो रेलगाड़ी में न तो शक्ति है और न उसमें कोई पुरुषार्थ है। उसका भोजन ही उसकी शक्ति है—उसकी खुराक ही उसका पुरुषार्थ है। ठीक यही अवस्था हमारे जीवन की है।

हममें से प्रत्येक व्यक्ति भोजन करता है, छोटे और बड़े—सभी को अपनी अवस्था के अनुकूल भोजन की आवश्यकता होती है। जिस दिन बालक पैदा होता है, पैदा होने के साथ ही

उसको भूख की व्यथा होती है। जो कुछ वह खाता है, उसी से उसमें चैतन्य शक्ति उत्पन्न होती है। इस बात से यह स्पष्ट होता है कि हमारी जीवन शक्ति हमारा भोजन है। परन्तु वह भोजन क्या है, इस बात के जानने की आवश्यकता है। रेलगाड़ी को चलाने के लिए कोयला और पानी दिया जाता है किन्तु यह प्रश्न यहीं हल नहीं होजाता। वह कोयला, कौन सा हो सकता है, यह जानने की आवश्यकता होती है। कोई भी कोयला, उसको आवश्यकरूप में शक्ति और सहायता नहीं पहुँचा सकता। और इसीलिए प्रत्येक कोयला उसमें प्रयोग नहीं किया जाता। इस बात को सभी जानते हैं कि रेलगाड़ी के इंजन में पत्थर का कोयला लगता है, यदि उसमें, इसके स्थान पर साधारण और असाधारण लकड़ी का कोयला प्रयोग किया जाय तो इंजन, रेलगाड़ी के संचालन में अनेक व्याधियों को अनुभव करेगा। यही अवस्था हमारे जीवन की भी है। हमको भोजन की आवश्यकता तो है ही, परन्तु हमारे लिए क्या भोजन हो सकता है—हमारी खुराक क्या है, यह एक अलग प्रश्न है। यह प्रश्न इतना साधारण नहीं है जितना लोग समझ लेते हैं और न इतना अनावश्यक है जितना प्रायः लोग अनुभव करते हैं।

हमारे जीवन का सारा सुख और दुख, हमारे शरीर के स्वास्थ्य और पुरुषार्थ पर निर्भर है। जो जितना ही स्वस्थ और पुरुषार्थी है, उतना ही वह सुखी और सन्तुष्ट है। रुपया-पैसा, धन-दौलत, आदि संसार की समस्त विभूतियाँ अस्वस्थ और पुरुषार्थ हीन को सुखी नहीं बना सकती। इसलिए इस विषय का जानना और उसकी विवेचना करना जितना आवश्यक है उतना आवश्यक और कोई भी विवेचन नहीं होसकता। हमारा भोजन क्या है, इसके सम्बन्ध में, आगे चलकर, स्वतन्त्र रूप से विवेचन किया जायगा, किन्तु यहाँ पर केवल यह बता देना

बहुत आवश्यक है कि समाज में इस प्रकार के मनुष्य बहुत कम मिलेंगे जिनको अपने भोजन का यथोचित ज्ञान हो।

समाज की इस अवस्था का कारण क्या है? यह प्रश्न हमारे सामने है और बहुत आवश्यक है। प्रकृति ने संसार के समस्त प्राणियों को इस प्रकार का ज्ञान प्रदान किया है जिससे किसी भी प्राणी को अपने भोजन का ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी से शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती। यह सब होने पर भी मनुष्य को यह जानने की आवश्यकता है कि हमारा वास्तविक भोजन क्या है। सभी लोग यह पढ़कर विस्मित होंगे कि जिस ज्ञान की आवश्यकता संसार में किसी भी प्राणी को नहीं है, उसकी आवश्यकता मनुष्य-जाति को क्यों है? उनका ऐसा सोचना आश्चर्यजनक नहीं है। इसलिए कि जो ऐसा सोचेंगे, वे तो यही जानते हैं कि मनुष्य तो समस्त प्राणियों की अपेक्षा ज्ञान सम्पन्न है, फिर उसको किसी बात के जानने की आवश्यकता क्या है और विशेषकर, उन बातों के लिए, जिनको सभी प्राणी, स्वभावतः जानते और जिनके सम्बन्ध की जानकारी रखते हैं।

यह सब ठीक होते हुए भी बात कुछ और है। जिन बातों का ज्ञान प्रकृति ने स्वभावतः समस्त प्राणियों को प्रदान किया है, उनसे मनुष्य जाति किसी प्रकार वंचित नहीं रखी गई किन्तु मनुष्य-जाति ने स्वयं अपने आपको उन जानकारियों से वंचित कर रखा है। यह सुनकर किसी को आश्चर्य न करना चाहिए, मनुष्य वंचित हुआ है, सभ्यता के प्रमाद में। अप्राकृतिक उन्माद में। यह प्रमाद और उन्माद क्या है, यहाँ पर इसके सम्बन्ध में कुछ लिखना आवश्यक है।

मानव समाज की सभ्यता का विकास, प्रकृति के विरुद्ध

हुआ है, इस बात को संसार के प्रायः सभी महान पुरुष स्वीकार करते हैं, किन्तु इसके सम्बन्ध में हमें यहाँ पर किसी प्रकार की विवेचना नहीं करनी। और यदि करें तो वह यहाँ पर अप्रासंगिक होगी। बताना केवल यह है कि इस अप्राकृतिक सभ्यता के विकास में, मनुष्य अपने नैसर्गिक गुणों को भी भूल बैठा है, यह किसी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता! प्राणिविज्ञान-विशारदों ने भिन्न भिन्न प्राणियों के सम्बन्ध में जो अनुभव किया है, उनका कहना है कि सृष्टि के सभी प्राणियों को अपने जीवन की आवश्यक बातों का स्वभावतः ज्ञान होता है। जिस प्राणि का जो भोजन होता है, वह उसके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु को नहीं खाता और सूँघ कर छोड़ देता है। प्राणि विज्ञान ने यह साबित किया है कि सभी प्राणियों की सभी बातें—उनका खाना-पीना, जीवन का व्यवहार-बर्ताव, रहन-सहन, एक-सा नहीं होता। किसी एक प्राणी का जो आहार हो सकता है, दूसरा प्राणी उससे भिन्न पाया जाता है, यह विभिन्नता बहुत विस्तार के रूप में पायी जाती है। आश्चर्य की बात तो यह है कि सभी को अपनी अपनी इन बातों का यथोचित ज्ञान होता है। प्रकृति ने इन प्राणियों की नाक में घ्राणशक्ति की एक विशेषता प्रदान की है जिसके द्वारा वे सभी अपना अपना भोजन पदार्थ पहचान लेते हैं। जो पदार्थ उनके खाने के नहीं होते उनको वे केवल सूँघकर छोड़ देते हैं। इस प्रकार की बातें, भिन्न भिन्न प्राणियों के जीवन का थोड़ा-सा भी अध्ययन करने से जानी जा सकती हैं।

संसार में खाने के क्या-क्या पदार्थ हो सकते हैं और वे कितने हो सकते हैं, यह बताना असम्भव है। मिट्टी, लकड़ी, फल, पत्ती, माँस, मदिरा, दूध, घी, आदि संसार में जितने भी पदार्थ देखने में आ सकते हैं, वे सभी किसी न किसी प्राणी

के भोजन में प्रयोग किये जाते हैं। इनमें से किसी के सम्बन्ध में भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह उत्तम है, यह ख़राब है, यह शक्ति-वर्द्धक है और यह हानिकारक है। वास्तव में जो जिसका भोज्य पदार्थ है वह उसी के लिए हितकर, शक्ति वर्द्धक और लाभकारक है। निरर्थक पदार्थों में सब से अधिक मिट्टी ही मानी जा सकती है किन्तु वह मिट्टी कितने ही प्राणियों और जीवों का भोज्य पदार्थ है और उसी से उनको जीवन प्राप्त होता है। घृत अमृत पदार्थों में गिना जाता है किन्तु उसकी गंध मात्र से कितने ही जीवों की मृत्यु होती है। इसीलिए कोई एक पदार्थ, सभी के लिए उत्तम और सभी के लिए ख़राब नहीं हो सकता।

यहाँ पर बताना यह था कि अपने नैसर्गिक गुणों के भूल जाने के कारण, मनुष्य-जाति अपने भोजनों की व्यवस्था को भी भुला बैठी है। यह ऊपर बताया जा चुका है कि इस प्रकार का ज्ञान प्रकृति ने स्वभावतः सब को प्रदान किया है। उन समस्त नैसर्गिक गुणों के मानव जाति से अन्तर्हित हो जाने का कारण यह है कि मनुष्य, अपने जीवन में विकास की ओर आगे बढ़ रहा है, वह जो कुछ जानता है उसी पर उसे सन्तोष नहीं है। जो शक्तियां उसमें विद्यमान हैं, उन्हीं को वह अपने लिए प्रर्याप्त नहीं समझता। इन बातों को लेकर उसने अपने जीवन में इतना उलट पलट कर डाला है जिससे वह प्राकृतिक जीवन से बहुत दूर हो गया है और अनेक बातों में उसने अपने नैसर्गिक गुणों और पुरुषार्थों को खो दिया है। विषयान्तर हो जाने के डर से, अधिक विस्तार में न जाकर यदि भोजन के सम्बन्ध में ही विचार किया जाय तो इन बातों का स्पष्टीकरण हो जाता है। माँस मदिरा से मनुष्य को स्वाभाविक अरुचि और घृणा होती है। जिन परिवारों में माँस खाया जाता है, उन परिवारों के

बालक-बालिकाएँ और स्त्रियाँ असामान्य रूप से उसका विरोध करती हैं और अपनी घृणा का असाधारण परिचय देती हैं। इस अरुचि और घृणा रखने वालों में से ही कुछ आगे चल कर इन घृण्य वस्तुओं का उपयोग करना सीखते हैं। जो पदार्थ जिन प्राणियों के भोजन होते हैं, प्रत्येक अवस्था में उनको, उनके खाने का ज्ञान होता है। किसी भी प्राणी के छोटे-छोटे बच्चों के आगे जब वे पदार्थ डाल दिए जाते हैं जिनको वे खा सकते हैं, तो वे तुरन्त खा जाते हैं और जब उनको भोज्य पदार्थों के विरुद्ध कोई चीज़ खाने को दी जाती है, तो वे उसको सूँघकर छोड़ देते हैं, ये बातें पशुओं, पक्षियों, जानवरों और भिन्न भिन्न प्राणियों में असाधारण रूप से पायी जाती हैं। मनुष्य जिन पदार्थों के खाने का स्वाभाविक अभ्यासी नहीं होता, वे पदार्थ वास्तव में उसके लिए भोजन नहीं होते, परन्तु वह उनके खाने का अभ्यासी बनता है। इसका परिणाम, वही होता है जो कुछ होना चाहिये। इन बातों के पुष्टिकरण में एक बात का स्मरण दिलाना आवश्यक जान पड़ता है। समाज में छोटे और बड़े, नीच और ऊँच—सभी लोग सुनते हैं, अनुभव करते हैं और जानते हैं कि उनके पूर्वज शारीरिक शक्ति और स्वास्थ्य में उनसे बहुत आगे थे और यही बात वे पूर्वज भी अपने पूर्वजों के सम्बन्ध में समझते और जानते थे। समाज की इस धारणा का यह अर्थ है कि मनुष्य का शारीरिक स्वास्थ्य और पुरुषार्थ उत्तरोत्तर नष्ट हो रहा है और इस अभाव का गम्भीर सम्पर्क हमारी सभ्यता से है। जितना ही हम प्राकृतिक जीवन के औचित्य से दूर होते जाते हैं, उतना ही हम में स्वास्थ्य और पुरुषार्थ का अभाव होता जाता है।

ऊपर यह बताया जा चुका है कि हमको भोजन की आवश्यकता है, भोजन ही हमारी जीवन-शक्ति है भोजन ही हमारा

यक है और यही हमारा पुरुषार्थ है, यदि हमें भोजन न मिले तो हम किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकते। इसी प्रकार हमको यह भी जानने की ज़रूरत है कि हमारा भोजन वास्तव में क्या है। भोजन का प्रश्न प्रत्येक प्राणी के लिए इतना साधारण और व्यापक है कि उसके सम्बन्ध में उसको कोई बात अज्ञेय नहीं मालूम होती। वास्तव में अज्ञेय होना भी न चाहिए, और इसीलिए साधारणतया कोई भी व्यक्ति इसके सम्बन्ध की बातें जानने के लिए कुतूहल नहीं हुआ करता। किन्तु मनुष्य जीवन पथ से इतना विपथ हो चुका है, जिसकी कोई सीमा नहीं है। इसीलिए उसको इन बातों को विशेष रूप से जानने की आवश्यकता है।

इस विषय पर संसार के विभिन्न क्षेत्रीय विद्वानों ने समय समय पर बहुत कुछ विचार किया है और समाज की वर्तमान अवस्था पर बहुत असन्तोष अनुभव किया है। इस दुरवस्था के मिटाने के लिए बहुत कुछ प्रयत्न किया है। मनुष्य-जाति का वास्तविक आहार क्या है, इसके सम्बन्ध में एक एक बात पर यहाँ भली-भाँति विवेचन किया जायगा।

इस शीर्षक की पंक्तियों में केवल यह बताना था कि हमें अपनी जीवन शक्ति के लिए भोजन की आवश्यकता है और हमारा भोजन क्या है, यह सब जानने की आवश्यकता है। इसके आगे चल कर जो विवेचना की जायगी, वह इस विषय के एक-एक अंग को पृथक् पृथक् स्पष्ट करेगी। इस प्रकार का यथावत् ज्ञान होने पर ही हम अपनी जीवन शक्ति की यथेष्ट रूप में रक्षा कर सकेंगे, अन्यथा रोग शोकपूर्ण संसार का कटु अनुभव लेकर एक दिन असमय यहाँ से विदा हो जाना पड़ेगा। जीवन का सुख तो जीवन को भली भाँति समझ सकने पर ही मिल सकता है।

हमारे भोजन के पदार्थ

पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है कि भोजन ही हमारा जीवन है, यदि भोजन हमें न मिले तो हम किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकते। इसके साथ ही यह भी बताया जा चुका है कि साधारणतया जो भोजन और उसके पदार्थ हमारे खाने में उपयोग हुआ करते हैं, वे पदार्थ वास्तव में हमारे भोजन के नहीं हैं। यहाँ पर भोजन के सम्बन्ध में कुछ विस्तार के साथ लिखकर इस बात का विचार करना है कि प्रकृति ने, किस प्रकार का भोजन करने के योग्य हमारे शरीर की रचना की है।

भोजन के सम्बन्ध में सब से पूर्व यह जानने की आवश्यकता है कि जो भोजन जितना शीघ्र पच सकता है, वही उतना लाभदायक होता है। किन्तु इस बात का भ्रम न केवल सर्व साधारण में बरन् समाज के समझदार, विचारशील व्यक्तियों में भी अधिक से अधिक परिमाण में पाया जाता है कि अमुक पदार्थ अधिक बल और रक्त पैदा करने वाले हैं, इस भ्रम के कारण समस्त व्यक्ति उसी प्रकार के भोजन खाने और खिलाने के अभ्यासी होते हैं। इस छोटे से भ्रम के कारण, मनुष्य के स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचती है। जिन वस्तुओं में इस प्रकार के गुण पाये जाते हैं, वे कितने भारी और अपाचक होते हैं, सामान्यतः इस बात का कभी विचार भी नहीं किया जाता। होता यह है कि उन पदार्थों से बने हुए भोजन को पचने के लिए जितना समय चाहिए, उतना समय नहीं मिलता, ऐसी अवस्था में लाभ के स्थान पर हानि ही होती है। जब तक एक बार का खाया हुआ भोजन भलीभाँति पच न जाय तब तक

दूसरी बार कदापि न खाना चाहिये। किन्तु हम लोग भूख के लिए भोजन नहीं करते, भोजन करने की आवश्यकता और व्यवस्था ही कुछ और है। दोपहर को जो हमने भोजन किया है वह पूर्णरूप से पचा है या नहीं, यह जानने की कोशिश नहीं होती, किन्तु होता यह है कि सायंकाल भोजन का समय होने पर, भोजन करना पड़ता है। यदि दोपहर को इस प्रकार के भोजन किए गए हैं जो सायंकाल तक पूर्णरूप से नहीं पचे तो उसको बिना पचाए, भोजन करना, शरीर के लिए रोग का निमंत्रण देना है।

शरीर का कोई भी रोग अकारण नहीं हुआ करता और न उसके पैदा होने का कोई ईश्वरीय कारण होता है। उसके पैदा होने का एकमात्र कारण हमारे जीवन की अव्यवस्था है। हमें थोड़ी-सी बुद्धि से काम लेना चाहिए और समझना चाहिए कि हम जो खाना खाते हैं, वह भूख के लिए, न कि भोजन का समय हो जाने के लिए।

जो पदार्थ बहुत भारी होते हैं, वे अत्यन्त अपाचक भी होते हैं, उन अपाचक और भारी वस्तुओं की अपेक्षा हलके भोजन कई बार खाये जा सकते हैं और फिर भी व पच सकते हैं। ऐसी अवस्था में यदि वे भारी पदार्थ ठीक तौर पर पचाए भी जा सकें तो दोनों प्रकार के आहारों में कोई वैषम्य उपस्थित नहीं होता। परन्तु ये सब बातें सभी के लिए एक-सी नहीं हैं। सभी की प्रकृति और खाने-पीने की शक्तियों में अन्तर होता है, इस प्रकृति और शक्ति के अनुकूल ही भोजन सुखकर, लाभकर और उपयोगी होता है।

प्रत्येक प्राणी का वही भोजन है जिसका अपना रूप आकार और स्वाद खाने वाले के लिए रुचिकर प्रतीत होता है। वही उसके लिए पाचक होता है, और उसके जीवन को शक्ति देने

वाला होता है। जो पदार्थ आग में पकाकर, भिन्न भिन्न प्रकार के मसाले लगाकर और घृत में भूनकर बनाए जाते हैं, वे, भोजन खाने वालों के लिए किसी प्रकार उतने लाभदायक नहीं होते जितने कि असली रूप में खाये जाने वाले पदार्थ हो सकते हैं। कोई भी पदार्थ या उससे बना हुआ भोजन जब आग में पकाया जाता है अथवा भूना जाता है तो उसमें जीवन-शक्ति पैदा करने वाला जो अंश होता है वह जलकर नष्ट हो जाता है और इसके बाद भी जब अनेक प्रकार के मसालों का सम्मिश्रण किया जाता है, तो वे भोजन पाचन क्रिया के लिए बहुत कठोर हो जाते हैं, उनका यह अपाचन गुण, खाने वाले के लिए हानिकारक हो जाता है। जो भोजन रसेदार बनाए जाते हैं, वे कठिनाई के साथ पचने वाले होते हैं। उनके ठीक-ठीक न पचने पर पेट के विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार पेट की ही खराबी समस्त शरीर के स्वास्थ्य बिगड़ने और उसको रोगी बनाने का कारण होती है।

जो भोजन अथवा पदार्थ अपने असली रूप में घृणा-जनक होते हैं, वे हमारे लिए कभी भी लाभदायक नहीं होते और इस प्रकार के पदार्थों और भोजनों में सब से अधिक हानि कारक माँस होता है। प्रकृति ने प्रत्येक प्राणी को उसके भोजन अथवा भोज्य पदार्थों के प्रति सहज ही रुचिकारक प्रवृत्ति उत्पन्न की है, जिसका जो भोजन नहीं होता, उसके प्रति सहज ही उसमें अरुचि का भाव उत्पन्न होता है। संसार का कोई भी जीव अपनी भोज्य वस्तुओं के अतिरिक्त किसी वस्तु को ग्रहण नहीं कर सकता। मनुष्य की स्वाभाविक बुद्धि और रुचि कभी भी माँस को स्वीकार नहीं कर सकती। सर्वसाधारण को उस पर समान रूप से अरुचि और घृणा होती है। समय और संयोग पाकर जो लोग माँस खाने लगते हैं, उनको भी माँस के

असली रूप पर कितनी घृणा और अरुचि होती है, यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं।

प्रत्येक पदार्थ पक जाने की अपेक्षा, कच्चा अधिक पाचक और जीवन-शक्ति देने वाला होता है। परन्तु यह खेद की बात है कि सर्वसाधारण में कच्चे पदार्थों के खाने का अभ्यास कम पाया जाता है। बहुत लोगों में तो इस बात का मिथ्या ज्ञान पाया जाता है कि कच्चे पदार्थ हानिकारक होते हैं किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। अनाज, जो साधारणतया हमारे खाने के काम में आता है, अपने स्वाभाविक रूप में अधिक पाचक होता है। प्रत्येक अनाज कच्चा समूचा चबा-चबाकर खाने से जो जीवन-शक्ति प्राप्त हो सकती है वह शक्ति उस अनाज के पीस डालने और आग पर पकाने या भूनने से कदापि नहीं प्राप्त हो सकती। उनके समूचे दाने को चबा-चबाकर खाने से उनमें पाचन क्रिया उत्पन्न हो जाती है। इस पाचन क्रिया के उत्पन्न हो जाने का कारण उनका मुख में अधिक देर तक चबाना है। कोई भी भोजन मुँह में जितनी ही देर तक चबा कर निगला जाता है, उतना ही वह शीघ्र पाचक हो जाता है। आटे की भूसी छानकर, रोटी बनाने के पूर्व ही अलग कर दी जाती है, वह उस रोटी का एक बहुत आवश्यक अंग होता है, परन्तु यह भूल समाज में बहुत पाई जाती है। यह छनी हुई भूसी जो उस अनाज की छिलका होती है, उसके साथ बने हुए भोजन के पचाने में बहुत बड़ी सहायता करती है। लोग इस छिलके को निकाल कर अलग कर देते हैं, इसलिए कि वे उसको बेकाम समझते हैं किन्तु उनको समझना चाहिये कि उस छिलके के निकल जाने से, अनाज का गूदा भाग, जो महीन आटे के रूप में मिल जाता है, उस अनाज के गुणों को अनेक अंशों में खो देता है।

खाता होता है। जो पदार्थ आग में पकाकर, भिन्न भिन्न प्रकार के मसाले लगाकर और घृत में भूनकर बनाए जाते हैं, वे, भोजन खाने वालों के लिए किसी प्रकार उतने लाभदायक नहीं होते जितने कि असली रूप में खाये जाने वाले पदार्थ हो सकते हैं। कोई भी पदार्थ या उससे बना हुआ भोजन जब आग में पकाया जाता है अथवा भूना जाता है तो उसमें जीवन शक्ति पैदा करने वाला जो अंश होता है वह जलकर नष्ट हो जाता है और इसके बाद भी जब अनेक प्रकार के मसालों का सम्मिश्रण किया जाता है, तो वे भोजन पाचन क्रिया के लिए बहुत कठोर हो जाते हैं, उनका यह अपाचन गुण, खाने वाले के लिए हानिकारक हो जाता है। जो भोजन रसेदार बनाए जाते हैं, वे कठिनाई के साथ पचने वाले होते हैं। उनके ठीक ठीक न पचने पर पेट के विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार पेट की ही खराबी समस्त शरीर के स्वास्थ्य बिगड़ने और उसको रोगी बनाने की कारण होती है।

जो भोजन अथवा पदार्थ अपने असली रूप में घृणा-जनक होते हैं, वे हमारे लिए कभी भी लाभदायक नहीं होते और इस प्रकार के पदार्थों और भोजनों में सब से अधिक हानि कारक माँस होता है। प्रकृति ने प्रत्येक प्राणी को उसके भोजन अथवा भोज्य पदार्थों के प्रति सहज ही रुचिकारक प्रवृत्ति उत्पन्न की है, जिसका जो भोजन नहीं होता, उसके प्रति सहज ही उसमें अरुचि का भाव उत्पन्न होता है। संसार का कोई भी जीव अपनी भोज्य वस्तुओं के अतिरिक्त किसी वस्तु को ग्रहण नहीं कर सकता। मनुष्य की स्वाभाविक बुद्धि और रुचि कभी भी माँस को स्वीकार नहीं कर सकती। सर्वसाधारण को उस पर समान रूप से अरुचि और घृणा होती है। समय और संयोग पाकर जो लोग माँस खाने लगते हैं, उनको भी माँस के

असली रूप पर कितनी घृणा और अरुचि होती है, यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं।

प्रत्येक पदार्थ पक जाने की अपेक्षा, कच्चा अधिक पाचक और जीवन शक्ति देने वाला होता है। परन्तु यह खेद की बात है कि सर्वसाधारण में कच्चे पदार्थों के खाने का अभ्यास कम पाया जाता है। बहुत लोगों में तो इस बात का मिथ्या ज्ञान पाया जाता है कि कच्चे पदार्थ हानिकारक होते हैं किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। अनाज, जो साधारणतया हमारे खाने के काम में आता है, अपने स्वाभाविक रूप में अधिक पाचक होता है। प्रत्येक अनाज कच्चा समूचा चबा-चबाकर खाने से जो जीवन शक्ति प्राप्त हो सकती है वह शक्ति उस अनाज के पीस डालने और आग पर पकाने या भूनने से कदापि नहीं प्राप्त हो सकती। उनके समूचे दाने को चबा-चबाकर खाने से उनमें पाचन किया उत्पन्न हो जाती है। इस पाचन क्रिया के उत्पन्न हो जाने का कारण उनको मुख में अधिक देर तक चबाना है। कोई भी भोजन मुँह में जितनी ही देर तक चबा-कर निगला जाता है, उतना ही वह शीघ्र पाचक हो जाता है। आटे की भूसी छानकर, रोटी बनाने के पूर्व ही अलग कर दी जाती है, वह उस रोटी का एक बहुत आवश्यक अंग होता है, परन्तु यह भूस समाज में बहुत पाई जाती है। यह छनी हुई भूसी जो उस अनाज की छिलका होती है, उसके साथ बने हुए भोजन के पचाने में बहुत बड़ी सहायता करती है। लोग इस छिलके को निकाल कर अलग कर देते हैं, इसलिए कि वे उसको बेकाम समझते हैं किन्तु उनको समझना चाहिये कि इस छिलके के निकल जाने से, अनाज का गूढ़ा भाग जो महीन आटे के रूप में मिल जाता है, उस अनाज के गुणों को अनेक अंशों में खो देता है।

और कुछ शाक भोजी। तीसरी एक और श्रेणी उन लोगों की हो सकती है जो मांस और शाक दोनों के अभ्यासी होते हैं, परन्तु थोड़ी सी गम्भीर आलोचना करने से मालूम होगा कि उनके खाने के पदार्थ, कोई तीसरी श्रेणी की नहीं है, इस प्रकार मांस-भोजी और शाक-भोजी, दो प्रकार के जीव, संसार में पाये जाते हैं। अब इन दोनों प्रकार के भोजन, उनके खाने वालों की प्रकृति और उनके शारीरिक यंत्रों की ओर सब से पहले ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रत्येक जीव के शरीर में तीन प्रकार के अवयव इस बात का निर्णय करते हैं कि उसका भोजन क्या है। वह मांस भोजी है अथवा शाक भोजी। वे तीन अवयव हैं, दांत, आमाशय और मुख से लेकर पेट तक, वे अवयव, जो भोजन में हर प्रकार से सहायक होते हैं। ये तीन अंग, प्रत्येक जीव के भोजन की व्यवस्था का निर्णय करते हैं।

दांत तीन प्रकार के होते हैं (१) काटने वाले दांत (Incisors), (२) कीले अर्थात् कुत्ते के-से दांत (Canine), (३) पीसने या चबाने वाले दांत (Molars)। जो जीव मांस-भोजी होते हैं उनके काटने और कुतरने वाले दांत बहुत छोटे होते हैं, इन दांतों का उनको बहुत कम प्रयोग करना पड़ता है। उनके कीले दांत बहुत लम्बे होते हैं। ये लम्बे दांत उनके मुख में आगे तक होते हैं जो बनावट में नोकदार, चिकने और कुछ टेढ़े होते हैं। ये लम्बे दांत चबाने या पीसने के काम में नहीं आते। ये दांत केवल शिकार को पकड़ने के लिए होते हैं। जंगल के भयानक जानवरों के दांत और भी बहुत बड़े ऐसे ढंग के बने होते हैं, जिनको देखते ही, उनका काम और अर्थ, सहज ही समझ में आ जाता है। इन बड़े दांतों के पीछे कांटेदार नोकीले दांत होते हैं, जो मांस के छोटे-छोटे टुकड़े करने में काम आते हैं। ये कांटेदार दांत, मुंह चलाते समय, कभी

एक दूसरे से टकराते नहीं, बल्कि कैंची के दोनों परतों की भाँति एक दूसरे से मिल जाते हैं। इसके द्वारा मांस का एक-एक टुकड़ा अलग अलग हो जाता है। इन मांसाहारी जीवों के दांत और जबड़े इस योग्य नहीं होते कि वे मांस को पीस या चबा सकें। सभी लोग कुत्तों को देखते हैं कि जब उनको रोटी दी जाती है तो वे उसके बहुत बड़े-बड़े टुकड़े मुँह में लेते ही निगल जाते हैं, कारण यह है कि उनके दांत और जबड़े, भोजन को आदमी की भाँति चबाने और पीसने का काम नहीं करते।

शाक और वनस्पति खाने वाले जीवों के कुतरने अथवा काटने वाले दांत बड़े-बड़े होते हैं, जिनसे वे शाक और घास के छोटे-छोटे टुकड़े करने का काम लेते हैं। पीसने वाले दांत, ऊपर की ओर कुछ चौड़े होते हैं जो शाक पात के चबाने और पीसने का काम करते हैं।

हमें और आगे बढ़कर, बन्दरों के दांतो पर विचार करना चाहिए। बन्दर के दांत और मनुष्य के दांत, प्रायः समान होते हैं। मनुष्य के दाँतों की भांति, बन्दरों के दांत भी प्रायः समान लम्बाई के होते हैं। इन बातों से स्पष्ट पता चलता है कि जो जीव शाकाहारी, फलाहारी और घास पात का आहार करने वाले हैं, उनके दांत मांसाहारी जानवरों के दाँतों की भाँति नहीं होते। इससे प्रकट होता है कि प्रकृति ने हमके दांतों को केवल वनस्पति खाने के योग्य बनाया है और इसी लिए वे मांस खाने वाले नहीं हैं। अब यदि प्रश्न किया जाय कि मनुष्य के दांत किस जीव के साथ मिलते हैं तो सहज ही समझ में आता है कि मनुष्य के दांत बन्दरों के दांतों से मिलते हैं। दाँतों के अतिरिक्त शरीर की बनावट आदि मनुष्य जीवन की अन्यान्य बातें, बन्दरों के साथ समानता

और कुछ शाक भोजी। तीसरी एक और श्रेणी उन लोगों की हो सकती है जो माँस और शाक दोनों के अभ्यासी होते हैं, परन्तु थोड़ी सी गम्भीर आलोचना करने से मालूम होगा कि उनके खाने के पदार्थ, कोई तीसरी श्रेणी की नहीं है. इस प्रकार माँस-भोजी और शाक भोजी, दो प्रकार के जीव, संसार में पाये जाते हैं। अब इन दोनों प्रकार के भोजन, उनके खाने वालों की प्रकृति और उनके शारीरिक यंत्रों की ओर सब से पहले ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रत्येक जीव के शरीर में तीन प्रकार के अवयव इस बात का निर्णय करते हैं कि उसका भोजन क्या है। वह मांस-भोजी है अथवा शाक भोजी। वे तीन अवयव हैं, दांत, आमाशय और मुख से लेकर पेट तक, ये अवयव, जो भोजन में हर प्रकार से सहायक होते हैं। ये तीन अंग, प्रत्येक जीव के भोजन की व्यवस्था का निर्णय करते हैं।

दांत तीन प्रकार के होते हैं (१) काटने वाले दांत (Incisors), (२) कीले अर्थात् कुत्ते के-से दांत (Canine), (३) पीसने या चबाने वाले दांत (Molars)। जो जीव मांस-भोजी होते हैं उनके काटने और कुतरने वाले दांत बहुत छोटे होते हैं, इन दांतों का उनको बहुत कम प्रयोग करना पड़ता है। उनके कीले दांत बहुत लम्बे होते हैं। ये लम्बे दांत उनके मुख में आगे तक होते हैं जो बनावट में नोकदार, चिकने और कुछ टेढ़े होते हैं। ये लम्बे दांत चबाने या पीसने के काम में नहीं आते। ये दांत केवल शिकार को पकड़ने के लिए होते हैं। जंगल के भयानक जानवरों के दांत और भी बहुत बड़े ऐसे ढंग के बने होते हैं, जिनको देखते ही, उनका काम और अर्थ, सहज ही समझ में आ जाता है। इन बड़े दांतों के पीछे काँटे दार नोकीले दात होते हैं, जो मांस के छोटे-छोटे टुकड़े करने में काम आते हैं। ये कांटेदार दांत, मुँह चलाते समय, कर्मी

एक दूसरे से टकराते नहीं, बल्कि कैंची के दोनों परतों की भाँति एक दूसरे से मिल जाते हैं। इसके द्वारा मास का एक-एक टुकड़ा अलग अलग हो जाता है। इन मांसाहारी जीवों के दांत और जबड़े इस योग्य नहीं होते कि वे मांस को पीस या चबा सकें। सभी लोग कुत्तों को देखते हैं कि जब उनको रोटी दी जाती है तो वे उसके बहुत बड़े-बड़े टुकड़े मुँह में लेते हो निगल जाते हैं, कारण यह है कि उनके दांत और जबड़े, भोजन को आदमी की भाँति चबाने और पीसने का काम नहीं करते।

शाक और वनस्पति खाने वाले जीवों के कुतरने अथवा काटने वाले दांत बड़े-बड़े होते हैं, जिनसे वे शाक और घास के छोटे-छोटे टुकड़े करने का काम लेते हैं। पीसने वाले दांत, ऊपर की ओर कुछ चौड़े होते हैं जो शाक पात के चबाने और पीसने का काम करते हैं।

हमें और आगे बढ़कर, बन्दरों के दांतो पर विचार करना चाहिए। बन्दर के दांत और मनुष्य के दांत, प्रायः समान होते हैं। मनुष्य के दांतों की भांति, बन्दरों के दांत भी प्रायः समान लम्बाई के होते हैं। इन बातों से स्पष्ट पता चलता है कि जो जीव शाकाहारी, फलाहारी और घास पात का आहार करने वाले हैं, उनके दांत मांसाहारी जानवरों के दांतों की भाँति नहीं होते। इससे प्रकट होता है कि प्रकृति ने उनके दांतों को केवल वनस्पति खाने के योग्य बनाया है और इसी लिए वे मांस खाने वाले नहीं हैं। अब यदि प्रश्न किया जाय कि मनुष्य के दांत किस जीव के साथ मिलते हैं तो सहज ही समझ में आता है कि मनुष्य के दांत बन्दरों के दांतों से मिलते हैं। दांतों के अतिरिक्त शरीर की बनावट आदि मनुष्य-जीवन की अन्यान्य बातें, बन्दरों के साथ समानता

रखती हैं। मनुष्य-जाति के आदि-काल का वैज्ञानिक अन्वेषण करने वालों ने तो यहाँ तक निश्चय करके बताया है कि मनुष्य, बन्दर की संतान है। सृष्टि के बहुत पुरातन काल में मनुष्य, बन्दरों के रूप प्रति रूप में हुआ करते थे जो हो, यहाँ पर इस बात के समर्थन और अन्वेषण से कोई सम्पर्क नहीं है। परन्तु, इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य, दाँतों की बनावट में बिलकुल बन्दरों के समान है। इसलिए कि न तो मनुष्यके दाँत मांस-हारी जीवोंसे मिलते हैं, इसलिये वह मांसा हारी नहीं हैं, मनुष्य के दाँत, उन पशुओं से नहीं मिलते जो वनस्पति शाक-पात खाते हैं, इसलिये मनुष्य, वनस्पति या शाक-पात खाने वाला नहीं है। मनुष्यके दाँत उन जीवों से भी नहीं मिलते जो मांस, मेवा, अनाज आदि सभी कुछ खा सकते हैं इसलिए मनुष्य मांस, मेवा और अनाज आदि सभी कुछ खाने के योग्य नहीं बनाया गया। किन्तु मनुष्य के दाँत, बन्दरों के समान होते हैं जो फलाहारी होते हैं, इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि मनुष्य का प्राकृतिक भोजन फलाहार है।

जो लोग मांसाहार के पक्ष में होते हैं, वे इस बात को पुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं कि मनुष्य न तो मांसाहारी है और न शाकाहारी, वरन् वह दोनों प्रकार का जीव है। अर्थात वह दोनों प्रकार के भोजन खा सकता है। किन्तु यह बात सर्वथा मिथ्या है। किसी बात को बिना किसी वाद विवाद के मान लेना और बात है किन्तु किसी विवेचना के साथ किसी बात का समझना और बात है। किसी भी जीव का भोजन, उस पदार्थ का रूप, ज्यों का त्यों होता है जो जानवर मांस खाते हैं, उनको मांस को आग पर भूनने की आवश्यकता नहीं होती। जो पशु शाक और वनस्पति खाते हैं, उनको भी अपने भोजन के पदार्थ आग पर तपा कर बनाने की आवश्यकता नहीं होती। पक्षियों से

लेकर छोटे-छोटे कीड़े मकोड़े तक अपने भोज्य पदार्थ, उन पदार्थों की असली दशा में ही खाते हैं। यही अवस्था मनुष्य की भी है। मनुष्य का यही भोज्य पदार्थ है जिसको वह, उस पदार्थ की असली हालत में खा सकता है। इस अवस्था में मनुष्य कच्चा शाक और वनस्पति नहीं खा सकता, कच्चा मांस भी नहीं खा सकता, किन्तु वह रुचि और स्वाद के साथ वह फलों को खा सकता है। इसलिए प्रत्येक अवस्था में यह प्रमाणित होता है कि मनुष्य का भोजन फलों को छोड़कर और कुछ हो ही नहीं सकता।

यह तो बहुत साधारण बात है और बड़ी सुविधा के साथ समझी जा सकती है कि यदि मनुष्य मांसाहारी होता तो वह मांस को बिना पकाये और बिना उस में कुछ मिलाये बड़े स्वाद के साथ खा सकता, किन्तु ऐसा नहीं है। कोई भी मनुष्य कच्चा मांस नहीं खा सकता और न किसी भी युग में मनुष्य कच्चा मांस खा सका है, इसलिए यह तो निश्चय ही है कि मांस मनुष्य का भोज्य पदार्थ नहीं हो सकता। यही अवस्था वनस्पति के सम्बन्ध में भी है। यदि मनुष्य वनस्पति और घास पात बिना पकाए, कच्चा खा सकता, तो यह मानने में किसी को कुछ भी आपत्ति न होती कि मनुष्य वनस्पति या शाक पात का भोजी है किन्तु ऐसा भी नहीं है। उसके खाने के एक मात्र पदार्थ फल हैं जिनको वह कच्चे-पक्के सभी रूपों और अवस्थाओं में रुचि और स्वाद के साथ खा सकता है। ऐसी अवस्था में मनुष्य को किसी भी तरह के साथ मांसाहारी सोचना या प्रमाणित करना न केवल मनुष्य-जीवन के साथ, वरन् प्रकृति के साथ अनर्थ करना है।

मनुष्य फलाहारी है, फल ही उसके जीवन का उपयोगी और प्राकृतिक भोजन है, इस बात को अनेक रूप से समझा

जा सकता है। प्रत्येक जीव अपनी इन्द्रियों के द्वारा अपना भोजन पहचानता है। भोजन की पहचान बताने वाली इन्द्रियों में जिह्वा और नाक है। जंगली जानवर दूर से ही, बिना देखे सुने, केवल नाक के द्वारा शिकार की गन्ध पाकर सचेत होता है और गन्ध के सहारे-सहारे वह चलकर अपने शिकार को खोजता है। इस प्रकार जब वह शिकार को आँख से देखता है तो बड़ी तेज़ी के साथ, उस पर झपटता है और बात की बात में लोहू-लुहान करके तुरन्त उसका मांस और रक्त खा-पीकर प्रसन्न होता है। उन जानवरों की नाक में ऐसी शक्ति होती है जिससे दूर से ही अपने शिकार की गन्ध उनको मालूम हो जाती है। नाक के द्वारा वे अपने शिकार के पास पहुँचते हैं और जिह्वा के द्वारा वे उसका स्वाद पाते हैं और प्रसन्न तथा संतोष अनुभव करते हैं। यही अवस्था प्रत्येक जीव की है। सभी जीवों को भोजन के सम्बन्ध में नाक, गंध के द्वारा अनेक बातों की जानकारी कराती है। मांसाहारी पक्षी बहुत दूरी से मांस की गन्ध को मालूम करते हैं। अनेक परतों के भीतर कोई खाने की वस्तु बँधी हुई रक्खी होगी किन्तु चूहे उसकी गन्ध से, उसे बड़ी आसानी के साथ ढूँढ़ लेंगे और उसके पास पहुँच जायँगे। चींटियाँ और चींटे, मीलों की दूरी से अपने भोजन की गंध पाते हैं और उसी के आधार पर वे वहाँ तक पहुँचते हैं। मनुष्य को भी प्रकृति ने इस प्रकार की शक्ति प्रदान की है परन्तु मनुष्य ने अपने इस गुण को नष्ट कर डाला है फिर भी उसका अस्तित्व बराबर काम करता है। किसी भी भोज्य पदार्थ की पहचान मनुष्य नाक के द्वारा सूँघ कर ही किया करता है। यदि कोई पदार्थ सड़कर या गलकर ख़राब हो गया है तो मनुष्य नाक के द्वारा सूँघकर ही जानता है। पशु, जो वनस्पति खाते हैं, सूँघने के बाद ही खाना प्रारम्भ

करते हैं। यदि उनके भोज्य पदार्थों में कोई रक्त इधर-उधर छिड़का दे या मांस के टुकड़े डाल दे तो ये अपने खाने के सामान को छोड़ देंगे। इस प्रकार नाक और जिह्वा—दो इन्द्रियों के द्वारा प्रत्येक जीव को अपना भोजन मालूम होता है। यदि इन दोनों इन्द्रियों के द्वारा विचार किया जाय तो मालूम होगा कि किसी भी मनुष्य की नाक और जिह्वा को कच्चे मांस की गन्ध और उसका स्वाद रुचिपूर्ण न मालूम होगा। जो लोग बकरे का मांस खाते हैं, यदि उनसे कहा जाय कि जिन्दा बकरे के बदन में दाँत मार कर अपने मांसाहारी होने का प्रमाण दे तो किसी मांसाहारी मनुष्य का इसके लिए प्रस्तुत होना असम्भव है। यदि मनुष्य मांसाहारी होता तो कच्चे मांस के प्रति उसकी अरुचि और घृणा कभी भी न होती।

सर्वसाधारण में मांस के प्रति घृणा होती है, जो मांस खाते हैं, उनको भी, उस समय जब वे मांसाहारी न थे, घृणा थी, इस का कारण क्या है? किसी जीव को मार कर या वध कर और उसका मांस काट कर, खाने के लिए मांस तैयार किया जाता है, मारना और वध करना ही मानव प्रकृति का विरोधी है। प्रत्येक मनुष्य को स्वभावतः किसी का वध अच्छा नहीं लग सकता। जहाँ पर पशुओं का वध किया जाता है, वे स्थान सार्वजनिक रास्तों से हटकर, यथासम्भव एकान्त में बनाये जाते हैं। मांस बेचने की दूकानों पर नियम पूर्वक परदा पड़ा रहता है। इन सब बातों का कारण क्या है? वास्तव में यह बताना अनावश्यक है कि न तो वध किया हमारी आँखों और नासिका को रुचिकर प्रतीत हो सकती है और न मांस ही। इसी आधार पर जब कोई मार्ग में मांस लेकर निकलता है तो कदाचित् उसे म्युनिसिपल बोर्डों के नियमानुसार उस मांस

आ सकता है। प्रत्येक जीव अपनी इन्द्रियों के द्वारा अपना भोजन पहचानता है। भोजन की पहचान बताने वाली इन्द्रियों में जिह्वा और नाक है। जंगली जानवर दूर से ही, बिना देखे सुने, केवल नाक के द्वारा शिकार की गन्ध पाकर सचेत होता है और गन्ध के सहारे-सहारे वह चलकर अपने शिकार को खोजता है। इस प्रकार जब वह शिकार को आँख से देखता है तो बड़ी तेज़ी के साथ, उस पर झपटता है और बात की बात में लोहू-लुहान करके तुरन्त उसका मांस और रक्त खा-पीकर प्रसन्न होता है। उन जानवरों की नाक में ऐसी शक्ति होती है जिससे दूर से ही अपने शिकार की गन्ध उनको मालूम हो जाती है। नाक के द्वारा वे अपने शिकार के पास पहुँचते हैं और जिह्वा के द्वारा वे उसका स्वाद पाते हैं और प्रसन्न तथा संतोष अनुभव करते हैं। यही अवस्था प्रत्येक जीव की है। सभी जीवों को भोजन के सम्बन्ध में नाक गंध के द्वारा अनेक बातों की जानकारी कराती है। मांसाहारी पक्षी बहुत दूरी से मांस की गन्ध को मालूम करते हैं। अनेक परतों के भीतर कोई खाने की वस्तु बँधी हुई रक्खी होगी किन्तु चूहे उसकी गन्ध से, उसे बड़ी आसानी के साथ ढूँढ़ लेंगे और उसके पास पहुँच जायँगे। चीटियाँ और चींटे, मीलों की दूरी से अपने भोजन की गंध पाते हैं और उसी के आधार पर वे वहाँ तक पहुँचते हैं। मनुष्य को भी प्रकृति ने इस प्रकार की शक्ति प्रदान की है परन्तु मनुष्य ने अपने इस गुण को नष्ट कर डाला है फिर भी उसका अस्तित्व बराबर काम करता है। किसी भी भोज्य पदार्थ की पहचान मनुष्य नाक के द्वारा सूँघ कर ही किया करता है। यदि कोई पदार्थ सड़कर या गलकर खराब हो गया है तो मनुष्य नाक के द्वारा सूँघकर ही जानता है। पशु, जो वनस्पति खाते हैं, सूँघने के बाद ही खाना प्रारम्भ

करते हैं। यदि उनके भोज्य पदार्थों में कोई रक्त इधर-उधर छिड़का दे या मांस के टुकड़े डाल दे तो वे अपने खाने के सामान को छोड़ देंगे। इस प्रकार नाक और जिह्वा—दो इन्द्रियों के द्वारा प्रत्येक जीव को अपना भोजन मालूम होता है। यदि इन दोनों इन्द्रियों के द्वारा विचार किया जाय तो मालूम होगा कि किसी भी मनुष्य की नाक और जिह्वा को कच्चे मांस की गन्ध और उसका स्वाद रुचिपूर्ण न मालूम होगा। जो लोग बकरे का मांस खाते हैं, यदि उनसे कहा जाय कि ज़िन्दा बकरे के बदन में दाँत मार कर अपने मांसाहारी होने का प्रमाण दें तो किसी मांसाहारी मनुष्य का इसके लिए प्रस्तुत होना असम्भव है। यदि मनुष्य मांसाहारी होता तो कच्चे मांस के प्रति उसकी अरुचि और घृणा कभी भी न होती।

सर्वसाधारण में मास के प्रति घृणा होती है, जो मांस खाते हैं, उनको भी, उस समय जब वे मांसाहारी न थे, घृणा थी, इस का कारण क्या है? किसी जीव को मार कर या वध कर और उसका मांस काट कर, खाने के लिए मांस तैयार किया जाता है, मारना और वध करना ही मानव प्रकृति का विरोधी है। प्रत्येक मनुष्य को स्वभावतः किसी का वध अच्छा नहीं लग सकता। जहाँ पर पशुओं का वध किया जाता है, वे स्थान सार्वजनिक रास्तों से हटकर, यथासम्भव एकान्त में बनाये जाते हैं। मास बेचने की दुकानों पर नियम पूर्वक परदा पड़ा रहता है। इन सब बातों का कारण क्या है? वास्तव में यह बताना अनावश्यक है कि न तो वध किया हमारी आँखों और नासिका को रुचिकर प्रतीत हो सकती है और न मांस ही। इसी आधार पर जब कोई मार्ग में मांस लेकर निकलता है तो कदाचित् उसे म्युनिसिपल बोर्डों के नियमानुसार उस मांस

को बन्द करके या ढक कर के ले चलना पड़ता है। क्या यही सब बातें साबित करती हैं कि मांस, मनुष्य के भोज्य पदार्थों में से है? जिसको देखकर हमारी आँख और नाक को इतनी घृणा होती है वह पदार्थ हमारे खाने के योग्य हो सकता है? किसी भी फल की सुगंध क्यों हमारे मन और मस्तिष्क को प्रसन्न कर देती है? फलों को देखकर ही उनके खाने के लिए क्यों हमारे मुँह में पानी आजाता है, और हमारी मानसिक प्रवृत्तियाँ क्यों ललचा उठती हैं? इसलिए न कि फल हमारे भोज्य पदार्थ हैं? प्रकृति ने फल खाने के योग्य मनुष्य को निर्माण किया है, इसलिए स्वभावतः उसको फलों से प्रेम होता है।

मनुष्य को प्राकृतिक मांस से घृणा होती है इसलिए वह मांस नहीं खाता किन्तु दूसरे से वह मांस खाना सीखता है। मांसाहारी लोगों से बातें करने पर बहुत से ऐसे लोग मिलते हैं जो कहते हैं कि पहले हम मांस न खाते थे और हमको बड़ी उससे घृणा थी किन्तु अमुक प्रकार की घटनाओं में पड़कर अथवा अमुक अमुक व्यक्ति की संगति में पड़कर हम भी खाने लगे। इसी से कहा जाता है कि मनुष्य मांसाहारी नहीं है वह मांसाहारी बनाया जाता है। दी न्यू साइन्स आफ हीलिंग (The new Science of healing) के लेखक ने अपनी पुस्तक में आँखों देखी एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि एक कुटुम्ब में एक हिरन पाला गया था। हिरन का भोजन वनस्पति है, यह बात सभी लोग जानते हैं, उस कुटुम्ब में एक कुत्ता भी पला था। कुत्ते को बने हुए मांस का रसा और कभी कभी मांस भी मिला करता था। कुत्ते का यह भोजन, जब कभी उस हिरन के आगे रख दिया जाता तो उसको सूँघकर वह छोड़ देता। हिरन का खाना अलग वहीं पर दिया जाता। कुत्ता अपने आगे का भोजन समाप्त करके बचा हुआ भोजन का रसा

जिह्वा से चाट-चाटकर खाया करता था। हिरन भी कभी-कभी कुत्ते के बर्तन में मुँह डाल देता और नाक सिकोड़ कर अपना मुँह खींच लेता। कुछ दिनों के बाद देखा गया कि वह हिरन गोश्त के रसे को चाटने लगा। इस प्रकार धीरे धीरे वह मांस के टुकड़े भी खाने लगा। यह अत्यन्त रहस्य पूर्ण बात थी। कुछ दिनों के बाद वह हिरन बीमार पड़ा और अक्सर बीमार रहने लगा। बहुत दिनों तक उसका जीवन रोगीसा बीता और अन्त में वह मर गया।

ऊपर की इस घटना से प्रकट होता है कि किसी भी जीव को, उसके प्रकृति भोजन के विपरीत, भोजन करना सिखाया जा सकता है, किन्तु इसका फल, उसके लिए कभी हितकर नहीं हो सकता। उसको भिन्न भिन्न प्रकार के रोग घेरे रहेंगे और वह रोगी होकर निबल होजायगा। स्वभाव के विरुद्ध भोजन किसी को भी लाभ नहीं पहुँचा सकता। मानव जाति अपने स्वाभाविक भोजन को छोड़कर, दूसरे अप्रिय, अरुचिकर और प्रतिकूल भोजन करने के कारण उत्तरोत्तर रोग-ग्रसित होती जाती है। उसकी स्वाभाविक शक्ति नष्ट होगई है और वह बराबर निबल होती जाती है। मनुष्य अपने स्वाभाविक भोजन के द्वारा जितना शक्तिशाली और नीरोग रह सकता था, वह आज मनुष्य-जाति के लिए सपना है। अस्वस्थ और रोगी मनुष्य कभी भी पूर्ण आयु नहीं प्राप्त कर सकता। सर्वसाधारण का यह विश्वास अत्यन्त भ्रमात्मक है कि 'हमारी आयु निश्चित होती है, अवस्था का कोई परिमाण नहीं होता। हम स्वस्थ और आरोग्य रहकर बहुत बड़ी अवस्था तक जीवित रह सकते हैं। स्वस्थ और आरोग्य बनाने वाला एक मात्र हमारा स्वाभाविक भोजन है, उसके प्रतिकूल भोजन, हमें सदा अस्वस्थ और रोगी बनायेगा, जिससे हमारे शरीर की जीवन-

शक्ति निर्बल होकर, समय से पूर्व ही, हमारे जीवन को समाप्त कर देगी। इसी बात की पुष्टि के लिए एक बात और हम प्रमाण में देना चाहते हैं जब डाक्टर या वैद्य किसी रोगी को अच्छा करने में असमर्थ होजाते हैं और कोई उपाय उनके सामने शेष नहीं रह जाता तो वे अधिक समय तक के लिए उस रोगी को फलाहार कराते हैं और उसके दूसरे भोजन बन्द करा देते हैं। इस प्रकार का संयोग प्राप्त होने पर क्या कभी यह कोई सोचता है कि डाक्टर साहब ने अथवा वैद्य साहब ने ऐसा क्यों किया—क्या यह भी कोई चिकित्सा है? बात यह है कि स्वभाव के विरुद्ध भोजन प्राण-संहारक होता है। फिर भी मनुष्य के जिन्दा रहने का कारण औषधि की व्यवस्था है। ये औषधियाँ हमको, उस विपाक्त भोजन में भी जीवित रखने की चेष्टा करती हैं। किन्तु जब किसी रोगी को अच्छा करने में ये औषधियाँ समर्थ नहीं होती, तो उस रोग के पैदा करने की जड़ कुछ समय तक के लिए काट दी जाती है और ऐसा करने पर वह रोगी अच्छा हो जाता है। कारण क्या है? वे विपाक्त पदार्थ, जो रोग को बढ़ा रहे थे, वे बन्द कर दिए गए और नई जीवन शक्ति पैदा करने वाले उसके स्वाभाविक पदार्थ, फल खिलाने आरम्भ कर दिये गए, ऐसी अवस्था में रोगी को अच्छा हो ही जाना चाहिए।

हमारा वास्तविक भोजन क्या है, इस पर अब अधिक सम झाने की आवश्यकता नहीं है। यदि हम प्रकृति के भिन्न भिन्न अंगों पर ध्यान पूर्वक विचार करें तो हम सहज ही समझ सकते हैं कि प्रकृति ने हमारे भोजनों के लिए भिन्न भिन्न प्रकार के फलों की व्यवस्था की है और हमारे इस स्वाभाविक भोजन के अनुकूल ही हमारे शरीर की रचना की है। हमारे पेट का आमाशय और पाचन शक्ति इन फलों को ठीक ठीक रूप में पचा

सकती है। फलों को खा सकने और उनके पचा सकने के योग्य हमारे शरीर-यंत्र का निर्माण करके प्रकृति ने मानों हमारे लिए फलों के खाने का उपदेश दिया है। यह तो सोचने की बात है कि प्रकृति के इस आदेश को उल्लंघन कर के भला हम किस प्रकार सुखी और स्वस्थ रह सकते हैं। हमारे जीवन का यही प्रायश्चित है कि हम जीवन-भर चिकित्सा करते रहें और एक दिन के लिए भी स्वास्थ्य के सच्चे सुख का अनुभव न कर सकें।

कुछ लोगों का यह भ्रम हो सकता है कि केवल फल खाकर हम कैसे जीवित रह सकते हैं। वास्तव में जो इस प्रकार का भ्रम करते हैं उनको इन बातों के तथ्य का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। हमारे भोजन की जो वर्तमान प्रणाली है, उसको हटा कर, यदि हम अपने आप को फलों के खाने का अभ्यासी बनावें तो हमारा अनुभव हमको बतावेगा कि फलों के आहार से जो शक्ति और पुरुषार्थ हमको प्राप्त होता है वह अस्वाभाविक किसी प्रकार के भोजन से सम्भव नहीं है। भिन्न भिन्न प्रकार के फल, मेवे, अन्न और कन्दमूल जो हमारी आँखों और नासिका को रोचक मालूम हों और खाने में स्वादिष्ट जान पड़ें, वे सब हमारे भोजन के सर्वोत्तम पदार्थ हैं। ये फल, संसार के सभी देशों में यथेष्ट रूप से पाए जाते हैं, और यदि कहीं पर इनकी पैदावार कम हो तो उनकी पैदावार बढ़ाई जा सकती है जिससे कि हमारे जीवन के साधन, सहज और अधिक परिमाण में प्राप्त हो सकें और यदि किसी देश विशेष में ये फल नहीं हो सकते तो समझ लेना चाहिए कि वह देश मानव प्रकृति के अनुकूल नहीं है, अतएव वह मनुष्यों के निवास करने के सर्वथा अयोग्य है। वास्तव में हमारा भोजन वही है जिसको खाने के लिए आग पर पकाने, नमक, मिर्च, मसालों के लगाने और

तेल या घी में भूलने की आवश्यकता न पड़े। इस नियम के अनुसार विभिन्न फलों को छोड़कर और कोई चीज़ हमारे खाने के योग्य हो ही नहीं सकती।

हमारी भूल और उसका परिणाम

हमारे शरीर स्वस्थ और नीरोग क्यों नहीं हैं—वे दुबले-पतले और जीर्ण शीर्ण क्यों दिखाई देते हैं। छोटे-छोटे बच्चे और नवयुवक नाज़ुक क्यों हो रहे हैं? स्त्रियों के बदन पर रक्त और मांस क्यों सूखा हुआ है? आदि आदि प्रश्नों का एक ही उत्तर है, और वह यह कि समस्त मानव समाज रोगी है!

यदि हम अपनी दिनचर्या पर विचार करें तो मालूम होगा कि हमारा सम्पूर्ण जीवन रोगों का इलाज करने में ही व्यतीत होता है। हमें अपने जीवन का इतना बड़ा और कोई भी काम नहीं करना पड़ता, जितना कि हमें दवाओं का प्रबंध करना पड़ता है। पहले तो हमें स्वयं बीमारियों से छुट्टी नहीं है, कभी सिर में पीड़ा है कभी कमर में दर्द है, किसी दिन हरारत है और किसी दिन बुखार है। जुकाम जैसी बीमारियाँ तो बनी ही रहती हैं। इस प्रकार भिन्न भिन्न रोगों से हमें छुट्टी नहीं मिलती, किन्तु उसी अवस्था में यदि ईश्वर ने संतान दी है और एक गृहस्थ का जीवन बिताना पड़ता है तो फिर कहना ही क्या है। सवेरे उठकर डाक्टर साहब के पास अथवा वैद्य जी के पास जाकर एक न एक मुसीबत रोना और दवा की शीशी या पुड़िया ले आना नित्य का नियम है। इसके बाद फिर खाना पीना अथवा अन्य बातें हैं।

यह सब क्या है? क्या हममें से कभी कोई इस अवस्था का विचार भी करता है? क्या कभी हम लोग इन दुरवस्थाओं की ओर देखते और उनके कारणों की विवेचना भी करते हैं?

और यदि करते हैं तो कौन इस बात का उत्तर देगा कि शहरों में जितने मकान, नागरिकों के रहने के लिए होते हैं, उनके ठीक चौथाई मकानों और इमारतों में दवाखाने, औषधालय होते हैं, क्यों? इसका उत्तर यही न, कि शहरों का जीवन, नागरिकों की ज़िन्दगी इन दवाख़ानों और औषधालयों पर निर्भर है।

इन दवाख़ानों और औषधालयों की संख्या यहीं तक नहीं है। इसका अभिप्राय उन दवाख़ानों और औषधालयों से है जो किसी वैद्य या डाक्टर के व्यक्तिगत हुआ करते हैं। इनसे कहीं अधिक भयानक सार्वजनिक औषधालय हैं जो धर्मार्थ अथवा परोपकारार्थ हुआ करते हैं। इस प्रकार के औषधालयों की अधिक टीका टिप्पणी करना व्यर्थ है बताना केवल यह है कि उनमें दवा लेने वालों की संख्या और उनका दृश्य रहस्यपूर्ण हुआ करता है। समाज रोगी है या स्वस्थ, हमारा जीवन रोग मुक्त है अथवा रोगपूर्ण? इन प्रश्नों का निर्णय करने के लिए इन धर्मार्थ औषधालयों का निरीक्षण करने की आवश्यकता है।

समाज का इस रोग ग्रसित अवस्था का विचार करते हुये एक विद्वान ने लिखा था—"मानव समाज रोगों का दिन पर दिन शिकार होता जाता है। मनुष्य के जीवन का रोगों से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होगया है कि जीवन का बहुत बड़ा अंश इसी उलझन में चला जाता है। समाज की इस अवस्था का परिणाम साधारण लोगों, गृहस्थों पर बहुत भयंकर मिलता है। यह अवस्था इस समय उतनी शोचनीय नहीं है जितनी कि भविष्य में उसके शोचनीय होजाने का निश्चय है। रोगों की इस बढ़ती हुई दुरवस्था का एक अनुचित कारण बहुत अधिक संख्या में डाक्टरों, वैद्यों और हकीमों का होना है।'

समाज की यह अवस्था सचमुच विचारणीय है। संसार के विद्वानों ने समाज की अवस्था को अनुभव किया है। और उसके कारणों पर भलीभाँति विचार किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मुक़द्दमेबाज़ी के बढ़ जाने का कारण वकीलों की संख्या है, राजनीतिक जीवन को फैलाने और बढ़ाने के कारण, समाचार पत्र हैं, व्यभिचार को बढ़ाने वाली वेश्याएं हैं, भिखमंगों को पैदा करने वाले, दाता हैं, और रोग तथा बीमारियों के बढ़ने का कारण दवाखाने, औषधालय और अस्पताल हैं। ये दवाखाने और अस्पताल किस प्रकार रोगों की वृद्धि करते हैं, संक्षेप में यहाँ पर कुछ प्रकाश डालना है। हम ऐसा कोई भी काम नहीं कर सकते, जिसमें हमको दंड मिल सकता है किन्तु जब हमको विश्वास होता है कि उस दंड से हम मुक्त हो सकते हैं तो उस अपराध के करने में जो डर होता है, वह हमारे हृदयों से निकल जाता है। चोरी करने से दंड मिलता है, इसीलिए हम चोरी करने से डरते हैं किन्तु जब हम यह जान लेते हैं कि वकील की पैरवी से हम बचाए जा सकते हैं, तो फिर चोरी करने का हमें कौन सा डर हो सकता है। यह निश्चित है कि रोग या बीमारी का उत्पन्न होना, हमारे ही जीवन का कोई न कोई अपराध है और उस अपराध का दंड स्वरूप यह रोग है, तो फिर उस रोग से किसी को बचाने का प्रयत्न करना यह साबित करता है कि अपराध करने वालों की संख्या बढ़ाई जा रही है। हम स्वभाव और प्रकृति के विरुद्ध खाना खाकर बीमार होते हैं और जब बीमार होते हैं तो दवाओं की सहायता से उससे मुक्ति पाने की चेष्टा करते हैं, मुक्ति पाने का यह ढंग यदि न होता तो एक बार उसका कष्ट भोगकर हम दूसरी बार कभी उस अपराध का साहस नहीं कर सकते थे। जो लोग, धर्मार्थ औषधालय खोलते

नियमों का याद करना तो दूर रहा, एक बार पढ़ डालना ही असंभव हो गया है। यह जीवन भी क्या एक बला है! व्यर्थ का यह भार देखकर जी ऊब उठता है।' इन सब व्यर्थ आडम्बरों की क्या आवश्यकता है। प्रकृति ने हमारे जीवन को एक बला एवम् आडम्बर के रूप में नहीं निर्माण किया। यह जीवन इतना सहज और सरल है जितना कुछ भी सहज और सरल हो सकता है। जिसने हमें जीवन दिया है, उसने हमको उस जीवन को आवश्यकतानुसार बिताने के लिए स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ प्रदान की हैं। प्रकृति की प्रदान की हुई ये स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ, हमारे जीवन में, वहीं पर नष्ट हो जाती हैं जब हमारा जीवन प्रकृति के विरुद्ध प्रवाहित होता है। उसी अवस्था में, हमको अपना जीवन बिताने के लिए पैसेंजर गाड़ियों में लादी जाने वाली इन पोथियों की ज़रूरत होती है। किन्तु क्या इनसे कुछ वास्तव में उपकार भी होता है? हमें अन्न कैसा पीना चाहिए, हमें किस प्रकार की वायु का सेवन करना चाहिए? कौन सा भोजन हमें खाना चाहिए और कहाँ कैसे स्थानों में हमें रहना चाहिए, यह सब सीखते-सीखते हम बाल्यकाल से बुढ़ापे तक पहुँचते हैं, किन्तु यदि कोई पूछे कि उससे फ़ायदा क्या उठाते हैं तो कदाचित् यही उत्तर देना पड़ेगा कि कुछ नहीं?

हमें अपने जीवन के लिए जिन जिन बातों की आवश्यकता है उनको ठीक उसी रूप में प्राप्त करने के लिए प्रकृति ने सभी प्राणियों को शक्तियाँ प्रदान की हैं और समूचे विश्व में उनकी व्यवस्था की है। फिर उनको बताने और पुस्तकों के पन्ने रटाने की क्या ज़रूरत है और यही कारण है कि मनुष्य को छोड़कर अन्य किसी प्राणी को उसकी आवश्यकता नहीं पड़ती जंगलों और वन पर्वतों पर रहने वाले जानवर तथा पशु पक्षी पीने के

लिए सुन्दर प्रवाहित जलाशयों, नदियों तथा झरनों का पानी पीते हैं, खाने के लिए अपने अपने स्वभाव के अनुकूल भोजन प्राप्त करते हैं और अपने रहने के लिए सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था करते हैं। यही तो जीवन है। फिर इस जीवन को संचालित करने के लिए हमें जीवन भर क्यों रोना पड़ता है ?

हमारे स्वास्थ्य का रोना इतना विस्तार पा चुका है कि विशेष रूप से उसके बताने की आवश्यकता नहीं है। समाज को रात दिन, सदा सर्वदा एक न एक बीमारी के कष्ट में दुखी रहना पड़ता है। ऐसी अवस्था में भी यदि कोई इस दुरवस्था से अपरिचित रहे हों तो उनको चाहिये कि वे समाचारपत्र, मासिकपत्र तथा भिन्न भिन्न पत्र-पत्रिकाओं के पन्नों को उलट कर देखें तो उनको उन में देखने को मिलेगा कि समाज के बिगड़े हुए स्वास्थ्य, बढ़ते हुए स्वाभाविक और अस्वाभाविक रोग किस किस प्रकार के हैं और उनके कारण समाज की शक्ति कितनी निर्बल हो गई है! चिकित्सा करते-करते विज्ञापन दाताओं और इश्तहारवालों ने तो समाज का जीवन ही अश्लील कर डाला है।

थोड़े से संतोष की बात यह है कि समाज में कुछ दूरदर्शी विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और वे सोचने लगे हैं कि इस दुरवस्था का मूल कारण क्या है। यहाँ पर भिन्न भिन्न लोगों के विचारों और रिपोर्टों के उद्धरण देकर इस बढ़ती हुई दुरवस्था पर विशेष रूप से प्रकाश डालना चाहते हैं। लार्ड केलवन ने इस स्थिति की मीमांसा करते हुए लिखा है—

"मैं बहुत समय के पश्चात्, इस नतीजे पर पहुँच सका हूँ कि हमारे शरीर में जो रोग उत्पन्न होकर हमारे जीवन के

नियमों का याद करना तो दूर रहा, एक बार पढ़ डालना ही असंभव हो गया है। यह जीवन भी क्या एक बला है! व्यर्थ का यह भार देखकर जी ऊब उठता है। इन सब व्यर्थ आडम्बरों की क्या आवश्यकता है। प्रकृति ने हमारे जीवन को एक बला एवम् आडम्बर के रूप में नहीं निर्माण किया। यह जीवन इतना सहज और सरल है जितना कुछ भी सहज और सरल हो सकता है। जिसने हमें जीवन दिया है, उसने हमको उस जीवन को आवश्यकतानुसार बिताने के लिए स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ प्रदान की हैं। प्रकृति की प्रदान की हुई ये स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ, हमारे जीवन में, नहीं पर नए हो जाती हैं तब हमारा जीवन प्रकृति के विरुद्ध प्रवाहित होता है। उसी अवस्था में, हमको अपना जीवन बिताने के लिए बैलगाड़ियों में लादी जाने वाली इन पोथियों की ज़रूरत होती है। किन्तु क्या इनसे कुछ वास्तव में उपकार भी होता है? हमें जल कैसा पीना चाहिए, हमें किस प्रकार की वायु का सेवन करना चाहिए? कौन सा भोजन हमें खाना चाहिए और कहाँ कैसे स्थानों में हमें रहना चाहिए, यह सब सीखते-सीखते हम बाल्यकाल से बुढ़ापे तक पहुँचते हैं, किन्तु यदि कोई पूछे कि उससे फ़ायदा क्या उठाते हैं तो कदाचित् यही उत्तर देना पड़ेगा कि कुछ नहीं?

हमें अपने जीवन के लिए जिन जिन बातों की आवश्यकता है उनको ठीक उसी रूप में प्राप्त करने के लिए प्रकृति ने सभी प्राणियों को शक्तियाँ प्रदान की हैं और समूचे विश्व में उनकी व्यवस्था की है। फिर उनको बताने और पुस्तकों के पन्ने रटाने की क्या ज़रूरत है और यही कारण है कि मनुष्य को छोड़कर अन्य किसी प्राणी को उसकी आवश्यकता नहीं पड़ती जंगलों और वन पर्वतों पर रहने वाले जानवर तथा पशु पक्षी पीने के

लिए सुन्दर प्रवाहित जलाशयों, नदियों तथा झरनों का पानी पीते हैं, खाने के लिए अपने अपने स्वभाव के अनुकूल भोजन प्राप्त करते हैं और अपने रहने के लिए सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था करते हैं। यही तो जीवन है। फिर इस जीवन को संचालित करने के लिए हमें जीवन भर क्यों रोना पड़ता है?

हमारे स्वास्थ्य का रोना इतना विस्तार पा चुका है कि विशेष रूप से उसके बताने की आवश्यकता नहीं है। समाज को रात दिन, सदा सर्वदा एक न एक बीमारी के कष्ट में दुखी रहना पड़ता है। ऐसी अवस्था में भी यदि कोई इस दुरवस्था से अपरिचित रह हों तो उनको चाहिये कि वे समाचारपत्र, मासिकपत्र तथा भिन्न भिन्न पत्र-पत्रिकाओं के पन्नों को उलट कर देखें तो उनको उन में देखने को मिलेगा कि समाज के बिगड़े हुए स्वास्थ्य, बढ़ते हुए स्वाभाविक और अस्वाभाविक रोग किस-किस प्रकार के हैं और उनके कारण समाज की शक्ति कितनी निर्बल हो गई है! चिकित्सा करते-करते विज्ञापन दाताओं और इश्तहारबाज़ों ने तो समाज का जीवन ही अश्लील कर डाला है।

थोड़े से संतोष की बात यह है कि समाज में कुछ दूरदर्शी विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और वे सोचने लगे हैं कि इस दुरवस्था का मूल कारण क्या है। यहाँ पर भिन्न भिन्न लोगों के विचारों और रिपोर्टों के उद्धरण देकर इस बढ़ती हुई दुरवस्था पर विशेष रूप से प्रकाश डालना चाहते हैं। लार्ड केलवन ने इस स्थिति की मीमांसा करते हुए लिखा है—

"मैं बहुत समय के पश्चात्, इस नतीजे पर पहुँच सका हूँ कि हमारे शरीर में जो रोग उत्पन्न होकर हमारे जीवन के

दुखों को छिन्न भिन्न कर डालते हैं, वे प्रायः सभी हमारे अस्वाभाविक भोजनों के द्वारा उत्पन्न होते हैं।"

यह बात सभी को मालूम है कि जीवन का सारा सुख, स्वास्थ्य पर निर्भर है। इस स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए समाज में आए दिनों कौन-से प्रयत्न नहीं किये जा रहे? परंतु ये निष्फल हो जाते हैं, अथवा यों कहा जाय कि मनुष्य के जीवन में जो शक्ति और पुरुषार्थ होना चाहिये, वह नहीं दिखाई देता। दक्षिणी अफ्रिका में दस हज़ार मैट्रिकुलेट युवकों ने देश और सरकार की सेवा करने के लिए प्रार्थना-पत्र दिए, उन प्रार्थना पत्रों पर वे दस हज़ार युवक बुलाये गये। आश्चर्य की बात है कि उन दस हज़ार नवयुवकों में केवल बारह सौ इस योग्य निकले जो सैनिक कार्य कर सकते थे। समाज की दुरवस्था के और क्या प्रमाण हो सकते हैं!

एक सरकारी रिपोर्ट से पता चलता है कि सन् १६०० में जिन युवकों ने सेना में भर्ती होने का प्रयत्न किया था, उनमें से डाक्टरों ने २८ प्रति शत युवकों को किसी न किसी रोग में रोगी होने के कारण निकाल दिया। इसके बाद जो शेष रहे उनमें से परिश्रम कर सकने और कष्टों को सहन करने के योग्य केवल ५० प्रति शत युवकों को निर्वाचित किया, इस प्रकार बहुत बड़ी संख्या में अयोग्य और रोगी कह कर वापस किये गए। सन् १६०८ में रँग रूटों की भर्ती के लिए जा कितने ही सहस्र जवान एकत्रित हुए थे उनमें से ४२ प्रतिशत तो केवल इसलिए निकाल दिये गए कि वे विभिन्न सूक्ष्म बीमारियों के रोगी थे। अब सोचने की बात यह है कि यह अवस्था हम लोगों की है जो समाज में युवक, स्वस्थ, शक्तिशाली और नीरोग समझे जाते हैं, क्योंकि सेना में भर्ती होने के लिए कोई रोगी, निर्बल युवक प्रार्थी नहीं हो सकता। मानव समाज की

यह अधोगति न किसी एक देश की है वरन् सारे संसार की है। संसार के मानव समाज में वे लोग इस दुरवस्था से किसी प्रकार पृथक हैं जो किसी शहर के नागरिक नहीं हैं, जो धनिक, पैसे वाले नहीं हैं अथवा जो देहातों, जंगलों और पर्वतों पर रहते हैं। कारण यह है कि इन लोगो का अधिकांश में उतना अस्वाभाविक जीवन नहीं होता जितना कि इनके विरुद्ध हैसियत वालो का।

इस दुरवस्था के कैसे कैसे भीषण दृश्य हमारी आँखों के सामने से नित्य प्रति गुज़रा करते हैं, यह बात ध्यान पूर्वक देखने के योग्य है। पैदाइश और मृत्यु विभाग की रिपोर्टों में इस बात का पता चलता है कि मनुष्य की अवस्था लगातार कम होती जाती है अर्थात् ३५ और ४० वर्ष के उपरान्त ही स्त्री-पुरुषों की अधिकांश में मृत्यु हो जाती है। इन रिपोर्टों में एक बात बड़ी भयङ्कर है जो विशेष रूप से जानने के योग्य है। मरने वालों में बहुत बड़ी संख्या उन लोगो की है जो असमय और किसी रोग विशेष के कारण मर जाते हैं। इन मरने वाले व्यक्तियों के रोगों का अनुसन्धान करने से पता चलता है कि क्षयी रोग किस प्रकार समाज में तरक्की कर रहा है। हम आगे चल कर बतावेंगे कि क्षयीरोग जैसी बीमारियों के उत्पन्न होने के मांस जैसे अस्वाभाविक भोजन किस प्रकार कारण हो रहे हैं।

विलायतके डाक्टरों ने जो वहाँ समस्त स्कूलोंके विद्यार्थियों के सम्बन्ध में रिपोर्टें प्रकाशित की हैं, वे कितनी हृदय विदारक हैं। उनका कहना है कि प्रति शत २५ विद्यार्थी ऐसे निकल आते हैं जिनके रक्त ख़राब हो गए हैं, प्रति शत ८ ऐसे लड़के हैं जिनको हृदय की निर्बलता है और ८५ प्रति शत लड़के गले

और नाक की बीमारियों से बीमार हैं। अमीर घरानों के लड़कों का स्वास्थ्य किसी प्रकार सन्तोष जनक नहीं है।

इन रिपोर्टों की एक-एक बात इस बात को स्पष्ट करती है कि प्रकृति और स्वभाव के विरुद्ध, भोजन करने का, यह एक मात्र परिणाम है यह अस्वाभाविकता अमीर घरानों में जिस प्रकार होती है, उसका यह परिणाम ही होना चाहिये जैसा कि उनके बालकों के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में डाक्टरों ने लिखा है। खाने पीने के सम्बन्ध में जितनी स्वेच्छा चारिता बढ़ती जा रही है, उतनी ही हमारी अधोगति भी हमारे लिए अनिवार्य हो गई है। पशु और दूसरे पक्षियों में एक स्वाभाविक बुद्धि होती है जिससे वे अपना भोजन खाते हैं और जो अभोज्य होता है, उसको कभी भी वे स्वीकार नहीं करते। परन्तु मनुष्य इन बातों का कभी भी विचार नहीं करता, करे भी कैसे, उसकी तो स्वाभाविक बुद्धि ही नष्ट हो जाती है और उसका सारा जीवन ही कृत्रिम हो जाता है, फिर उसका भोजन स्वाभाविक और प्राकृतिक कैसे हो सकता है। उनको भूख नहीं लगती, खाना हजम नहीं होता। पाचनशक्ति दिन पर दिन दोहाई देती है परन्तु उनको इस बात का ख्याल नहीं होता कि हम जो खाते हैं, वह वास्तव में हमारा भोजन नहीं है, इसीलिये यह सब अनिष्ट हो रहा है। यह सब न सोचकर वे उसी भोजन को पचाने का प्रयत्न करेंगे। वैद्य जी से चूर्ण लावेंगे, दूसरी औषधियों का प्रयोग करेंगे और अपनी हठ से पेट को एक प्रकार का बोरा बना डालेंगे जिसमें कोई भी पदार्थ उचित और अनुचित भरे जा सकें।

पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है कि मनुष्य का शारीरिक यंत्र उसके दांत, आमाशय और कितने ही अवयव इस बात का स्पष्ट प्रमाण देते हैं कि मनुष्य का भोजन फलों को छोड़ कर

और कुछ नहीं हो सकता। उसका सबसे उत्तम और आरोग्य वर्द्धक यही भोजन है किन्तु स्वभाव से भिन्न किन, किन पदार्थों को खाकर मनुष्य रोगी होता है, इसका विस्तार के साथ आगे विवेचन किया जायगा। यहाँ पर यह बताना आवश्यक हो गया है कि सभ्य मानव समाज ने फल और वनस्पति, जो उसके लिए उपयोगी हैं, छोड़कर किस प्रकार के पदार्थों का भोजन अपने लिए आवश्यक समझा है। यहाँ पर उसके सम्बन्ध में थोड़ा सा उल्लेख कर देने से मालूम हो जायगा कि शरीर और स्वास्थ्य को खराब करने के लिए किस प्रकार ये भोजन कारण हुए हैं।

कोरिया के लोगों में कुत्ते पालने की बहुत पुरानी प्रथा है और प्रायः सभी लोग वहाँ कुत्ते पालते हैं, किन्तु इन कुत्तों के पालने का, सिवाय इसके और कोई अभिप्राय नहीं है कि वे लोग कुत्ता खाते हैं। हमारे देश के बहुत से लोग इस बात को सुनकर चौंकेंगे, किन्तु चौंकने की बात नहीं है। हमारे यहाँ बकरी और बकरे पाले जाते और बकरी और बकरे खाये भी जाते हैं। कितने ही ऐसे पक्षी पालने की हम लोगों में प्रथा है जो हमारे ही देश में भोजन के काम में भी आते हैं। मुसलमान लोग गाय पालते हैं और उसी का हनन करके भोजन के काम में लाते हैं।

फ्रांस जैसे सभ्य देश में मेंढक और इस प्रकार के जीव बड़ी रुचि और स्वाद के साथ खाये जाते हैं और उनके द्वारा वहाँ पर भिन्न भिन्न प्रकार के भोजन बनाए जाते हैं। योरप के देशों में, मछलियों की गली सड़ी आँतों से एक बहुत स्वादिष्ट भोजन तैयार किया जाता है और उसे लोग बहुत महत्व देते हैं। श्याम में अंडा तो खाया ही जाता है किन्तु उसको सड़ाकर और गलाकर खाने की बहुत प्रथा है और वहाँ के लोग इसे बहुत

उत्तम समझते हैं। दक्षिणी अफ्रिका में जो वहशी लोग रहते हैं, वे जानवरों की आँतों को बड़े शौक से खाते हैं। जुलू वह शियों में सड़ा हुआ माँस खाने को बहुत स्वादिष्ट माना जाता है। यह माँस जितना ही सड़ जाता है और जितने ही अधिक उसमें कीड़े पड़कर रेंगने लगते हैं, उतना ही अधिक वह उपयोगी समझा जाता है। अँगरेज़ों में उस पक्षी के मांस को खाने में स्वाद अनुभव किया जाता है जो सड़ने लगता है। उनका विश्वास है कि सड़ने पर उसमें जो उपयोगिता पैदा हो जाती है वह सड़ने के पूर्व उसमें नहीं होती। यहाँ पर आज भी ऐसी बहुत-सी जातियाँ पाई जाती हैं जो रेंगने वाले कीड़े मकोड़ों को बड़े स्वाद और शौक के साथ खाती हैं।

यह मानव समाज और ये उनके भोजन! जिसकी यह अवस्था हो, वह यदि स्वास्थ्य और शक्ति के लिए रोये तो आश्चर्य ही क्या है। हमारे देश में भी इससे कम आश्चर्य के भोजन नहीं पाए जाते। यदि इतने भयंकर अस्वाभाविक भोजन नहीं हैं तो किसी प्रकार इनसे मिलते जुलते हैं। जो लोग इसको अस्वीकार करें अथवा बिगड़ें, यदि उनको एक एक बात सुनाई जाय तो फिर उनको मालूम हो कि इस अध्यात्म प्रिय देश की आज क्या अवस्था है।

हम बीमार क्यों पड़ते हैं ?

सर्वसाधारण का, इस प्रकार का विश्वास है कि रोग अपने आप पैदा होते हैं। उनकी कुछ ऐसी धारणा होती है कि जो बात होनहार होती है वह किसी न किसी प्रकार होती ही रहती है। इन होनहार बातों में, रोग भी एक होनहार ही है जो समय असमय पैदा हो जाता है।

समाज के सर्वसाधारण लोगों का यह विचार और विश्वास कितना निर्बल और दयनीय है। उनकी यह भूल और अज्ञान उनकी बहुत बड़ी विपदाओं का कारण है। यदि उनको यह मालूम हो कि रोग अपने आप नहीं उत्पन्न होते उनके उत्पन्न करने के हम ही कारण हो जाते हैं तो वे, निश्चय ही फिर यह जानने की चेष्टा करेंगे कि हम स्वयं अपनी बीमारी को किस प्रकार पैदा करते हैं ? और जब उनको इन बातों का यथावत् रहस्य मालूम हो जायगा तो फिर जान-बूझकर वे कोई ऐसी भूल न करेंगे जो उन्हीं के लिए कष्टदायक हो।

मनुष्य-जीवन में कितने प्रकार के रोग पैदा होते हैं, इस बात को निश्चित संख्या के साथ यद्यपि आज तक शरीर शास्त्र का कोई भी विद्वान नहीं कह सका और न आगे ही कभी कह सकेगा, इसलिए कि रोग जिन कारणों से उत्पन्न होते हैं उन कारणों की जब तक संख्या और उनका परिमाण नहीं मालूम हो सकता, तब तक उनके द्वारा पैदा होने वाले रोगों के सम्बन्ध में ही कैसे बताया जा सकता है। परन्तु फिर भी, रोगों के सम्बन्ध में जहाँ तक अनुसन्धान किया जा सका है, किया गया

है। और इसके सम्बन्ध में तीन बहुत बड़े-बड़े विभाग अनुसन्धान करने वालों के पाये जाते हैं अर्थात् डाक्टरी, यूनानी और आयुर्वेदिक। इनके आधार पर मनुष्य जीवन में पैदा होने वाले लगभग डेढ़ हज़ार से लेकर दो हज़ार से कुछ अधिक रोगों की विवेचना, इनके लक्षण, रूप और प्रतिरूप पाये जाते हैं। अमेरिका से प्रकाशित होने वाली मेडिकल और सर्जिकल बुलेटीन का कहना है कि पेट की खराबी से और भोजन की गड़बड़ी से इन सभी रोगों की उत्पत्ति होती है, यह यूनानी और आयुर्वेदिक मत है जिसको डाक्टरों ने भी स्वीकार किया है और फ्रांस के प्रसिद्ध डाक्टर बाय और बोशरो तथा लंदन के लोकप्रिय डाक्टर हेग ने विशेष रूप से इन बातों का समर्थन किया है।

मनुष्य जो खाना खाता है उसके खाने के पदार्थों में कुछ इस प्रकार का अंश भी पाया जाता है जो विकार उत्पन्न करता है, इस प्रकार का अंश प्रायः उन बहुत से पदार्थों में पाया जाता है जो आज मनुष्य के भोजन के नाम से प्रसिद्ध हैं और उसीके अर्थ उनका उपयोग होता है। इन पदार्थों में जो यह विकार का अंश होता है, वह कितने ही प्रकार के मल तथा मूत्र के रूप में शरीर से बाहर हुआ करता है। मनुष्य जो खाता है, पेट में जाने पर उसकी बहुत-सी क्रियायें होती हैं और प्रत्येक क्रियामें शुद्ध होकर उसका मल और विकार अलग हो जाता है। जिस प्रकार सोनार सोने और चाँदी को आग में तपाकर उसमें सोने और चाँदी के अतिरिक्त मिले हुए धातु अंश जलाकर और शुद्धकर पृथक कर देता है उसी प्रकार पेट के भीतर ये क्रियायें काम करती रहती हैं और ये क्रियायें तब तक बराबर होती रहती हैं जब तक कि उसके भीतर से अशुद्ध अंश और विकार सब पृथक हो नहीं जाता। अंत में किये हुए भोजन का बहुत थोड़ा

सा—कदाचित् कुछेक बूँदों के परिमाण में अंश रह जाता है, वही हमारे शरीर के काम में आता है।

यहाँ पर यह विचार करने की बात है कि खाये हुए भोजन का बहुत थोड़ा सा अंश जो अंत में तैयार होता है वह सभी प्रकार के भोजनों में समान रूप से, नहीं तैयार होता, बल्कि किसी में कुछ कम और किसी में कुछ अधिक यह अंश निकलता है। इसी प्रकार, जो विकार के अंश हुआ करते हैं, वे भी सभी प्रकार के भोजनों में समान रूप से नहीं होते। किसी में कम और किसी में अधिक, किसी में बिलकुल नहीं और किसी में बहुत अधिक निकलते हैं। लंदन के बहुत प्रसिद्ध और मान नाय डाक्टर मि० हेग ने बहुत बड़े परिश्रम के साथ यह निश्चय किया है कि जिन पदार्थों में यह विकार अधिक होता है, उनका प्रभाव मनुष्य के शरीर पर विष के समान पड़ता है और जिन अवस्थाओं में वह शरीर से उचित समय पर निकल नहीं जाता, उन दशाओं में वह तुरन्त अपने प्रभाव से रोग उत्पन्न करता है। अब देखना यह चाहिए कि वह विकार और विष शरीर से मल के साथ अथवा उसके रूप में किस प्रकार निकला करता है। यह देखा जाता है जब किसी को दस्त साफ़ नहीं होता या टट्टी खुल कर नहीं आती, तो वह बीमार पड़ जाता है। जिन्हें दस्त साफ़ न होने की शिकायत रहा करती है, उनको सदा बीमार रहने की शिका यत भी रहा करती है। मि० हेग का यह कहना भी सत्य है कि कुछ पदार्थों में यह विकार इतना अधिक होता है कि वह विष होकर प्रभावान्वित होता है, इसलिए कि प्राय देखा जाता है कि जिनको भयंकर से भयंकर रोग हो जाते हैं और उसी रोग में उनके प्राण जाते हैं, जब उस रोगी से बातें की जाती हैं तो मालूम होता है कि उसको टट्टी साफ़ न होने

की शिकायत है। मि० हेग ने इस विकार को यूरिक एसिड (uric acid) अर्थात् एक प्रकार का विष निश्चित किया है। यह विष किन किन खाने के पदार्थों में, किस किस परिमाण में होता है और किस किस प्रकार वह मनुष्य के शरीर में रोग उत्पन्न करता है, इस पर उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। उनके अनुभव और अनुसंधान समाज में खूब माने जाते हैं। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने इसके सम्बन्ध में बहुत परिश्रम और अन्वेषण किया है। यहाँपर इस विष के सम्बन्ध में उचित प्रकाश डालने की चेष्टा की जायगी और प्रत्येक वस्तु में इस विष के परिमाण की विवेचना की जायगी। इसके साथ ही यह निश्चय किया जायगा, कि कौन-कौन रोगों का भी गणेश किस किस प्रकार होता है।

जिन-जिन पदार्थों में यह यूरिक एसिड नामक विष होता है उनका निम्नलिखित उल्लेख करके यह भी बताया जायगा कि किसमें कितना यह विष होता है, आजकल मनुष्यों के भोजन में विभिन्न प्रकार की चीजे हो गई हैं फिर भी उनमें मछली, माँस, वनस्पति, शराब और चाय इत्यादि अधिक उपयोग में आती हैं। मछली की कई जातियाँ होती हैं और वे सभी मनुष्यों के भोजन में काम आती हैं। उन सब में यह विष समान नहीं होता। भिन्न भिन्न जाति की मछलियों में विभिन्न परिणाम में यह विष पाया जाता है। यदि आध सेर प्रत्येक मछली के वज़न का गोश्त लिया जाय तो उसमें काड मछली में चार ग्रेन, पलीस में पांच ग्रेन, हाइयट में सात ग्रेन और सामन में आठ ग्रेन तक यह विष पाया जाता है।

यही अवस्था पशुओं और विभिन्न जीवों के मांस की है। मांसाहारी मनुष्यों ने पालतू पशुओं से लेकर, पक्षियों और

जंगली जानवरों तक को अपना भोजन बना रखा है। इन जीवों में ही इस विष की विभिन्नता नहीं होती, एक ही जीवके विभिन्न अंगों के मास में विभिन्न परिमाण में यह विष पाया जाता है जैसा कि नीचे के विश्लेषण से कहीं कहीं पर प्रकट होगा। प्रत्येक मांस को आधा सेर वज़न में लेने पर, सुअर मुर्दा में चार ग्रेन, खरगोश में छः ग्रेन, भेड़ और बकरी में छः ग्रेन से कुछ अधिक, गाय की खाल में सात ग्रेन, गाय की पसली में आठ ग्रेन, बछड़े में आठ ग्रेन, सुअर की कमर तथा रान में आठ ग्रेन, मुर्गी मुर्गे में आठ ग्रेन से कुछ अधिक, चूज़े में नौ ग्रेन, गाय की पीठ तथा पीछे के अंग में नौ ग्रेन, गाय की भुनी हुई बोटी में चौदह ग्रेन, उसकी यकृत् में उन्नीस ग्रेन, मांस के जूस में पचास ग्रेन तक यह विष पाया जाता है।

वानस्पतिक पदार्थों में यद्यपि इस विष की मात्रा बहुत कम पायी जाती है, परन्तु पायी थोड़ी-बहुत अवश्य जाती है। प्रत्येक वनस्पति पदार्थ को आध सेर वज़न में लेने पर, आलू में अत्यन्त सूक्ष्म, प्याज में उससे कुछ अधिक, सारचोबा में एक ग्रेन, पीजमीज में दो ग्रेन, जई के आटा में तीन ग्रेन, हरी फ्रूट-बीन में चार ग्रेन और मसूर में चार ग्रेन विषम होता है।

शराब में भी यह विष बहुत कम पाया जाता है। जितनी भी शराबें हैं उन में कदाचित् किसी में प्रत्येक आध सेर शराब में एक ग्रेन से अधिक यह विष नहीं होता। किन्तु चाय मे यह विष बहुत परिमाण मे पाया जाता है, उसको आधा सेर लेने पर कोका चाय मे उनसठ ग्रेन, कहवा मे सत्तर ग्रेन और लंका की चाय मे एक सौ अस्सी ग्रेन तक यह विष पाया जाता है। अंडा, दूध, पनीर, चावल गोभी आदि मे यह यूरिक एसिड नहीं पाया जाता।

ऊपर के उल्लेख से यह तो मालूम ही हो जायगा कि किस मे कितना यह विष पाया जाता है। इन पदार्थों से बना हुआ भोजन खाने से और उसका ठीक-ठीक पाचन हो जाने पर यह विष साधारणतया, विशेष हानि नहीं पहुँचाता। किन्तु ठीक-ठीक उन पदार्थों का पाचन न होने पर और दस्त के साफ न होने पर यह पेट में ही रुक जाता है, इसका रुक जाना ही हानि कारक है और जिन अवस्थाओ में यह अधिक समय तक एकत्रित हुआ करता है, उनमें यह बड़े भीषण रोग उत्पन्न करता है। विशेष कर उन परिस्थितियों में जब यह विष शरीर से नहीं निकलता और लगातार रुक कर शरीर के रक्त के साथ मिश्रित हो जाता है। यहाँ पर यह एक प्रसिद्ध डाक्टर की कही हुई बात सत्य प्रमाणित होती है कि संसार में एक ही रोग है और उस रोग का सम्बन्ध पेट की खराबी से है। यदि पेट मे कोई खराबी न हो तो कभी कोई रोग हो ही नहीं सकता।

शरीर में इस विष के रुक जाने या एकत्रित हो जाने के दो विशेष कारण हुआ करते हैं, या तो यह रक्त के साथ मिश्रित हो जाता है अथवा शरीर के किसी जोड़, या अंग में बैठ जाता है। इन दो अवस्थाओ में यह विष शरीर से न निकल कर विभिन्न रोगों की उत्पत्ति करता है। जब यह रक्त के साथ मिश्रित हो जाता है तो उससे मस्तक की बीमारियाँ, हिस्टीरिया, सुस्ती, नींद का अधिक आना, श्वास-रोग, जिगर की ख़राबी अजीर्ण रोग, शरीर में रक्त की कमी आदि बहुत-सी बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं, और जब यह किसी गाँठ या जोड़ में रुक जाता है तो उससे वात-रोग गठिया-रोग, नाक और कलेजे की दाह, पेट में विभिन्न रोग, शरीर में विभिन्न दर्द, मेलेरिया, निमोनियाँ, जुकाम, इनफ्लुएंजा और क्षयी रोग उत्पन्न होते हैं।

जिस रक्त मे यूरिक एसिड मिल जाता है, उसमे ठंडक पहुँचने से या किसी प्रकार की खटाई पैदा होने से यूरिक एसिड उस रक्त से पृथक हो जाता है। इसकी यह अवस्था प्रकट करती है कि यूरिक एसिड के मिल जाने से, रक्त की गति स्थिर हो जाती है। डाक्टर हेग मे जिन्होंने इसके सम्बन्ध मे बहुत अधिक छान बीन की है, लिखा है—

'मैंने जहाँ तक परीक्षा की है, इस बात को निश्चित रूप से पाया है कि यूरिक एसिड की गति मे अन्तर होने से की सूक्ष्म और बारीक नसो में रक्त का थोड़ा रुक जाता है। अर्थात् जो बहुत बारीक और पतली नसे होती हैं, उनके अन्दर जो रक्त बराबर गतिमान रहा करता है, रक्त की उस गति में तुरन्त अंतर पड़ जाता है, जब यूरिक एसिड की अवस्था मे कुछ अन्तर होता है। ऐसी दशा में मैंने निश्चय किया है कि जब खून में यूरिक एसिड अधिक परिमाण में हो जाता है तो रक्त की गति में बहुत सी स्थिरता उत्पन्न हो जाती है और जब रक्त में उसका परिमाण कम हो जाता है तो रक्त, शरीर की सभी छोटी-बड़ी नालियो में समान रूप से गतिमान रहता है। इससे यह साबित होता है कि सूक्ष्म नसों पर यूरिक एसिड का बहुत शीघ्र प्रभाव पड़ता है।'

यह बात सही है और सन्देह होने पर बिना किसी यंत्र की सहायता के अनुभव की जा सकती है, अर्थात् अपनी किसी उँगली को थोड़ा-सा जोर से दबाने पर वह सफेद हो जायगी और छोड़ने पर फिर लाल हो उठेगी। डाक्टर हेग का यह भी कहना है कि जो लोग मांसाहारी होते हैं उनकी उँगली में इतनी जल्दी सफेदी नहीं आ सकती जितनी कि वानस्पतिक पदार्थों का भोजन करने वाले की उँगली में।

इस यूरिक एसिड के रुक आने का एक और भी कारण है और जिसके सम्बन्ध में कुछ संक्षेप में पहले ही लिखा भी गया है। यूरिक एसिडदार पदार्थों का सेवन करने से जिन अब स्थानों में मल निकलने से रुक जाता है उनमें यह विष शरीर की किसी हड्डी या पट्ठे में पठ जाता है और वहाँ पर धीरे धीरे अधिक परिमाण में एकत्रित होता रहता है और उसके बाद, वायु जनित गाँठों, हड्डियों, पुट्ठों आदि में अनेक बीमारियाँ पैदा करता है। शरीर में यूरिक एसिड होने न होने की पहचान बड़ी आसानी से और दूसरे ढंग से हो सकती है। परिश्रम पूर्ण काय करने से या व्यायाम करने से जब अधिक सुस्ती आती है, तो समझ लेना चाहिये कि शरीर में यूरिक एसिड मौजूद है। क्योंकि जब यह विष शरीर में नहीं होता और परिश्रम तथा व्यायाम आदि किया भी जाता है तो उसकी थकावट और सुस्ती बहुत शीघ्र दूर हो जाती है और इसलिए कि हड्डियों नलियों और नसों में जो रक्त प्रवाहित होता रहता है, वह तुरन्त फिर नवीन रक्त के द्वारा नई स्फूर्ति उत्पन्न कर देता है। परन्तु जब यूरिक एसिड शरीर में होता है तो वह रुधिर की गति को स्थिर कर देता है और परिश्रम तथा व्यायाम द्वारा शरीर के जोड़ों, पुट्ठों आदि में जो क्लान्ति उत्पन्न हो जाती है, उसको दूर करने के लिए नवीन रक्त शीघ्र नहीं पहुँचने पाता, जिससे नवीन स्फूर्ति शीघ्र नहीं उत्पन्न होती।

यह बात सभी को मालूम है कि जो लोग परिश्रम नहीं करते और न व्यायाम ही करते हैं, वे सदा निर्बल और रोगी रहा करते हैं, इसका कारण क्या है ? बात यह है कि पारिश्रमिक कार्य करने से जो शरीर में पसीना आता है उस पसीने में हमारे शरीर से रक्त का यूरिक एसिड निकल आता है। उसका शरीर से निकल आना ही शरीर का स्वास्थ्य और

पुरुषार्थ है। उसका रुक जाना या शरीर में रुधिर, हड्डी या किसी जोड़ आदि में बना रहना शरीर को निकम्मा, रोगी और निर्बल बनाता है। सभी लोग जानते हैं कि पक्के महलों और बँगलों में रहने वाले स्त्री-पुरुषों और बच्चों के शरीरों में वह शक्ति, पुरुषार्थ, स्वास्थ्य नहीं होता जो कि सड़क पर कंकड़ कूटने वाले, खेतों पर काम करने वाले पुरुषों, स्त्रियों और मज़दूर-किसानों के शरीरों में होता है। यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है कि इन दोनों प्रकार के मनुष्यों के भोजनों और उनके भोजन के पदार्थों में किस प्रकार अंतर होता है। दोनों के शरीरों में इस विशाल अंतर होने के दो बड़े कारण हैं। एक तो यह कि वे मज़दूर और किसान वानस्पतिक पदार्थों के द्वारा बने हुए उन भोजनों को खाते हैं जिनमें यूरिक एसिड बहुत कम परिमाण में होता है। दूसरा कारण यह है कि वे दिन भर इतना परिश्रम करते हैं कि उनके शरीरों में रक्त के साथ जो यूरिक एसिड होता है वह पसीने के साथ शरीर से निकल आता है।

यह बात देखी गई है और परीक्षा से मालूम हुई है कि यूरिक एसिड विष का प्रभाव प्रातःकाल अधिक रहता है और दोपहर, संध्याकाल कुछ फ़ुरसत सी रहती है। इसी आधार पर मि० हेग ने लिखा है कि "लंदन के अमीर और बड़े आदमी तो प्रातःकाल देर तक सोते ही हैं, सर्वसाधारण की भी यही अवस्था होती जाती है, इसलिए कि उनके भोजनों में मांस का बाहुल्य होता है, और यूरिक एसिड पैदा करने में मांस सब से अधिक है।" वास्तव में यह बात न केवल लंदन या अमेरिका के बड़े आदमियों के सम्बन्ध में है वरन् किसी भी देश में यदि देखा जाय तो यही अवस्था मिलेगी। प्रायः सभी देशों के बड़े आदमी पैसे वाले, समर्थ व्यक्ति मांस तथा इस प्रकार के

भोजन करते हैं जो यूरिक एसिड अधिक उत्पन्न करते हैं और इसी के फल-स्वरूप उनको प्रातःकाल बहुत देर तक सोना पड़ता है और उठने पर भी, उनकी आँखों का आलस नहीं छूटता। साधारण समाज में भी जिनके भोजनों का सम्बन्ध यूरिक एसिड से होता है, उनकी भी यही अवस्था होती है। वानस्पतिक पदार्थ जिनके भोजन होते हैं, उनकी तेज़ी उनके शरीरों का चैतन्य मांसाहारी लोगों में नहीं हो सकता।

मनुष्य के भोजन के विषय में फलों और तरकारियों की आवश्यकता और उपयोगिता दिन पर दिन संसार के बुद्धिमान् और विचार शक्ति अनुभव करते जाते हैं। लोगों का ध्यान इस ओर गया है और वे समझने लगे हैं कि मनुष्य जाति की स्वास्थ्य सम्बन्धी दुरवस्था का कारण उसके अस्वाभाविक भोजन के कारण है। इस ओर लोगों ने बड़े-बड़े अनुसन्धान करने प्रारम्भ कर दिये हैं। और उनमें से जो जिस नतीजे पर पहुँचते हैं अपने विचारों को बराबर प्रकट करते हैं। संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष, महात्मा गाँधी ने फलों के ऊपर कई बार लिखा है और उन्होंने स्वयं अपने जीवन में अधिक समय केवल फलाहार करके समय बिताया है, ऐसा करने पर उनके जीवन को जो शक्ति, पुरुषार्थ और आरोग्य प्राप्त हुआ है, यह सब उस प्राकृतिक भोजन का ही एक-मात्र परिणाम, उन्होंने ने स्वीकार किया है। मि० पावल ने अपनी अँगरेज़ी पुस्तक में, इसके सम्बन्ध में कुछ लोगों की सम्मतियाँ लिखी हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि अस्वाभाविक और हानिकारक खाने की चीज़ों का समाज में भंडाफोड़ होता जाता है। इस प्रकार की सम्मतियाँ यहाँ पर दे देना अनावश्यक न होगा। डाक्टर मोक्स ने लिखा है—

यूरिक एसिड उत्पन्न करने वाले पदार्थों के भोजन करने वालों की अवस्था उस आदमी की भाँति है जो अपनी जेब में बारूद् भरकर आग वाले कारखाने में घूमता है। जिसमें आग की एक चिनगारी की ही केवल कमी रहती है और उसकी प्रत्येक घड़ी आशंका की जाती है।

विलायत में गो माँस की चाय खाने की बहुत प्रथा है, यह बीफटी (Beaf tea) के नाम से प्रसिद्ध है। यह चाय गौ के माँस द्वारा तैयार की जाती है, आरम्भ में बताया जा चुका है कि गौ के माँस में कितना यूरिक एसिड होता है। इस बीफ़टी का अनुचित प्रभाव देखकर और अनुभव करके *मि० राबर्ट बारथोले ने लिखा है—*

"यह बात भलीभाँति अब समझ में आ गई है कि बीफ़टी के प्रयोग से कुछ उत्तेजना के अलावा और कोई फ़ायदा नहीं होता। बल्कि बहुत अंशों में यह नुकसान ही पहुँचाता है।"

सर विलियम राबर्ट् स का कहना है कि "बीफ़टी को किसी प्रकार मनुष्य का आहार समझना बड़ी भूल करना है। यह तो एक प्रकार से मादक पदार्थों की भाँति उत्तेजना मात्र का प्रवर्तक है। और अन्त में बहुत दूषित अंश उत्पन्न करती है।"

बीफ़टी के सम्बन्ध में एक बार प्रकाशित हुआ था कि "जो स्त्रियाँ बीफ़टी तैयार करती हैं और उनका उपयोग करती हैं, वे किसी प्रकार यह नहीं समझतीं कि उसमें मनुष्य के भोजन का अंश बिलकुल नहीं होता। बहुत से रोगियों के साथ देखा गया है कि इस बीफ़टी ने उनको बहुत हानि पहुँचाई है। इस-लिए कि बहुत दिनों से उनका यह आहार हो रहा था।"

अमेरिका के एक यूनीवर्सिटी के डाक्टर साहब ने लिखा

था कि जो लोग माँस के शोरबे का आहार करते हैं, वे एक ऐसी गलती करते हैं जिसके फल-स्वरूप उनको अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं।

मि० ए० एस० अमीन ने लिखा है—माँस को भोजन समझना और भोजन के स्थान पर उसका प्रयोग करना सख्त गलती है। ऐसी भूलों के परिणाम-स्वरूप बुरी-बुरी बीमारियों में पड़ना होता है।

समाज में माँसाहार के बढ़ते हुए परिणाम को देखकर और उसके भयंकर परिणामों को अनुभव करके डा० टी०आर० आलिंसन ने उन लोगों को चुनौती देते हुए लिखा है जो माँसाहार के पक्ष में हैं, कि जो कोई माँस को गेहूँ के आटे से अधिक उपयोगी प्रमाणित कर देगा उसको पन्द्रह सौ रुपये इनाम में दिये जायँगे।

डाक्टर ग्रिटम हे का कहना है कि मैंने अपने अनुभव पर यह सम्मति निश्चित की है कि बीफ़टी के लिए जो बीफ़ प्रयोग किया जाता है वह मनुष्य के लिए बहुत हानिकारक है।

मि० डब्ल्यू० डंकन का कहना है कि लोगों का यह विश्वास है कि माँस के भोजनों से सर्दी, जुकाम, इन्फ्लुएन्जा आदि बीमारियाँ दूर हो सकती हैं, मिथ्या धारणा है। उनको जानना चाहिए कि माँसाहार से एक प्रकार का ऐसा विष शरीर में प्रवेश करता है जो इन बीमारियों को शरीर में पैदा करता है।

बीफ़टी के सेवन से मनुष्यों के स्वास्थ्य को जो हानि हुई है और उसके द्वारा उत्पन्न हुई भिन्न भिन्न बीमारियों से जो सर्वसाधारण की मृत्यु हुई है, उसका अनुमान लगाकर और उससे कातर होकर डाक्टर मिल्स फ़ोदरगाल ने लिखा है—

लोगों में बीफ़टी का प्रचार बराबर बढ़ता जाता है, उससे इस कदर ज्यादा हानि हो रही है कि केवल मेरे ही न जाने कितने मित्र सम्बन्धी और शुभचिन्तक मर गए। उनकी मृत्यु का एक-मात्र कारण यह था कि उनको बीफ़टी ही आती थी। इस बीफ़टी के द्वारा इतनी अधिक मृत्युएं होती हैं कि उसके सामने नैपोलियन का भयानक युद्ध कोई चीज़ नहीं है।

इस लेख में अकारण रोगों के पैदा होने का कारण और क्रम भलीभाँति दिखाया गया है, हम लोग जो बिना सोचे समझे कोई भी भोजन कर लिया करते हैं और सभी को भोज्य समझ लेते हैं, इस लेख को पढ़कर हमारे हृदय का यह मिथ्या भाव उड़ जायगा और हम समझने लगेंगे कि हमें वास्तव में किस प्रकार का भोजन करना चाहिये और किससे हमको क्या लाभ और किससे क्या हानि हो रही है।

भोजन से जो शरीर में यूरिक एसिड उत्पन्न हो जाती है उसका शरीर से निकलना बहुत आवश्यक है और उसके निकालने के लिए परिश्रम पूर्ण कार्यों और व्यायाम से बढ़कर दूसरा कोई मार्ग नहीं है जिससे हमारा सम्पूर्ण शरीर एक बार पसीने से खूब नहा जावे।

फलाहार क्यों सर्वोत्तम है ?

भोजन के प्रत्येक पदार्थ की वैज्ञानिक विवेचना !

मनुष्य के खाने पीने के सम्बन्ध में पिछले पृष्ठों में यथा स्थान कुछ बातें बताई गई हैं किन्तु उनका काम और उचित उपयोग भलीतरह नहीं बताया गया। यहाँ पर भोजन की वैज्ञानिक विवेचना करके यह निश्चय करना है कि मनुष्य के अन्य भोजनों की अपेक्षा फलों का सेवन क्यों सर्वोत्तम है।

प्रारम्भ में मनुष्य के शरीर की उपमा रेलगाड़ी के इंजन के साथ दी जा चुकी है। मनुष्य के शरीर यंत्र को सुगमता से समझने के लिए यहाँ पर फिर उसी इंजन का आश्रय लिया जाता है। इंजन जब काम करता है, तो उसके पहले ही उसमें गर्मी उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है जिसके लिए उसमें कोयला और पानी का प्रयोग किया जाता है। दूसरी बात उसके काम करने से कल और पुर्ज़े—सभी छोटे और बड़े घिसते रहते हैं, इसके लिए ऐसी चीज़ों का प्रयोग करना पड़ता है जिनसे उनकी मरम्मत होती रहती है। तीसरे उसके कल-पुर्ज़ों को सहज ही गतिमान बनाने के लिए तेल की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य के शरीर में पेट इंजन है इस इंजन के द्वारा ही सारे शरीर का काम होता है। पेट में जो भोजन पहुँचता है उसकी गर्मी शरीर में शक्ति, उत्तेजना उत्पन्न करती है, और इस अवस्था में ही शरीर कार्य करने के योग्य होता है। इसके बाद, काम करने से शरीर के अंग प्रत्यंग जो घिसते रहते हैं और आगे के लिए अपनी शक्ति का ह्रास करते हैं, उसको पूर्ण करने के लिए हमें आवश्यकता होती है।

तीसरी बात, जिस प्रकार इंजन के कल पुर्जों के लिए तेल अथवा चिकनाई की ज़रूरत होती है उसी प्रकार हमारे शरीर के लिए भी ज़रूरत होती है, इन तीन बातों के लिए हमें शरीर का प्रबन्ध करना पड़ता है। शरीर की ये तीनों आवश्यकताएँ हमारे भोजन से ही पूर्ण होती हैं। इसलिए हमें उस भोजन की आवश्यकता होती है जिससे हमारे शरीर की ये तीनों आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकें।

हमारे शरीर की इन तीन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किन किन वस्तुओं की आवश्यकता है, इस बात का निश्चय करके हमें आगे बढ़ना चाहिए। उन आवश्यकताओं में सबसे पहले और सबसे अधिक पानी की आवश्यकता होती है। काम के कारण शरीर के अंग प्रत्यंगों को जो क्षति पहुँचती है, उसको दूर करने के लिए पानी ही उपयोगी होता है। इसके पश्चात् शरीर में शक्ति उत्पन्न करने के लिए जिन तत्वों की आवश्यकता होती है उसको डाक्टरी में प्रोटीन कहते हैं। यह प्रोटीन वास्तव में नाइट्रोजन है जो अंडे की सफेदी, दूध की सफेदी और गहूँ के लवाब आदि में मिलता है। तीसरी आवश्यकता नमक की है, इसके द्वारा शरीर के अवयवों को अनेक प्रकार की सहायता मिलती है। इसके साथ ही उन तत्वों की भी आवश्यकता होती है जो तेल तथा चीनी का अंश पैदा करते हैं।

शरीर की इन तीन प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए चार प्रकार के तत्वों की ज़रूरत पड़ती है। पानी प्रोटीन, नमक और तेल चीनी। ये चार प्रकार के तत्व प्राप्त करने के लिए हमें भोजन की आवश्यकता है। इस विवेचना से स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है कि मनुष्य का भोजन वही है

फलाहार क्यों सर्वोत्तम है ?

भोजन के प्रत्येक पदार्थ की वैज्ञानिक विवेचना !

मनुष्य के खाने पीने के सम्बन्ध में पिछले पृष्ठों में यथा स्थान कुछ बातें बताई गई हैं किन्तु उनका क्रम और उचित उपयोग अभीतक नहीं बताया गया। यहाँ पर भोजन की वैज्ञानिक विवेचना करके यह निश्चय करना है कि मनुष्य के अन्य भोजनों की अपेक्षा फलों का सेवन क्यों सर्वोत्तम है।

प्रारम्भ में मनुष्य के शरीर की उपमा रेलगाड़ी के इंजन के साथ दी जा चुकी है। मनुष्य के शरीर यंत्र को सुगमता से समझने के लिए यहाँ पर फिर उसी इंजन का आश्रय लिया जाता है। इंजन जब काम करता है, तो उसके पहले ही उसमें गर्मी उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है जिसके लिए उसमें कोयला और पानी का प्रयोग किया जाता है। दूसरी बात उसके काम करने से कल और पुर्जे—सभी छोटे और बड़े घिसते रहते हैं, इसके लिए ऐसी चीजों का प्रयोग करना पड़ता है जिससे उनकी मरम्मत होती रहती है। तीसरे उसके कल-पुर्जों को सहज ही गतिमान बनाने के लिए तेल की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य के शरीर में पेट इंजन है इस इंजन के द्वारा ही सारे शरीर का काम होता है। पेट में जो भोजन पहुँचता है उसकी गर्मी शरीर में शक्ति, उत्तेजना उत्पन्न करती है, और इस अवस्था में ही शरीर कार्य करने के योग्य होता है। इसके बाद, कार्य करने से शरीर के अंग प्रत्यंग जो घिसते रहते हैं और आगे के लिए अपनी शक्ति का ह्रास करते हैं, उसको पूर्ण करने के लिए हमें आवश्यकता होती है।

तीसरी बात, जिस प्रकार इंजन के कल पुर्ज़ों के लिए तेल अथवा चिकनाई की ज़रूरत होती है उसी प्रकार हमारे शरीर के लिए भी ज़रूरत होती है, इन तीन बातों के लिए हमें शरीर का प्रबन्ध करना पड़ता है। शरीर की ये तीनों आवश्यकताएँ हमारे भोजन से ही पूर्ण होती हैं। इसलिए हमें उस भोजन की आवश्यकता होती है जिससे हमारे शरीर की ये तीनों आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकें।

हमारे शरीर की इन तीन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किन किन वस्तुओं की आवश्यकता है, इस बात का निश्चय करके हमें आगे बढ़ना चाहिए। उन आवश्यकताओं में सबसे पहले और सबसे अधिक पानी की आवश्यकता होती है। काम के कारण शरीर के अंग प्रत्यंगों को जो क्षति पहुँचती है, उसको दूर करने के लिए पानी ही उपयोगी होता है। इसके पश्चात् शरीर में शक्ति उत्पन्न करने के लिए जिन तत्त्वों की आवश्यकता होती है उसको डाक्टरी में प्रोटीन कहते हैं। यह प्रोटीन वास्तव में नाइट्रोजन है जो अंडे की सफेदी, दूध की सफेदी और गेहूँ के लवाब आदि में मिलता है। तीसरी आवश्यकता नमक की है, इसके द्वारा शरीर के अवयवों को अनेक प्रकार की सहायता मिलती है। इसके साथ ही उन तत्त्वों की भी आवश्यकता होती है जो तेल तथा चीनी का अंश पैदा करते हैं।

शरीर की इन तीन प्रकार की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए चार प्रकार के तत्त्वों की ज़रूरत पड़ती है। पानी प्रोटीन, नमक और तेल चीनी। ये चार प्रकार के तत्त्व प्राप्त करने के लिए हमें भोजन की आवश्यकता है। इस विवेचना से स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है कि मनुष्य का भोजन वही है

जो इन तत्वों को प्रदान कर सकता है। इन तत्वों के प्रदान करने वाले भोज्य पदार्थों के सम्बन्ध में, आगे चलकर अलग अलग विश्लेषण किया जायगा। किन्तु उसके पहले इन तत्वों के सम्बन्ध में कुछ बातों का और लिखदेना आवश्यक जान पड़ता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, आहार में पानी की सबसे अधिक परिमाण में आवश्यकता है। शरीर विज्ञान के विद्वानों ने निश्चय किया है कि शरीर में पानी का अंश इक्यासी प्रति शत है। शेष उन्नीस फीसदी में बाकी वस्तुएं हैं। इससे ज़ाहिर होता है कि पानी शरीर के लिए कितना आवश्यक है। इसके बाद प्रोटीन की आवश्यकता होती है। प्रोटीन ही शरीर में शक्ति और पुरुषार्थ उत्पन्न करता है। जिन भोजन पदार्थों में इसकी कमी होती है उनके खाने से मनुष्य की शक्ति दिन पर दिन क्षीण होती जाती है। जिनको इस बात का ज्ञान नहीं होता और ज्ञान न होने से बिना इस बात को समझे-बूझे जो लोग भोजन खाया करते हैं वे अपनी समझ में भोजन करते हैं और संतोषजनक परिमाण में करते हैं, परन्तु उससे उनको वह लाभ नहीं होता जो वास्तव में उनका होना चाहिए। इसका फल यह होता है कि खाते पीते रहने पर भी शरीर की शक्ति क्षीण होती जाती है और उनके शरीर का पुरुषार्थ, अव्यक्तरूप से अदृश्य होता जाता है।

शरीर शास्त्र के विद्वानों ने इस प्रोटीन को कितना अधिक महत्व दिया है, इसको प्रकट करने के लिए कुछ सम्मतियाँ दे देना यहाँ पर आवश्यक है। प्रोटीन की उपयोगिता और शरीर में उसकी आवश्यकता का अनुभव करते हुए एक विद्वान ने लिखा है—

"हमारे शरीर के लिए प्रोटीन बहुत आवश्यक है, नित्य के कार्यों में जो शक्ति हमारी व्यय होती है, उसको हम प्रोटीन के द्वारा प्राप्त करते हैं। इसलिए यदि यह कहा जाय तो अनुचित न होगा कि प्रोटीन, हमारी जीवन शक्ति है। शरीर के लिए आवश्यक इन तत्वों से लाभ उठाकर जीवन न केवल सुख के साथ बिताया जा सकता है परन्, मनुष्य बहुत दिनों तक जीवित रह सकता है।"

शरीर विज्ञान के एक प्रोफ़ेसर साहब ने लिखा है कि "प्रोटीन हमारे शरीर के लिए बहुत आवश्यक है, इसलिए जिन पदार्थों में यह प्रोटीन अधिक पाया जाता है, वही वास्तव में हमारे खाने के पदार्थ हैं, जिनमें प्रोटीन की मात्रा नहीं होती, उनका खाना, शरीर के लाभ के लिए व्यर्थ है।"

प्रोटीन की आवश्यकता पर भिन्न भिन्न लोगों ने विभिन्न रूप से अनुभव किया है, और प्रत्येक अवस्था में लोगों ने इसको शरीर के लिए आवश्यक पाया है। एक डाक्टर साहब ने लिखा है—शरीर में जिन तत्वों की आवश्यकता होती है उनमें प्रोटीन सब से अधिक आवश्यक और उपयोगी है। हम नमक के बिना काम चला सकते हैं, परन्तु प्रोटीन के बिना तो हमारा जीवन ही निकम्मा और मुर्दा हो जाता है। प्रोटीन हमारे लिए बहुत आवश्यक है। उसके बिना हमारा काम चल सकना असम्भव है।

इन सम्मतियों से पता चलता है कि हमारे शरीर को शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए जिस तत्व की आवश्यकता होती है, वह प्रोटीन है और वह किस प्रकार हमारे लिए आवश्यक है।

यह तो निश्चय हो गया कि पानी के अतिरिक्त प्रोटीन, तेल,

चीनी और नमक की ज़रूरत है, परन्तु इन तत्वों का कितना कितना परिमाण हमारे लिए आवश्यक है। क्योंकि उसका परिमाण अलग अलग न मालूम होने से कौन भोजन कितना हमारे लिए आवश्यक है, इसका क्रम समझना कठिन है। इस लिए इन तत्वों का कितना किसका परिमाण हमारे भोजन में होना चाहिए, इसके सम्बन्ध में शरीर-शास्त्र के सभी विद्वानों और डाक्टरों ने जिसे स्वीकार किया है उसी के आधार पर यहाँ उल्लेख किया जाता है। मि० क्यूलो नामक एक प्रसिद्ध विद्वान ने लिखा है कि एक साधारण आदमी को अपने शरीर की रक्षा के लिए, इस प्रकार के पदार्थों का प्रतिदिन भोजन करना चाहिए जिसमें उसे सामान्यतः प्रोटीन साढ़े चार औंस, चिकनाई तीन औंस, चीनी चौदह औंस और नमक एक औंस प्राप्त हो सके। इस प्रकार रोज एक साधारण मनुष्य को अपने भोजनों से साढ़े बाईस औंस इन तत्वों का मिलना चाहिए। जिससे वह सदा शक्तिशाली, नीरोग और अधिक आयु वाला हो सकेगा।

अब, हमें मनुष्य के वर्तमान भोजन के पदार्थों पर विचार करना चाहिए और हिसाब लगाना चाहिये कि उनमें कितना अंश किसका पाया जाता है। इसके लिए पहले हमें जानना चाहिये कि आजकल भोजन दो प्रकार से प्राप्त किये जाते हैं, वानस्पतिक और पाशविक। वानस्पतिक वे हैं जो हमको वनस्पति से प्राप्त होते हैं और पाशविक वे हैं जो हमको पशुओं से प्राप्त होते हैं। वनस्पति के द्वारा प्राप्त होने वाले पदार्थ इस प्रकार हैं—

अनाज—गेहूँ, जौ, मकाई चना, चावल, ज्वार और बाजरा आदि।

दाल—मटर, चना, सेम, उरद मूँग आदि।

सब्जी-तरकारी—आलू, प्याज, गोभी, गाजर, टमाटो, मूली, सलजम आदि।

फल—बादाम, सेब, नास्पाती, केला, अंगूर, अंजीर खजूर मेवा, नारंगी और खुबानी आदि।

पाशविक भोजन—मास, मछली, पनीर, खेड, चूज़ा, गाय का मांस भेड़ बकरी, सुअर का मांस और दूध आदि।

इन पदार्थों में से ही भिन्न भिन्न प्रकार के खाने के सामान तैयार होते हैं। इन सब के साथ नमक का प्रयोग होता है, नमक वास्तव में न तो वानस्पतिक है और न पाशविक। यह तो खनिज पदार्थों में से है जो पृथ्वी से हमको प्राप्त होता है। इस नमक के अतिरिक्त खनिज पदार्थों में और कोई भी पदार्थ हमारे खाने के उपयोग में नहीं आता। कुछ लोगों का यह भी मत है कि खनिज पदार्थ कोई भी हमारे खाने के प्रयोग में नहीं आने चाहिये। इसी आधार पर वे नमक का भी विरोध करते हैं। इस विरोध में वे लोग न केवल एक आग्रह उपस्थित करते हैं, वरन् अनेक प्रकार से उसे हानिकारक और व्यर्थ प्रमाणित करते हैं। यहाँ पर महात्मा गाँधी की एक बात विशेष रूप से लिखने के योग्य है। महात्मा जी स्वयं नमक के विरोधियों में हैं। एक समय की बात है, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरी बाई किसी बीमारी से परेशान थीं। बाई जी ने उस बीमारी की चिकित्सा करने की भावना से महात्मा जी से बीमारी के सम्बन्ध में बातें कीं। महात्मा जी ने कुछ सोच कर किसी चिकित्सा आदि की तो व्यवस्था न की और बाई जी से कहा कि तुम नमक खाना छोड़ दो। महात्मा जी की इस बात पर बाई जी को संतोष न हुआ, उन्होंने समझा कि महात्मा जी उनसे हँसी कर रहे हैं, बाई जी ने यह भी समझा कि नमक

भला कैसे छोड़ा जा सकता है जब कि मनुष्य के खाने के लिए सभी प्रकार के भोजन बिना नमक के नहीं बन सकते। उन्होंने महात्मा जी से कहा—"नमक खाना तुम्हीं छोड़ दो।" महात्मा जी ने मुस्करा कर स्वीकार कर लिया, बा जी की बात पर महात्मा जी ने नमक का प्रयोग छोड़ दिया और आज अनेक वर्ष हो गए पर उनका नमक अब भी छूटा हुआ है।

नमक हमारे लिए हानिकारक है अथवा लाभकारक, यह विवेचना करना इस लेख का अभिप्राय नहीं है। खनिज पदार्थों के साथ नमक का भी लोग विरोध करते हैं, केवल इतना ही यहाँ पर प्रदर्शन करना मन्तव्य था। ऊपर की पंक्तियों में वान स्पतिक और पाशविक जो दो प्रकार के पदार्थ गिनाए गये हैं, उनमें किसमें, कितना भोजन का अंश होता है इसको ठीक-ठीक प्रदर्शित करने के लिए एक छोटे से नक्शे में उनका निम्न लिखित विवरण दिया जाता है और बताया जाता है कि उनमें से किस में किस-किस तत्व का कितना कितना अंश पाया जाता है—

पदार्थ और उनमें प्रत्येक तत्त्व के अलग-अलग परिमाण।

पदार्थों के नाम	प्रोटीन की मात्रा	चिकनाई की मात्रा	चीनी और मैदा की मात्रा	नमक की मात्रा	पानी की मात्रा	भोजनांश का ठोस योग
साग	२१ १	२ ३	५५ ८	२ ८	१ २	८५ ६
मेवा	१८ ५	५१ ६	९ ६	२ ४	२१ २	८२ २
अनाज	१० ९	२ ३	७२ ५	२ १	१२ ०	८७ ८
सूखे मेवा	४ ४	१ ६	६८ ७	२ ४	१९ ७	७७ १
सब्ज़ीतरकारी	१ ४	० ३	८ ६	० ८	८७ ७	११ १
ताज़ा फल	१ ०	० ९	१६ ०	० ६	८१ ४	१८ ५
पनीर	२८ ४	३१ ०	० ०	४ ५	३६ ०	६४ ०
मांस	१७ ०	१७ ९	० ०	२ १	६२ ९	३७ ०
अंडे	१४ ०	१० ५	० ०	१ ५	६४ ०	२६ ०
मछली	११ ९	१ २	० ०	१ २	८६ १	१ ३
दूध	४ ०	३ ९	५ २	० ८	८६ ५	११ ८

ऊपर का यह नकशा स्पष्ट प्रकट करता है कि किस पदार्थ में किसका, कितना अंश होता है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि हमको भोजन से ही जीवन-शक्ति प्राप्त होती है, वह जीवन शक्ति प्रोटीन चिकनाई, चीनी और नमक है, ये चारों ही तत्व मिलकर हमारे शरीर के लिए जीवन शक्ति प्रदान करते हैं। हमें अपने प्रति दिन के जीवन के लिए ये चारों वस्तुएँ २२½ औंस के परिमाण में मिलनी चाहिए अर्थात् ४½ औंस प्रोटीन, ३ औंस चिकनाई, १४ औंस चीनी व मैदा और १ औंस नमक। अब यह समझाने की आवश्यकता नहीं है कि हमारा वही भोजन है जिसमें ये चारों वस्तुएं हमारे शरीर के लिए प्राप्त होती हैं और ऊपर के नक़शे में यह विदित हो जाता है कि कौन पदार्थ अपने भीतर कितना कितना अंश उन वस्तुओं का रखता है।

मांसाहारी मनुष्यों को भलीभाँति यह समझने की आवश्यकता है कि ये जो भोजन पशुओं से प्राप्त करते हैं, उनमें दूध को छोड़कर कोई ऐसा नहीं है जो मनुष्य को भोजनांश देने में पूर्ण रूप से समर्थ हो। मांस भोजन में प्रोटीन होता है नमक होता है और तेल का अंश भी होता है परन्तु उनमें चीनी और मैदा का अंश बिल्कुल नहीं होता। अब यह बात विचारणीय है कि प्रोटीन, तेल और नमक ही मिलकर क्या हमारे शरीर को हृष्ट-पुष्ट और शक्तिशाली बना रख सकते हैं। यहाँ पर भोजन के सम्बन्ध में किसी धार्मिक विवेचना से काम नहीं लिया जा रहा और न किसी धार्मिक बात की आड़ लेकर यही कहा जा रहा है कि मांस और मछली खाना हमारे लिए धर्म विरुद्ध है, इसलिए यह हानिकारक है। भोजन का वैज्ञानिक विवेचन क्या है और विज्ञान के सामुदायिक अनुसन्धान के आधार पर

हमें क्या खाना चाहिए क्या नहीं इस विवेचना के बाद भी उसको सोचने विचारने और संसार में आँखें खोल कर देखने की आवश्यकता है। समाज के स्त्री पुरुषों और बच्चों के स्वास्थ्य, उनकी शक्ति और आरोग्यता को, इस विवेचना की परीक्षा द्वारा आज़माने की ज़रूरत है। इस प्रकार की पूरी छान बीन के साथ हमें अंत में निश्चय करना चाहिए कि हमारा वास्तविक भोजन क्या है और वह हमारे सुख, स्वास्थ्य बल पौरुष की किस प्रकार रक्षा करके हमें बहुत दिनों तक जीवित रख सकता है। इसलिए कि समाज में यह समझने वालों की कमी नहीं है जो समझते हैं कि हमारी आयु तो ईश्वर के घर से निश्चित है। यह बात गलत है और इस प्रकार की धारणा रखने वालों को यह जान लेना चाहिए कि हमारा जीवन हमारे ही हाथों में है। जो लोग सदा रोगी और अस्वस्थ रहा करते हैं, उनकी जीवन शक्ति, धीरे धीरे क्षीण होती रहती है और अन्य जनों की अपेक्षा उनका जीवन बहुत थोड़ा हुआ करता है। जो जितना ही रोगी है, उतनी ही उसकी अवस्था छोटी है, जो जितना ही स्वस्थ और आरोग्य है वह उतनी ही अधिक अपनी अवस्था रखता है यह सब लोगों को ध्यान पूर्वक समझ लेना चाहिए और किसी प्रकार के भ्रम और गलत विचारों में पड़कर, अपने हाथों, अपना जीवन नष्ट न करना चाहिए।

हमारे शरीर के लिए प्रोटीन तेल चीनी और नमक का जो क्रम ऊपर बताया गया है, उसी क्रम से उनकी आवश्यकता होती है, यदि उनमें कोई भी एक न मिले तो समझ लेना चाहिए कि हमारे शरीर में कोई न कोई व्यतिक्रम पैदा होना चाहता है। किसी मकान में चार कोने हैं और चारों कोनों पर सुदृढ़ चार स्तम्भ हैं, जब तक वे चारों स्तम्भ ठीक ढंग से

अपना काम करते हैं, तब तक मकान को सुदृढ़ और स्थायी समझना चाहिए और जब उन चार स्तम्भों में एक भी स्तम्भ ढीला पड़ जायगा अथवा गिर जायगा तो मकान का सुदृढ़ रहना कठिन ही नहीं, असम्भव हो जायगा। यही अवस्था हमारे शरीर की भी है। जिन चार प्रकार के तत्वों से हमारे शरीर को जीवन शक्ति प्राप्त होती है, उन चारों का अपने अपने क्रम से होना बहुत आवश्यक है। अब उनके क्रम में अन्तर पड़ेगा अथवा उन चार में से एक भी मनुष्य को न प्राप्त होगा तो शेष तीन मिलने वाले, उसके जीवन को जीवन-शक्ति नहीं पहुँचा सकते। इस हिसाब से, यह समझने में किसी को भी अब कठिनाई नहीं हो सकती कि मांस और अंडे मनुष्य को जीवन शक्ति प्रदान करने का सामान नहीं रखते। यही कारण है कि मांस और अंडे भोज्य पदार्थों में निम्नकोटि कहे जाते हैं।

अब प्रश्न यह है कि हमारे शरीर को जीवन शक्ति प्रदान करने वाले कौन-से आहार और किन पदार्थों में हो सकते हैं? इसके लिए उस नक़्शे में एक बार देखकर विचार करना होगा। पाशविक भोजनों में दूध के अतिरिक्त कोई भी हमारे लिए भोजन नहीं है इसलिए कि जिन जिन तत्वों की हमें आवश्यकता है, वे तत्व पूर्ण रूप में उनसे हमें प्राप्त नहीं होते। इसके पश्चात् हमारे सामने वानस्पतिक पदार्थ हैं। वे पदार्थ हमारे लिए भोजन हो सकते हैं किन्तु वही, जो हमारे आमाशय के अनुकूल हों—हमारे अंग और प्रत्यंग जिनको ला सकें और पचा सकें।

वनस्पति पदार्थों में जो हमें रुचिकर और अपने अनुकूल प्रतीत हों और जिनको हम बिना पकाए-बनाए, अपने दांतों से,

खाकर पचा सकें, यही हमारे लिए सर्वोत्तम है। इसके लिए बिना अधिक सोचे-समझे और किसी प्रकार की उलझन का अनुभव किए, प्रत्येक व्यक्ति अब समझ सकेगा कि हमारे लिए सब से योग्य, लाभदायक भोजन फलों का सेवन है। इन फलों के सम्बन्ध में एक छोटी सी गलत धारणा यदि सर्व साधारण के विचारों से निकल जाय तो फिर किसी को अपना स्वाभाविक भोजन अपनाने में और उससे लाभ उठाने में कुछ भी आपत्ति नहीं हो सकती। वह गलत, धारणा यह है कि लोगों की समझ में फलों के आहार से मनुष्य का क्या कभी पेट भर सकता है। उनकी समझ में फल इतने हलके पदार्थ हैं कि उनके सेवन से मनुष्य को पूरी न तो शक्ति ही प्राप्त हो सकती है और न उससे उसका पेट ही भर सकता है। जिन लोगों का यह विश्वास होता है, वे लोग वास्तव में इन बातों का कभी विवेचन नहीं करते और कदाचित् विवेचन की साम र्थ्य भी नहीं रखते। हमें अपने समाज में, भोजन पर बहुत से ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जो फलों की शक्ति के सम्बन्ध में बहुत अच्छे उदाहरण ही नहीं हैं, उसका अनुभव भी रखते हैं।

प्राचीन काल में साधु सन्यासी, भोगी और तपस्वी फला हार को अपना भोजन समझते थे, उनके जीवन में कितना तेज़, कितना प्रताप और पुरुषार्थ होता था, यह कदाचित् किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है। रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता को साथ लेकर जब वन को जाने लगे हैं, तब उन्होंने सीता को समझाया है कि वन में जाकर चौदह वर्ष हमको केवल फलों का आहार करके रहना होगा, नदियों और झरनों का जल पीना होगा और पैदल चल कर रास्ता पार करना होगा। परन्तु रामचन्द्र की इस बात पर सीता को कोई अस्वा भाविकता अथवा आश्चर्य की बात नहीं जान पड़ी। अन्त में

तीनों ही जगल को चले गए हैं और दस पाँच दिन नहीं चौदह वर्ष, उसी फलाहार पर उन्होंने प्रसन्नता के साथ जीवन बिताया है और अंतिम दिनों में भीषण पराक्रमी लंका पति रावण और उसकी सेना शक्ति का सामना किया है। रावण और उसकी सेना की शक्ति कितनी भयानक थी, यह यहाँ पर बताना, व्यर्थ ही है, कहने की बात यह है कि उसका सामना किया फलों का सुन्दर सात्विक भोजन करने वाले रामचन्द्र ने, लक्ष्मण ने और उस वानर-सेना ने जिनका फल ही एक-मात्र भोजन होता है। हिन्दू-समाज को यह स्मरण दिलाने की आवश्यकता न होना चाहिए कि उस भयानक युद्ध में फलों का भोजन करने वालों की कितनी सफलतापूर्ण विजय हुई थी।

भोजन-सम्बन्धी, सर्वसाधारण की भूल के सम्बन्ध में कितनी गवेषणा के साथ विचार हो रहा है, यह सभी को मालूम नहीं है। इस लेख में जो इसकी वैज्ञानिक छान-बीन की गई है वह कहाँ तक ठीक है, इस पर कुछ प्रसिद्ध विद्वानों और डाक्टरों की यहाँ पर सम्मति देना आवश्यक प्रतीत होता है। डाक्टर एलेक्स हेग का कहना है—

"इस बात के प्रमाण की ज़रूरत नहीं है कि मनुष्य का सब से उत्तम आहार फल है। मैंने अपने जीवन में इसका भलीभाँति अनुभव किया है और इस नतीजे पर मैं पहुँचा हूँ कि फलों के सेवन से मनुष्य की आत्मा शुद्ध बलवान और पवित्र रहती है।'

मि० एडेम स्मिथ ने लिखा है—"भोजन में मांस को सम्मिलित करना, शरीर को नष्ट करने के साथ अपने जीवन को जल्दी समाप्त करना है। मनुष्य का भोजन तो फल शाक मात्र है।"

डाक्टर सर हेनरी टामसन का कहना है—प्रकृति ने हमारे शरीर की रचना इस प्रकार की है जिससे हम फल और वनस्पति को अपना आहार बना सकते हैं। हमारे शरीर के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता है, वे सब हमें फलों में ही प्राप्त होती हैं। मैंने खूब देखा है कि जो वानस्पतिक भोजन करते हैं और मांस-मछली से परहेज़ करते हैं, वे स्वस्थ, हृष्ट पुष्ट तथा बलवान होते हैं।

डाक्टर एफ० जे० साइफस का कहना है—जो लोग रसायन विद्या को फलाहार और शाकाहार के विरुद्ध समझते हैं, वे सख्त भूल करते हैं। वास्तव में रसायन का मूलाधार वनस्पति ही है। मनुष्य स्वाभाविक वनस्पति और उसके द्वारा फलों के योग्य बनाया गया है। यह मनुष्य की भूल है जो उसने अपना भोजन उसके विरुद्ध पदार्थों का बना रखा है।

डाक्टर आनबुड एम० डी० का कहना है—एक डाक्टर की हैसियत से बहुत दिनों तक मनुष्य के शरीर का अध्ययन करने के पश्चात् मैं कह सकता हूँ कि मनुष्य का मांसाहार, अस्वाभाविक है और उसके शरीर के लिए बहुत हानिकारक है। जो लोग उसका सेवन करते हैं वे वास्तव में अनजान होते हैं, उनको मालूम नहीं होता कि इसके भोजन से उनके शरीर को क्या क्षति पहुँचेगी।

प्रोफेसर ए० विन्टर ब्लायथ ने लिखा है—मनुष्य शरीर का अध्ययन करने के पश्चात् किसी प्रकार समझ में नहीं आता कि मनुष्य का भोजन मांसाहार हो सकता है, उसके लिए तो फल और वनस्पति बनाई गई है।

डाक्टर एडवर्ड स्मिथ ने बड़े ज़ोरदार शब्दों में लिखा है—मनुष्य के शरीर के लिए जिस प्रकार भोजन की आवश्यकता है, वह सब एक मात्र फलों के द्वारा बड़ी आसानी से

प्राप्त होती है। इससे जो उसको शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त होती है वह किसी प्रकार दूसरे पदार्थों से सम्भव नहीं है।

प्रोफ़ेसर मेम्फ़बुख का कहना है—फलों और शाक के आहार से मनुष्य का जो भोजन प्राप्त होता है वह उसको दूसरे किसी पदार्थ से प्राप्त होना असम्भव है। जो लोग स्वास्थ्य और बल के लिए मांस का सेवन करते हैं, वे बहुत बड़ी भूल करते हैं। उसके द्वारा मनुष्य दुर्बल और रोगी बनता है। मेरा ज़बरदस्त अनुभव है कि यदि मनुष्य अपने जीवन में सुन्दर फलों और वानस्पतिक पदार्थों का प्रयोग करे तो वह, मनुष्य के सच्चे सुख को प्राप्त कर सकता है।

डाक्टर जोशिया ओल्ड फ़ील्ड का कहना है—मनुष्य के शरीर के लिए जिस प्रकार की आवश्यकता है, वह सब फलों के द्वारा प्राप्त होती है मुझे आश्चर्य है कि मनुष्य अपने इस प्राकृतिक भोजन को किस प्रकार भूल गया। जिन लोगों ने फलों के आधार पर अपना भोजन निश्चय किया है, उन्होंने उसकी अपूर्व शक्ति का अनुभव किया है। मनुष्य ने जितना ही उसका प्रयोग कम कर दिया है, उतनी ही उसकी पैदावार भी कम होती जाती है।

इस प्रकार एक दो नहीं, बहुत-सी सम्मतियाँ दी जा सकती हैं। परन्तु जितना अधिक उसका विवेचन ऊपर किया जा चुका है, उसके आधार पर यह भलीभाँति समझ में आ जायगा कि मनुष्य स्वभाव के विरुद्ध भोजन करके अपने आपको किस प्रकार रोग का कीड़ा बना डालता है। मनुष्य वास्तव में फलों की उपयोगिता और अपने लिए आवश्यकता भूल गया है। भूल जाने का कारण भी है और कारण बहुत पुराना तथा जटिल है किन्तु फलों की ओर मनुष्यों का जीवन

जिस प्रकार आकृष्ट हुआ है, उसे देखकर यह सहज ही अनु मान होता है कि यह भूल बहुत शीघ्र सुधरेगी।

स्वास्थ्य और सामर्थ्य के नाम पर मनुष्य जाति कितनी निर्बल हो गई है, यह बात अधिकतर बतान की नहीं है, केवल आँखों से देखन दिखाने की है। यह रोगी समाज स्वयं ही अपनी अवस्था को आप पहचानने की चेष्टा करेगा ऐसा जान पड़ता है। यदि वास्तव में सोचा जाय तो हमारे जीवन की प्रायः सभी खराबियाँ हमारे भोजन पर अवलम्बित दिखाई देंगी। यदि समाज को अपने स्वभाव के अनुकूल भोजन से अभिरुचि हो जाय तो थोड़े ही दिनों में मनुष्य का जीवन बहुत शान्त, सुन्दर और सलोना बन सकता है।

फलों के सम्बन्ध में ससार के विद्वान्

सभी प्रकार की आलोचना के साथ, यह बात निश्चित होगई कि मनुष्य के लिए फल ही सर्वोत्तम भोजन है भोजन के लिए समाज में जितने पदार्थ काम में आते हैं, प्रायः मोटे रूप में, सभी की एक अनुक्रमणिका देकर यह भी प्रमाणित कर दिया गया कि वे अन्यान्य पदार्थ जो फल और वनस्पति के प्रतिद्वन्द्वी हैं, किसी प्रकार उपयोगी नहीं हैं। मनुष्य की बनावट, उसकी प्रकृति और शारीरिक शक्तियाँ इस बात का प्रमाण देती हैं कि मनुष्य के भोजन के लिए प्रकृति ने फलों की ही व्यवस्था की है। इन सभी बातों को समझने के लिए मनुष्य के शरीर और फल तथा वानस्पतिक पदार्थों से लेकर अन्यान्य पदार्थों तक की जो वैज्ञानिक आलोचना प्रत्यालोचना की है और उसके द्वारा जो निश्चय किया गया है, उससे सर्वसाधारण के समझने में कि हमारा वास्तविक भोजन क्या है, कोई कठिनाई न होगी।

इसके अतिरिक्त, पुस्तक के विषय की पुष्टि करने के लिए यहाँ पर एक बात की और जरूरत समझ पड़ती है। संसार के विभिन्न देशों में लोगों ने, मनुष्य जीवन की इस आवश्यकता को अनुभव किया है और अपने जीवन में स्वयं इसका प्रयोग किया है। मनुष्यों के भोजन के सम्बन्ध में, संसार में आज दिनों एक प्रकार का तहलका-सा मचा हुआ है। समाज बड़ी तेज़ी के साथ भौतिक उत्थान की ओर क़दम बढ़ा रहा है, परन्तु उसने यह खूब देखा कि उसके उत्थान के साथ उसके जीवन के कल्याण

का जो सम्बन्ध है, वह किसी प्रकार संतोषजनक नहीं है। अनेक शताब्दियों से मनुष्य अपनी शारीरिक शक्ति को खोता चला आ रहा है, और उसका यह क्रम इधर कुछ दिनों से और भी अधिक बढ़ गया है। मनुष्य जीवन की जो यह क्षति हुई है और भविष्य में उसके सम्बन्ध में जो भयंकर आशंका है, उसकी अवस्था से समाज के विद्वान् अपरिचित नहीं रह सके। प्रत्येक देश के समाज में कुछ न कुछ ऐसे विद्वान् पाये जाते हैं, जिन्होंने इस आवश्यकता और क्षति का भली प्रकार विचार किया है मानव जाति की इस भावी आशंका ने शरीर विज्ञान विशारदों का उस ओर ध्यान आकर्षित किया है। उन्होंने बड़ी सावधानी के साथ इस ओर विचार किया है और प्रायः सभी लोग एक ही नतीजे पर पहुँचे हैं। इस प्रकार, जिन लोगों ने इसके सम्बन्ध में अपना मत स्थिर किया है, और जिस नतीजे पर वे पहुँचे हैं, उनके वे विचार और निर्णय, संक्षेप में किन्तु संतोषजनक विस्तार के साथ यहाँ पर दे देने की आवश्यकता जान पड़ती है।

उनकी सम्मतियों को देने के पूर्व एक बात लिखना आवश्यक है। मानव जाति के भोजनों में व्यतिक्रम करने का अपराधी कौन है ? इस प्रश्न की एक गम्भीर आलोचना करने के बाद, मालूम होता है कि संसार की वर्तमान नवीन सभ्यता के पक्षपाती और प्रवर्तक उसके उत्तरदायी हैं। इस नवीन सभ्यता के पूर्व संसार के उन्नत जीवन पर या तो भारत के अध्यात्मवाद का प्रभाव था अथवा मनुष्य स्वयं नैसर्गिक जीवन का पक्षपाती था। उसके इस प्राकृतिक जीवन को मटियामेट करने का एक मात्र अपराध योरप के समुन्नत राष्ट्रों ने किया है जिसका समर्थन करते हुए एक अँगरेज़ लेखक की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

"मनुष्य जितना ही समुन्नत होता आता है, उतना ही शरीर विज्ञान में वह अपने आप को पतित करता आता है। समाज का स्वास्थ्य जितना आज रोगी दिखाई देता है, उससे भी अधिक रोगी उसके होने की आशंका है कारण यह है कि जिन भूलों के कारण हमारे देश के निवासियों ने शरीर का स्वास्थ्य और स्वाभाविक पुरुषत्व खोया है, वे भूलें आज भी लगातार बढ़ती जाती हैं। मांस मदिरा अंडे चाय कहवा आदि जितनी ही समाज में प्रयोग की जायगी, उतनी ही समाज की अधोगति होगी। सुन्दर स्वास्थ्य और सात्विक भावों को प्राप्त करने के लिए, फलाहार और शाकाहार को छोड़ कर और कोई दूसरा मार्ग नहीं है।"

प्रसन्नता की बात यह है कि जिन देशों ने मनुष्य जीवन की स्वाभाविकता को नष्ट किया है, उन्हीं देशों में, आज ऐसे बहुत से विद्वान् और शरीर विज्ञान के पंडित पाये जाते हैं जिन्होंने इस दुरवस्था के कारणों का भलीभाँति अध्ययन किया है और अपने अध्यवसाय से उन कारणों को दूर करने के लिए प्रयत्न किया है। सभी लोगों ने मनुष्य-जीवन की विपरीत अवस्थाओं का वर्णन करते हुए फलाहार पर ज़ोर दिया है। जिन लोगों ने वनस्पति शब्द का उल्लेख किया है, उनका उद्देश्य विशेष रूप से उसके द्वारा उत्पन्न फलों से है। फलों के बाद, सब्ज़ी और तरकारी भी मनुष्य का भोजन है किन्तु वहीं तक जहाँ तक वह प्रकृति रूप में प्रयोग की जा सके। किन्तु समाज में जहाँ पर सब्ज़ी और तरकारियाँ खाई जाती हैं, वहाँ पर वे भिन्न भिन्न मसालों के साथ आग में पका कर और बनाकर खाई जाती हैं, ऐसा करने से उन वानस्पतिक पदार्थों का प्रकृत अंश जो स्वभावतः मनुष्य के जीवन को शक्ति

और स्वास्थ्य देने वाला होता है, नष्ट हो जाता है जैसा कि विश्वपूज्य महात्मा गाँधी ने लिखा है—

'A vegetable diet is the best after a fruit-diet Under this term we include all kinds of pot-herbs and cereals, as well as milk Vegetables are not as nutritious as fruits, since they lose part of their efficacy in the process of cooking, we cannot, however, eat uncooked vegetables"

"वानस्पतिक भोजन मनुष्य के लिए उत्तम है परन्तु फलों के पश्चात्। वनस्पति पदार्थों के साथ-साथ, प्रत्येक प्रकार की शाक सब्ज़ी, अन्न और दूध की भी यही अवस्था है। वानस्पतिक पदार्थों में मनुष्य जीवन के पालन करने का वह गुण नहीं है जो फलों में है। इसलिए कि वानस्पतिक पदार्थ, बिना पकाये हम खा नहीं सकते और पकाने से उनका प्राकृतिक गुण और लाभ मारा जाता है।"

महात्मा जी ने तो फलों के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है, यदि उनकी पूर्ण रूप से सम्मतियाँ दी जाँय तब तो एक पुस्तक के समस्त पृष्ठ इसी में आँयगे। वे फलों की उपयोगिता को कहाँ तक स्वीकार करते हैं, इसको जानने के लिए ऊपर का एक छोटा सा उद्धरण ही काफ़ी है।

पाश्चात्य देशों के बड़े बड़े विद्वानों और डाक्टरों ने फलों के गुणों को कहाँ तक और किस प्रकार स्वीकार किया है, इसके लिए निम्नलिखित कुछ सम्मतियाँ दी जाती हैं। मनुष्य का भोजन क्या है, इसपर जेडी डाक्टर अमाकिंग्स फोर्ड ने एक बड़ी उपयोगी पुस्तक लिखी है उसमें उसने मनुष्य के शरीर की बनावट पर बड़ी गम्भीरता के साथ विचार किया है और

अन्त में उसने मनुष्य की समता, बन्दरों के साथ दी है और उसी आधार पर उसने निश्चय किया है कि मनुष्य का सर्वोत्तम भोजन फल है। उसने लिखा है—

मुझे ऐसे बहुत से आदमी मिलते हैं जो मनुष्य के मांसाहारी होने पर विवाद करते हैं। वे मनुष्य के दाँत और आमाशय की बनावट पर यह साबित करते हैं कि उसका मांसाहार होना स्वाभाविक है किन्तु ऐसी अवस्थाओं में बन्दरों को भी मांसाहारी होना चाहिये था, क्योंकि उसके लम्बे, पैने और मज़बूत दाँत तो मांसाहारी होने का और भी अधिक प्रमाण रख सकते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है किसी ने आज तक, किसी बन्दर को मांस का भोजन करते नहीं देखा होगा।

मोसियोपापिट का कहना है—मनुष्य के दाँत और उसके आमाशय की बनावट यह प्रकट करती है कि वह फलाहारी जीव है। ऐसी अवस्था में वह फलों का आहार छोड़कर अन्यान्य भोजनों का आश्रय लेता है और उनको पचाने तथा उन से आवश्यक तत्वों का लाभ उठा सकने में वह असमर्थ हो जाता है।

प्रोफ़ेसर अमान ने भी इसी प्रकार की सम्मति देते हुए लिखा है—"मनुष्य के शरीर की बनावट जिन जीवों के साथ मिलती है, वे फलों का भोजन करते हैं। अनुभव से भी यह बात देखी गई है कि फलों को खाकर मनुष्य, जितना स्वस्थ, शक्तिशाली और उत्तम विचारों से पूर्ण रह सकता है, उतना वह अन्य किसी प्रकार के भोजनों से नहीं रह सकता।"

मनुष्य के भोजन के सम्बन्ध में इसी प्रकार का समर्थन करते हुए फ्रांस और इङ्गलैण्ड के बड़े-बड़े डाक्टरों ने स्वीकार किया है कि मनुष्य, स्वभाव से फलाहारी और शाकाहारी है।

जो लोग गलती से मांसाहार करते हैं, वे उसका फल भी भोगते हैं। उनके शरीर को किस प्रकार के कष्टों को सहना पड़ता है और किस प्रकार वे रोगी हो जाते हैं, इसको वे नहीं जानते, किन्तु उनके डाक्टरों को यह मालूम होता है। डाक्टर फ्लोरेन्स का कहना है—

मनुष्य न तो मांसाहारी है और न वनस्पति आहारी है। उसके दांत उन पशुओं और जानवरों से नहीं मिलते जो जुगाली करते हैं। उसके आमाशय की बनावट भी उन पशुओं के आमाशय की-सी नहीं होती। यदि मनुष्य के शरीर की बनावट पर भलीभाँति विचार किया जाय, तो मालूम हो जायगा कि वह बन्दरों की भाँति फलाहारी और शाकाहारी है।

प्रोफ़ेसर चार्ल्सबेल्स ने लिखा है—जिनको शरीर विज्ञान की जानकारी है, उनको यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि मनुष्य को प्रकृति ने फल और शाक खाने के योग्य बनाया है, मनुष्य के दाँत और उसका आमाशय इस बातका स्पष्ट प्रमाण देता है।

इन बातों का बड़ी गम्भीरता के साथ विवेचन करते हुए प्रोफ़ेसर सरजान अक्रो ने लिखा है—मनुष्य के शरीर की बनावट और उसका ढाँचा बन्दरों और बनमानुसों की भाँति बना है, और वह उन्हीं पदार्थों के खाने पीने के योग्य बनाया गया है जिनको बनमानुस और बन्दर खाते हैं। अर्थात् मनुष्य का भोजन फल है। उसके शरीर का फलों के प्रयोग से जो लाभ हो सकता है, वह लाभ दूसरे पदार्थों से नहीं हो सकता।

जर्मनी के एक विद्वान् मि० हैकल ने लिखा है—जहाँ तक परीक्षा से मालूम हुआ है, मनुष्य और बनमानुस के शरीर की बनावट आपस में मिलती है। हमारे शरीर की भाँति उसके

भी हड्डियाँ और नसें होती हैं। हाथों पैरों की बनावट भी अधिकतर रूप में मिलती है। हमारे शरीर के भीतर जिस प्रकार जो अवयव होता है, वनमानुस के शरीर में वह उसी प्रकार मिलता है। शरीर निर्माण की एक-एक बात एक-दूसरे से मिलती है। हमारे मुख में बत्तीस दांत होते हैं उसी प्रकार वनमानुस के मुखमें भी बत्तीस दांत होते हैं। मनुष्य के आमाशय में पाचन क्रिया के लिए जो विशेषता पाई जाती है, वही वनमानुस और बन्दरों के आमाशय में भी पाई जाती है।

डाक्टर आन बुक ने अपने एक लेख में लिखा था—मनुष्य के लिए मांस का भोजन, उसकी प्रकृति के भिन्न है। उसका स्वाभाविक आहार फल और शाक है।

प्रोफ़ेसर विलियम लारेन्स का कहना है—मनुष्य के दांतों और आमाशय की बनावट, मांसाहारी जीवों से बिलकुल भिन्न है। जब मनुष्य के दांतों, जबड़ों और आमाशय की बनावट पर विचार किया जाता है तो स्पष्ट प्रकट होता है कि वह फलाहारी और शाकाहारी जीव मात्र है।"

फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् पियर गेसेएडी का कहना है—मैंने मनुष्य जीवन का जहाँ तक अध्ययन किया है और जहाँ तक उस पर विचार किया है उसके आधार पर मैं गर्व के साथ कह सकता हूँ कि मनुष्य फलाहारी जीव है। जो लोग मांसाहारी बताते अथवा मांस का आहार करते हैं वे भूल करते हैं और अपने शरीर एवम् जीवन, दोनों को नष्ट करते हैं।

फ्रांस के माननीय विद्वान् प्रोफ़ेसर पैरमकूये ने लिखा है—मनुष्य का शरीर देखकर यह सहज ही जान पड़ता है कि उसका भोजन फल और शाक है। मांसाहारी जीवों के साथ, उसकी तुलना कभी नहीं की जा सकती। अन्य जीवों में एक

मानुस एक ऐसा जीव है जिससे मनुष्य बिल्कुल मिलता जुलता है। बन्दर और बनमानुस फल और शाक सब्ज़ी खाते हैं, अतएव मनुष्य का भी यही आहार है।

जर्मन के एक नामी विद्वान् प्रोफेसर शाफ़ ह्यूसन ने लिखा है—मनुष्य मांस का स्वभावतः विरोधी है और इस बात का सब से बड़ा प्रमाण यह है कि उसके दाँतों और आमाशय की बनावट बन्दरों और बनमानुसों से मिलती है। ये दोनों जीव फल और शाक सब्ज़ी खाते हैं, मनुष्य का भी स्वाभाविक यही भोजन है।

ऊपर की सम्मतियों और विचारों से बार-बार एक ही बात का समर्थन होता है। मनुष्य के भोजन के सम्बन्ध में और भी बहुत-सी सम्मतियाँ दी जा सकती हैं परन्तु उन्हें अनावश्यक समझ कर यहाँ पर छोड़ दिया जाता है। प्रसिद्ध प्रसिद्ध डाक्टरों, वैज्ञानिकों और शरीर शास्त्र के ज्ञाताओंके इन विचारों से स्पष्ट रूप से निश्चय हो जाता है कि मनुष्य यदि अपने इस स्वाभाविक भोजन पर ही अपना निर्वाह करे तो वह बहुत सुखी, स्वस्थ और मनुष्योचित कार्य पटु बन सकता है।

लोगों न मनुष्य के भोजन के सम्बन्ध में फलों के साथ वानस्पतिक पदार्थों—शाक सब्ज़ी आदि को भी अनुकूल प्रमाणित किया है, इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य के लिए शाक-सब्ज़ी आवश्यक और उपयोगी भोजन है परन्तु उनमें फल सर्वोत्तम है। शाक-सब्ज़ी के सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि उस अवस्था में खाने के योग्य होती है जब वह आग पर पकाई जाती है। इसके लिए महात्मा गाँधी की एक सम्मति पहले दी जा चुकी है। फलों और वनस्पति के सम्बन्ध में उन्होंने आगे चल कर फिर लिखा है जो विषय की उपयोगिता को और भी

स्पष्ट करता है, इस लिए उसको ज्यों का त्यों नीचे दिया जाता है—

From this many scientists have concluded that man is intended to live, not on meat not even on all vegetables, but chiefly on roots and fruits.

वैज्ञानिकों ने बड़ी गम्भीरता के साथ यह निश्चय किया है कि मनुष्य न तो मांस को अपना आहार बनाकर जीवित रहना चाहता है और न शाक सब्ज़ी पर। वह तो कन्द और फलों को ही विशेष रूप से अपना भोजन समझता है और उसी पर वह जीवित रह सकता है।

इसके बाद वे फिर लिखते हैं और आगे की पंक्तियों में वानस्पतिक पदार्थों और फलों की वस्तुस्थिति पर वे और भी स्पष्ट प्रकाश डालते हैं—

Scientists have found out by experiments that fruits have in them all the elements that are required for man's sustenance. The plantain, the orange, the date, the grape, the apple, the almond, the walnut, the groundnut the cocoanut—all these fruits contain a large percentage of nutritious elements The scientists even hold that there is no need for man to cook his food They argue that he should be able to subsist very well on food cooked by the Sun s warmth, even as all the lower animals are able to do, and they say that the most

nutritious elements in the food are destroyed in the process of cooking, and that those things that can not be eaten uncooked could not have been intended for our food by Nature

वैज्ञानिकों ने इस बात की भी परीक्षा की है कि मनुष्य को ज़रूरत के लिए जिस प्रकार के तत्वों की आवश्यकता है, वे सब फलों में पाये जाते हैं। केला, नारङ्गी, छुहारा, अंगूर, सेब, बादाम, अखरोट किशमिश और गरी आदि आदि में मनुष्य को जीवन शक्ति प्रदान करने वाले शत प्रति शत अंश होते हैं। इन वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि मनुष्य को अपना भोजन पकाने की कोई ज़रूरत नहीं है। सूर्य की धूप में पके हुए फल ही उसके लिए काफ़ी हैं इस बात को वे लोग साबित करते हैं। उनका यह भी कहना है कि अन्य जीवों को अपना भोजन पकाने की क्यों आवश्यकता नहीं होती, फिर मनुष्य को क्यों है? उनका कहना है कि पकाने से, पदार्थ की जीवन शक्ति नष्ट हो जाती है। इस लिए जो पदार्थ हम बिना पकाये नहीं खा सकते, वे पदार्थ हमारे लिए कदापि भोज्य नहीं हो सकते।

फलों की आवश्यकता और उपयोगिता पर अब अधिक लिखने की ज़रूरत नहीं है।

ससार की जातियों में फलाहार का प्रभाव।

मानव समाज में यद्यपि भोजन की व्यवस्था बहुत बिगड़ गई है, फिर भी प्रत्येक जाति और समाज में प्राकृतिक भोजन का उपयोग पाया जाता है किन्तु कहीं पर कम और कहीं पर अधिक।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि भोजन की इस प्राकृतिक व्यवस्था को बिगाड़ने वाला नवीन सभ्यता का विकाश है। इसलिए संसार के सभी देशों और जातियों की यदि सामाजिक और व्यवहारिक अवस्था का पता लगाया जाय तो उसके भीतर अभी इस बात के बहुत प्रमाण मिलते हैं जिनसे मालूम होता है कि उस प्राकृतिक भोजन का अभी बहुत कुछ प्रयोग होता है। इस लेख में संसार की भिन्न-भिन्न जातियों और समाजों की अवस्थाओं की छानबीन करके यह देखना है कि जो लोग फलों का भोजन करते हैं, उनके जीवन में, अन्य मनुष्यों की अपेक्षा, जो अप्राकृतिक भोजनों के अभ्यासी हैं, क्या प्रभाव पड़ता है।

प्रत्येक देश और जाति के स्त्री पुरुषों की भोजन-सम्बन्धी परिस्थितियों का अध्ययन करने पर, उनके तीन विभाग करने पड़ते हैं। पहले विभाग में वे लोग हैं जो मज़दूरी या पारिश्रमिक कार्य करते हैं। इन श्रमजीवियों में मज़दूर, किसान और साधारण स्थिति का गरीब-समुदाय है। दूसरे विभाग में वे लोग हैं जो पहले विभाग वालों से कुछ ऊपर हैं और आर्थिक अवस्था में मध्यम श्रेणी के गिने जाते हैं। तीसरे विभाग में वे लोग हैं जो सम्पत्ति शाली, रईस, उच्च शिक्षित और समर्थ

व्यक्ति हैं। इन तीन विभागों की अवस्था, अलग अलग है। इनमें अन्तिम विभाग अप्राकृतिक भोजनों का बहुत अधिक अभ्यासी है। दूसरा विभाग वानस्पतिक पदार्थों का भोजन करता हुआ, यथासम्भव मांस, मदिरा मछली अंडा आदि अस्वाभाविक भोजनो का भी उपयोग करता है। किन्तु पहला विभाग प्राकृतिक भोजनों का अधिक अभ्यासी हैं। वे लोग, फल, अनाज और शाक भाजी पर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। यहाँ पर अनाज के सम्बन्ध में थोड़ा सा प्रकाश डालना आवश्यक है, अनाज के नाम से जो वस्तुएँ पुकारी जाती हैं, व वास्तव में वानस्पतिक पदार्थ हैं और उनमें तथा फलों में कोई अन्तर नहीं है। प्रत्येक अनाज भी फल ही है। किन्तु उनका उपयोग मनुष्य आग में पकाकर या भूनकर करता है इसलिए वे सब फलों की अपेक्षा, मध्यम श्रेणी के हैं। फल, अनाज और शाक सब्जी—ये तीन भोजन प्राकृतिक तथा वानस्पतिक भोजन हैं इनमें फल सर्वोत्तम और अनाज तथा शाक भाजी मध्यम श्रेणी में हैं।

ऊपर की विवेचना के अनुसार, मनुष्य-समाज तीन श्रेणियों में विभाजित होता है। तीनों श्रेणियों के अलग अलग भोजन क्या हैं, यह भी ऊपर बताया जा चुका है। अब नीचे प्रत्येक देश और जाति के लोगों की, इन तीनों श्रेणियों के अनुसार, भोजन व्यवस्था देखकर इस बात पर प्रकाश डालना है कि उनमें, किसकी कैसी अवस्था है!

सब से पहले हम अपने देश की अवस्था पर विचार करना चाहते हैं। भारतवर्ष, स्वभावतः अध्यात्मवादी होने के कारण प्राकृतिक भोजनों का और विशेषकर फलों का अनुयायी रहा है किन्तु आज उसका वह समय नहीं रहा, इसीलिए उसके विचारों

और सिद्धान्तों का खो जाना असम्भव नहीं है। अन्य देशीय जातियों ने उसके खान पान में, व्यवहार-बर्ताव में और धार्मिक भावों में कितना उलट पलट कर दिया है, यह सब यहाँ, बताने की आवश्यकता नहीं है। वरन् यह इतनी साधारण होगई है कि उससे सबसाधारण अपरिचित नहीं है। इस अवस्था में, उसके खाने पीने का जीवन भी, कुछ का कुछ होगई है। किन्तु, फिर भी ऐसी बात नहीं है कि प्रकृति का प्यारा दुलारा भारत, प्रकृति की ओर बिल्कुल विमुख हो गया हो। देश में दूसरी और तीसरी श्रेणी के लोग—जैसा कि ऊपर विभाजित किया गया है—प्राकृतिक भोजनों से भिन्न भोजन करते हैं। किन्तु तीसरी श्रेणी की अपेक्षा, दूसरी की अवस्था सन्तोष जनक है। पहली श्रेणी के लोगों में फल और प्राकृतिक भोजन ही प्रायः पाया जाता है। उनको उच्चकोटि के फल नहीं मिलते, साधारण से साधारण स्थानों में जो फल पाये जाते हैं, उन्हीं का ये लोग बड़ी रुचि के साथ उपयोग करते हैं और तरह-तरह से उनको खाते हैं। अनाज के दानों को ये लोग कच्चे और पक्के—दोनों तरह से प्रयोग करते हैं। दूध मट्ठा, मक्खन घी अनाज साग सब्ज़ी और फल—यही उनके भोज्य पदार्थ हैं देश की निर्धनता के कारण तीसरी श्रेणी के लोगों को ये भोजन भी समय समय पर पेट भर नहीं मिलते, फिर भी वे प्रसन्न, प्रयत्नशील, परिश्रमी और तन्दुरुस्त होते हैं। देश की इन तीनों श्रेणियों के लोगों की शारीरिक अवस्था की तुलना करने से, कोई भी व्यक्ति यह समझ सकेगा कि वानस्पतिक पदार्थों का भोजन करने वाले अन्य लोगों की अपेक्षा कितने मोटे, स्वस्थ और बलवान होते हैं। जो लोग मूल्यवान किन्तु अप्राकृतिक भोजनों के अभ्यासी हैं, वे किस प्रकार नाज़ुक मिज़ाज़ दुर्बल शरीर, शक्ति और सामर्थ्य हीन तथा दुख और कष्टों को झेलने में

कातर होते हैं, यह बड़ी आसानी से समझा जा सकता है। इन तीनों श्रेणियों के लोगों की इस अवस्था का कारण क्या है? मज़दूरों, किसानों और उनकी स्त्रियों में कितना स्वास्थ्य, मांस, और रक्त होता है इसका परिचय उनके शरीर देते हैं। उनमें नाज़ और अदा का सौन्दर्य नहीं होता, उनके वस्त्रों में आँखों को चकाचौंध करने वाली सफाई, तथा चमक दमक नहीं होती, किन्तु उनके शरीरों में स्वास्थ्य और बल होता है, उनके जीवन में, बीमारियों का सहज ही आक्रमण नहीं होता। उनके शरीर सर्दी, गर्मी तथा अन्यान्य उत्पात् सहन की अपूर्व शक्तियाँ रखते हैं। जिन्होंने देहातों की अवस्था का अध्ययन किया है अथवा जो गावों की परिस्थितियों से अपरिचित नहीं है, उनको यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि यहाँ जब संयोगवश कोई किसी बीमारी में ग्रसित होता है तो वह बिना किसी उलझन और चिकित्सा के अपना काम करता रहता है। वह अपनी उस बीमारी की परवाह नहीं करता। वे साधारण विचार वाले होते हैं बीमारी के सम्बन्ध में हमने उनको बहुत अधिक यह कहते सुना है कि जितने दिनों का कष्ट बदा है, उतने दिन तो उसका भोग करना ही पड़ेगा। समय हो आने के बाद ही बीमारी अच्छी हो सकती है, चाहे दवा की जाय चाहे न की जाय। हमने खूब देखा है कि वे महीनों बीमार पड़े रहते हैं और अपने आप अच्छे हो जाते हैं।

उन लोगों के शरीरों की इस अवस्था को देखकर क्या कोई यह बता सकता है कि उनके शरीर इस प्रकार पत्थर और लोहा क्यों होते हैं? क्या कोई इस बात का उत्तर देगा कि प्रकृति ने कौन-सी शक्ति उनके शरीरों में भर दी है जिससे वे संसार के बड़े से बड़े कामों को हँसते-खेलते सहन करते हैं? हमारा यह विश्वास है और कोई भी समझदार व्यक्ति, यदि

सोचेगा तो वह समझ सकता है कि उनके शरीरों में इस प्रकार की शक्ति उत्पन्न करने वाले फल आदि—प्राकृतिक भोजनों के अतिरिक्त और कोई नहीं है। यह फलों का गुण है—यह उनके स्वाभाविक भोजनों का परिणाम है। और कुछ नहीं !!

हम संसार के दूसरे-दूसरे देशों के लोगों की इस अवस्था का विवेचन सामने रखकर पाठकों को बताना चाहते हैं कि फलों और प्राकृतिक भोजनों में जो गुण है, वह गुण और शक्ति अन्य भोजनों से किसी प्रकार नहीं प्राप्त हो सकती। विस्तार भय से अधिक न लिखकर प्रत्येक देश और जाति की अवस्था को व्यक्त करते हुए यह बताने की चेष्टा करेंगे कि वहाँ पर सब से अधिक शक्तिशाली, स्वस्थ और सुखी कौन लोग हैं और उनके कौन-से भोजनों का, उनके जीवन के लिए यह आश्चर्य है !

अफ्रीका के लोग स्वस्थ और नीरोग पाये जाते हैं। उनमें कुछ लोग तो बहुत ही परिश्रम शील और बलशाली होते हैं, उनके बल, पौरुष और आरोग्य की प्रशंसा करते हुए प्राफेसर रायर्टसन स्मिथ ने लिखा है कि अफ्रीका के लोगों में ईंटों के ढोनेवाले, अद्भुत परिश्रमी और ताक़तदार होते हैं। उनकी इस ताक़त को देखकर जब पता लगाया गया तो मालूम हुआ कि वे लोग केवल फल, रोटी और दूध का प्रयोग करते हैं।

जिन्होंने अरब के लोगों को देखा है, वे जानते हैं कि वे लोग किस प्रकार शरीर के विशाल, फुर्तीले और ताक़तवार होते हैं। वे परिश्रम करने में असाधारण और बलवान होते हैं। वे अपने जीवन में केवल फलों और दूध का उपयोग करते हैं।

ब्राजील के रहने वाले गुलाम लोग बहुत हृष्ट पुष्ट और

मज़बूत समझे जाते हैं। ये अत्यन्त परिश्रमी और अधिक से अधिक बोझा अपने हाथों से उठाकर बहुत दूर तक ले जाते हैं। इनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि ढाई-ढाई मन के बोरों को लेकर ये दो-दो मील तक बिना रुके और बिना आराम किए, चले आते हैं। ये लोग बीमार बहुत कम होते हैं। उनका भोजन फल और चावल, रोटी होता है।

रायोडिजैनेरो के गुलामों की भी इसी प्रकार प्रशंसा है। उनका शरीर बहुत मज़बूत और गठा हुआ होता है। सागो-आयारा के मज़दूरों के लिए कहा जाता है कि ये बहुत तन्दुरुस्त और भयानक परिश्रमी होते हैं। पीरू, लोथासों, एएडेमंज़, कुरू, स्यूडेमोडीज़ सैंडविच, आपामियो एवम् अन्यान्य द्वीपों के रहने वाले अपने सुगठित शरीर, परिश्रम और बल के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। ये लोग फल और रोटियों को छोड़कर और कुछ नहीं खाते।

कनारी द्वीप के लोग भी बड़े बलवान होते हैं। वज़न में भारी से भारी बोझे को, ये लोग उठाकर बड़ी आसानी से जहाँ चाहते हैं पहुँचा देते हैं। एक बार की घटना है कि कनारी के एक मल्लाह बहुत भारी बोझे को अकेले उठाकर कहीं अन्यत्र ले गया, उसी बोझे को उठाने में अमेरिका निवासी चार पाँच आदमी लगे रहे और असमर्थ रहे। इनके भोजनों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ये लोग मोटी-मोटी रोटी, फल एवम् तरकारी छोड़कर और कुछ नहीं खाते।

अमेरिका के चिली-लोग अपने परिश्रम के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं, वे लोग मज़दूर हैं और कानों में काम करते हैं। वे इतना अधिक परिश्रम करते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। ये लोग अंजीर के फल और रोटी खाते हैं, और अपने कठिन कामों से दूसरों को चकित कर देते हैं।

चीन के लोग अपनी होशियारी और मज़बूती के लिए मशहूर हैं। वे शरीर में इतने शक्तिशाली होते हैं कि बड़ा से बड़ा बोझा लादे वे जहाँ चाहें घूमा करें परन्तु उन्हें कुछ कष्ट नहीं होता। कैण्टन के रहने वाले कुली तो अपने परिश्रम के लिए बहुत विख्यात हैं। वे भारी से भारी बोझा उठाकर ले जाने में और अपनी अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने में अपूर्व काम करते हैं। ये लोग यथासम्भव फल और चावल खाते हैं।

रूम में किपरस नामक एक द्वीप है यहाँ के मज़दूर मांस से घृणा करते हैं और फलों पर बड़ी रुचि रखते हैं। उनमें इतनी जीवन-शक्ति होती है कि सत्तर वर्ष के बुड्ढे भी, जवानों की तरह अकड़कर चलते हैं। उनके स्वास्थ्य और पौरुष को देख कर कभी अनुमान नहीं होता कि वे इतनी अधिक अवस्था के हो सकते हैं। उनके शरीर बड़े हृष्ट-पुष्ट होते हैं। उनके विचार शुद्ध और संयमशील होते हैं। अपनी ईमानदारी के लिए वे लोग बहुत प्रसिद्ध हैं।

मिस्र के कृषकों के भोजन की सादगी देखकर आश्चर्य होता है। उनके शरीरों में परिश्रम पूर्ण कार्य करने में बिजली की शक्ति होता है। वे हट्टे कट्टे होते हैं। उन लोगों में से जो नाव चलाते हैं वे बहुत ताक़तदार होते हैं। उनका भोजन फल और अनाज मात्र होता है। उनके साधारण भोजन का अद्भुत प्रभाव देखकर विस्मय होता है।

इङ्गलैण्ड में लंकाशायर और यार्कशायर के मज़दूर लोग फल और तरकारियाँ खाते हैं। किन्तु परिश्रम करने में बड़े बलवान होते हैं। यह देखा जाता है कि उनके साथ जो लोग मांस मदिरा और मछली का सेवन करने वाले होते हैं वे

उनका मुकाबिला नहीं कर सकते। इसका फल होता है कि इन मांसाहारियों की अपेक्षा उनको वेतन भी अधिक मिलता है।

इंगलैण्ड के देहातों के सम्बन्ध में मि० किंग्सफोर्ड ने लिखा है कि पहले ज़माने में यहाँ के देहातों में मांस मदिरा का बड़ा परहेज़ किया जाता था। उस समय यहाँ के निवासी बड़े ताक़तदार होते थे। आज भी उनमें बहुत कुछ परहेज़ की मात्रा पाई जाती है, किन्तु उन्हीं लोगों में जो गरीब तथा मज़दूर हैं और इसीलिए दूसरों की अपेक्षा ये गरीब और मज़दूर शक्ति शाली तथा बलवान पाये जाते हैं। यहाँ के लोगों में देखा जाता है कि जो मांस का आहार करते हैं, पच्चीस वर्ष की अवस्थाओं में ही, उनके शरीर का बहुत अधिक ह्रास हो जाता है। यह भी देखा गया है कि मांसाहारी परिवारों के घरों के लड़के और लड़कियाँ भी स्वस्थ और मज़बूत नहीं होतीं।

मि० स्माइल ने स्विटजरलैण्ड के देहातों की अवस्था पर लिखा है कि यहाँ पर जो मांस मदिरा का उपयोग करते हैं उनकी अपेक्षा वे लोग यहाँ काफ़ी स्वस्थ, बलवान और परिश्रमी पाये जाते हैं जो दूध, फल रोटी और तरकारी खाते हैं और सदा उसी प्रकार के भोजन पर अपना निर्वाह करते हैं।

मि० हेनरी ने एक स्थल पर लिखा है कि प्राचीन काल में अंगरेज़ लोग अत्यन्त बलिष्ठ, सुगठित शरीर और परिश्रमी होते थे। वे लड़ाइयाँ लड़ने, परिश्रम के कार्य करने, पैरों से लम्बी यात्रा करने आदि में बहुत प्रसिद्ध थे परन्तु जब से उनके भोजनों में प्राकृतिक पदार्थों के स्थान पर मांस मदिरा और अंडे, मछलियों ने अधिकार किया है तब से उनकी शक्ति बरा बर घटती जाती है और उनके शरीर की वह अवस्था भी अब नहीं रह गई। यह भी देखा जाता है कि जो लोग अपने जीवन

में फलों और तरकारियों का सेवन करते हैं वे, उनकी अपेक्षा कहीं स्वस्थ और अच्छे हैं जो भोजनों में इनके विरोधी हैं।

फ्रांस के किसानों और मज़दूरों की अवस्था उतनी अच्छी नहीं है। जितनी कि और जगहों के किसानों और मज़दूरों की पायी जाती है। इनमें रोटी के साथ मांस और उसका शोरबा खाने की चाल है यहाँ के कुछ ज़िलों में तो अप्राकृतिक भोजनों की प्रथा बहुत बढ़ गई है परन्तु कहीं-कहीं पर कम है। जहां कम है, वहाँ पर मांस और मदिरा त्योहारों में उपयोग किया जाता है। मि० किंगसन फोर्ड ने लिखा है कि यहां के लोगों का स्वास्थ्य और शरीर का बल पाशविक भोजन के कारण दिन पर दिन घटता जाता है।

प्राचीन काल में यूनान के लोग केवल फलों का भोजन करते थे। जिस समय की ये बातें हैं, उस समय में यूनान के लोग बड़े परिश्रमी स्वस्थ और बलवान होते थे। उन लोगों को फलों और व्यायाम के सम्बन्ध में शिक्षा मिलती थी, परन्तु इधर, कुछ समय से यहाँ भी मांस के खाने की प्रथा जारी होगई है। अमीर और बड़े आदमी तो मांस मदिरा खाते ही हैं, समाज के साधारण लोग भी उसका सेवन करने लगे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि यूनान के लोग सुस्त और निकम्मेपन के लिए मशहूर होरहे हैं। एक पत्र का कहना है कि यूनान के लोगों की इस शारीरिक अवस्था का कारण उनका मांस मदिरा का सेवन है।

परन्तु यूनान में ही कुछ लोग पाये जाते हैं जो मांस के भोजन से परहेज़ करते हैं। ये लोग अंजीर, अंगूर किशमिश और अनेक प्रकार के फलों के साथ रोटी भी खाते हैं। ये लोग बहुत मज़बूत, बलवान और परिश्रमी होते हैं। इनका स्वभाव

सदा शान्त और प्रसन्न रहता है। यहाँ के कारखानों में देखा जाता है कि जो मज़दूर मांस से परहेज़ करते हैं वे लोग फल, रोटी और साग भाजी खाते हैं और माँस खाने वालों की अपेक्षा बड़े हट्टे-कट्ठे तथा परिश्रमी होते हैं।

इंगलैण्ड के मज़दूरों के साथ कोयले की खानों में जो आयरलैण्ड के मज़दूर काम करते हैं वे बड़े परिश्रमी और बलवान पाए जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे लोग मांस नहीं खाते।

इटली के किसान बहुत शक्तिशाली और मेहनती होते हैं। वे अपने खेतों में काम करते हुए कभी थकते नहीं। उनके शरीर सुन्दर मज़बूत होते हैं। उनका भोजन वनस्पति पदार्थ होता है।

जापान के सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि वे लोग न केवल माँस से ही परहेज़ करते हैं बल्कि दूध और उससे बनी हुई चीज़ों से भी परहेज़ करते हैं। वे अधिकतर फल शकरकंद चावल और दाल खाते हैं। जिन लोगों ने जापान का इतिहास लिखा है उन्होंने जापान के निवासियों की बड़ी प्रशंसा की है। उनका स्वास्थ्य, मज़बूत शरीर और उनकी ताक़त सदा प्रशंसा के योग्य है। वे पैदल यात्रा करने में और भारी बोझा उठाने में बड़े बहादुर होते हैं।

माल्टा के लोगों के सम्बन्ध में यह बात प्रसिद्ध है कि वे लोग फलों के अतिरिक्त सब्ज़ी-तरकारी और रोटी खाते हैं। वे लोग बड़े मोटे ताज़े और बलवान होते हैं, उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा होता है और वे लोग बीमार बहुत कम होते हैं।

मैक्सिको के रहनेवाले, साधारण अनाज की रोटियों और फलों का सेवन करते हैं परन्तु शरीर में वे इतने

में फलों और तरकारियों का सेवन करते हैं वे, उनकी अपेक्षा कहीं स्वस्थ और अच्छे हैं जो भोजनों में इनके विरोधी हैं।

फ्रांस के किसानों और मज़दूरों की अवस्था उतनी अच्छी नहीं है। जितनी कि और जगहों के किसानों और मज़दूरों की पायी जाती है। इनमें रोटी के साथ मांस और उसका शोरबा खाने की चाल है यहाँ के कुछ ज़िलों में तो अप्राकृतिक भोजनों की प्रथा बहुत बढ़ गई है परन्तु कहीं-कहीं पर कम है। जहां कम है, वहाँ पर मांस और मदिरा त्योहारों में उपयोग किया जाता हैं। मि० किंगसन फोर्ड ने लिखा है कि यहां के लोगों का स्वास्थ्य और शरीर का बल पाशविक भोजन के कारण दिन पर दिन घटता जाता है।

प्राचीन काल में यूनान के लोग केवल फलों का भोजन करते थे। जिस समय की ये बातें हैं, उस समय में यूनान के लोग बड़े परिश्रमी स्वस्थ और बलवान होते थे। उन लोगों को फलों और व्यायाम के सम्बन्ध में शिक्षा मिलती थी, परन्तु इधर, कुछ समय से यहाँ भी मांस के खाने की प्रथा जारी होगई है। अमीर और बड़े आदमी तो मांस-मदिरा खाते ही हैं, समाज के साधारण लोग भी उसका सेवन करने लग हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि यूनान के लोग सुस्त और निकम्मेपने के लिए मशहूर होरहे हैं। एक पत्र का कहना है कि यूनान के लोगों की इस शारीरिक अवस्था का कारण उनका मांस मदिरा का सेवन है।

परन्तु यूनान में ही कुछ लोग पाये जाते हैं जो मांस के भोजन से परहेज़ करते हैं। ये लोग अंजीर, अंगूर किशमिश और अनेक प्रकार के फलों के साथ रोटी भी खाते हैं। ये लोग बहुत मज़बूत, बलवान और परिश्रमी होते हैं। इनका स्वभाव

सदा शान्त और प्रसन्न रहता है। यहाँ के कारखानों में देखा जाता है कि जो मज़दूर माँस से परहेज़ करते हैं वे लोग फल रोटी और साग भाजी खाते हैं और माँस खाने वालों की अपेक्षा बड़े हट्टे कट्ठे तथा परिश्रमी होते हैं।

इंगलैण्ड के मज़दूरों के साथ कोयले की खानों में जो आयरलैण्ड के मज़दूर काम करते हैं वे बड़े परिश्रमी और बलवान पाए जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे लोग माँस नहीं खाते।

इटली के किसान बहुत शक्तिशाली और मेहनती होते हैं। वे अपने खेतों में काम करते हुए कभी थकते नहीं। उनके शरीर सुन्दर मज़बूत होते हैं। उनका भोजन वनस्पति पदार्थ होता है।

जापान के सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि वे लोग न केवल माँस से ही परहेज़ करते हैं बल्कि दूध और उससे बनी हुई चीज़ों से भी परहेज़ करते हैं। वे अधिकतर फल शकरकंद चावल और दाल खाते हैं। जिन लोगों ने जापान का इतिहास लिखा है उन्होंने जापान के निवासियों की बड़ी प्रशंसा की है। उनका स्वास्थ्य, मज़बूत शरीर और उनकी ताक़त सदा प्रशंसा के योग्य है। वे पैदल यात्रा करने में और भारी बोझा उठाने में बड़े बहादुर होते हैं।

माल्टा के लोगों के सम्बन्ध में यह बात प्रसिद्ध है कि वे लोग फलों के अतिरिक्त सब्ज़ी-तरकारी और रोटी खाते हैं। वे लोग बड़े मोटे-ताज़े और बलवान होते हैं, उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा होता है और वे लोग बीमार बहुत कम होते हैं।

मैक्सिको के रहनेवाले, साधारण अनाज की रोटियों और फलों का सेवन करते हैं, परन्तु शरीर में वे इतने

बहादुर होते हैं कि माँस खाने वाले मज़दूर उनका किसी प्रकार सामना नहीं कर सकते। उनके अंग इतने मज़बूत होते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है।

नार्वे के लोग बहुत दीर्घायु हुआ करते हैं। वे सदा प्रसन्न और तन्दुरुस्त भी पाये जाते हैं उन लोगों के सम्बन्ध में प्रशंसा करते हुए, डा० युक ने लिखा है कि उनके स्वास्थ्य और अधिक आयु का कारण उनके भोजन की सादगी है। कहा जाता है कि नार्वे के कुछ भागों में लोग माँस के भोजन के नाम से भी अनजान हैं। वे लोग बहुत सुन्दर और तन्दुरुस्त होते हैं। पहाड़ों पर चढ़ने का वे बहुत बड़ा परिश्रम करते हैं।

पेलिसटाइन के कृषक, माँस से इतना परहेज़ करते हैं कि उसको खाना तो दूर रहा, उसको छूते तक नहीं हैं। वे लोग अंगूर, खरबूजा तरबूज़, कद्दू बहुत खाते हैं। इसके अतिरिक्त वे चावल, खमीरी रोटी का भी आहार करते हैं। उनके फलाहार के कारण ही उनके दाँत बहुत सफ़ेद होते हैं और उनका शरीर बहुत मोटा ताज़ा होता है। उनमें बल और पुरुषार्थ बहुत पाया जाता है।

रूस के मज़दूर और किसान बड़े बलवान और परिश्रमी होते हैं। उनमें इतना पुरुषार्थ होता है कि अस्से वर्ष के बुड्ढे भी मेहनत का काम करते हुए देखे जाते हैं। उनका भोजन बहुत साधारण होता है। वे लोग रोटी के साथ लहसुन का बहुत प्रयोग करते हैं।

सेराएयूम का जल और वायु मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए बहुत ख़राब है लेकिन यहाँ के निवासी फिर भी स्वस्थ और प्रसन्न चित्त पाए जाते हैं। उनके शरीर हट्टे-कट्ठे और मज़बूत होते हैं। उनकी अवस्था भी बहुत बड़ी होती है। उनके इस

सुखी जीवन का कारण केवल यह है कि ये लोग फल बहुत खाते हैं।

समरना के निवासी कितने मज़बूत और ताक़तवार होते हैं, इसका अनुमान इससे हो जायगा कि यहाँ का एक एक आदमी पांच पांच मन तक का बोझा उठा सकता है। अमेरिका के एक विद्वान् ने उनके सम्बन्ध में लिखा है कि यहाँ के लोगों का मज़बूत शरीर और परिश्रम देखकर मुझे आश्चर्य होता है। ये लोग फल और बहुत साधारण भोजन खाते हैं।

इस्पानियों में मूर के मज़दूरों की दशा देखकर कप्तान सी० एफ० बेस ने लिखा है कि इनमें शारीरिक शक्ति बहुत ही अधिक होती है। ये लोग बहुत भारी भारी बोझ उठाते हैं। और ये गेहूँ की रोटियों के साथ अंगूर खाते हैं। यहाँ के लोगों के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि ये लोग ५० मील तक बड़ी आसानी के साथ यात्रा कर सकते हैं और घोड़े की सवारियों के साथ दौड़ लगाने में भी आश्चर्यजनक काम करते हैं।

कुस्तुनतुनियाँ के मल्लाह और माशकी लोग योरप में हट्टे कट्ठे और बलवान होने के लिए प्रसिद्ध हैं। ये निर्भय और साहसी होने के साथ साथ वीर तथा बहादुर भी होते हैं। ये लोग ककड़ी अन्जीर, शहतूत, खजूर तथा अन्यान्य प्रकार के फल खाते हैं। रोटी और तरकारी खाने की भी उनमें प्रथा है। तुर्क लोग लड़ने में कितने बहादुर होते हैं यह बताने की आवश्यकता नहीं है। ये स्वस्थ और परिश्रमशील होते हैं। उनका स्वभाव बहुत साधारण और शरीर की बनावट बहुत सुन्दर होती है। उनको वनस्पतिक पदार्थों से बड़ा प्रेम होता है।

प्रायः देखा जाता है कि सब साइकिल चलाने वालों की

दौड़ होती है तो उनमें भिन्न भिन्न विचारों के लोग सम्मिलित होते हैं। उन दौड़ों में जो सब से आगे गया है उसके सम्बन्ध में पता लगाने से मालूम हुआ है कि उसमें यह विशेषता थी कि वह फल और वानस्पतिक पदार्थों का भोजन करता था।

पैदल की दौड़ में देखा जाता है कि जो लोग मांसाहारी तथा मदिरा आदि का सेवन करने वाले होते हैं, वे सदा दौड़ में पराजित होते हैं। इस प्रकार की जितनी भी बातें चली जाती हैं, उनसे इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि फलों और वनस्पति में, मनुष्य-जीवन को पुरुषार्थ प्रदान करने वाली, एक अपूर्व शक्ति होती है।

संसार के भिन्न भिन्न देशों और जातियों के भोजन का ब्योरा देकर ऊपर जो उनके बल और पराक्रम का निर्णय किया गया है, उससे भी यह प्रमाणित हो जाता है कि फलों और वनस्पति पदार्थों का आहार करने से शरीर में कितनी शक्ति पैदा होती है। संसार के प्रायः सभी देशों में देखा जाता है कि उनके गरीब, मजदूर और किसान अपनी असमर्थता के कारण मांस-मदिरा का उपयोग नहीं कर सकते, किन्तु उनकी असमर्थता का परिणाम यह होता है कि उनको उससे स्वास्थ्य और शक्ति प्राप्त होती है।

महात्मा गाँधी ने इंगलैण्ड के सम्बन्ध में लिखा है—There are many men in England who have tried a pure fruit-diet, and who have recorded the results of their experience They were people who took to this diet, not out of religious scruples, but simply out of considerations of health

इंगलैण्ड में ऐसे बहुत से आदमी हैं जिन्होंने फलाहार

करके फलों की परीक्षा की है। उनके फलाहार करने का कोई धार्मिक बन्धन नहीं था, बल्कि उसका सम्बन्ध स्वास्थ्य से था, उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर फलों के भोजन की बड़ी प्रशंसा लिखी है।

एक जमन डाक्टर ने फलों के भोजन पर एक बड़ी सुन्दर पुस्तक लिखी है और भिन्न भिन्न प्रकार की दलीलें देकर यह बताया है कि मनुष्य को क्यों फलों का आहार करना चाहिए। कुछ लोगों ने तो यह भी प्रमाणित किया है कि यदि मनुष्य केवल फलों का आहार करे तो उसे बीमारियाँ नहीं हो सकती। कुछ लोगों ने तो फलों के प्रयोग से भिन्न भिन्न बीमारियों का दूर करने की व्यवस्था भी बताई है।

दूसरा अध्याय

फल और भारतवर्ष

यह संसार बहुत बड़ा है इतना बड़ा कि उसे अनन्त कहना ही उचित होगा। वास्तव में उसका कहीं अन्त नहीं है—उसका कहीं ओर छोर नहीं है। इस अनन्त संसार का, भारत वर्ष एक खण्ड मात्र है। भारतवर्ष की भाँति अनेक देशों और प्रदेशों से मिलकर संसार बना है।

सम्राट्, एक विस्तृत साम्राज्य का स्वामी होता है, वह समस्त साम्राज्य तथा उसके अन्तर्गत समस्त भाग और उप भाग, उस सम्राट के रहने के लिए होते हैं किन्तु वह सभी स्थानों में रहते हुए भी अपने रहने का एक ही स्थान रखता है। साम्राज्य में वह स्थान जिस नाम से प्रसिद्ध होता है, उस नाम को स्कूल के विद्यार्थी और अध्यापक राजधानी के नाम से पुकारते हैं। वह राजधानी सम्राट के रहने के लिये, स्थायी रूप से स्थान होता है। साम्राज्य में जो स्थान अथवा नगर, राजधानी होने का गौरव प्राप्त करता है, वह स्थान अथवा नगर, समस्त साम्राज्य की अपेक्षा कुछ विशेषता रखता है। समूचे साम्राज्य में, उसकी मान मर्यादा उसका गौरव बड़प्पन कुछ और ही होता है। इस विस्तृत संसार में बहुत से साम्राज्य हैं और उनके भिन्न भिन्न सम्राट हैं। सभी सम्राटों के रहने के लिए उनके साम्राज्य में राजधानी होती है।

इस पृथ्वी पर अनेक साम्राज्य और उनमें अनेक सम्राट हैं किन्तु समस्त संसार स्वयं एक साम्राज्य है, इस असीम साम्राज्य की एक मात्र अधिकारिणी स्वामिनी प्रकृति है। इस अनन्त विस्तृत साम्राज्य में सर्वत्र उसका अस्तित्व है फिर भी साम्राज्य में कोई एक नगर राजधानी होता है। भारतवर्ष ही उसकी राजधानी है। आदि काल से लेकर, इस राजधानी में ही प्रकृति का निवास स्थान रहा है। संसार का जो स्थान सदा से प्रकृतिका निवास स्थान रहा हो, उस स्थानके प्रकृति जीवन और नैसर्गिक रहस्यों के लिए क्या कहा जा सकता है और किस प्रकार उनकी प्रशंसा की जा सकती है?

फलों का विवरण लिखने के समय, भारतवर्ष के प्रकृति जीवन का स्मरण होता है। जिस जीवन में भारतवर्ष के कोटि कोटि लोग आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते थे जिस जीवन में इस प्रदेश के प्रायः समस्त स्त्री-पुरुष सात्त्विक जीवन का सुखोपयोग करते थे और जिस जीवन में भारत के ऋषि और मुनि रहकर अमर पद प्राप्त करते थे, वह जीवन प्रकृति जीवन था, वह जीवन सात्त्विक जीवन था। इस जीवन में फलों का आदर था, इस जीवन में फलों का ही महत्व था। फलों का जीवन ही, उन सब के जीवन का एक आधार था। इसी लिए भारतवर्ष में फलों का अधिकार था। यहाँ पर भाँति भाँति के फल और एक एक फल की सैकड़ों किस्में होती थीं। भारत वर्ष के वे दिन, वे दिन नहीं हैं। अब तो समय ही और है इस का युग ही और है। जिस देश का फल ही प्राण था, आज उसी देश को फलों के गुण बताने की आवश्यकता है।

इस युग में भी फलों के लिए, भारतवर्ष, संसार में प्रसिद्ध है। यहाँ के से फल और इतने अधिक फल, संसार के किसी अन्य देश में न मिलेंगे। इसीलिए तो भारतवर्ष, प्रकृति के

कोष के नाम से प्रसिद्ध है। हमारे देश में आज भी, इतने अधिक फल होते हैं और वे इतने सुन्दर होते हैं जो मनुष्य जीवन के लिए सुधा के समान हैं। एक-एक फल का गुण तथा उसका रंग-रूप, मोहित करने का गुण रखता है।

आम

आम का फल बड़ा उपयोगी और सर्वप्रिय होता है। यह संसार के गर्म देशों में अधिक पैदा होता है। भारतवर्ष तो आम की पैदावार के लिए प्रसिद्ध ही है। यहाँ पर, प्रायः सर्वत्र यह पैदा होता है। इस में सब से बड़ी विशेषता यह है कि वर्ष की प्रत्येक ऋतु में यह किसी न किसी रूप और परिमाण में प्राप्त हो सकता है।

छोटे से लेकर बड़ों तक गरीब से लेकर अमीर तक, सभी को आम बहुत प्यारा है और सभी लोग, इसको बड़ी रुचि तथा स्वाद के साथ खाते हैं। यह वर्ष में एक बार फलता है और वसन्त ऋतु के पश्चात् इसका फलना आरम्भ हो जाता है। गर्मी के दिनों में यह बढ़ता है किन्तु उन दिनों में प्रायः कच्चा रहा करता है। वर्षाकाल के आते आते, आम पकने लगते हैं। बरसात के दिनों में आमों की बहार होती है। शहरों से लेकर, देहातों तक आमों की फसल में, सब के दिन बड़े सुख से कटते हैं। देहातों में तो उन दिनों में सर्वसाधारण का, आम ही आहार होजाता है।

भारत में, प्रान्तों के अनुसार आमों के विभिन्न नाम हैं। हिन्दी भाषा भाषी, उसका आम कहते हैं, और भारत-भर में यह आम के ही नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इसकी अनेक जातियाँ होती हैं। उनमें दो प्रधान हैं, कलमी और देशी। कलमी आम का पेड़ छोटा होता है लेकिन उसका आम बहुत बड़ा बड़ा होता है। देशी आम का पेड़ बहुत बड़ा होता है परन्तु उसके आम छोटे-छोटे होते हैं।

पका हुआ आम—खाने में सुगन्धित और मधुर होता है, उसका रस स्निग्ध होता है, खाने में अत्यन्त रुचिकर प्रतीत होता है और शरीर को पुष्ट करता है। वात का नाश करता है और हृदय को बलयाम करता है। यह भारी होता है और मल को रोकता है। शीतल होने के साथ साथ प्रमेह के रोगी को विशेष कर लाभ पहुँचाता है। शरीर को कान्ति देता है, इससे व्रण, श्लेष्म तथा रुधिर के रोगों को लाभ होता है।

पका हुआ आम—खाने में मीठा वीर्य का बढ़ाने वाला, स्निग्ध तथा बलवर्द्धक होता है। इसके खाने से सुख मिलता है, वात का नाश होता है हृदय को शक्ति मिलती है, शरीर का रंग गोरा होता है, अग्नि और कफ़ बढ़ता है। इसके खाने से शरीर में मांस और बल बढ़ता है और शरीर का परिश्रम दूर होता है।

जो आम वृक्ष पर पकता है, वह खाने में भारी होता है, वात का नाश करता है, किञ्चित खटाई के साथ-साथ मीठा होता है, इसके खाने से पित्त बढ़ता है।

पाल में पकाया हुआ आम—पित्त का नाश करता है, इस में खटाई का अंश नहीं रहता और खाने में अत्यन्त मीठा मालूम होता है। पका हुआ आम बासी हो जानेपर खानेमें बड़ा स्वादिष्ट और मीठा होता है, बल को बढ़ाता है वीर्य को पैदा करता है, खाने में हलका तथा शीतल होता है। बहुत शीघ्र पचता है, वात पित्त का नाश करता है, किसी-किसी को दस्त लाता है।

आम का निचोड़ा हुआ रस—बल बढ़ाता है, खाने में भारी होता है, वात का नाश करता है और कुछ दस्तावर होता है। हृदय को हानिकारक होता है, खाने में तृप्ति करता है, किन्तु कफ़ को बढ़ाता है।

आम का निचोड़ा हुआ रस—यदि दूध के साथ खाया जाता है, तो वह अत्यन्त स्वादिष्ट हो जाता है, और अत्यधिक वीर्य पैदा करता है एवम् शरीर को सौन्दर्य तथा कान्ति प्रदान करता है।

चूस कर खाया हुआ आम—जो आम चूसकर खाया जाता है, उससे शरीर में बल और वीर्य बढ़ता है और खाने में रुचि उत्पन्न होती है। यह हलका और शीतल होता है और खाने में शीघ्र पचता है। यह वात पित्त का नाश करता है और मल को रोकता है।

काट कर खाया हुआ आम—जो आम काट कर खाये जाते हैं, वे चूस कर खाये जाने वालों की अपेक्षा कुछ जड़ होते हैं, लेकिन खाने में मीठे तथा शीतल होते हैं। वे रुचिकारक और शीघ्र पचने वाले होते हैं ये धातु और बल को बढ़ाते और वात पित्त का नाश करते हैं।

धूप में सुखाया हुआ आम का रस—आमों को निचोड़ कर अथवा कूट कर जो रस निकाल लिया जाता है और उस को धूप में सुखा दिया जाता है, वह अमरस या आम्रपट कह लाता है। इसके खाने से तृषा शान्त होती है, कै को लाभ होता है और वात पित्त को फ़ायदा पहुँचाता है। यह खाने में बड़ा रुचिकर किन्तु कुछ दस्तावर होता है। सूर्य की धूप में सुखाये जाने के कारण यह हलका हो जाता है।

आम की गुठली—किञ्चित खट्टी कषैली और सोंधी होती है वमन, अतिसार और हृदय की दाह में फायदा करती है।

उपयोग—

आमों को अधिक खाने से मन्दाग्नि होती है, विषमज्वर आने का डर रहता है, रुधिर के विकार उत्पन्न हो सकते हैं।

और नेत्र-रोग उत्पन्न होता है। किन्तु आम के ये दोष खट्टे आम के खाने से ही हो होते हैं। मीठा आम कभी हानि नहीं करता। विशेषकर मीठा आम, नेत्रों को हितकारी और अधिक गुण देने वाला है। अधिक आम खाने के बाद सोंठ या जीरे का जल पी लेने से कोई हानि नहीं होती।

मधु के साथ आम—आम को मधु के साथ खाने से राज यक्ष्मा, प्लीहा वात और श्लेष्मा का नाश होता है।

घृत के साथ आम—आम के साथ घृत खाने से वात पित्त का नाश होता है, अग्नि बढ़ती है, बल की अधिक वृद्धि होती है और शरीर की कान्ति तेज होती है।

दूध के साथ आम—दूध के साथ आम को खाने से वात-पित्त का नाश होता है, रुचि बढ़ती है और बल तथा वीर्य की वृद्धि होती है।

बादाम

बादाम के पेड़, एशिया में, ईरान, मक्का, मदीना, मस्कत शीराज आदि स्थानों में बहुत पाये जाते हैं। भारतवर्ष में, काश्मीर, अफ़गानिस्तान और बिलोचिस्तान आदि प्रान्तों के नगरों में भी बादाम के वृक्ष होते हैं। इसके वृक्ष नीम के पेड़ की भाँति बड़े होते हैं। बादाम की दो जातियाँ होती हैं कड़वी और मीठी। कड़वा बादाम हानिकारक होता है, इसलिए उस का उपयोग नहीं किया जाता। मीठा बादाम, कई प्रकार से खाने के काम में आता है। यह गर्म और अत्यन्त पुष्टिकारक होता है। जो लोग उसका सेवन करते हैं, वे उसकी बहुत थोड़ी संख्या से उसका खाना प्रारम्भ करते हैं। और उत्तरोत्तर उसकी संख्या बढ़ाते जाते हैं। ऐसा न करके यदि वह अधिक खा लिया जाय तो उसका हज़म हा सकना कठिन हो जाय।।

जो लोग भङ्ग अथवा ठण्डाई पीते हैं, वे उसमें बादाम अवश्य डालते हैं। कुछ लोग बादाम को भिगोकर और फिर ठण्डाई की भाँति पीस कर नित्य नियमानुसार, उसका सेवन करते हैं। इस प्रकार का सेवन प्रायः व्यायामशील व्यक्ति या जो पहलवानी करते हैं, वे अवश्य करते हैं। इसके सेवन से शरीर में रक्त बढ़ता है, बल की वृद्धि होती है और शरीर में चैतन्य जागृत होता है। कुछ विद्वानों ने, बादाम को दूध के स्थान पर सेवन करने की सम्मति दी है। इसी प्रकार की सम्मति ऐसे हुए महात्मा गाँधी ने भी लिखा था कि आज कल शहरों में दूध अच्छा नहीं मिलता। एक तो मिलता नहीं और जो मिलता भी है, वह खालिस नहीं होता। बल्कि यह भी देखा

आता है कि पाश्चात्य दूध लाभ के स्थान पर हानिकारक होता है ऐसी अवस्था में यदि दूध के बजाय, बादाम का प्रयोग किया जाय तो अधिक लाभ होगा।

गुण–

बादाम—सारक और गर्म होता है। इसकी प्रकृति भारी और अम्लप्रद होती है। खाने में स्वादिष्ट स्निग्ध और कफ को बढ़ाने वाला होता है। कषैला होने के साथ-साथ वात का नाश करता है और वीर्य को पैदा करने वाला है। इसके खाने से शरीर में बल और पुरुषार्थ उत्पन्न होता है।

कच्चा बादाम—सारक और भारी होता है। यह पित्त को पैदा करता है कफ तथा वात के विकारों का नाश करता है।

पका बादाम—खाने में मीठा और वृष्य होता है। यह अत्यन्त पुष्टिकारक और बल बढ़ाने वाला होता है। इसके सेवन से वीर्य की वृद्धि होती है। कफ की उत्पत्ति होती है। रक्त पित्त और वात पित्त का नाश होता है।

सूखा बादाम—खाने में मीठा और धातु का बढ़ाने वाला होता है। यह स्निग्ध और वृष्य होता है। इसके खाने से शरीर में बल बढ़ता है, बदन पुष्ट होता है, यह कफ को उत्पन्न करता है और वात पित्त को दूर करता है। शक्ति और पुरुषार्थ बढ़ाने के लिए बड़ा उपयोगी है।

बादाम का तेल—मस्तक के रोगों को दूर करने के लिए यह बड़ा उपयोगी तेल होता है। बदन में मालिश करने से पित्त का नाश होता है। वात को शान्त करता है। हलका होने के साथ-साथ जखम को भी शान्त करता है। इसकी प्रकृति

शीतल होती है और शरीर में मलने से सौन्दर्य बढ़ता है। इसमें बाजीकरण का गुण भी होता है।

औषधि के रूप में भी बादाम बहुत काम आता है। आयुर्वेद शास्त्र में तो उसके अनेकानेक उपयोग हैं, साधारण तया उसका निम्नलिखित उपयोग करते हैं—

भिलावें से पैदा हुए छालों पर—बादाम की मींगी को घिस कर लगाने से तुरन्त आराम पहुँचता है। जलन को बड़ी जल्दी शान्त कर देता है।

कनखजूरे के काँटे घुस जाने पर—यह अवस्था बड़ी भयंकर होती है, ऐसे समय पर बादाम का तेल लगाना चाहिए, इससे लाभ होता है।

दाँतों को पुष्ट करने के लिए—दाँतों की शक्ति को उत्पन्न करने के लिए बादाम के छिलकों में बड़ी शक्ति होती है। इस लिए इसके मोटे और सख्त छिलके को जलाकर और उसकी राख में नमक मिलाकर, खूब महीन-महीन पीसकर रख लेना चाहिए, और नित्य उसी से दाँतों को मलना चाहिए।

मस्तक के रोगों पर—सिर में किसी प्रकार पीड़ा हो अथवा मस्तक का कोई भी रोग हो, बादाम और केसर को गाय के घी में मिलाकर नास लेने से तुरन्त लाभ होता है। यदि कोई इस प्रकार का रोग बहुत दिन से चल रहा हो तो कई दिनों तक बादाम की खीर खाना चाहिए। मस्तक पीड़ा में बादाम और कपूर को दूध में घिसकर लेप करने स भी तुरन्त लाभ होता है।

धातु की बीमारी में—डेढ़ तोला गाय का घी लेकर उसमें एक तोला गाय का मक्खन या हाल का बनाया हुआ खोवा मिला देना चाहिए और उसमें बादाम, शक्कर, शहद और इला

पची मिलाकर प्रति दिन सुबह-शाम बराबर सात दिन तक खाना चाहिए। इससे बड़ा लाभ होता है, और उसके विकारों का नाश होकर धातु की पुष्टि होती है।

उपयोग–

बादाम कई प्रकार से सेवन किया जाता है, किन्तु प्रायः लोग यह करते हैं कि पहले इसे पानी में भिगो देते हैं उस पर लगी हुई लाल परत को निकाल कर बहुत बारीक पीस डालते हैं कि, छानने पर वह बिलकुल दूध के समान तैयार होता है, बस छान कर और उसमें थोड़ी-सी शक्कर और काली मिर्च मिलाकर पी जाते हैं।

बादाम सूखा खाने के काम में भी आता है, और उसकी मींगी निकालकर उसका हलुआ बनाया जाता है। हलुआ बनाने का नियम यह है कि पहले बादामों को पानी में भिगो कर और उनके भीग जाने पर, उनका छिलका निकाल कर, पीस डाले जाते हैं और गाढ़ा-गाढ़ा पिसा हुआ लेकर घी के साथ भूना जाता है अन्त में कुछ शक्कर मिलाकर उतार लिया जाता है बस हलुआ बन जाता है। यह बड़ा शक्ति वर्धक और पुष्टिकारक होता है।

चावलों की खीर में बादाम छोड़े जाते हैं। अर्थात् जब खीर बनाई जाती है तो बादाम कतरकर उस खीर में छोड़ दिये जाते हैं, इससे खीर बड़ी स्वादिष्ट और पुष्टिकारक बन जाती है।

बादाम की खीर भी बनाई जाती है, उसके बनाने की रीति यह है कि बादाम को फोड़कर गर्म जल में भिगो देते हैं जिससे उसके ऊपर का लाल छिलका बड़ी जल्दी और आसानी से

निकल जाता है। इसके बाद बादामों को पीस डाला जाता है, तत्पश्चात् उसे दूध में पकाना पड़ता है। जब कुछ गाढ़ा होने लगता है तो शक्कर और घी डाल कर उसे उतार लेते हैं। यह खीर खाने में स्वादिष्ट तो होती ही है, पुष्टिकारक और शक्ति वर्द्धक भी होती है।

बादाम का तेल—इसका तेल निकालने के लिये बादामों को फोड़कर उनको पानी में भिगो देते हैं और उनके ऊपर का पतला-सा छिलका निकालकर उन्हें पीस डालते हैं। पीसते समय उसमें थोड़ी सी मिश्री भी मिला देते हैं। पीसने के बाद उसे मल मलकर दबाने से तेल निकलता है। यह तेल मस्तिष्क को ठंढा रखता है कानों की प्रत्येक बीमारी को फ़ायदा पहुँचाता है।

अमरूद

अमरूद का पेड़ प्रायः सभी देशों में पाया जाता है। परन्तु अन्य देशों को देखते हुए भारतवर्ष में इसकी उत्पत्ति सब से अधिक होती है। अपने देश में इसकी पैदावार लखनऊ और इलाहाबाद में बहुत अधिक होती है। देश-भर में इलाहाबाद का अमरूद मशहूर है और उसके बेचनवाले इलाहाबादी अमरूद कहकर बेचते हैं।

अमरूद की दो जातियाँ होती हैं। एक लाल और दूसरी सफ़ेद। जो अमरूद बड़े होते हैं, उनका वज़न कभी-कभी आधा सेर से भी अधिक होजाता है। फसल के दिनों में यह बहुत सस्ता बिकता है। इसको गरीब और अमीर सभी खाते हैं। गरीब आदमी तो अमरूदों की फसल में पेट भर भरकर इसको खाते हैं।

अमरूद कच्चा से लेकर पक्का तक—दोनों हालतों में खाया जाता है। अमरूद जब से फलने लगता है और कुछ बड़ा हो जाता है उसी समय से लोग उसका खाना आरम्भ कर देते हैं और अन्त तक उसको खाते हैं लेकिन अमरूद पकने के पहले बाज़ारों में नहीं बिकता। इसको बेचने वाले उसी समय बेचने के लिए निकलते हैं जब वह पक जाता है अथवा पकने के लग भग हो जाता है। कच्चा अमरूद, लोग उनके बगीचों में जाकर तोड़-तोड़कर खा जाते हैं।

पक्के अमरूद की अपेक्षा कच्चा अमरूद सख्त होता है। और पके हुए के बनिस्यत कच्चे अमरूद के खाने का स्वाद भी

कुछ भिन्न होता है। लेकिन खाने में यह किसी प्रकार अप्रिय और अरुचिकारक नहीं होता। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक, जिनके दाँत होते हैं बड़ी रुचि से खाते हैं। जितने भी फल खाने के काम में आते हैं उनमें अमरूद ही एक ऐसा है जो खाने में कच्चा और पक्का समान रूप में उपयोग में लाया जाता है। फल-वैज्ञानिकों का कहना है कि पके फल की अपेक्षा कच्चे फल में जीवन शक्ति अधिक होती है परन्तु सभी फल कच्ची अवस्था में अधिक नहीं खाए जा सकते इसलिए कि उनकी प्रकृति भिन्न भिन्न होती है और कुछ तो अधिक खानें से हानि कारक भी होसकते हैं।

गुण—

अमरूद—इसको कुछ लोग सफरी अथवा साफरी भी कहते हैं। अमरूद खाने में स्वादिष्ट और कषैला होता है। इसके खाने से कफ की वृद्धि होती है, वात पित्त का नाश होता है और वीर्य की उत्पत्ति होती है। अमरूद शीतल होते हैं।

अमरूद—खाने में तेज़, भारी और कफ के बढ़ाने वाले होते हैं। इनके खाने से वात की वृद्धि होती है, उन्माद का नाश होता है। वीर्य बढ़ता है। यह खाने में स्वादिष्ट और रुचिकारक होते हैं। यदि शरीर को इनके ठण्डे होने से कोई विकार न उत्पन्न हो तो ये लाभकारी होते हैं।

कच्चे अमरूदों की तरकारी बनाई जाती है। जो बड़ी स्वादिष्ट और सुरुचिपूर्ण होती है। उसके बनाने की यह रीति है कि अमरूद को काटकर पहले सुखाया जाता है और वह तब तक बराबर सूखा करता है जब तक कि वह बिल्कुल सूख नहीं जाता। उसके बाद अन्य तरकारियों की भाँति इसकी भी तरकारी बनाई जाती है।

उपयोग—

अमरूदों का रायता बहुत अच्छा बनाया जाता है। पके हुए अमरूद पेट भर खाए जा सकते हैं परन्तु उनकी प्रकृति शीतल होती है अतएव ठण्डे होने के कारण अधिक खा लेने से बुख़ार आसकता है, पेट में दर्द पैदा हो सकता है और कभी कभी खांसी आने लगती है। इसलिए जिनका शरीर स्वस्थ नहीं है और निर्बलता के कारण जो उसको पचा सकने में असमर्थ हैं उन्हें अधिक अमरूद न खाने चाहिए। जो स्वस्थ और नीरोग होते हैं उनको कुछ भी हानि नहीं होती। अमरूद को काटकर यदि उसमें कालीमिर्च, नमक और नीबू का रस मिला लिया जाय तो उसका विकार नष्ट हो जाता है और फिर यह प्रायः हानि नहीं करता।

नीबू

यह अत्यन्त लोकप्रिय और उपयोगी फल है। यह सर्वत्र पाया जाता है। नीबू दो प्रकार का होता है, खट्टा और मीठा। मीठे की अपेक्षा, खट्टा नीबू ही अधिक मिलता है और यही बाज़ार में अधिकतर बिका करता है।

नीबू की खटाई बड़ी स्वादिष्ट और रुचिकारक होती है, इसमें विशेषता यह है कि और जितनी खटाइयाँ हैं, कभी-कभी हानि भी करती हैं, रोगी या बीमार आदमी दूसरी खटाइयाँ कभी नहीं खा सकते किन्तु नीबू की खटाई कभी किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाती। बीमार आदमियों के लिए तो यह बड़ी ही उपयोगी वस्तु है। नीबू कई प्रकार का होता है, कागज़ी नीबू, जम्मीरी नीबू, बिहारी नीबू, कड़ा नीबू, जम्बीर नीबू।

गुण

साधारण नीबू—खाने में खट्टा होता है, वात का नाश करता है, अग्नि को उद्दीप्त करता है। खाने में पाचक और हलका होता है, क्रिमि-समूह का नाश करता है। `ट के रोगों का शमन करता है। शरीर के परिश्रम को दूर करता है। कफ और पित्त में लाभकारी है, रुचि को बढ़ाता है। और प्रकृति में तीक्ष्ण होता है।

नीबू—रोचक तथा अग्नि उद्दीपक होता है। पित्त को पैदा है। वात-रक्तकारक है। नेत्रों के लिए अहितकारी है, कफ को बढ़ानेवाला और खाये हुए भोजन को पचानेवाला है।

नीबू—त्रिदोष में कामकारी है, क्षय तथा वात रोग से पीड़ित मनुष्य के लिए अत्यन्त उपयोगी है। मंदाग्नि तथा कोष्ठबद्धता को दूर करने के लिए तो बड़ी अच्छी औषधि है। विषूचिका के रोग में भी नीबू फ़ायदा करता है।

नीबू—गर्म, पाचक और खट्टा होता है, पाचन-शक्ति को बढ़ाता है। नेत्रों को लाभ पहुँचता है। अरुचि को दूर करता है। प्रकृति में कटु, कसैला और हलका होता है। कफ़ वात और वमन को मिटाता है। खाँसी में फायदा करता है। कण्ठरोग में लाभ पहुँचाता है। पित्त और शूल को दूर करता है। मल को खारिज करता है। विषूचिका आदि अनेक बीमारियों में बड़ा लाभ पहुँचाता है। आमवात का नाश करता है। पक्का नीबू सर्वोत्तम होता है।

जम्मीरी नीबू—किञ्चित मीठा किन्तु खट्टा बहुत होता है। पित्त को बढ़ाता है। खाने में भारी और सुगन्धित होता है। अग्नि को तेज करता है। वायु को शुद्ध करता है।

जम्मीरी नीबू—खट्टा और मीठा होता है, वात का नाश करता है पित्त को पैदा करता है। खाने में पथ्य होता है, प्रकृति में पाचक होता है। बल को बढ़ाता है और अग्नि को तेज़ करता है।

पक्का जम्मीरी नीबू—स्वाद में मीठा होता है कफ़ का नाश करता है। रक्त पित्त को निवारण करता है। खाने वालों के शरीर का सौन्दर्य बढ़ाता है। यह नीबू वीर्य की वृद्धि करता है और रुचि को सुन्दर करता है। इसके द्वारा शरीर की पुष्टि और इच्छा की तृप्ति होती है।

जम्मीरी नीबू—गर्म, भारी और अम्लकारक होता है। वात-कफ़ का नाश करता है। पीड़ा और खाँसी को दूर करता

है। वमन और तृषा को शान्त करता है। मुख की अरुचि को मिटाता है, हृदय की पीड़ा को दूर करता है। मन्दाग्नि और कृमि का नाश करता है। छोटी और बड़ी जम्भीरी नीबू के गुण प्रायः समान होते हैं।

कच्चा नीबू—कफ और वात-रक्त को दूर करता है, मेद रोगों का नाश करता है और पित्त को बढ़ाता है।

साधारण नीबू—स्वाद में खट्टा और पित्त को पैदा करने वाला होता है। अग्नि को तेज़ करता है। सब प्रकार की पीड़ाओं को शान्त करता है। अरुचि का नाश करके रुचि पैदा करता है। विषूचिका तथा कृमि-रोग को दूर करता है।

बड़ा जम्भीरी नीबू—खट्टा, कषैला और कड़ुवा होता है। प्रकृति इसकी तारक और गर्म होती है। यह पित्त और कफ को नाश करता है, खाने में पाचक होता है। छोटे जम्भीरी नीबू के गुण भी इसी प्रकार होते हैं।

मीठा जम्भीरी नीबू—प्रकृति में शीतल होता है, कफ को बढ़ाता है। मुख को शुद्ध एवम् निर्मल करता है। रुचि को बढ़ाता है। खाने में स्वादिष्ट होता है। इसके साथ साथ भारी स्निग्ध और वात पित्त का नाश करने वाला होता है।

मीठा नीबू—खाने में स्वादिष्ट और भारी होता है। वात पित्त का नाश करता है। विष-रोग को दूर करता है। विष को शान्त करता है। कफ और रुधिर के विकारों में लाभ करता है। शोष, अरुचि और तृषा को मिटाता है। वमन बन्द करता है। शरीर का बल बढ़ाता है और पुष्ट करता है। मीठा नीबू बड़ी लाभकारक होता है।

चकोतरा नीबू—खाने में स्वादिष्ट और रोचक होता है, प्रकृति में शीतल और भारी होता है। रक्त पित्त को दूर करता

है। क्षय और श्वास तथा खांसी में फ़ायदा करता है। हिचकी और भ्रम को दूर करता है।

उपयोग—

नीबू अनेक प्रकार के रोगों में चिकित्सा का काम करता है और वैद्य लोग उसका अनेक प्रकार से उपयोग करते हैं। किन्तु उसकी छोटी छोटी बातें, साधारण लोगों के बड़े काम की होती हैं, जिनका दिग्दर्शन नीचे दिया जाता है—

वमन पर—सूखे हुए मीठे नीबू को भूनकर और उसको शहद में मिलाकर देने से वमन बंद हो जाता है।

अरुचि पर—प्रायः बीमारी में अथवा साधारण अवस्था में भी मुख का स्वाद बिगड़ जाता है उस दशा में नीबू का रस चूसने से सुरुचि की उत्पत्ति होती है।

भूख न लगने पर—अक्सर बीमारी के पश्चात् भूख रुक जाती है और खाना अच्छा नहीं लगता। ऐसी अवस्था में नीबू को काटकर और उसमें नमक मिर्च लगाकर, आग में थोड़ा सा भून लेना चाहिए और फिर धीरे धीरे उसी का रस चूसना चाहिए। इससे स्वाद अच्छा होता है, भूख लगती है और भोजन पचता है। पेट की वायु शुद्ध होती है।

नीबू के द्वारा खाने-पीने की अनेक चीज़ें बनाई जाती हैं। उनमें से दो-चार का यहाँ पर वर्णन कर देना आवश्यक है। जो चीज़ें उससे बनाई जाती हैं, उनके नाम और तरीके नीचे लिखे जाते हैं।

नीबू का अचार—एक एक नीबू के जुड़े हुए चार-चार फाँकें करना चाहिए, उसके पश्चात् उनमें गर्म मसाला पिसा हुआ भर देना चाहिए और फिर नीबू का रस ऊपर से डाल कर धूप में सुखाना चाहिए।

दूसरी विधि—एक सेर नीबू छीलकर पानी में धो डालना चाहिए और उनको पोंछकर पीतल के अतिरिक्त बर्तन में रखने चाहिए। उनमें तीन छटाक नमक डालकर उसमें रस खूब भर देना चाहिए।

तीसरी विधि—किसी मिट्टी के बरतन में एक सेर नीबू रखकर पाव-भर पिसा हुआ नमक छोड़ देना चाहिए और रोज़ उनको हिला देना चाहिए।

मीठे नीबू का अचार—नीबुओं के चार-चार फांकें करके, एक सेर नीबू में पाव भर गुड़ और आधपाव नमक डालना चाहिए और नित्य हिलाकर धूप में सुखाना चाहिए।

दूसरी विधि—पचास नीबुओं का रस निकाल कर छान लेना चाहिए। उसमें सवा सेर बूरा और पाव-भर साँभर नमक आधा पाव काली मिर्च एक छटाक इलायची पीस कर डाल देना चाहिए और अमृतबान में रख देना चाहिये। एक महीने के पश्चात् ये नीबू खाने के योग्य होजाते हैं।

नीबू का मुरब्बा—एक सेर नीबुओं को आवे से रगड़ कर चूने के पानी में डाल देना चाहिए और दो दिनों के पश्चात् निकाल कर धो डालना चाहिए। इसके बाद आग पर चढ़ा कर जोश देना चाहिए। नरम पड़ जाने पर उनको चार सेर बूरे की चाशनी में डाल देना चाहिए।

नीबू के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें लिखी जा सकती हैं किन्तु अधिक लिखना अनावश्यक जान पड़ता है। नीबुओं का उपयोग चतुर गृहस्थों के घरों में तरह-तरह से होता है। यहाँ पर उनके सम्बन्ध में थोड़ी सी बातों का वर्णन कर दिया गया है जो इतना ही पर्याप्त है।

नारंगी

नारंगी के पेड़ अधिकतर सभी देशों में पाये जाते हैं भारतवर्ष में, खास देश धूलिया और पूना में नारंगी के बा अधिक हैं। मोज़ाबीक द्वीप से जो नारंगी आती है, वह अधि अच्छी और उपयोगी कही जाती है।

नारंगी का रस और छिलका—दोनों ही बड़े काम के हो हैं। उसका रस खाने के काम में आता है। और उसका छिलक मुँह के मुँहासों आदि को दूर करने के लिए, लगाय जाता है।

नारंगी दो प्रकार की होती है मीठी और खट्टी, दोनों गुणों में अधिक अन्तर नहीं होता। हाँ कोई अधिक खट्टी होत है। उसमें कुछ अन्तर पाया जाता है दोनों प्रकार की नारंगिये का गुण इस प्रकार है—

गुण—

मीठी नारंगी—इसकी गंध मनोहर होती है, भारी होने के कारण कुछ कठिनाई में पचती है। उसका स्वाद कुछ खट्टा पन लिए मीठा होता है। नारंगी का गुण वीर्य का बढ़ाना और वात का नाश करना है।

खट्टी मिट्ठी नारंगी—यह कफ़ को बढ़ाती है, पित्त को उत्तेजना देती है। खाने पर कठिनाई से पचती है। कुछ दस्ता वर भी होती है। स्वाद इसका खट्टा मिट्ठा मिला हुआ होता है। यह वात को शान्त करती है, इसकी प्रकृति उष्ण और मधुर होती है।

खट्टी नारंगी—खट्टी नारंगी हृदय के लिए शक्ति वर्द्धक है। शरीर को बल प्रदान करती है। प्रकृति में विशद, भारी और रुचिपूर्ण होती है। यह सारक कुछ उष्ण और सुस्वादु भी होती है। साधारणतया वात, श्रम और पीड़ा का नाश करती है।

उपयोग—

जो नारंगी बहुत खट्टी होती है, वह खटाई का भी काम देती है। लोग नीबू के स्थान पर खट्टी नारंगी का रस दाल में डालते हैं। खट्टी होने के कारण ही कुछ लोग उसकी कढ़ी भी बनाते हैं। उसके द्वारा कढ़ी बनाने की रीति निम्न लिखित है—

नारंगी की कढ़ी—पहले कुछ खट्टी नारंगियों का रस निचोड़ लिया जाता है। उस रस में, आधा छटाक बूरा, एक तोला अदरख, दो आमा भर ज़ीरा, चार बड़ी इलायची को लेकर महीन पीसकर और छान कर डाल देना चाहिए और पीछे से दालचीनी, हींग का बघार दे देना चाहिए। एक उबाल आ जाने पर उसे उतार लेना चाहिए।

चिपाबिल

चिपाबिल के पेड़ कोंकण, कर्नाटक और गोवा की ओर अधिक होते हैं। इसके फल नारङ्गी के समान होते हैं और देखने में बड़े सुन्दर मालूम पड़ते हैं।

चिपाबिल के बीजों का तेल निकाला जाता है। यह तेल खाने और औषधियों में डालने के काम में आता है। इस का तेल बड़ा उपयोगी और गुणदायक होता है। खाने में अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। चिपाबिल में खटाई होती है, इसलिए भारत के दक्षिण, गुजरात और कर्नाटक में, जहाँ इसकी उत्पत्ति होती है, खटाई के लिये दाल और शाक में डाला जाता है। इससे खटाई आ जाने के कारण ये चीजें बड़ी स्वादिष्ट बन जाती हैं। मोम की जो मोमबत्तियाँ बनाई जाती हैं, वे, मोम में इस तेल के मिलाने से ही बनाई जाती हैं।

गुण—

कच्चा चिपाबिल—यह खाने में खट्टा और गर्म होता है वात का नाश करता है। कफ़ को बढ़ाता है और पित्त को उत्पन्न करता है। खाने में फीका किन्तु रुचिकारक होता है। अग्नि को उद्दीप्त करता है। वातोदर, वात और अतिसार में फायदा करता है।

पक्का चिपाबिल—भारी और मलरोधक होता है। खाने में चरपरा, कषेला और हलका होता है। इसकी प्रकृति थोड़ी कुछ उष्ण और रोचन होती है। कफ़ को बढ़ाता है और वात को उत्पन्न करता है। प्यास और बवासीर को शान्त करता

है। संग्रहणी, गुल्म और शूलादि रोगों पर लाभ करता है। हृदय के रोगों को मिटाता है, और कृमि को दूर करता है। अग्नि का उद्दीपन करता है, खट्टा और फीका होता है।

उपयोग—

पिपारमिंट और उसका तेल—दोनों ही बड़े काम के होते हैं। ये शरीर की भिन्न-भिन्न व्याधियों और बीमारियों में काम आते हैं और बड़ा लाभ पहुँचाते हैं। उसके उपयोग की साधारण बातें नीचे दी जाती हैं।

अजीर्ण हो जाने पर—प्रायः अधिक घी खा लेने अथवा अन्य किन्हीं कारणों से अजीर्ण हो जाता है तो पिपारमिंट का लोग प्रयोग करते हैं, इसका काढ़ा बनाकर पीने से तुरन्त लाभ होता है।

जलन होने पर—हाथ की हथेली और पैर के तलुओं में जलन होने पर पिपारमिंट का तेल लगाने से बड़ा लाभ होता है और जलन शान्त हो जाती है। इस प्रकार के कष्टों के लिए पिपारमिंट का तेल अत्यन्त प्रसिद्ध और उपयोगी होता है।

होठों के फटने पर—सर्दी के दिनों में और तेज़ हवा के चलने पर प्रायः होठ और मुख फटने लगते हैं, कुछ लोगों को तो शीतकाल में इससे बड़ा कष्ट होता है। इसके लिए पिपारमिंट का तेल बड़ा उपयोगी और तुरन्त फायदा पहुँचाने वाला होता है। इसका तेल लगाने से हाथ पैर, होठ और मुख का फटना बन्द हो जाता है। सर्दी के दिनों में जो लोग इस तेल को लगाते रहते हैं, उनको यह कष्ट नहीं होता। यह बदन को चिकना और मुलायम रखता है।

हड्डियों की पीड़ा पर—हड्डियों की पीड़ा बड़ी बुरी होती है। इस पीड़ा में किसी प्रकार चैन नहीं मिलती। इसके लिए

खिपाखिस के पत्तों को पीस कर गर्म करना चाहिये और गर्म-गर्म बाँधना चाहिये, इससे हड्डियों की पीड़ा बहुत जल्दी अच्छी हो जाती है।

शीत पित्त पर—खिपाखिस के फलों को पाव-भर पानी में डालकर और उसमें ज़ीरा और शक्कर मिलाकर पीने से लाभ होता है।

आलूबुखारा

आलूबुख़ारा के पेड़ फ़ारस, ग्रीस और अरब की ओर बहुत अधिक होते हैं। हमारे देश में भी आलूबुखारा होता है किन्तु उतना नहीं। ऊपर से देखने पर आलूबुखारा मुनक्का की भाँति मालूम पड़ता है किन्तु भीतर से पीला होता है। हमारे देश में यह बुखारा की ओर से अधिक आता है, इसीलिए इसका नाम आलूबुखारा है।

आलूबुखारा, बादाम की तरह का ही होता है परन्तु उससे कुछ छोटा होता है। यह खाने में मधुर और रुचिकर होता है और पाचक भी होता है। साधारणतया लोग इसको चटनी आदि बनाने में, प्रयोग करते हैं। वैद्य लोग उससे औषधि का भी काम लेते हैं। आलूबुख़ारा उपयोगी और लाभकारक फल है।

गुण—

आलूबुख़ारा—इसको खाने से भोजन पचता है और मल साफ़ हो जाता है। यह कलेजा और हृदय के लिए लाभकारक होता है। प्रकृति इसकी भारी और शीतल होती है। यह मल को बाँधता है और दस्तावर होता है। इसकी तासीर गर्म और कफ़ पित्त को नाश करता है। स्वाद में कुछ खट्टा किन्तु खाने में मधुर, मुख प्रिय और रुचि को उत्पन्न करने वाला होता है। प्रमेह, गुल्म, बवासीर और रक्त-वात में आलूबुखारा फ़ायदा करता है।

पका हुआ आलूबुख़ारा—खाने में मधुर और भारी होता है।

यह कफ़ को उत्पन्न करता है। पित्त को बढ़ाता है। प्रकृति में यह गर्म और रुचिकारक होता है। खाने में बड़ा प्रिय लगता है। यह धातु की वृद्धि करता है। प्रमेह, बवासीर को लाभ करता है और ज्वर तथा वात को शान्त करता है।

उपयोग–

मल बद्धता पर—इसकी प्रकृति दस्तावर होती है। इस लिए मल साफ न होने पर वैद्य आलूबुख़ारा को पानी में घिसकर पिलाते हैं। इससे टट्टी साफ़ होती है और पेट हलका होजाता है।

मुख के सूखने पर—मुख केसूखने पर आलूबुख़ारा को मुँह में रख कर उसका रस चूसने से मुँह में सूखापन नहीं रहता।

आलूबुख़ारे की चटनी—पहले इसको पानी में भिगो देते हैं और भलीभाँति भीग जाने पर उसको मसल कर पानी में गूदा निकाल लेते हैं तथा उसकी गुठली फेंक देते हैं। उसके बाद नमक, सूखा पुदीना और कालीमिर्च को पीस कर उसमें मिला देते हैं।

दूसरी विधि—आलूबुखारा, लालमिर्च, ज़ीरा, हींग, धनियाँ और नमक को नीबू के रस में पीसते हैं। ज़ीरा और हींग को भूनकर मिलाते हैं। यह चटनी बड़ी स्वादिष्ठ बन जाती है।

आलूबुख़ारे की चटनी बड़ी उपयोगी और लाभकारक होती है। इसके खाने से मुख का स्वाद अच्छा होता है, रुचि बढ़ती है और खाने के पश्चात् खाना हज़म होजाता है। इसमें यह विशेषता है कि यह किसी को हानि नहीं पहुँचाती। यहाँ तक कि बीमारों तथा बीमारी से उठे हुए स्त्री-पुरुषों को भी दी जाती है।

अंगूर

फलों में अंगूर का नाम प्रसिद्ध है। यह अपने देश में तो पैदा होता ही है, अन्य देशों से बहुत अधिक आता है। विदेशों से जितने भी फल अपने देश में आते हैं, उनमें सबसे अधिक अंगूर ही आता है। अपने देश में प्रान्तिकता के अनुसार अंगूर के भिन्न भिन्न नाम हैं, परन्तु हिन्दी में ही अंगूर के कितने ही नाम लिए जाते हैं, अथवा यों कहा जाय कि उसकी अनेक किस्में हैं। किसमिस, मुनक्का, अंगूर, बेदाना आदि उसके कई एक नाम अथवा उसकी किस्में हैं।

अंगूर अपने देश में, काश्मीर, पंजाब और बिलोचिस्तान प्रान्त के क्वेटा आदि में बहुत पैदा होता है। अंगूर की पैदावार ऊँचे स्थानों में ही होती है। किन्तु काश्मीर का अंगूर सब से उत्तम होता है।

अंगूर दो प्रकार का होता है, एक तो दानेदार और दूसरा बिना दानेदार। बिना दाने का, अंगूर सूखकर किसमिस हो जाता है और दानेदार अंगूर सूखकर दाख हो जाता है। इस प्रकार किसमिस, दाख, मुनक्का और अंगूर में साधारणतया एक ही गुण होता है। अंगूर ताज़ा खाने में बड़ा स्वादिष्ट और रुचि पूर्ण होता है। इसका रस मीठा और लाभकारी होता है।

साधारणतया लोगों का विश्वास होता है कि अंगूर खाने से मनुष्य की शक्ति बढ़ती है किन्तु यह विश्वास गलत है। अंगूर से शरीर की शक्ति नहीं बढ़ती। बरन् उसके रस से यकृत शुद्ध होता है और उसकी क्रिया को सहायता मिलती है। इसलिए अंगूर के द्वारा क्षुधा की वृद्धि होती है। अंगूर के

खाने से शरीर में रक्त बढ़ता है, रुधिर शुद्ध होकर अपनी गति में स्फूर्ति प्राप्त करता है। इसके खाने से किसी को हानि नहीं होती। बालकों से लेकर, बूढ़ों तक सभी बड़ी रुचि के साथ अंगूर खाते हैं। इससे स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। शरीर का सौन्दर्य बढ़ता है।

अंगूर के द्वारा खाने की अनेक चीजें बनाई जाती हैं। इसका मुरब्बा बनता है, जो बड़ा रुचिपूर्ण, शक्तिवर्द्धक होता है, खाने में पाचक होता है। अंगूरों का शरबत बनाया जाता है, यह शरबत शीतल और रक्त बढ़ाने वाला होता है। गर्मी के दिनों में इसके सेवन से बड़ा लाभ होता है। शरीर की जलन शान्त होती है, बदन पर प्रत्येक समय स्फूर्ति रहती है। चेहरा हर समय हँसता हुआ दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त अंगूरों से शराब तैयार की जाती है। यह शराब, सभी प्रकार की शराबों में अत्युत्तम होती है। शराबों में अंगूरी शराब का नाम प्रसिद्ध है।

अंगूरों की चटनी भी बनाई जाती है, जो बड़ी ज़ायकेदार और उपयोगी होती है। उसके खाने से अन्य भोज्य पदार्थ भी सुरुचिपूर्ण और स्वादिष्ट जान पड़ते हैं। खाना हज़म होकर फिर शीघ्र ही भूख लगती है।

शरीर को पालने में अंगूर से अधिक उपयोगी और कोई फल नहीं होता। जहाँ पर यह पैदा होता है, वहाँ पर मानो, मनुष्य के जीवन के लिए सुधा उत्पन्न होती है। यू० पी० में उत्पन्न न होने के कारण अंगूर तेज़ बिकता है फिर भी यह इतना लाभकारक होता है कि पैसे वाले, तथा समर्थ व्यक्ति उसे खरीद कर खाते हैं। बिना मौसिम जो अंगूर मिलता है यह भाव में बहुत तेज़ होता है किन्तु फसल पर अंगूर सब जगह करीब करीब सस्ता हो जाता है।

गुण—

पका हुआ अंगूर—कुछ दस्तावर होता है, प्रकृति में शीतल और नेत्रों के लिए हितकारी होता है। इससे स्वर शुद्ध होकर, तीव्र होता है। इसका स्वाद मीठा, अत्यन्त मनोहर और रुचिकारक होता है। इसके खाने से मल और मूत्र साफ़ होता है। वीर्य की वृद्धि होती है। किञ्चित कफ़ उत्पन्न करता है। शरीर को पुष्ट करता है। रुचि को बढ़ाता है। तृष्णा और ज्वर को शान्त करता है। श्वास-रोग और वात-रोग का नाश करता है। मूत्र कृच्छ्र, रक्त पित्त का दमन करता है। मोह और दाह का शमन करता है और शोष आदि रोगों में बड़ा लाभ पहुँचाता है।

कच्चा अंगूर—भारी और खट्टा होता है। रक्त पित्त उत्पन्न करता है। फ़क़ुया और कुछ उष्ण होता है। साधारणतया रुचिकारक होता है। अग्नि को बढ़ाता है।

अंगूर—खाने में मीठा और कोई कोई कुछ खट्टापन लिए होता है। तृषा और रक्त पित्त का नाश करता है। श्रम को मिटाता है। खाने से तृप्ति होती है और शरीर पुष्ट होता है।

अंगूर—धातु को बढ़ाता है। शोष का नाश करता है, प्यास को हरता है। वात को दूर करता है। वमन को शान्त करता है। अंगूर सुरस मधुर और वीर्य प्रद होता है। ज्वर और कफ़ को दूर करता है। मल को शुद्ध करता है।

अंगूर—कुछ स्थानों का अंगूर मीठा और कुछ खट्टा होता है। किसी क्षार के साथ खाने से, पित्त, वात और कफ़ का नाश करता है। रक्त से उत्पन्न हुए रोगों को, अक्षत और शोष को मिटाता है। श्वास और खाँसी को दूर करता है।

अंगूर—प्रकृति में शीतल और हृदय के लिए हितकारी है। अंगूर के खाने से वीर्य की वृद्धि होती है। आत्मा को शान्ति मिलती है। श्रम और दाह का शमन होता है। श्वास और खांसी के लिए लाभ प्रद होता है। कफ, पित्त और ज्वर को मिटाता है। हृदय की व्यथा को शान्त करता है।

किसमिस—खाने में मधुर और शीतल होती है। वीर्य की वृद्धि करती है। रुचि को बढ़ाती है, किंचित खट्टी होती है। श्वास, खाँसी, ज्वर और हृदय की पीड़ा में फायदा करती है। रक्त पित्त, स्वर भेद, तृषा, वात और मुख के कड़ुवेपन को दूर करती है।

उपयोग—

प्यास को रोकने में—बुखार में जब प्यास अधिक होती है और पानी पीने से शान्त नहीं होती तो काली मिर्च और नमक के साथ मुनक्का देने से प्यास रुक जाती है।

मल की रुकावट में—जब किसी मरीज या निर्बल आदमी को कोष्ठबद्धता की शिकायत होती है, और उसे दस्त नहीं होता, उस अवस्था में उसकी बीमारी और कमज़ोरी के कारण उसको कोई जुलाब नहीं दिया जा सकता। इसलिए मुनक्का खिलाकर ऊपर से दूध पिला दिया जाता है। अथवा दूध में मुनक्कों को कुछ देर तक पकाकर, वह दूध पिला दिया जाता है। इससे पेट हलका हो जाता है और दस्त भी साफ़ हो जाता है।

अंगूर का मुरब्बा—चुने हुए अंगूरों को बाँस की बहुत पतली तीलियों से छेद डालते हैं और उसके बाद शक्कर की चाशनी में उन अंगूरों को छोड़ देते हैं। अंगूर का मुरब्बा बनाते समय इस बात का ख्याल रखना पड़ता है कि अंगूर गल न जाँय।

अंगूर की चटनी—इसकी चटनी बड़ी सुन्दर और स्वादिष्ट होती है। इसके बनाने में कोई कठिनाई नहीं होती। अंगूरों को पीसकर उसमें जीरा, काली मिर्च, पुदीना और नमक मिला दिया जाता है।

इमली

इमली भारतवर्ष में तो होती ही है, अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के अन्यान्य देशों में भी बहुतायत से पाई जाती है। इसके वृक्ष बहुत बड़े-बड़े होते हैं और आठ-दस वर्ष के बाद इसमें फल लगने आरम्भ हो जाते हैं। इमली चैत के महीने में पककर गिरने लगती है। इसके पहले यह कच्ची रहा करती है। फागुन के दिनों में यह कुछ भीतर से पक जाती है और उसका कच्चापन मिट जाता है। उन दिनों में भी यह खाई जाती है। कच्ची इमली बहुत अधिक खट्टी होती है। गदर होने पर उसकी खटाई कम हो जाती है।

पकी हुई इमली सूखी खाई जाती है। यह खाने में मीठी होने के साथ-साथ खट्टी भी होती है। कुछ वृक्षों की इमलियाँ पक जाने पर बहुत कम खट्टी मालूम होती हैं लेकिन कुछ पेड़ों की इमली पकने पर भी काफ़ी खट्टी रहती हैं।

इमली के पेड़ देहातों में अधिक होते हैं। गाँव के रहने वाले लोग जब इमली कच्ची होती है तभी से उसका खाना आरम्भ कर देते हैं। खट्टी होने के कारण, दाल, तरकारी आदि में डाली जाती है। गदर इमली की खटाई बड़ी स्वादिष्ट और रुचिकारक होती है। इसकी चटनी बड़ी अच्छी बनती है।

पकी हुई इमली खाने में बड़ी ज़ायकेदार होती है। खट्टी होने के कारण यह अधिक नहीं खाई जाती। फिर भी किसान और मज़दूर सूखी खाकर कभी-कभी अपनी भूख मिटाते हैं। पकी हुई इमली से खाने की बहुत-सी चीज़ें बनती

हैं। फसल के दिनों में बहुत सी इमली इकट्ठा करके लोग अपने घरों में रख छोड़ते हैं और उसके भीतर का बीज जिसको चिया कहते हैं निकालकर गूदे के बड़े-बड़े लड्डू-से बाँध लेते हैं। लड्डू बाँधते समय बारीक पिसा हुआ नमक मिला लेने से इमली में कीड़े नहीं लगते।

पकी हुई इमली का पना बड़ा अच्छा बनाया जाता है। उसका स्वाद बड़ा मनोहर होता है। यह पना रोटी और भात के साथ खाया जाता है। इमली के बीज, चिया खाने के भी काम में आते हैं। गरीब लोग उनको सेंककर खाते हैं। इसके सिवा चियों का तेल भी निकाला जाता है। यह तेल कहीं कहीं पर काम में भी लाया जाता है किन्तु प्रायः लोग उसे बेकार समझते हैं। किन्तु लोगों का यह समझना बहुत अधिक सही नहीं होता।

गुण—

कच्ची इमली—बात का नाश करती है। खाने में बहुत अधिक खट्टी होती है। कफ को बढ़ाती है और पित्त को उत्पन्न करती है। कमज़ोर तथा बीमार आदमियों को कच्ची इमली के खाने से खाँसी आने लगती है।

पक्की इमली—खाने में पाचक होती है। मन्दाग्नि को मिटाती है। भूख पैदा करती है। इसकी प्रकृति बहुत गर्म होती है। इसके खाने से कफ और बात शान्त होता है। इसका स्वाद खट्टा मिला हुआ मिट्ठा होता है।

नई इमली—पकने के पहले जो इमली होती है उसमें खटाई बहुत अधिक होती है। नई इमली और कच्ची इमली में अन्तर होता है। नई इमली से मतलब पकी इमली से होता

है। नवीन इमली बहुत अधिक खट्टी और कपेली होती है। इसके खाने से वात और कफ़ बहुत उत्पन्न होता है।

इमली का क्षार—यह इमली को जलाकर बनाया जाता है। इसका यह गुण है कि मन्दाग्नि को मिटाता है और शूल का नाश करता है। इमली का क्षार बड़ा उपयोगी होता है।

पकी इमली का रस—यह खाने में खट्टा और मीठा होता है। रुचि उत्पन्न करता है। ज़ायकेदार और मधुर होता है। यह व्रण का नाश करता है और शरीर में किसी प्रकार की सूजन तथा व्रण में इसके रस का लेप करने से बहुत लाभ होता है।

इमली का सार—यह खाने में जलन पैदा करता है। कफ़ को बढ़ाता है। वात का नाश करता है। बहुत अधिक खट्टा होता है। यदि इसके सार में बराबर शक्कर मिला ली जाय तो यह जलन, पित्त और कफ़ को नाश करता है।

पुरानी इमली—वात और पित्त को बढ़ाती है। खाने में खटमिट्ठी और ज़ायकेदार होती है।

सूखी इमली—यह हलकी और पाचक होती है। इसका स्वाद खट्टा और मिट्ठा होता है। यह भ्रम, प्यास और कृमि को नाश करती है।

इमली का पना—जलन और कफ़ पैदा करता है। खाने में खट्टा होता है किन्तु वात का नाश करता है। शक्कर मिला कर खाने से दाह, पित्त और कफ़ को मिटाता है। खाने में स्वादिष्ठ और रुचिकारक हो जाता है।

उपयोग—

आँखें दुखने पर—इमली की हरी पत्तियों को अण्डे के पत्ते में बाँधकर ऊपर से कपरौटी करके अग्नि में गरम करना चाहिए। उसके पश्चात् इन पत्तियों का रस निकालकर उसमें

भूनी हुई फिटकरी और चना भर अफ़ीम तांबे के बर्तन में घोटना चाहिए और इस प्रकार तैयार हो जाने पर कपड़ा भिगोकर आँखों पर रखना चाहिए।

भूख कम लगने पर—इमली के पत्तों की चटनी बनाकर खाने से रुचि बढ़ती है। भूख लगती है और खाना हज़म होता है।

भंग के नशे पर—इमली को पानी में गलाकर और उसका गूदा उसमें मसलकर भंग के नशे में पिलाने से बहुत जल्दी उतर आता है।

अरुचि और पित्त पर—जो इमली अन्दर से पक गई हो और जिनका गूदा मोटा मोटा हो, उस प्रकार की इमली लेकर पानी में भिगो देना चाहिए और उनके भीग जाने पर उनको मसल कर उसमें शक्कर, इलायची के दाने, लौंग, कपूर और काली मिर्च मिलाकर बार-बार उसका कुल्ला करना चाहिए। इससे अरुचि का नाश होता है और पित्त शांत होता है। अरुचि को मिटाने के लिए यह बड़ा लाभकारी होता है।

कब्ज़ और पित्त पर—एक सेर इमली को लेकर दो सेर पानी में भिगो देना चाहिए और कम से कम चार पहर तक भीग जाने के बाद, उसे चूल्हे पर चढ़ा देना चाहिए। जब आधा पानी जल जाय तो उसमें दो सेर शक्कर की चाशनी बनाकर मिला देना चाहिए। इस प्रकार बन जाने पर दो तोला से लेकर पाँच तोला तक इसका शर्बत बनाकर पीना चाहिए। कब्ज़ वालों को रात के समय और पित्त वालों को प्रातःकाल पीना चाहिए।

इमली की चटनी—पक्की इमलियों को भिगो देना चाहिए और भीग जाने पर हाथ से उनको मसल लेना चाहिए।

इसके बाद पोदीना, मेथी, धनिया, ज़ीरा और हींग भूनकर नमक तथा लाल मिर्च को पीसकर उसमें मिला देना चाहिए। यह चटनी बड़ी स्वादिष्ट बनती है।

इमली का मुरब्बा—पकी हुई इमली आध सेर लेकर उनके बीज निकाल देना चाहिए। फिर उन इमलियों को पानी में उबाल कर पूरे की चाशनी में मुरब्बा बना लेना चाहिए। यह खाने में पाचक और स्वादिष्ट होता है।

इमली की पकौड़ी—इमली को भिगोकर उसका पना बना लेना चाहिए। इसके बाद उसमें बेसन की पकौड़ी बनाकर डाल देना चाहिए और नमक लाल मिर्च और भुना हुआ ज़ीरा पीसकर मिला लेना चाहिए।

अनार

भारतवर्ष में अनार सर्वत्र पाया जाता है किन्तु कन्धार में होने वाला अधिक प्रसिद्ध है। अरब में भी अनार बहुत होते हैं। यह तीन प्रकार का होता है। मीठा, खटमिट्ठा और खट्टा। अनार खाने में अत्यन्त रुचिकर और शरीर को बल देने वाला होता है। इसमें यह विशेषता है कि निर्बल और सबल—दोनों ही खा सकते हैं। रोगी मनुष्यों को भी अनार लाभ पहुँचाता है और किसी प्रकार की हानि नहीं करता। सबल और नीरोग मनुष्य भी इसको खाकर लाभ उठाते हैं।

अनार के खाने से शरीर में रक्त बढ़ता है। स्फूर्ति उत्पन्न होती है और बल प्राप्त होता है। जो लगातार अनार खाते हैं उनके शरीर का रंग लाल हो जाता है और मुखाकृति पर तेज आ जाता है। यह खाने में अत्यन्त रसीला और स्वादिष्ट मालूम होता है। इसको बच्चे से लेकर बुड्ढे तक बड़ी रुचि और प्रेम के साथ खाते हैं। अनार के रस का पुष्टिकारक पाक बनाया जाता है। इस पाक को लोग अनार-पाक कहते हैं।

गुण—

मीठा अनार—त्रिदोष नाशक होता है, प्यास, जलन, बुखार को दूर करता है। हृदय के रोगों को लाभ पहुँचाता है। गले और मुख के सभी रोगों को दूर करता है। इसके खाने से शान्ति मिलती है। वीर्य बढ़ता है। यह हलका कुछ कषैला और मल को रोकने वाला होता है। शरीर का बल और उत्ते-जना प्रदान करता है।

अनार—हृदय के लिए लाभकारी होता है। यह खट्टा और कुछ गरम होता है। वात को नाश करता है। मल को रोकता है, अग्नि को तेज करता है। प्रकृति में कपेला तथा कफ और पित्त को दूर करने वाला है।

अनार—मीठा अनार, शक्तिवर्धक और त्रिदोष नाशक होता है और खट्टा अनार, वात पित्त का नाश करता है, बुख़ार को शान्त करता है, खाने में रोचक होता है, प्रकृति में पाचक और हलका होता है। अग्नि को तेज करता है।

पक्का अनार—बल बढ़ाता है, पित्त का नाश करता है। वात को शान्त करता है, खाने में हलका और शीतल होता है। खून की खराबी, किसी प्रकार की जलन, मूर्छा और प्यास को दूर करता है। अनार, शरीर की निर्बलता को दूर करता है, अजीर्ण को मिटाता है, भूख को पैदा करता है, रुचि को बढ़ाता है। ज्वर, वमन में फायदा करता है। यह खाने में अत्यन्त मीठा और वीर्य को बढ़ाने वाला होता है किन्तु कफ की वृद्धि करता है।

नारियल

नारियल को गरी और खोपरा भी कहते हैं। यह कर्नाटक, कालीकट और बंगाल में अधिक पैदा होता है। नारियल का पेड़ चालीस पचास हाथ तक ऊँचा होता है। सात आठ वर्ष के बाद इसमें फल लगने आरम्भ होते हैं। नारियल के भीतर का जितना अंश खाने योग्य होता है वह गरी या खोपरा कहलाता है। इसका छिलका बहुत सख्त होता है उसको तोड़ने पर एक बड़ा गोला सा निकलता है, यही गरी का गोला कहलाता है। छिलके के सहित लोग उसको नारियल कहते हैं।

गरी खाई जाती है। इसको बारीक कतर कर मिठाइयों और पकवानों में भी डाला जाता है। गरी गोले का तेल निकाला जाता है। उसको लोग खाते हैं, चिराग में जलाते हैं और सिर के बालों में लगाते हैं। इसका तेल लकड़ी की बनी हुई चीजों में लगाया जाता है। साबुन बनाने के काम में भी इसका प्रयोग होता है। तेल निकाल लेने के बाद जो खली रह जाती है वह जानवरों को खिलाई जाती है।

गुण—

नारियल—यह खाने में मीठा, भारी, चिकना और शीतल होता है। इससे हृदय को बल प्राप्त होता है। शरीर को यह पुष्ट करता है और रक्त पित्त को दूर करता है।

नारियल—यह वीर्य को बढ़ाता है, कठिनाई से हजम होता है। बस्ति का शोधन करता है। इसके खाने से शरीर बलवान् और पुष्ट होता है। नारियल खाने में अत्यन्त स्वा-

स्निग्ध किन्तु कफ़ को बढ़ाने वाला होता है। रक्त के दोष और जलन को शान्त करता है।

नारियल—खाने में रुचिपूर्ण होता है। हृदय को शक्ति देता है। पित्त को नाश करता है। पचने में भारी होता है, अग्नि का नाश करता है और कामदेव की शक्ति को बढ़ाता है।

कोमल नारियल—यह चिकित्सा में बहुत काम आता है। विशेषकर पित्त के बुख़ार को दूर करता है, दूषित रक्त की बीमारियों को मिटाता है। प्यास को शान्त करता है। वमन, दाह और रक्त पित्त से उत्पन्न हुए सभी रोगों में फ़ायदा करता है।

पक्का नारियल—यह जलन को बढ़ाता है। पित्त को पैदा करता है, वीर्य की वृद्धि करता है, मल को रोकता है। इसके खाने से रुचि की वृद्धि होती है, अग्नि तेज़ होती है, शरीर में बल बढ़ता है। यह खाने में मीठा मालूम होता है।

सूखा नारियल—यह खाने से बड़ी कठिनाई में पचता है। शरीर में दाह उत्पन्न करता है। यह भारी और स्निग्ध होता है, मल को रोकता है, शरीर में बल और वीर्य की वृद्धि करता है। यह रुचि को बढ़ाने वाला होता है।

नारियल का दूध—बल को बढ़ाता है, रुचि को पैदा करता है खाने में भी भारी और पाचक होता है। इससे वीर्य की वृद्धि होती है, किन्तु शरीर में जलन उत्पन्न होती है। यह कुछ गरम तथा वात, कफ़, गुल्म एवम् खाँसी को लाभ पहुँचाता है।

नारियल का जल—प्यास और पित्त का नाश करता है। खाने में स्वादिष्ट और स्निग्ध तथा शीतल होता है। हृदय को शक्ति देता है, अग्नि को उद्दीप्त करता है, बस्ति का शोधक

करता है। इसके खाने से वीर्य की वृद्धि होती है। नारियल का जल, पित्त के ज्वर को दूर करता है।

नारियल का तेल—इसमें वाजीकरण का गुण होता है। धातु के निर्बल मनुष्यों को लाभ पहुँचाता है। वात पित्त का नाश करता है। मूत्राघात और प्रमेह की बीमारी में बड़ा उपयोगी होता है। खाँसी और श्वास के रोगियों को फ़ायदा पहुँचाता है। राजयक्ष्मा जैसे रोगों के लिए भी बड़ा उपयोगी होता है।

मीठा नारियल—यह खाने में शीतल, मीठा और पुष्टि-कारक होता है। इससे बल की वृद्धि होती है, रुचि उत्पन्न होती है और अग्नि तेज़ होती है। इससे शरीर की कान्ति बढ़ती है। यह कृमि पैदा करने वाला और स्निग्ध होता है। इससे कफ़ की वृद्धि होती है काम की उत्तेजना बढ़ती है, जलन का नाश होता है। मीठा नारियल तृषा, पित्त, परिश्रम, वात और अतीसार को दूर करता है।

उपयोग—

नारियल या गरी अनेक प्रकार की बीमारियों में काम आती है। चूहे के काटने पर—पुरानी गरी को मूली के रस में घिसकर लगाने से तुरन्त लाभ होता है।

भिलावाँ लग जाने पर—गरी को घिसकर या चबाकर लगाने से बड़ी जल्दी फायदा होता है और भिलावे का असर दूर हो जाता है।

खुजली पर—गरी के रस में थोड़ा-सा गंधक डालकर उसको उबालना चाहिए और तेल बन जाने पर उसे उतार लेना चाहिए। शरीर में इस तेल के लगाने से दाद और खुजली का नाश होता है।

खजूर या छुहारा

खजूर या छुहारा भिन्न भिन्न पदार्थ नहीं हैं लेकिन फिर भी लोग खजूर को छुहारे से भिन्न समझते हैं। दोनों एक होते हुए भी भिन्न-भिन्न हैं। बात यह है कि खजूर के जो फल पकने के कुछ पूर्व तोड़कर सुखा लिए जाते हैं वे छुहारे कहलाते हैं। और जो फल पेड़ों पर पकते हैं वे खजूर कहलाते हैं। अरब और ईरान में यह फल बहुत होता है और इसीलिए वहाँ के निवासी खाली छुहारा खाकर अपने कितने ही दिन व्यतीत करते हैं।

छुहारा सूखे फलों में गिना जाता है। इससे शरीर को स्वास्थ्य मिलता है। जो पुष्टकारक खाने के समान बनाए जाते हैं उनमें अन्यान्य सूखे फलों (मेवों) के साथ छुहारा भी डाला जाता है। इसको लोग अलग से भी खाते हैं। इसकी गुठली और इसका गूदा दोनों ही काम के होते हैं। गुठलियों से तेल निकाला जाता है। यह जलाने और दवाओं में डालने के काम में आता है। इसके सिवा गुठली कई प्रकार से दवा के काम पर प्रयोग की जाती है। इसकी गुठली को घिसकर खाने से प्यास की अधिकता तुरन्त रुक जाती है। जब किसी को प्यास की अधिकता होती है और बार बार पानी पीने से भी प्यास नहीं बुझती तो लोग इसी गुठली का उपयोग करते हैं।

छुहारा पुष्टकारक होता है। यह सभी लोग जानते हैं। छोटे और बड़े, सभी लोग बड़े प्रेम से उसको खाते हैं। निर्बल लड़कों को छुहारा दूध में उबालकर खिलाने से बड़ा लाभ होता है।

गुण—

खजूर या छुहारा—खाने में मीठा और स्निग्ध होता है। हृदय को बलवान करता है। यह भारी और शीतल होता है। इसके खाने से तृप्ति होती है, शरीर पुष्ट होता है। वीर्य और बल की वृद्धि होती है। वात-ज्वर का नाश होता है। रक्तपित्त, क्षय तथा वमन (कै) शान्त होती है। प्यास बुझती है। खाँसी तथा श्वास की बीमारी में फ़ायदा करता है।

कच्चा खजूर—इसके खाने से त्रिदोष को शान्ति मिलती है। प्यास की तृप्ति होती है।

खजूर या छुहारा—जलन को दूर करता है खाने में मीठा होता है रक्त और पित्त का निवारण करता है, प्यास को दूर करता है। इसकी प्रकृति शीतल और स्निग्ध होती है, यह कफ और परिश्रम का वमन करता है, शरीर को पुष्ट करता है, इसके खाने से बल और वीर्य बढ़ता है।

उपयोग—

खजूर या छुहारा अनेक प्रकार से दवाओं के काम में आता है। यहाँ पर उसके सम्बन्ध में कुछ मोटी-मोटी बातें नीचे दी जाती हैं जिनसे सर्वसाधारण को लाभ पहुँच सकता है।

खाज पर—छुहारे की गुठलियों को निकालकर उनको जला डालना चाहिए। उसके पश्चात् उसकी राख में कपूर और घी मिलाकर खाज में लगाने से खाज अच्छी होती है और बहुत जल्दी फायदा होता है।

आमवात पर—पाव भर खजूर के फलों को निकालकर पानी में उबालना चाहिए और उसके बाद उस उबले हुए पानी को आमवात के रोगी को पिलाना चाहिए।

जलन पर—थोड़े से खजूर के फलों को पानी में भिगो देना चाहिए उनके गल आने पर पानी में उनको मसल देना चाहिए। इस प्रकार तैयार किया हुआ छुहारे का पानी पिलाने से जलन दूर होती है।

मस्तक की पीड़ा में—चाहे जितनी सिर में पीड़ा होती हो, छुहारे की गुठली को पानी में घिसकर मस्तक में लेप करने से मस्तक की पीड़ा शान्त होजाती है।

प्रदर की बीमारी में—यह बीमारी स्त्रियों के लिए बड़ी भयंकर होती है। छुहारे की गुठलियों को कूटकर और घी में तलकर, गोपीचन्दन के साथ खाने से प्रदर की बीमारी को लाभ होता है और यदि लगातार इसका सेवन किया जाय तो सदा के लिए प्रदर की बीमारी अच्छी होजाती है।

भूख बढ़ाने के लिए—छुहारे का गूदा निकालकर दूध में पकाना चाहिए और जब छुआरों का सत दूध में उतर आवे तो दूध को आग से उतार लेना चाहिए। इसके बाद दूध को गाढ़ा करके छुहारे के गूदे को निकालकर फेंक देना चाहिए। और दूध को पीजाना चाहिए। यह दूध बड़ा पुष्टकारक होता है। इससे भूख भी बढ़ती है और खाना हज़म होता है।

छुहारे से खाने की कितनी ही चीज़ें बनाई जाती हैं जो बड़ी स्वादिष्ठ और बड़ी रुचिकर होती हैं। आवश्यकता समझकर उनकी कुछ बातों का नीचे उल्लेख किया जाता है।

छुहारे का अचार—छुहारे को पानी में भिगोकर गुठली निकाल देना चाहिए। इसके बाद पाव भर किसमिस, आधा सेर अमचूर, पाव भर सोंठ और तीन छटांक निमक को उसमें मिलाकर बढ़िया सिरके में डाल देना चाहिए और आठ-दस दिन तक धूप में सुखाना चाहिए।

छुहारे का मुरब्बा—छुहारे के गूदे को रात भर पानी में भिगोना चाहिए और सवेरे उसको निकालकर बूरे की चाशनी में डाल देना चाहिए। यह खाने में स्वादिष्ट तो होता ही है शरीर को भी पुष्ट करता है और बल को बढ़ाता है।

छुहारे का हलुआ—पाव भर छुहारे को पानी में भिगोकर पीस लेना चाहिए। और एक सेर दूध में उसको डालकर आग पर चढ़ा देना चाहिए। उसको चलाते चलाते जब वह रवादार होने लगे तो पाव-भर घी और पाव भर शक्कर डाल देना चाहिए। इसके सिवा दो माशा केसर, इलायची और कुछ मेवा डालकर दूध का छींटा देते रहना चाहिए। बस हलुआ तैयार हो जायगा।

छुहारे की चटनी—आधा पाव छुहारा लेकर पानी में भिगो देना चाहिए। उसके भीग जाने पर उसको आधपाव किशमिश, आधपाव अदरख, आधी छटाक कालीमिर्च, तीन लालमिर्चे, भुना हुई हींग और जीरा के साथ-साथ पीस कर डाल देना चाहिए और बाद में नीबू का रस मिला लेना चाहिए।

चिरौंजी

चिरौंजी के पेड़ नागपुर, मलाबार प्रान्त के विभिन्न स्थानों और कोंकण तथा प्रायः पहाड़ी प्रदेशों में अधिक पाये जाते हैं। इसमें बहुत छोटे-छोटे फल किन्तु गुच्छे के गुच्छे लगते हैं। फलों के भीतर मटर के समान छोटे-छोटे बीज निकलते हैं, उन्हीं को चिरौंजी कहते हैं।

चिरौंजी एक मेवा है, यह खाने में मीठी, और स्वादिष्ट होती है। यह शरीर को पुष्ट करती है। इसको लोग पकवानों और मिठाइयों में डालते हैं। सर्दी के दिनों में जो पुष्टई के लिए लड्डू आदि बनाये जाते हैं, उनमें अन्यान्य मेवों के साथ चिरौंजी भी डाली जाती है। इसका तेल भी निकाला जाता है, जो शीतल, मधुर और बड़ा उपयोगी होता है।

चिरौंजी जहाँ पर पैदा होती है, वहाँ पर बागों में, जंगलों में इसके बहुत-से पेड़ होते हैं। चिरौंजी के ऊपर का छिलका बड़ा सख्त होता है। उसको तोड़ने पर, उसके भीतर जो चिरौंजी का दाना निकलता है, वह बहुत छोटा, देखने में सुन्दर और खाने में अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। लोग इसको बड़े प्रेम से सूखा भी खाते हैं। चिरौंजी को पेड़ों में तोड़ने और घर लाकर उसे खाने के योग्य फोड़ कर तैयार करने में बड़ा परिश्रम पड़ता है और उसमें समय भी बहुत लगता है।

गुण—

चिरौंजी—खाने में अत्यन्त मधुर, और वृष्य होती है। इसकी प्रकृति शमनकारक तथा भारी होती है। मल को स्तम्भ करती है। कुछ दस्तावर भी होती है। इसके खाने से वीर्य की

वृद्धि होती है। कफ़ की उत्पत्ति होती है। चिरौंजी, बल को बढ़ाती है। खाने में प्रिय होती है। वात का नाश करती है। पित्त, जलन और ज्वर को शान्त करती है। क्षत-रोग, रक्त-विकार आदि रोगों में लाभ करती है।

चिरौंजी की मींगी—अत्यन्त स्वादिष्ट और मधुर होती है। वीर्य को बढ़ाती है, शरीर को पुष्ट करती है, दाह और पित्त का नाश करती है। प्रकृति में शीतल और रुचिकारक होती है।

चिरौंजी का तेल—मधुर होता है, किन्तु प्रकृति में कुछ उष्णता रखता है। कफ़ की उत्पत्ति करता है। पित्त तथा वात को शान्त करता है। शक्ति का वर्द्धन करता है। मस्तिष्क के लिए कुपत पैदा करता है। मस्तक पर मलने से मस्तिष्क के लिए बड़ा उपयोगी होता है।

उपयोग—

शीत पित्त पर—शरीर में शीत पित्त की अधिकता होने पर चिरौंजी को दूध में पीसकर, उसकी मालिश करने से बड़ा लाभ होता है।

चिरौंजी का उबटन—चिरौंजी को पानी में पीस कर, गाढ़ा-गाढ़ा उबटन बनाकर शरीर में मालिश करने से बड़ा लाभ होता है, इससे बदन उज्ज्वल होता है, जलन शान्त होती है, शरीर में कान्ति बढ़ती है। और आत्मा को प्रसन्नता होती है।

चिरौंजी की पट्टी—त्यौहारों में खाने के लिए तथा व्रत के दिन फलाहार करने के लिए, लोग चिरौंजी की पट्टी तैयार करते हैं। यह हलकी और पाचक होती है। इसके बनाने की विधि यह है कि पहले कड़ाही को आग पर चढ़ाकर उसमें

थोड़ा सा घी डाल देते हैं और उसके पक जाने पर उसमें, साफ़ किये हुए चिरौंजी के दाने छोड़ देते हैं, उसके थोड़ी ही देर में उसमें शक्कर छोड़कर पानी का छींटा देते हैं तदुपरांत उसे उतार कर थाल में फैला देते हैं उसके जम जाने पर उसकी पट्टी तैयार कर लेते हैं।

चिरौंजी की बर्फ़ी—चिरौंजी का छिलका निकालकर उसके दाने आधा पाव लेना चाहिए और उसे कड़ाही में डालकर भून लेना चाहिए। इसके पश्चात् आधा सेर शक्कर की चाशनी करके उसी में डाल देना चाहिए और जमा लेना चाहिए।

पकवान, मिठाइयों और खाने के लिए जो लड्डू आदि पुष्टिकारक चीज़ें बनाई जाती हैं, उनमें सर्वत्र चिरौंजी का उपयोग होता है। मेवे की खीर में अन्यान्य मेवों के साथ, चिरौंजी को भी डालते हैं। ये चीज़ें बड़ी रुचिकारक और स्वादिष्ट होती हैं। इनके खाने से शरीर पुष्ट होता है और बल बढ़ता है।

महुआ

महुआ के पेड़ हमारे देश में सभी जगह होते हैं परन्तु गुजरात में इसके वृक्ष बहुत पाये जाते हैं। इसका पेड़, इमली के पेड़ की तरह बहुत बड़ा होता है।

इसके फल दो प्रकार के होते हैं, एक तो उसका फल महुआ होता है और दूसरा जो बादाम की भाँति, किन्तु उससे कुछ बड़ा होता है, उसको गुल्लू कहते हैं। महुआ खाने के काम में आता है और गुल्लू का तेल निकाला जाता है।

महुआ पककर जब पेड़ से गिरता है तो उसका रंग बिलकुल सफेद होता है। उसे लोग बीनकर घरों में लाते हैं और धूप में सुखा डालते हैं। सूख जाने पर इसका रंग लाल तथा कुछ श्याम मिश्रित लाल हो जाता है। यह बहुत गर्म होता है, इसलिए देहात में लोग इसको सुखाकर रख छोड़ते हैं और जाड़े के दिनों में कितने ही तरह से इसको खाने के काम में लाते हैं।

गुल्लू का तेल भी देहातों में बहुत काम में लाया जाता है। उसके ऊपर का छिलका बड़ा सख्त और पतला होता है। उसको फोड़कर लोग छिलका निकाल डालते हैं और उसके भीतर की कोमल गुल्लू धूप में सुखा लेते हैं। उसके बाद, सरसों और तिलों की भाँति, सूखे गुल्लुओं को कोल्हू में पेल-कर लोग उनका तेल तैयार कर लेते हैं। यह तेल भी बहुत गर्म होता है, इसलिए गरीब लोग इसको जाड़े के दिनों में खाने के काम में लाते हैं। जो बहुत गरीब नहीं होते, वे इस तेल को जलाने के काम में लाते हैं। जाड़े के दिनों में यह तेल

थोड़ा सा घी डाल देते हैं और उसके पक जाने पर उसमें, साफ़ किये हुए चिरौंजी के दाने छोड़ देते हैं, उसके थोड़ी ही देर में उसमें शकर छोड़कर पानी का छींटा देते हैं तदुपरांत उसे उतार कर थाल में फैला देते हैं उसके जम जाने पर उसकी पट्टी तैयार कर लेते हैं।

चिरौंजी की बर्फी—चिरौंजी का छिलका निकालकर उसके दाने आधा पाव लेना चाहिए और उसे कढ़ाही में डालकर भून लेना चाहिए। इसके पश्चात् आधा सेर शक्कर की चाशनी करके उसी में डाल देना चाहिए और जमा लेना चाहिए।

पकवान, मिठाइयों और खाने के लिए जो लड्डू आदि पुष्टिकारक चीजें बनाई जाती हैं, उनमें सर्वत्र चिरौंजी का उपयोग होता है। मेवे की खीर में अन्यान्य मेवों के साथ, चिरौंजी को भी डालते हैं। ये चीजें बड़ी रुचिकारक और स्वादिष्ट होती हैं। इनके खाने से शरीर पुष्ट होता है और बल बढ़ता है।

महुआ

महुआ के पेड़ हमारे देश में सभी जगह होते हैं परन्तु गुजरात में इसके वृक्ष बहुत पाये जाते हैं। इसका पेड़, इमली के पेड़ की तरह बहुत बड़ा होता है।

इसके फल दो प्रकार के होते हैं, एक तो उसका फल महुआ होता है और दूसरा जो बादाम की भाँति, किन्तु उससे कुछ बड़ा होता है, उसको गुल्लू कहते हैं। महुआ खाने के काम में आता है और गुल्लू का तेल निकाला जाता है।

महुआ पककर जब पेड़ से गिरता है तो उसका रंग बिलकुल सफेद होता है। उसे लोग बीनकर घरों में लाते हैं और धूप में सुखा डालते हैं। सूख जाने पर उसका रंग लाल तथा कुछ श्याम मिश्रित लाल हो जाता है। यह बहुत गर्म होता है, इसलिए देहात में लोग इसको सुखाकर रख छोड़ते हैं और जाड़े के दिनों में कितने ही तरह से उसको खाने के काम में लाते हैं।

गुल्लू का तेल भी देहातों में बहुत काम में लाया जाता है। उसके ऊपर का छिलका बड़ा सख्त और पतला होता है। उसको फोड़कर लोग छिलका निकाल डालते हैं और उसके भीतर की कोमल गुल्लू धूप में सुखा लेते हैं। उसके बाद, सरसों और तिलों की भाँति, सूखे गुल्लुओं को कोल्हू में पेल-कर लोग उनका तेल तैयार कर लेते हैं। यह तेल भी बहुत गर्म होता है, इसलिए गरीब लोग उसको जाड़े के दिनों में खाने के काम में लाते हैं। जो बहुत गरीब नहीं होते, वे इस तेल को जलाने के काम में लाते हैं। जाड़े के दिनों में यह तेल

घी की भाँति जम जाता है, उस अवस्था में यह तेल जमा हुआ कुछ पीलापन लिए हुए मटमैला होता है।

महुआ, भिन्न भिन्न तरीके से खाने के काम में तो आता ही है, उससे शराब भी बनाई जाती है। पहले इसकी शराब लोग अपने घरों में तैयार कर लिया करते थे, परन्तु अब कुछ समय से इसके प्रतिकूल क़ानून बन जाने के कारण, इसकी शराब बनाना मना हो गया है।

गुण—

महुआ—बहुत गर्म और स्निग्ध होते हैं। खाने में अत्यधिक मीठे होते हैं। मल को बाँधते हैं, बल को बढ़ाते हैं, धातु को उत्पन्न करते हैं। वायु और पित्त का नाश करते हैं। खाँसी, क्षत क्षय तथा राजयक्ष्मा के रोग में फायदा करते हैं।

गुल्लू का तेल—इसकी प्रकृति उष्ण होती है। यह खाने में शक्ति-वर्द्धक होता है। शुक्र को उत्पन्न करता है। शरीर की कान्ति बढ़ाता है। पुष्टकारक होता है। वायु-जनित रोगों को शान्त करता है। स्वाद में मधुर तथा कुछ कषैला होता है। कफ, पित्त-ज्वर का नाश करता है। कहीं-कहीं पर इसको लोग महुआ का तेल कहते हैं।

उपयोग—

साँप के काटने पर—महुए के बीज अर्थात् गुल्लू को पानी में घिसकर अंजन करना चाहिए। इससे विष को शान्ति होती है।

कंठ स ँ पर—महुआ के बीज अर्थात् गुल्लू को पानी में घिसकर पिलाना चाहिए। तुरन्त अपना प्रभाव दिखाता है।

वायु के कारण दर्द पर—शरीर में कहीं पर भी सर्दी-बादी के कारण पीड़ा होने पर या किसी गाँठ या जोड़ में दर्द

होने पर गुल्लू के तेल की मालिश करने पर लाभ होता है। उसकी मालिश करके महुए के पत्ते गर्म करके ऊपर से बाँध देने से और शीघ्र फ़ायदा होता है।

सर्दी के प्रकोप पर—जाड़े के दिनों में सर्दी के लग जाने पर या शरीर में, कहीं पर शीत का प्रकोप होने पर लोग महुआ पकाकर खाते हैं, उससे लाभ होता है।

कटहल

कटहल का पेड़ साधारणतया बड़ा होता है। पाँच वर्ष के बाद कटहल के पेड़ में फल आने लगते हैं। भारतवर्ष में यह सर्वत्र पाया जाता है किन्तु पर्वतीय स्थानों में इसकी पैदावार अधिक होती है। कटहल का फल बहुत बड़ा होता है, यदि कोई कटहल का पेड़ भलीभाँति फला तो उसमें लगभग पाँच सौ कटहल तक एक ही फ़सल में होते हैं।

कटहल का फल कई प्रकार से खाया जाता है, इसका कच्चा फल तरकारी के काम में आता है, इसकी तरकारी लोग बड़ी रुचि से बनाते हैं और खाने में वह स्वादिष्ट होती है। कटहल कच्चा होने पर जब काटा जाता है तो वह भीतर बिल्कुल सफेद होता है। परन्तु जब पक जाता है, तो उसका रंग पीला हो जाता है। पके कटहल की अपेक्षा कच्चे कटहल की तरकारी अधिक अच्छी होती है।

पके कटहल का खाली गूदा लोग खाते हैं। जहाँ पर कटहल अधिक पैदा होता है, वहाँ पर लोग, रोटी-दाल की तरह इसको खाकर तृप्ति का अनुभव करते हैं।

तक कटहल पर ही निर्वाह करते हैं। वे लोग अनाज की भाँति कटहल के गूदे को धूप में सुखा लेते हैं और बहुत-सा अपने अपने घरों में भर लेते हैं। इसके बाद जब उनको, उसे खाना होता है, तो उसे निकालकर काम में लाते हैं, जिस प्रकार लोग अनाज को साफ़ करके पीस लेते हैं और उसके बाद उसकी रोटी बनाते हैं, उसी प्रकार सूखे कटहल के गूदे को भी लोग पीस डालते हैं और फिर उसके आटे की रोटी, पूड़ी या और जो उनके जी में आता है, बनाते हैं। कटहल के गूदे की, वहाँ के लोग खीर और कढ़ी भी बनाते हैं। और गरीब अमीर सब ही लोग उसको खाते हैं। कटहल का छिलका कोई बेकार नहीं करता। अपने यहाँ तो लोग प्रायः उसको फेंक देते हैं परन्तु जहाँ पर यह पैदा होता है, वहाँ लोग इसको बहुत उपयोगी समझते हैं और इसके छिलकों को जानवरों को खिलाते हैं जिससे, जानवर पुष्ट होते हैं। कटहल खाने के पश्चात् पान नहीं खाना चाहिए। लोगों का कहना है कि पान खाने से आदमी का पेट फूल जाता है।

कटहल की दो जातियाँ होती हैं। एक जाति तो यह है जिसके गुणों का उल्लेख ऊपर किया गया है और दूसरी जाति का जो कटहल होता है, वह खाने के काम में नहीं आता। उसके पेड़ की लकड़ी बड़ी मज़बूत होती है।

गुण—

कच्चा कटहल—यह मल को बाँधता है, यह खाने में स्वादिष्ट होता है। त्रिदोष उत्पन्न करता है। रक्त को बढ़ाता है। प्रकृति में भारी कषेला और वादी होता है। कफ़ बढ़ाता है। जलन और पित्त का नाश करता है।

पक्का कटहल—कुछ शीतल होता है, खाने से तृप्ति होती

कटहल

कटहल का पेड़ साधारणतया बड़ा होता है। पाँच वर्ष के बाद कटहल के पेड़ में फल आने लगते हैं। भारतवर्ष में यह सर्वत्र पाया जाता है किन्तु पर्वतीय स्थानों में इसकी पैदावार अधिक होती है। कटहल का फल बहुत बड़ा होता है, यदि कोई कटहल का पेड़ भलीभाँति फला तो उसमें लगभग पाँच सौ कटहल तक एक ही फसल में होते हैं।

कटहल का फल कई प्रकार से खाया जाता है, इसका कच्चा फल तरकारी के काम में आता है, इसकी तरकारी लोग बड़ी रुचि से बनाते हैं और खाने में यह स्वादिष्ट होती है। कटहल कच्चा होने पर जब काटा जाता है तो वह भीतर बिल्कुल सफेद होता है। परन्तु जब पक जाता है, तो उसका रंग पीला हो जाता है। पके कटहल की अपेक्षा कच्चे कटहल की तरकारी अधिक अच्छी होती है।

पके कटहल का खाली गूदा लोग खाते हैं। जहाँ पर कटहल अधिक पैदा होता है, वहाँ पर लोग, रोटी-दाल की तरह इसको खाकर तृप्ति का अनुभव करते हैं। पक जाने पर कटहल तरकारी के काम का तो नहीं रहता परन्तु उसके पके हुए बड़े बड़े बीज की तरकारी बनाई जाती है, ये बीजे, बड़े स्वादिष्ट और सोंधे होते हैं। बीजों को आग में पकाते समय, इनमें छेद कर दिये जाते हैं, नहीं तो ये बड़े ज़ोर से फूटा करते हैं।

बहुत से लोग कटहल के बीजों में मिट्टी लगाकर रख छोड़ते हैं और वर्षा के दिनों में उनको आग में पकाकर खाया करते हैं। कोंकण की ओर बहुत से आदमी, कुछ दिनों

तक कटहल पर ही निर्वाह करते हैं। ये लोग अनाज की भाँति कटहल के गूदे को धूप में सुखा लेते हैं और बहुत-सा अपने अपने घरों में भर लेते हैं। इसके बाद जब उनको, उसे खाना होता है, तो उसे निकालकर काम में लाते हैं, जिस प्रकार लोग अनाज को साफ़ करके पीस लेते हैं और उसके बाद उसकी रोटी बनाते हैं, उसी प्रकार सूखे कटहल के गूदे को भी लोग पीस डालते हैं और फिर उसके आटे की रोटी, पूड़ी या और जो उनके जी में आता है, बनाते हैं। कटहल के गूदे की, वहाँ के लोग खीर और कढ़ी भी बनाते हैं। और ग़रीब अमीर सब ही लोग उसको खाते हैं। कटहल का छिलका कोई बेकार नहीं करता। अपने यहाँ तो लोग प्रायः उसको फेंक देते हैं परन्तु जहाँ पर यह पैदा होता है, वहाँ लोग इसको बहुत उपयोगी समझते हैं और इसके छिलकों को जानवरों को खिलाते हैं जिससे, जानवर पुष्ट होते हैं। कटहल खाने के पश्चात् पान नहीं खाना चाहिए। लोगों का कहना है कि पान खाने से आदमी का पेट फूल जाता है।

कटहल की दो जातियाँ होती हैं। एक जाति तो यह है जिसके गुणों का उल्लेख ऊपर किया गया है और दूसरी जाति का जो कटहल होता है, वह खाने के काम में नहीं आता। उसके पेड़ की लकड़ी बड़ी मज़बूत होती है।

गुण—

कच्चा कटहल—यह मल को बाँधता है, यह खाने में स्वादिष्ट होता है। त्रिदोष उत्पन्न करता है। रक्त को बढ़ाता है। प्रकृति में भारी कषैला और बादी होता है। कफ़ बढ़ाता है। जलन और पित्त का नाश करता है।

पक्का कटहल—कुछ शीतल होता है, खाने से तृप्ति होती

है। यह धातु को बढ़ाता है। स्निग्ध और स्वादिष्ठ होता है। शरीर में माँस बढ़ाता है, कफ उत्पन्न करता है। वीर्य की वृद्धि करता है शरीर को पुष्ट करता है। वात तथा रक्त पित्त का नाश करता है। इसका बीज खाने में मधुर होता है किन्तु गुरु और विष्टम्भक होता है।

पक्का कटहल—मधुर और पुष्टकारक होता है। इसकी प्रकृति भारी और शीतल होती है। यह वात और पित्त का नाश करता है। कफ को बढ़ाता है, तथा वीर्य और बल की वृद्धि करता है। शरीर को पुष्ट करता है और आत्मा को तृप्ति करता है। खाने में स्वादिष्ठ तथा मांसवर्द्धक होता है।

कच्चा कटहल—वादी, कसैला और भारी होता है। वात उत्पन्न करता है किन्तु बल को बढ़ाता है। कफ का नाश करता है।

कटहल के बीजों की मींगी—वीर्य को बढ़ाती है, वात-पित्त का नाश करती है। कफ को वमन करती है और शरीर को पालती है। खाने में स्वादिष्ठ और रुचिकारक होती है।

हरा और पुराना कटहल—मल को अवरोध करता है, खाने में मधुर और बलकारक होता है। प्रकृति में दीपक, गुरु और पाचक होता है।

कटहल का पानी—वृष्य किन्तु मधुर होता है, त्रिदोष का नाश करता है।

उपयोग—

कटहल की तरकारी—इसकी तरकारी बड़ी स्वादिष्ट तथा कामकारी होती है, उसके बनाने का तरीका यह है कि कटहल के ऊपर का छिलका छीलकर निकाल डालना चाहिए और

फिर उसके गूदे को काटकर छोटे छोटे टुकड़े कर डालने चाहिए। उसके पश्चात् उसको उबाल डालना चाहिए। फिर किसी बटलोही में घी डालकर हींग डालना चाहिए, उसकी महक मालूम होने पर गर्म मसाला डालकर उसे भून लेना चाहिए और उसके पश्चात् उबले हुए कटहल को उसमें छोड़ कर छौंक देना चाहिए। उसके घी में भुन जाने पर नमक और थोड़ा-सा पानी छोड़ देना चाहिए, अन्त में पक जाने पर उतार लेना चाहिए।

कटहल का अचार—कटहल का छिलका निकालकर, गूदे के बड़े-बड़े टुकड़े कर लेना चाहिए और फिर उनको जल के साथ उबाल लेना चाहिए। फिर उसको ठंडा करके हलदी, धनियाँ, लालमिर्चा, और नमक पीसकर उसमें गवड़ देते हैं। उसके बाद उसको एक मिट्टी के अच्छे बर्तन में भरकर उसमें कड़ुवा तेल इतना डाल देते हैं कि कटहल के टुकड़े बिल्कुल डूब जाते हैं। इसके बाद उसको नित्य धूप मे रखकर गर्मी पहुँचाई जाती है। जितने ही अधिक दिन बाद उसको खाना आरम्भ किया जाता है, उतना ही वह स्वादिष्ट बनता है। यह अचार बहुत दिनों तक रहता है।

कटहल का अचार साधारणतया एक वर्ष तक चलता है परन्तु कुछ लोग और भी अधिक समय तक उसका प्रयोग करते हैं। कटहल के गूदे को कुछ लोग उबालकर और कुछ लोग बिना उबाले ही उसको मसाले में मिलाकर तेल से डुबो देते हैं। दोनों में अंतर यह होता है कि जो कटहल उबाला नहीं जाता, उसका अचार बहुत दिनों मे खाने के योग्य गलकर तैयार होता है। पीले कटहल का अचार सब से बढ़िया होता है।

केला

भारतवर्ष में जितने भी फल होते हैं, उनमें आम सर्वोत्तम गिना जाता है और आम के बाद लोग केला को स्थान देते हैं। केला प्रायः सभी जगहों में पाया जाता है। लेकिन गोमांतक, कर्नाटक और बरार प्रान्त में केले बहुत पैदा होते हैं। इसकी लगभग बीस जातियाँ होती हैं। जंगलों में जो केले के वृक्ष अपने आप उगते हैं, उनको जंगली केला कहा जाता है। कच्चा और पक्का दोनों तरह से केला खाया जाता है। कच्चे केले की तरकारी बनती है। और पके हुए केले खाए जाते हैं। इसके सिवा पके केलों का रायता भी बनाया जाता है। केले खाने में बड़े स्वादिष्ट होते हैं। इनके खाने से शरीर पुष्ट होता है। भूख शान्त होती है।

जहाँ पर केला बहुत होता है, वहाँ पर लोग इसको सुखाकर बहुत-सा केला जमा कर लेते हैं और उसको अनाज की तरह पर काम में लाते हैं। सूखे हुए केलों को पीसकर आटा बना लेते हैं। उसकी रोटी तथा अन्यान्य चीजें बनाते हैं।

इस प्रकार जो केला सुखाया जाता है, वह कच्चा काट कर ही सुखा लिया जाता है। इसमें शरीर के लिए पोषण शक्ति होती है। और यह प्रायः गोल आलू के समान खाद्य अंश में होता है। केले को खाकर संतोषपूर्वक कोई भी व्यक्ति अपने दिन काट सकता है।

केला की भिन्न भिन्न जातियाँ होती हैं और उनमें भिन्न भिन्न परिमाण में खाद्य अंश होता है। बाज़ार में जो केले बिकते हुए देखे जाते हैं, उनमें चिनिया केले और बटगाँव के

केले बहुत होते हैं। इनमें चटगाँव का केला बहुत प्रसिद्ध है। उसमें खाद्य अंश दूसरों की अपेक्षा अधिक होता है। इसलिए लोग उसी को पसन्द करते हैं। केले के फलों में प्रति शत सत्तर से लेकर अस्सी भाग तक खाद्य अंश होता है।

केला जब सब्ज़ रंग का होता है उसी समय लोग उसे काटकर और सुखाकर अपने घरों में भरने लगते हैं। बहुत कच्चा केला काटना और सुखाना अच्छा नहीं होता। इसलिए कि अधिक कच्चा होने के कारण सुखाने पर उसमें सुगन्ध नहीं पैदा होती।

केले के फलों में काले रंग का कुछ सख़्त हिस्सा होता है। जिस केले में यह काला हिस्सा बना रहता है उसको देख कर यह मालूम हो जाता है कि केला अच्छी तरह पका नहीं है अथवा बहुत कच्ची अवस्था में ही काटा गया है।

जो लोग केला को अनाज की भाँति काम में लाते हैं, वे कच्चे केलों का छिलका निकालकर उसके भीतर के हिस्से को टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं और उसके बाद उसको धूप में खूब सुखाते हैं। जब कभी उनको आवश्यकता होती है तो उसको पीसकर और छानकर आटा तैयार कर लेते हैं।

कच्चे केले को कई प्रकार से लोग खाते हैं, उसकी तरकारी बड़ी पुष्टिकारक और आमाशय के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है। कच्चे केले को टुकड़े टुकड़े करके जल में पहले धोते हैं और उसके बाद उसको आग में भूनते हैं। उनके पक जाने पर उसका छिलका निकालकर फेंक दिया जाता है और भीतर का खाने वाला हिस्सा मट्ठा, दही, शक्कर और नमक आदि अपने रुचि के अनुसार भिन्न भिन्न चीज़ों के साथ खाया जाता है। यदि इसके साथ ज़ीरा को भूनकर मिला लिया जाय तो यह और भी उपयोगी और लाभदायक हो जाता है।

पके हुए केले खाने में बड़े स्वादिष्ट और मीठे होते हैं। छोटे-बड़े सभी लोग बड़ी रुचि के साथ उसको खाते हैं। केले की प्रकृति भारी होती है और प्रायः कुछ कठिनता से हज़म होता है। इसलिए जिनकी पाचन शक्ति कुछ निर्बल होती है, उनके लिए उसका व्यवहार करना प्रायः हानिकारक हो जाता है। जिनका स्वास्थ्य अच्छा है और पाचन शक्ति निर्बल नहीं है उनके लिए केला अत्यन्त उपकारी और सुखाद्य है।

पके हुए केले से कॉफ़ी तैयार की जाती है और इसके लिए पहले केले को सुखाया जाता है और उसके बाद उससे वह तैयार की जाती है। इसका स्वाद बड़ा अच्छा होता है और यह कॉफ़ी की भाँति हानिकारक नहीं होती।

पके केले को खाने के पहले कुछ लोग उसमें नीबू का रस मिला लेते हैं जिससे उसका खाद्य अंश और भी अधिक उपयोगी हो जाता है। एवम् उसका अपाचन अंश परिवर्तित हो जाता है। इसको निर्बल मनुष्य भी बड़ी आसानी से पचा सकता है।

गुण—

केले की साधारण फली—यह मधुर और वीर्य को बढ़ाने वाली होती है। कुछ कषेली और शीतल होती है। यह रक्त पित्त का नाश करती है। हृदय को फ़ायदा पहुँचाती है। खाने में रुचिपूर्ण होती है। कफ़ को उत्पन्न करती है और पचने में भारी होती है।

केले की कोमल फली—इसकी प्रकृति शीतल और मधुर होती है। कषैली होने के साथ-साथ रुचिकारक होती है। अम्ल और पित्त का नाश करती है।

केले की मध्यम अवस्था का फल—यह प्यास को दूर

करता है। रक्त पित्त को शान्त करता है। नेत्र-रोग को लाभ पहुँचाता है और प्रमेह, रक्तातिसार तथा ज्वर को दूर करता है। इसकी प्रकृति ग्राही, कड़वी, कपेली और रूखी होती है।

कच्चा केला—मल को रोकता है। यह शीतल और कपेला होता है। वात और कफ़ उत्पन्न करता है। इसके खाने से बल की वृद्धि होती है। शरीर पुष्ट होता है।

पक्का केला—कपेला और मधुर होता है। बल को बढ़ाता है। रक्त पित्त का नाश करता है। मन्दाग्नि पैदा करता है। इसके खाने से वीर्य की वृद्धि होती है, प्यास की शान्ति होती ह, शरीर में कान्ति पैदा होती है, कफ़ का नाश करता है, परन्तु कठिनता से हज़म होता है।

पक्का केला—खाने में मधुर और रुचिकारक होता है। वात का नाश करता है। यह कोमल और शीतल होता है। क्षय, दाह और रक्त पित्त को शान्त करता है। प्रदर के रोग में फायदा करता है। पथरी के रोग को दूर करता है। बल को बढ़ाता है। भोजन से पहले खा लेने से हानि करता है।

पक्का केला—बल को बढ़ाता है। कपेला और मधुर होता है। वीर्य की वृद्धि करता है। इससे शरीर की कान्ति बढ़ती है। खाने में स्वादिष्ट होता है। शरीर में माँस बढ़ता है। कफ़ को उत्पन्न करता है। पित्त-रक्त को दूर करता है। प्रमेह के रोग में फ़ायदा करता है। क्षुधा और नेत्र के रोगों को दूर करता है।

उपयोग—

पागल कुत्ते के काटने पर—जंगल के पके हुए केलों के बीज खाने और उनको पीसकर काटे हुए पर लगाने से बड़ा

लाभ होता है। कुत्ते के विष को दूर करने के लिए इन बीजों में बड़ा गुण होता है।

प्रदर और धातु के रोग में—एक पका हुआ केला, आधा तोला घी के साथ, सुबह शाम आठ दिनों तक लगातार खाना चाहिए और यदि इससे सर्दी मालूम हो तो उसमें चार पाँच बूँद शहद की भी मिला लेनी चाहिए।

पित्त की अधिकता में—पके हुए केले को घी के साथ खाने से पित्त अत्यन्त शीघ्र शान्त होता है।

शरीर की गर्मी और प्रमेह में—केलों का गूदा निकालकर उसे छाया में सुखाना चाहिए और उसके सूख जाने पर उसे पीसकर चूर्ण बना लेना चाहिए। उसके बाद उसमें शक्कर मिलाकर, पानी के साथ सेवन करना चाहिए। इससे बहुत लाभ होता है।

खाने की चीजे—

केले की तरकारी—पहले कच्चे केले का छिलका निकाल कर उसके छोटे छोटे टुकड़े कर डालने चाहिए। फिर एक बटलोही में तेल या घी डालकर उसमें मेथी या हींग से भूनना चाहिए, उसकी महक उठने पर हल्दी, धनिया, लाल मिर्चा पीसकर उसी में डाल देना चाहिए और उसके बाद तरकारी उसमें छोड़ देना चाहिए। उसके भुन जाने पर, उसमें थोड़ा सा दही पानी में घोलकर छोड़ देना चाहिए और नमक छोड़-कर ढक देना चाहिए। पक जाने पर रसादार उतार लेना चाहिए।

दूसरी विधि—केलों को छीलकर टुकड़े टुकड़े कर लेना चाहिए और बटलोही में तेल या घी डालकर हींग को भूनना चाहिए, महक आने पर, गर्म मसाला पीसकर, उसमें

डाल देना चाहिए और उसके बाद तरकारी को धोकर डाल देना चाहिए। थोड़ा-सा घुल जाने पर पानी और नमक डाल-कर उसे ढक देना चाहिए। तैयार हो जाने पर उतार लेना चाहिए।

पके केले का मुरब्बा—पहले केले के गूदे के दो-दो टुकड़े करके रख लेना चाहिए और फिर थोड़ा-सा पानी और एक नींबू का रस और आधी छटाक बूरा शक्कर मिलाकर उन केले के टुकड़ों को उबाल लेना चाहिए। इसके पश्चात् पानी से निकालकर कपड़े में सुखा लेना चाहिए और अंत में शक्कर की चाशनी में डालकर पका लेना चाहिए। केले का मुरब्बा बड़ा स्वादिष्ट और खाने में रुचिकर होता है।

केले की पकौड़ी—केले की कच्ची फली को पहले उबाल लेना चाहिए। फिर चने का बेसन उसमें मिलाकर खूब मथ डालना चाहिए। इसके बाद गर्म मसाला और नमक डालकर मुंगौरी की तरह घी में बना लेना चाहिए।

पिश्ता

पिश्ते का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। यह फारसा, बुखारा और अफ़ग़ानिस्तान में अधिक पैदा होता है। पिश्ते के ऊपर एक पतला किन्तु कठोर छिलका होता है। उसको छीलने से भीतर हरी-हरी गरी निकलती है। इस गरी पर लाल रंग की बहुत छोटी-छोटी बूँदें भी होती हैं।

पिश्ता एक बहुत प्रसिद्ध और पुष्टकारक मेवा है। इसको खाने के सिवा, तेल भी इसका निकाला जाता है। इसका तेल बड़ा उपयोगी और पित्त को शान्त करने का गुण रखता है। इसका तेल प्रायः शीतकाल में मस्तक पर मला जाता है जिससे बड़ा लाभ होता है। इससे रंग कर रेशम को लाल किया जाता है।

गुण—

पिश्ता—यह भारी और स्निग्ध होता है। इसके खाने से वीर्य की वृद्धि होती है। इसकी प्रकृति उष्ण और धातुवर्धक होती है। पिश्ता रक्त को शुद्ध करता है। स्वाद को बढ़ाता है। पित्त को उत्पन्न करता है। कुछ दस्तावर होता है। कफ़ का नाश करता है। वात, गुल्म तथा त्रिदोष को दूर करता है।

उपयोग—

पुष्टई के लिए—शरीर को पुष्ट करने के लिए पिश्ता बड़ा उपयोगी होता है। गर्म होने के कारण इसका उपयोग जाड़े के दिनों में अधिक किया जाता है। पिश्ता जहाँ पर नहीं होता, वहाँ पर यह बहुत तेज़ बिकता है। अमीर लोग सर्दी के लिए इसके द्वारा तरह-तरह की चीजें बनवाकर खाते हैं।

शरीफा

शरीफ़ा के वृक्ष भारतवर्ष में सर्वत्र पाये जाते हैं। इसको हिन्दी बोलने वाले सीताफल या शरीफ़ा कहते हैं। इसके पेड़ में चार पाँच वर्ष के बाद फल आने लगते हैं।

गुण—

शरीफ़ा—इसके खाने से तृप्ति होती है, रक्त बढ़ता है। खाने में स्वादिष्ट होता है। प्रकृति में अत्यन्त शीतल और हृदय के लिए हितकारी है। बल की वृद्धि करता है, मांस को बढ़ाता है। दाह को शान्त करता है। रक्त पित्त और वात को शान्त करता है।

शरीफ़ा—यह मधुर और शीतल होता है, हृदय की बल वृद्धि करता है। बल को बढ़ाता है और कफ़ उत्पन्न करता है। खाने में स्वादिष्ट तथा पुष्टकारक होता है। यह पित्त का नाश करता है।

उपयोग—

जलन को शान्त करने के लिए—शरीर की जलन तथा दाह होने पर शरीफ़ा को रात में ओस में रख देना चाहिए और सबेरे उठकर उसे खा लेना चाहिए। इससे जलन और दाह शान्त हो जाती है।

सिर में जुएं पड़ जाने पर—शरीफ़े के बीजों को बारीक पीसकर सिर में लगाना चाहिए और रात को सोते समय एक मोटा कपड़ा सिर में कसकर बाँधकर सोने से, सिर के जुएँ सब मर जाते हैं। इसका प्रयोग करते समय इस बात का

ध्यान रखना चाहिए कि यह दवा आँखों में न लगने पावे, क्योंकि यह आँखों को नुकसान पहुँचाती है।

शरीफा अधिकतर—खाने के ही काम में आता है। इससे स्वास्थ्य और बल की वृद्धि होती है, परन्तु इसके अतिरिक्त उसका और कोई अधिक उपयोग नहीं होता।

अनन्नास

अनन्नास का पेड़ प्रायः खेतों की मेड़ों तथा सड़कों के किनारे पैदा होता है। इसके पेड़ में यह बात होती है कि फल इसके बीच हिस्से में लगते हैं अनन्नास का रंग कुछ पीला और लाल रंग का होता है।

अनन्नास खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है, खाली खाने के सिवा इसका मुरब्बा भी बनाया जाता है। यह खाने में अत्यन्त रुचिकारक और लाभ पहुँचाने वाला होता है। अनन्नास के बीच का हिस्सा खाने के योग्य नहीं होता। इसलिए इसको खाते समय, निकालकर फेंक देना चाहिए और यदि भूल से, कभी कोई उसे खा जाय, तो उसके बाद, तुरन्त प्याला दही और शक्कर मिलाकर खा लेना चाहिए। उपवास के दिन अनन्नास का खाना मना है।

जिन स्त्रियों के पेट में गर्भ होता है, उनको अनन्नास कभी न खाना चाहिए, जिनको यह बात मालूम नहीं होती और धोखे से इसको खा लेती हैं, उनको कभी-कभी इससे बड़ी क्षति पहुँचती है। इसलिए उनको यह जानना और इसका परहेज़ करना बहुत आवश्यक है। अन्यथा हानि ही होती है।

गुण—

कच्चा अनन्नास—खाने में रुचिकारक होता है। हृदय को लाभ पहुँचाता है। यह भारी कफ, पित्त उत्पन्न करने वाला होता है। इसके खाने से श्रम और कृमि का नाश होता है।

पक्का अनन्नास—खाने में स्वादिष्ट किन्तु पित्त पैदा करता है। यह रस विकार तथा आतप विकार को दूर करता है।

उपयोग–

अजीर्ण होने पर—पहले अमलतास को लेकर उसमें फाँके कर देनी चाहिए। उसके बाद, काली मिर्च और सेंधा नमक पीसकर उसमें छिड़क देना चाहिए और फिर आग पर थोड़ा सा भुन-भुनाकर उसे खा लेना चाहिए। इससे अजीर्ण तुरन्त दूर होता है।

कृमि पर—अमलतास खाने से बड़ा लाभ होता है और इससे उसका नाश भी होता है। कृमि के लिए यह बड़ा उपयोगी है।

पेट में बाल चला जाने पर—धोखे में जब कोई बाल खा जाता है अथवा वह पेट में चला जाता है तो उससे बड़ी तकलीफ होती है। ऐसी अवस्था में अमलतास खाने से फायदा होता है और उसके खा जाने से जो पीड़ा उत्पन्न होती है, वह अच्छी हो जाती है।

फालसा

फालसे के पेड़ बगीचों के साथ हुआ करते हैं। फालसा, साधारणतया सभी जगह होता है किन्तु उत्तरी हिन्दुस्तान में इसकी पैदावार अधिक होती है इसका फल पीपल के फल के समान बहुत छोटा होता है। फालसा खाने में मीठा होता है।

फालसा खाने में स्वादिष्ठ होता है, कच्चा और पक्का दोनों तरह से फालसा काम में लाया जाता है। इसकी प्रकृति शीतल होती है, इसलिए इसका शर्बत बनाकर गर्मी के दिनों में पिया जाता है। ग्रीष्मकाल में जहाँ पर अधिक गर्मी पड़ती है, वहाँ पर फालसे का शर्बत पीने की बहुत रिवाज पाई जाती है और गर्मी को शान्त करने के लिए, फालसे का शर्बत बड़ा लाभकारी तथा शरीर को ठंढा रखने वाला होता है।

गुण—

कच्चा फालसा—कडुवा और खट्टा होता है, कफ का नाश करता है, वात को मिटाता है और पित्त उत्पन्न करता है। खाने में कसैला किन्तु हलका होता है। उसकी प्रकृति खट्टी होने के साथ-साथ कुछ उष्ण होती है।

पक्का फालसा—खाने में मधुर और रुचिपूर्ण होता है। पित्त का नाश करता है, प्रकृति में शीतल और पुष्टकारक होता है। हृदय को लाभ पहुँचाता है। तृषा, पित्त और दाह को मिटाता है। रुधिर के विकारों को शुद्ध करता है। ज्वर, दाय और वात का नाश करता है। इसके खाने से वीर्य की वृद्धि होती है। पचने में मधुर होता है।

उपयोग–

पित्त के विकार और हृदय के रोगों पर—पके हुए फालसों का रस निकालकर थोड़े-से पानी में मिला लेना चाहिए और उसमें थोड़ी-सी सोंठ पीसकर, शक्कर और सोंठ को उस पानी में मिले हुए रस के साथ मिलाकर पिलाना चाहिए। इससे लाभ होता है।

जलन को शान्त करने के लिए—पके हुए फालसों को शक्कर के साथ खाने से तुरन्त लाभ होता है और शरीर की जलन शान्त हो जाती है।

फालसे का मुरब्बा—पहले पानी को गर्म करके आधा सेर पके फालसों को उसमें भिगो देना चाहिये। जब फालसे गल जायँ तो उनको ठंढे पानी से धो डालना चाहिए। फिर एक छटाक चूरा और पाव भर पानी उसमें डालकर फालसों को फिर उबालना चाहिए। एक उबाल आ जाने पर उनको पानी से निकालकर शक्कर की चाशनी में छोड़ देना चाहिए और ऊपर से केवड़ा डाल देना चाहिए।

फालसे का शर्बत—फालसों को लेकर, पहले उन्हें मसल कर उनका रस निकाल लेना चाहिये। फिर उस रस में शक्कर छोड़कर आग में चढ़ा देना चाहिए और उनकी चाशनी बना लेना चाहिए। यही चाशनी फालसे की शर्बत होगी। यह शर्बत शरीर को ठंढक पहुँचाने के लिए बड़ा उपयोगी होता है और कितनी ही बीमारियों में काम आता है। सुजाक में यह शर्बत फायदा करता है। पेशाब की जलन को मिटाता है। दिल और दिमाग को ताकत पहुँचाता है और तर रखता है।

—

कमरख

कमरख के पेड़ तो साधारणतया सभी स्थानों में होते हैं। कोंकण प्रान्त में कमरख बहुत होता है। इसके पेड़ में यह विशेषता है कि यह सदा हरा भरा रहता है और हमेशा उसमें फल लगते रहते हैं। उसमें फल आने के लिए कोई एक मौसिम नहीं होता।

कमरख खाने के काम में आता है, उसका स्वाद खट्टा होता है। कच्चा होने पर इसका रंग बिल्कुल हरा होता है परन्तु पक आने पर उसमें पर कुछ पीलापन आ जाता है। पके कमरख यों ही खाये जाते हैं परन्तु खट्टे होने के कारण ये अधिक नहीं खाये जा सकते। कमरख के मुरब्बे, अचार और चटनी आदि खाने की कितनी ही चीज़ें बनाई जाती हैं।

कच्चा कमरख बहुत खट्टा होता है। पक आने पर उसकी खटाई में वह तीक्ष्णता नहीं रहती। पका हुआ कमरख ज़ीरा भूनकर तथा काली मिर्च के साथ पीसकर और शकर मिला कर खाने से बड़ा स्वादिष्ठ हो जाता है और किसी प्रकार की विशेष हानि भी नहीं करता। कमरख पकने पर बड़ा सुन्दर हो जाता है और उसके खाने से कफ़ का नाश होता है।

गुण

कच्चे कमरख—खट्टे किन्तु कुछ उष्ण होते हैं, वात का नाश करते हैं और पित्त उत्पन्न करते हैं।

पके हुए कमरख—खाने में मधुर और खट्टे होते हैं। इनके खाने से बल उत्पन्न होता है। शरीर पुष्ट होता है और रुचि बढ़ती है।

उपयोग

कमरख का मुरब्बा—एक सेर कमरख को लेकर बाँस की पतली तीलियों से छेद डालना चाहिये और उसके बाद उनको चूने के पानी में डाल देना चाहिये। कुछ समय के पश्चात् उनको निकाल कर दूसरे पानी में आग में चढ़ा कर खोल देना चाहिये। इसके बाद उतार कर शकर की चाशनी बना कर, उसी में कमरख डाल देने चाहिये। जब चाशनी गाढ़ी हो जाय तो उनको उतार लेना चाहिये। यह मुरब्बा खाने में बड़ा स्वादिष्ठ और रुचिकारक होता है।

कमरख का अचार—कमरख लेकर उनके टुकड़े टुकड़े कर डालना चाहिये। इसके बाद, नमक, मिर्च, ज़ीरा, हल्दी, काली मिर्च, इलायची और लौंग पीसकर, एक मिट्टी के बरतन में कमरख डाल देना चाहिये और उन पर मसाला पिसा हुआ छोड़ कर मिला देना चाहिये। इसके बाद उस बरतन में तेल छोड़ कर रख देना चाहिए। कमरख के टुकड़ों में मसाला और तेल प्रवेश हो जानेपर ये खाने के योग्य हो जाते हैं। कुछ लोग बिना तेल के भी कमरख का अचार बनाते हैं।

कमरख की चटनी—कमरख में काली मिर्च, ज़ीरा, पुदीना, लौंग, इलायची और काला नमक मिला कर पीस डालते हैं। उसके पीस चुकने पर किसी पत्थर की कटोरी आदि में उठा कर उस में थोड़ी-सी शकर मिला देते हैं। इस प्रकार यह खट मिट्ठी चटनी बड़ी स्वादिष्ठ बन जाती है।

कमरख की अनेक प्रकार की चीज़ें खाने की बनाई जाती हैं, उसका मुरब्बा, अचार, चटनी अथवा खट्टी खटाई, मीठी खटाई, आदि बनाई जाती हैं। ये चीज़ें खाने में बड़ी रुचिकर, स्वादिष्ठ तथा गुण वाली होती हैं। इन से भूख बढ़ती है, खाने में स्वाद आ जाता है और भोजन में रुचि उत्पन्न होती है।

अञ्जीर

अंजीर गर्म देशों में अधिक पैदा होता है। तुर्किस्तान, अरब, ईरान ग्रीस और अफ्रीका के दक्षिण भाग में अंजीर बहुत पैदा होता है। हमारे यहाँ बाजारों में जो अंजीर मिलता है, वह प्रायः अरब से आता है।

अंजीर खाने में अधिक स्वादिष्ठ नहीं होता, किन्तु लाभ के लिए बड़ा उपयोगी होता है। कच्चे अंजीर की तरकारी बनाई जाती है और पक्के अंजीर का मुरब्बा बनता है। शरीर में रक्त बढ़ने के लिए बड़ा उत्तम मेवा है। जो लोग शरीर से निर्बल होते हैं अथवा किसी बीमारी अथवा किसी संयोग के कारण शारीरिक शक्ति में निर्बल हो जाते हैं, वे लोग नित्य प्रातःकाल इस का सेवन करते हैं।

गुण—

अंजीर—अत्यन्त शीतल और तत्काल रक्त-पित्त का नाश करता है। पित्त की समस्त बीमारियों में तथा शिर की पीड़ा में बहुत लाभ पहुँचाता है। नाक से गिरते हुये रुधिर को तुरंत बन्द करता है।

अंजीर—भारी और शीतल होता है, खाने में मधुर तथा वात का नाश करता है। रक्त पित्त का दमन करता है। रुच को बढ़ाता है। स्वाद को पैदा करता है। पाचक होता है किन्तु श्लेष्म तथा आमवात उत्पन्न करता है।

उपयोग—

शरीर से गर्मी के निकालने तथा रक्त की वृद्धि के लिये—रात के समय पके हुए अंजीरों को छीलकर दो प्यालियों में

बराबर बराबर रख दे और दोनों प्यालियों में बराबर-बराबर शक्कर डाल दे। इनको ओस में रखा रहने दे और प्रातःकाल उनका सेवन करे, ऐसा करने से पन्द्रह दिनों में ही बहुत लाभ होता है।

पुष्टि के लिये—सूखे हुये अंजीर के टुकड़ों को और छिले हुए बादामों को आग में चढ़ाकर उबाल लेना चाहिए। उसके पश्चात् उसको सुखा कर दानेदार शक्कर, अधपिसी इलायची, केशर, चिरौंजी, पिश्ता और बादाम बराबर-बराबर लेकर आठ दिनों तक गाय के घी में डाल रखना चाहिये। इसके बाद नित्य प्रातःकाल दो तोला तक का सेवन करे। छोटे बालकों की निर्बलता दूर करने के लिए यह बड़ी उपयोगी चीज़ है।

गले और जीभ की सूजन पर—सूखे हुए अंजीर लेकर उन का पानी के साथ पहले काढ़ा बना लेना चाहिए। उसके बाद उसका लेप करने से गले और जीभ की सूजन का नाश होता है।

पुल्टिस—ताज़े अंजीर कूट कर और पानी के साथ उनको पीस लेना चाहिये, इसके बाद उसको कुछ गर्म करके फोड़ा आदि में बाँधने पर बहुत अच्छी आराम होता है।

जामुन

जामुन का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। जिन बगीचों में आम के पेड़ होते हैं, वहाँ जामुन के वृक्ष भी होते हैं। जामुन और आम लगभग एक ही मौसम में फलते हैं और बरसात शुरू होने पर दोनों एक ही साथ पकते भी हैं।

जामुन जब कच्ची होती है, तो उसका रंग हरा होता है, और जब यह थोड़ी बहुत पकने लगती है तो उसका रंग लाल हो जाता है। इसके बाद जितनी ही यह पकती जाती है, उतना ही उसमें श्याम वर्ण आता जाता है। बिल्कुल पक जाने पर जामुन कोयले की भाँति काली हो जाती है।

कच्ची जामुन खाने के काम में नहीं आती। जब यह थोड़ी थोड़ी पकने लगती है और उसका वर्ण लाल हो जाता है उसी समय से लोग उसका खाना आरम्भ कर देते हैं। परन्तु इस अवस्था में जामुन के खाने का कोई अधिक अच्छा स्वाद नहीं होता। उसमें उसका गूदा तो खाने के लायक मुलायम हो जा जाता है, किन्तु वह खाने में बहुत खट्टी होती है। पूर्ण रूप से पक जाने पर जामुन खाने में बड़ी स्वादिष्ठ और मधुर मालूम होती है।

पकी हुई जामुन खाने के काम में आती है। जामुन की फसल में छोटे और बड़े सभी लोग उसे खाते हैं। निर्बल और सबल अपनी इच्छानुसार उसका प्रयोग करते हैं। जामुन का यह गुण है कि यह किसी को नुकसान नहीं पहुँचाती। जामुन को नमक और काली मिर्च के साथ खाने से उसका स्वाद बढ़ जाता है और इसके अतिरिक्त जामुन का पौष्टिक गुण भी अधिक हो जाता है।

गुण—

जामुन का फल—यह खाने में मधुर और शीतल होता है। रुचि को बढ़ाता है। मल को रोकता है। वात को बढ़ाता है। कफ और पित्त का नाश करता है। यह भारी और कषेला होता है। खाने में अत्यन्त स्वादिष्ठ होता है।

बड़ी और अच्छी जामुन—खाने में मधुर और कुछ गरम होती है। इससे गले की आवाज़ शुद्ध और तेज़ होती है। खाने में रुचिकारक होती है। मल को स्तम्भ करती है। खाँसी और श्वास को फायदा करती है। श्रम, अतिसार और कफ को मिटाती है।

छोटी जामुन—यह हृदय को लाभ पहुँचाती है। खाने में मधुर होती है। वीर्य को बढ़ाती है। शरीर को पुष्ट करती है। हृदय के रोगों और कंठ की बीमारियों को दूर करती है। मल को रोकती है। कफ और पित्त का नाश करती है।

उपयोग—

पित्त पर—एक तोला जामुन का रस लेकर उस में एक तोला गुड़ मिला देना चाहिये और फिर उसको आग पर गरम होने के लिए रख देना चाहिये। जब उसमें भाफ उठे तो उसको मुँह में लेना चाहिये। भाफ के पेट में जाने से बड़ी जल्दी फायदा होता है और पित्त शान्त हो जाता है।

गर्भिणी के अतिसार पर—जामुन के फल खिलाने से बहुत लाभ होता है। जामुन की फसल न होने पर जामुन और आम की छाल के साथ धान और जौ का एक-एक तोला जल में डालकर काढ़ा बनाना चाहिये और उसके तैयार होने पर उसको खिलाना चाहिए। इससे तुरन्त फ़ायदा होता है।

प्रमेह पर—किसी प्रकार प्रमेह की बीमारी में और विशेष कर मधुमेह की अवस्था में लगातार पन्द्रह दिनों तक आमुन के फल खाने से बहुत लाभ होता है। यदि आमुन की फसल न हो, तो सूखे हुए आमुन के फलों का दो तोला चूर्ण नित्य पानी के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

पेट में बाल या लोहे के अंश चले जाने पर—ऐसी अवस्था में बाल खाजाने वाले को बड़ा कष्ट होता है। किन्तु यदि आमुन खाने को मिल जायँ तो उसका कष्ट दूर होजाता है।

आमुन का सिरका—यह पेट के अनेक रोगों को फ़ायदा पहुँचाता है। विशेषकर गुल्म, अतिसार, विशूचिका के लिए यह बहुत उपयोगी चीज़ है। वैद्यक में इसको पेट की पीड़ा के लिए रामबाण लिखा है। इसके तैय्यार करने की विधि इस प्रकार है—

बहुत-सी पकी हुई आमुन लेकर उनको हाथ से खूब मल डालना चाहिए और एक साफ़ तथा महीन कपड़ा लेकर किसी पत्थर के बरतन में छान लेना चाहिए और इस छने हुए रस को साफ़ बोतल में भरकर रख देना चाहिए। कुछ दिनों में, जब इसमें खट्टापन आ जाता है तो सिरका तैयार होजाता है।

पेट की पीड़ा में—पक्की आमुन के रस का शरबत बनाकर पीने से पेट की पीड़ा का तुरन्त नाश होता है।

लसोड़ा

कुछ लोग इसको लसेर भी कहते हैं। आम, इमली, और जामुन की भाँति लसोड़े का पेड़ भी बहुत बड़ा होता है। इसका फल बहुत छोटा होता है। लसोड़े की दो किस्में होती हैं। छोटा और बड़ा लसोड़ा। छोटे लसोड़े का पेड़ भी छोटा होता है और फल भी। इसी भाँति बड़े लसोड़े का वृक्ष भी बड़ा होता है और फल भी।

उपयोग—

पुष्टई के लिए—लसोड़े का फल शरीर को पुष्ट करने के लिए बहुत प्रसिद्ध है। जो लोग उसके इस गुण की उपेक्षा करते हैं। वे गलती करते हैं। शरीर को पुष्ट और स्वस्थ बनाने के लिए निम्नलिखित उसका उपयोग किया जाता है—

लसोड़े के फलों को लेकर सुखा डालना चाहिए और सूख जाने पर उसको कूटकर चूर्ण कर लेना चाहिए। इसके बाद, शक्कर की चाशनी बनाकर इसको उसीमें छोड़ देना चाहिए और लड्डू बाँध लेना चाहिए।

लसोड़े की तरकारी—कच्चे लसोड़े के फलों को लेकर पानी के साथ उबाल डालना चाहिए। फिर उसकी गुठली निकालकर गूदा अलग कर लेना चाहिये और बटलोही या कड़ाही में थोड़ा सा घी या तेल छोड़कर, जरा-सी हींग या जीरा उसमें छोड़ देना चाहिए, और उसकी महक उठने पर, उस लसोड़े को उसमें छोड़ देना चाहिए और साथ ही हल्दी, धनिया, नमक, मिर्च पीसकर उसमें छोड़ देना चाहिए और

भून लेना चाहिए। यस तैयार हो जाने पर उसे उतार लेना चाहिए।

ससोड़े का अचार—ससोड़े के कच्चे फलों को एक सेर लेकर, चार सेर पानी में डालकर उनको धूप में रख देना चाहिए और दस-ग्यारह दिनों के बाद, जब उसमें खटाई आ जाय तब पानी में उसको धो डालना चाहिए। इसके बाद उसको किसी बर्त्तन में भरकर, एक छटाँक राई, दे तोला हल्दी, तीन छटाँक नमक को पीसकर उसमें मिला देना चाहिए। फिर उसमें तेल डालकर उसे ढककर रख देना चाहिए। पाँच-छः दिनो के बाद अचार तैयार हो जायगा। यह खाने में बड़ा स्वादिष्ठ और रुचिकारक होता है।

काजू

काजू अफ्रिका और हिन्दुस्तान में पैदा होता है। अपने देश में मलाबार, कोमांतक और कर्नाटक आदि स्थानों में इसके वृक्ष होते हैं। इसके पेड़ प्रायः जंगल और पहाड़ों में अधिक होते हैं। काजू दो प्रकार का होता है, काला और सफेद।

काजू का फल कोमल होता है और उसके आगे उसमें बीज होते हैं। काजू खाने में स्वादिष्ठ होता है परन्तु अधिक खाने से हानि करता है। इसके सूखे फल खाये जाते हैं और उसके सूखे बीजों को शक्कर के पाक में मिलाकर मिठाइयाँ तथा अन्यान्य खाने की चीजें बनाई जाती हैं। इसके बीजों का तेल निकाला जाता है जो अन्यान्य उपयोग के सिवा नावों के नीचे के भाग में लगाया जाता है जिससे उसकी लकड़ी पर पानी का कोई प्रभाव नहीं होता।

गुण—

काजू—खाने में कषेला किन्तु मधुर होता है। कुछ हलका और गर्म होता है। धातु को बढ़ाता है। वात-कफ को दूर करता है। गुल्म तथा उदर के रोगों में फायदा करता है। ज्वर, कृमि तथा व्रण में उपयोगी है। मन्दाग्नि का नाश करता है। कुष्ठ और संग्रहणी, बवासीर आदि रोगों को अवश्य दूर करता है।

उपयोग—

पैर की कमज़ोरी में—काजू के बीजों को दूध के साथ पीस कर लेप करने से बड़ा लाभ होता है और कमज़ोरी दूर हो जाती है।

व्रण को फोड़ने के लिए—काजू की कच्ची गरी और तीवर के फल को ठंढे पानी में पीसकर लेप करना चाहिए। इससे व्रण जल्दी से पककर फूट जाती है।

सेव और नास्पाती

सेव और नास्पाती, दो मुतिश्किफ फल हैं। ये फल, ठंडे देशों में अधिक पैदा होते हैं। अपने देश में, काश्मीर में, बिलो-चिस्तान में इसके वृक्ष पाये जाते हैं। परन्तु काश्मीर के सेब और नास्पाती अच्छी होती हैं।

गुण—

सेव—यह खाने में बड़ा मधुर होता है, वात और पित्त का नाश करता है। शरीर को पुष्ट करता है। कफ को बढ़ाता है। इसकी प्रकृति भारी और शीतल होती है। इसके खाने से रुचि बढ़ती है और शुक्र की वृद्धि होती है।

नास्पाती—यह खाने में बड़ी अच्छी होती है, स्वाद में मीठी होती है और धातु की वृद्धि करती है। खाने में रुचि उत्पन्न करती है। यह अम्लकारक और वात-नाशक होती है और त्रिदोष को शान्त करती है।

उपयोग—

सेब का मुरब्बा—एक सेर पके सेब लेकर पहले उनको टुकड़े टुकड़े कर डालना चाहिए और फिर उनको कांटे से छेद डालना चाहिए। इसके बाद एक सेर बूरे की शक्कर में उबालकर किसी बरतन में भरकर रख देना चाहिए और उसका मुंह बन्द कर देना चाहिए। तीसरे दिन बूरे की चाशनी बनाकर उसमें उनको डाल देना चाहिये और ऊपर से केवड़ा छिड़क देना चाहिए। यह मुरब्बा खाने में बड़ा स्वादिष्ठ होता है और हृदय तथा मस्तिष्क को बलवान करता है।

बेर

भारतवर्ष में बेर के पेड़ सभी जगह होते हैं। इसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं। उनमें जङ्गली बेर, झरबेरी और पैवंदी बेर प्रसिद्ध हैं। सभी प्रकार के बेर खाने के काम में आते हैं। जंगलों में होने वाले जंगली बेर और झरबेरी बहुत छोटे बेर होते हैं। उनमें गूदे का अंश बहुत थोड़ा निकलता है। पैवंदी बेर बहुत बड़ा और खाने में स्वादिष्ट तथा मीठा होता है।

गुण–

साधारण कच्चे बेर—पित्त और कफ़ को बढ़ाते हैं। खाने में काफ़ी खट्टे और कपैले होते हैं।

पक्का बेर—पित्त और वात का नाश करता है। खाने में स्निग्ध और मधुर होता है। कुछ दस्तावर भी होता है। परिश्रम को दूर करता है। वमन का निवारण करता है। बल को बढ़ाता है। तृषा का नाश करता है। खाने में रुचिकर होता है रक्त-दोष और अतिसार के लिए लाभकारी है।

छोटा बेर—खाने में मधुर और खट्टा होता है। किन्तु पक जाने पर वही बेर स्निग्ध और रुचिकर होता है। कफ़ को उत्पन्न करता है। किसी प्रकार पित्त और जलन तथा वात का नाश करता है।

बेर का गूदा—खाने में मधुर होता है, बल को बढ़ाता है, खाँसी श्वास, को शान्त करता है। तृषा और वायु को मिटाता है। कै, जलन तथा पित्त के लिए लाभकारी है।

खिन्नी

कुछ लोग खिन्नी को खिरनी भी कहते हैं। इसके वृक्ष गुजरात की ओर बहुत होते हैं। नीम के फलों की भाँति इसके फल छोटे-छोटे होते हैं। खिन्नी खाने में बहुत मीठी होती है और उसमें दूध भी होता है। इसकी प्रकृति गर्म होती है।

खिन्नी खाने के काम में आती है, यह खाने में मधुर और शीतल होती है। इसके पक जाने पर उसका स्वाद खट्टा हो जाता है। यह शरीर के लिए पौष्टिक भी होती है।

गुण—

खिन्नी—शीतल और स्निग्ध होती है। इसके खाने से शरीर में बल की वृद्धि होती है। यह तृषा को मिटाती है। मूर्छा को शान्त करती है। मद और भ्रान्ति का नाश करती है और क्षय तथा त्रिदोष को दूर करती है।

खिन्नी—यह खाने में मीठी होती है, पित्त का नाश करती है। भारी और तृप्तिकारक होती है। शरीर में वीर्य की उत्पत्ति करती है। स्वास्थ्य और शक्ति बढ़ाती है। हृदय को शक्ति देती है। प्रमेह रोग में लाभ करती है।

खिन्नी—यह मधुर और कषेली होती है। इसकी प्रकृति शीतल, और स्निग्ध होती है। खाने में स्वादिष्ट और रुचिकारक होती है। मल को अवरुद्ध करती है। वीर्य को बढ़ाती है। शरीर को पुष्ट करती है। माँस को बढ़ाती है। त्रिदोष को नाश करती है। तृषा, दाह और रक्त पित्त को शान्त करती है।

करौंदा

करौंदे का वृक्ष पहाड़ी स्थानों में अधिक पाया जाता है। इसके फल छोटे-छोटे और गोल होते हैं। कच्चे होने पर उनका रंग हरा होता है किन्तु पक जाने पर उनका रंग काला हो जाता है।

करौंदे का फल खाने के काम में आता है। कच्चे करौंद का अचार बहुत अच्छा होता है और स्वास्थ्य के लिए भी उपयोगी होता है। शहरों के बगीचों में जो करौंदे के पेड़ होते हैं, वे प्रायः विलायती होते हैं जो वहाँ के बीजों को बोकर पैदा किया जाता है। इसका फल, अपने देश के करौंदों की अपेक्षा अधिक बड़ा होता है और देखने में भी सुन्दर होता है। इस पर कुछ लालिमा होती है। अचार और चटनी के लिए यह अधिक पसन्द किया जाता है। छोटे और बड़े के लिहाज़ से करौंदे की दो जातियाँ होती हैं, छोटे को करौंदी और बड़े को करौंदा कहते हैं।

गुण—

करौंदे के कच्चे फल—खाने में खट्टे और भारी होते हैं। तृषा का नाश करते हैं। गर्म और रुचिकारक होते हैं। रक्त पित्त और कफ को बढ़ाते हैं।

पक्के फल—खाने में मधुर और रुचिकारक होते हैं। यह हलके और पाचक होते हैं। प्यास को शान्त करते हैं। पित्त और वात का शमन करते हैं।

दोनों प्रकार के कच्चे करौंदे—स्वाद में कडुये होते हैं, वे अग्नि को उद्दीप्त करते हैं। भारी और गर्म होते हैं। पित्त को

बढ़ाते हैं। मल को रोकते हैं। खट्टे और रुचिकारक होते हैं। रक्त पित्त पैदा करते हैं। कफ उत्पन्न करते हैं। परम् तृषा को शान्त करते हैं।

दोनों प्रकार के पक्के करौंदे—मधुर और रुचिकारी होते हैं। ये हलके, शीतल तथा खाने में उपयोगी होते हैं। पित्त और त्रिदोष का नाश करते हैं। वात को मिटाते हैं।

सूखे करौंदे का गुण पके करौंदे के समान होता है।

हरफारेवड़ी

हरफारेवड़ी का वृक्ष साधारण होता है। अंगूर की भाँति इसके पेड़ में फलों के गुच्छे लगते हैं, इसके फलों का अचार बहुत बढ़िया बनाया जाता है। इसका फल खाने में खट्टा होता है और कषैला होने के साथ-साथ सुगन्धदार होता है।

गुण–

हरफारेवड़ी—यह रुधिर के विकारों को नाश करने में बड़ा उपयोगी होता है। बवासीर को शान्त करता है। कफ और पित्त का नाश करता है। यह भारी और विशद होने के साथ ही रोचक होता है। यह खाने में रूखा, स्वादिष्ठ किन्तु कषैला होता है।

हरफारेवड़ी—यह कफ और पित्त का नाश करता है। किञ्चित् कड़ुवा होता है। रुचि को बढ़ाता है। हृदय को लाभ पहुँचाता है। यह सुगन्धित और विशद होता है।

हरफारेवड़ी—यह खाने में कषैला रुचिकारक होता है। इसका स्वाद खट्टा, प्रिय तथा कड़ुवा होता है। यह सूखी, विशद और सुगन्धित होता है। इससे वात की वृद्धि होती है। खाने में स्वादिष्ठ होता है। कफ और पित्त का नाश करता है। मूत्राश्मरी और अर्शरोग को मिटाता है।

उपयोग–

शरीर पर पित्ती उछलने पर—हरफारेवड़ी के रस में घी तथा कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर और गर्म करके लेप करने से तुरन्त लाभ होता है और इसके द्वारा उत्पन्न हुआ कष्ट शीघ्र शान्त हो जाता है।

बड़हल

बड़हल का पेड़ बड़ा होता है। कर्नाटक और गोमांतक प्रान्तों की ओर यह अधिक पैदा होता है। इसकी मिट्टी एक विशेष प्रकार की होती है, जिसके कारण यह सब जगह नहीं होता और यदि लगाया भी जाता है तो सूख जाता है।

बड़हल के वृक्ष में कातिक में फल आने आरम्भ हो जाते हैं। इसके फल खाये जाते हैं और विशेषकर अन्यान्य खट्टे फलों की भाँति, खटाई के लिए काम में लाये जाते हैं। पके हुए बड़हलोंका रायता और अचार बनाया जाता है जो खाने में अत्यन्त स्वादिष्ट और लाभकारी होता है।

गुण—

कच्चा बड़हल—गर्म और भारी होता है। यह खाने में खट्टा और मधुर होता है किन्तु रुधिर के विकारों को उत्पन्न करता है। नेत्रों को नुकसान पहुँचाता है। वीर्य को हानि करता है। अग्नि को मन्द करता है।

पक्का बड़हल—खाने में मधुर किन्तु खट्टा होता है। वात और पित्त का नाश करता है। कफ उत्पन्न करता है। अग्नि को उद्दीप्त करता है। रुचि को बढ़ाता है। वीर्य की वृद्धि करता है।

बड़हल—भारी और विष्टम्भकारी होता है यह खाने में स्वादिष्ठ और खट्टा होता है। रक्त पित्त उत्पन्न करता है। कफ को बढ़ाता है। वात का नाश करता है। शुक्र तथा अग्नि के लिए नुकसान पहुँचाता है।

वैद्यों और हकीमों ने बड़हल का रस, प्रसूता स्त्रियों के लिए उपयोगी और खासकर प्रमाणित किया है।

तेंदू का फल

तेंदू का पेड़ बहुत बड़ा होता है और उसमें आँवले के बराबर फल लगते हैं। ये फल खाने के काम में आते हैं। उत्तरी भारतवर्ष में उसको खाने के अतिरिक्त कितनी ही दवाओं की जगह काम में लाते हैं। तेंदू के फल के रस को गर्म करके वे लोग घाव पर लगाते हैं, जिससे घाव बहुत शीघ्र अच्छा होता है। गरीब आदमी उसके फलों को खाते हैं और उसके बीजों को सँभालकर रखते हैं। जब कभी किसी को अधिक दस्त लगते हैं, तो इसके बीजों को वे लोग काम में लाते हैं।

अँगरेज़ी डाक्टरों ने भी तेंदू के गुणों को बहुत उपयोगी और काम के योग्य माना है। इसके फलों को हाथ से मसल कर रस को निचोड़ लेते हैं, उसके बाद उसको उबाल लेते हैं जिससे, इसका सत् तैयार हो जाता है। इसका रंग कुछ भूरा मिश्रित लाल होता है। यह सत् पानी में डालते ही तुरन्त उसमें मिश्रित हो जाता है। तेंदू का यह सत् दस्तों और पुराने ग्रह्म के लिए बहुत मुफ़ीद होता है। यदि आदमी कहीं से गिर पड़ा हो और चोट खा गया हो अथवा किसी प्रकार के आघात से उसके कहीं पर छिल गया हो तो तेंदू के फलों को पीसकर लेप करने से अधिक कष्ट नहीं होता और न उस जगह पर सूजन ही होती है।

तेंदू का सत् बड़ा उपयोगी होता है, उसको बनाते समय इस बात का खूब ध्यान रखना चाहिए कि उसके लिए लोहे का कोई बरतन काम में न लाया जाय। यदि सत् के तैयार करने में कोई ख़राबी न हो तो तैयार होने पर उसका रंग लाल की

भाँति होता है। तेंदू के फलों के बीजों का तेल निकाला जाता है, यह कितनी ही बीमारियों में काम आता है।

वैद्यक शास्त्र में तेंदू के कच्चे फलों को वात और पित्त के लिए अत्यन्त उपयोगी माना गया है। तेंदू के फलों का सत् पुरानी संग्रहणी के लिए रामबाण औषधि है।

गुण—

तेंदू का कच्चा फल—यह स्निग्ध और कषेला होता है, मल को रोकता है और अरुचि उत्पन्न करता है। इसकी प्रकृति शीतल और रूखी होती है। इसके खाने से वात उत्पन्न होता है।

तेंदू का कच्चा फल—कड़ुवा और हलका होता है। यह वात की वृद्धि करता है और मल को रोकता है। यह कषेला और ग्राही होता है। खाने में अरुचि का उत्पादन करता है।

तेंदू का पक्का फल—पित्त और प्रमेह का नाश करता है, रुधिर के विकारों को शुद्ध करता है। खाने में स्वादिष्ठ होता है। यह वात को मिटाता है स्निग्ध तथा दुर्जर होता है।

उपयोग—

श्वास के रोग में—तेंदू के फलों का सूखा छिलका चिलम में भर कर पीने से श्वास के रोगियों को लाभ होता है।

गूलर

आम, इमली और जामुन की भाँति गूलर का वृक्ष भी बहुत बड़ा होता है। इसके फल, जिसको लोग गूलर कहते हैं, अंजीर के बनावट के होते हैं। गूलर के पेड़, सभी जगह पाये जाते हैं। देहातों में इसके पेड़ अधिक होते हैं।

प्रायः देखा जाता है कि गूलर का पेड़ जहाँ पर होता है, वहाँ कोई न कोई जलाशय अवश्य होता है। देहातों में, जो पेड़ बस्ती के भीतर होते हैं, प्रायः वहाँ पर, उस पेड़ के नीचे या निकट लोग कुआ या तालाब खोदते हैं। इसका कारण यह है कि गूलर के निकट के जलाशय का पानी अत्यन्त गुणकारी होता है।

गूलर के वृक्ष में बहुत से फल लगते हैं। ये कच्चे और पक्के—सभी तरह से खाये जाते हैं। कच्चे गूलरों की तरकारी बनाई जाती है और पके गूलर खाये जाते हैं। ये खाने में मधुर और स्वादिष्ट होते हैं। कुछ पेड़ों के गूलर बहुत बड़े-बड़े होते हैं और उनका फल भी मीठा तथा खाने के योग्य होता है।

गूलर का फल कच्ची अवस्था में हरे रंग का होता है और पक जाने पर उसका रंग लाल अथवा कत्थई रंग का होजाता है। गूलरों के पक जाने पर उनमें छोटे-छोटे कीड़े पैदा हो जाते हैं, ये कीड़े भुनगे कहलाते हैं। इनके पैदा हो जाने से गूलर खाने में खराब नहीं होते। जो लोग गूलर खाते हैं, वे पक्के गूलरों को बीच से फाड़कर उन भुनगों को उड़ा देते हैं अथवा स्वयं उड़ जाते हैं, इसके बाद, लोग उनको खा जाते हैं। कुछ लोग तो उनके भुनगों को बिना निकाले ही खा जाते

हैं, परन्तु ऐसा करना ठीक नहीं होता। देहातों में गरीब लोग पेट भर कर गूलर खाते हैं।

गुण—

कच्चे गूलर—स्तम्भक और फीके होते हैं, ये खाने में गुण कारी होते हैं। तृषा को मिटाते हैं। कफ और पित्त का नाश करते हैं और रक्त विकार को दूर करते हैं।

पके गूलर—खाने में मधुर होते हैं किन्तु कृमि उत्पन्न करते हैं। इनकी प्रकृति अरु और रुचिकर होती है। ये शीतल तथा कफकारक होते। रक्त-दोष, पित्त और दाह को मिटाते हैं। क्षुधा को शान्त करते हैं। तृषा और श्रम को दूर करते हैं। प्रमेह, शोष और मूर्च्छा के रोग में लाभकारी हैं।

पुराने गूलर—फोके और खट्टे होते हैं। ये खाने में रुचि कर और अग्नि को उद्दीप्त करते हैं। इनके खाने से मांस की वृद्धि होती है और रक्त दोष उत्पन्न होता है।

साधारण गूलर—मीठे और शीतल होते हैं। ये पित्त, तृषा और मोह को उत्पन्न करते हैं और वमन, रक्तस्राव एवम् प्रदर का नाश करते हैं।

उपयोग—

रक्त पित्त पर—पके हुए गूलरों को गुड़ या शहद के साथ खाना चाहिए। इससे रक्त-पित्त नाश होता है। अथवा इस दोष जनित जो विकार उत्पन्न होता है वह शान्त हो जाता है।

शीतला की गर्मी दूर करने के लिए—जिन बच्चों को शीतला निकलती है उनके शरीरों से बहुत दिनों तक उनकी गर्मी नहीं जाती, ऐसी अवस्था में गूलरों का रस निकाल कर और उसमें मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिए। इससे बड़ा लाभ होता है।

बेल

हमारे देश में बेल सभी जगह होता है। इसका पेड़ बहुत बड़ा होता है। बेल का फल भी बेल ही कहलाता है और वह कैथे के बराबर होता है। कुछ वृक्षों के फल बहुत बड़े होते हैं। किन्तु बड़े फल वाले वृक्ष प्रायः बगीचों में हुआ करते हैं।

कच्चे बेल का शाक बनाया जाता है और कुछ लोग उसका अचार और मुरब्बा भी बनाते हैं। पके हुए बेल में शहद की तरह गाढ़ा गाढ़ा रस होता है। यह रस खाने में बहुत मीठा और गर्म होता है। यह खाने के काम में आता है। देहातों में गरीब आदमी इसे बहुत खाते हैं।

कच्चा बेल बिना पका हुआ खाने के योग्य नहीं होता। इस लिए बहुत से आदमी उसको पका कर खाते हैं। बेल के ऊपर का छिलका बहुत कड़ा होता है। आग में यह जब पकाया जाता है तो उसमें बड़े ज़ोर की आवाज़ होती है। आवाज़ कर के उसका छिलका चिटक जाता है।

बेल बहुत-सी बीमारियों में काम आता है और कभी कभी पके हुए बेल का सूखा गूदा मिलना ही मुश्किल हो जाता है। दस्तों और अतिसार की बीमारी में यह बहुत काम देता है। इसलिए देहातों में लोग पके हुए बेल लाकर अपने घरों में रख लेते हैं और जब कभी उसकी आवश्यकता होती है तो उसका उपयोग करते हैं।

देहातों में दवाखाने, औषधालय और अस्पताल नहीं होते। और न वहाँ पर अच्छे वैद्य, हकीम और डाक्टर ही होते हैं। वहाँ कुछ लोग बीमारियों के सम्बन्ध में फूल, फल पत्तियों

और जड़ों का उपयोग करते हैं। इसी आधार पर देहातों में बेल खाने के सिवा दवाओं में भी बहुत काम आता है। वहाँ पर प्रायः प्रत्येक गृहस्थ और बाल बच्चेदार परिवार में बेल के बहुत पुराने फल रक्खे रहते हैं। उन परिवारों के लोग उनको बहुत सँभाल कर रखते भी हैं।

गुण—

बेल—यह खाने में मधुर और लघु होता है। त्रिदोष का नाश करता है। कै और शूल में फ़ायदा करता है। कफ़ और वायु का नाश करता है। पित्त का दमन करता है और मूत्र कृच्छ्र में लाभकारी होता है।

कच्चे बेल—स्निग्ध और ग्राही होते हैं। अग्नि को तेज़ करते हैं। प्रकृति में गुरु और पाचक होते हैं। स्वाद में कड़वे और फीके होते हैं। इनकी तासीर गर्म होती है। शूल और आमवात में फ़ायदा करते हैं। संग्रहणी और कफ़ातिसार को नाश करते हैं।

पक्के बेल—यह जलन पैदा करते हैं। खाने में मीठे किन्तु कुछ फीके होते हैं। इनकी प्रकृति तीक्ष्ण और गर्म होती है। ये ग्राही और कड़वे होते हैं। वात को उत्पन्न करते हैं और अग्नि को मन्द करते हैं।

पुराने बेल—मधुर और फीके होते हैं। ये तीक्ष्ण, गर्म और जड़ होते हैं। खाने में पाचक होते हैं। अग्नि का उद्दीपन करते हैं। कफ का नाश करते हैं और वायु को शान्त करते हैं।

उपयोग—

बहरेपन पर—बेल के गूदे को गो के मूत्र में पीस डालना चाहिये और फिर उसको छान कर उसमें थोड़ा-सा तेल मिला लेना चाहिये। इसके पश्चात् उसे थोड़ा-सा गुनगुना करके कानों में डालना चाहिये। इस से कान का बहरापन दूर होता है।

गला दुखने पर—प्रायः गले में एक प्रकार का दर्द सा होने लगता है, किन्तु उसका कोई कारण नहीं मालूम होता। ऐसे कष्ट प्रायः लोगों को सहने पड़ते हैं। इसके लिए पके बेल का गूदा खाने से बड़ा लाभ होता है।

रक्तातिसार पर—बालक से लेकर बुड्ढों तक जब किसी को रक्त के दस्त आने लगते हैं तो उसमें बेल बड़ा उपयोगी होता है। सूखे हुए बेल के गूदे को पहले चूर्ण कर डालना चाहिये और फिर उसमें थोड़ा-सा गुड़ मिला कर खाना चाहिये। अवश्य लाभ होता है।

सब प्रकार के अतिसार पर—कच्चे बेल का गूदा और आम की गुठली को कूटकर पहले उसका काढ़ा बना लेना चाहिये फिर उस में शक्कर और शहद मिलाकर खाना चाहिए। निश्चय फायदा होता है।

मुँह आने पर—बेल को तोड़ कर उसके गूदे को पानी में उबाल डालना चाहिये और उसके जल से कुल्ला करना चाहिये।

बच्चों की संग्रहणी पर—बेल के गूदा और सोंठ पीस कर चूर्ण कर लेना चाहिये, उसके बाद थोड़ा सा गुड़ मिलाकर खिलाना चाहिये।

धातु की पुष्टि के लिए—बेल के गूदे का अर्क निकाल कर पीने से बड़ा लाभ होता है और यदि कुछ दिनों तक लगातार उसका सेवन किया जाय तो धातु के लिए बड़ा गुणकारी होता है।

विशूचिका पर—बेल, सोंठ और कायफल का काढ़ा बना कर पीने से विशूचिका-रोग दूर होता है। बेल और सोंठ का भी यदि काढ़ा बना कर पिलाया जाय, तो भी लाभ होता है।

आँवला

आँवले के वृक्ष हमारे देश में बहुत अधिक हैं। आँवले में इतने गुण हैं और यह इतना अधिक उपयोगी है कि इसके सम्बन्ध में यहाँ पर पर्याप्त रूप से लिखना बहुत कठिन है। आँवला में जो स्वास्थ्य है, जो आरोग्य शक्ति है और शरीर के समस्त रोगों को दूर करने के लिए उसमें जो शक्ति तथा गुण है वह किसी भी दूसरे फल में नहीं है, इसीलिए आर्यों के आरोग्य शास्त्र आयुर्वेद में उसको ऊँचा स्थान दिया गया है।

आँवलों की शक्ति और गुण को न केवल हमारे पूर्वजों ने स्वीकार किया है, उसका गुण, उसकी उपयोगिता यूनानी और डाक्टरी में भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार की गई है। यहाँ पर आँवलों के गुण और उसके उपयोग संक्षेप में देने की चेष्टा की जायगी, जिससे सर्वसाधारण उससे परिचित होकर लाभ उठा सकें।

आँवले की दो जातियाँ होती हैं, सफ़ेद आँवला और जंगली आँवला। प्रत्येक आँवला अत्यन्त उपयोगी और लाभ कारक होता है। आयुर्वेद में तीन फलों को मिलाकर त्रिफला की व्यवस्था की गई है और उस त्रिफला की सहस्र मुख से प्रशंसा की गई है, त्रिफला के तीन फलों में आँवला भी एक है जो उन दोनों की अपेक्षा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

गुण—

आँवला—खट्टा और तीखा होता है, खाने में मधुर और फीका स्वाद पड़ता है। आँवला केश्य और मगलघानकारक

होता है। इससे वीर्य की वृद्धि होती है। नेत्रों को जीवन शक्ति प्राप्ति होती है और उनके अनेक रोग नष्ट होते हैं। आँवलों की मालिश करने से शरीर में कान्ति उत्पन्न होती है। यह पित्त का नाश करता है, कफ़ को दूर करता है। प्रमेह को अच्छा करता है। विष तथा त्रिदोष का नाशक है।

कच्चा और पक्का आँवला—खाने में मीठा और खट्टा होता है, आँवले की प्रकृति फीकी और शीतल होती है। यह जरा अवस्था का नाश करता है और शरीर में यौवन का नया निर्माण करता है। समस्त व्याधियों को दूर करता है। सभी प्रकार की प्रकृति वाले मनुष्यों के लिए हितकारी है। इसके खाने से अरुचि का नाश होता है, मल साफ़ होता है और मलाशय शुद्ध होता है। यह रक्त पित्त, प्रमेह, ज्वर को नाश करता है। विष को मारता है। सूजन को मिटाता है। तृषा को शान्त करता है। सैकड़ों-सहस्रों बीमारियों को दूर करने में रामबाण की भाँति काम करता है। प्रत्येक शरीर को स्वास्थ्य पहुँचाने के लिए अमृत के समान है।

सब प्रकार का आँवला—बालकों और युवकों को यौवन प्रदान करता है, वृद्धों को युवक बनाता है। वार्द्धक्य का नाश करता है। जल को शुद्ध करता है। जिन कुओं के पानी में दुर्गन्धि आने लगती है, उनमें आँवले छोड़ने से उनकी दुर्गन्धि नष्ट हो जाती है।

उपयोग—

अरुचि पर—आँवलों को उबालकर पीसे और फिर उसमें जीरा, कालीमिर्च, पीपल, सोंठ, धनिया, दालचीनी, सेंधा नमक, संचल हर्रे, और सफ़ेद नमक पीसकर मिलाये। इसके उपरान्त उसकी गोलियाँ बनाले। इन गोलियों के खाने से

अरुचि का नाश होता है। भूख बढ़ती है और मुख शुद्ध होता है।

खुजली पर—सूखे आँवलों को पीस डालें और उसके चूर्ण को तेल में मिलाकर शरीर में लगाना चाहिए, इससे खुजली मिट जाती है और रक्त शुद्ध होता है।

स्वर के बिगड़ने पर—सूखे आँवलों को पीसकर गाय के दूध के साथ खाने से बिगड़ा हुआ स्वर शुद्ध और तीव्र होता है। अधिक उपयोग करने पर आवाज़ में मिठास आती है। गला साफ़ होता है।

सभी प्रकार के ज्वर में—सूखे हुए आँवले, चित्रक की जड़ हर्रे, पीपल और सेंधा नमक बराबर बराबर लेकर चूर्ण कर डालना चाहिए और इस चूर्ण का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर दूर होजाते हैं।

दूसरी विधि—सूखे आँवले, चित्रक की जड़, छोटी हर्रें और पीपल का काढ़ा बनाकर पिलाने से ज्वर का आना बन्द हो जाता है।

शरीर को पुष्ट करने के लिए—एक सेर आँवलों को लेकर उनको गुठली तक चारों ओर से छेद डालना चाहिए, इसके बाद चूने के पानी में छोड़ दे। फिर दो सेर पानी के उबलने पर उनमें इन आँवलों को डालदे और उबलने दे। इसके पीछे उनको निकालकर और कपड़े से उनका पानी पोंछकर शक्कर या मिश्री की चाशनी में डाल दे। यह मुरब्बा कई-कई वर्ष चलता है। आँवले का मुरब्बा पित्त को नष्ट करने और पुष्टई के लिए सुधा के समान है।

अशुद्ध अभ्रक खा लेने पर—बिना शुद्ध किया हुआ अभ्रक खा लेने से जो भयंकर विकार उत्पन्न होते हैं उनको शान्त करने के लिए आँवलों का रस पीना चाहिए अथवा आँवलों को पानी

में गलाकर तबतक प्रयोग करना चाहिए जबतक उसके समस्त विकार पूर्ण रूप से शान्त न हो जायँ।

कफ और श्वास में—आँवलों के रस में पिसी हुई पीपल और शहद मिलाकर खिलाने से तुरन्त लाभ होता है।

वात रक्त पर—सूखे हुए आँवलों को अंडी के तेल में तल कर पीस डाले, उसके चूर्ण को शक्कर के साथ सुबह शाम पानी के द्वारा खाने से बड़ा लाभ होता है और वात-रक्त नष्ट होजाता है।

वमन पर—यदि खांसी भी होती हो तो सूखे आँवलों के चूर्ण में चन्दन का चूर्ण मिलाकर शहद के साथ खाने से बहुत शीघ्र वमन होना रुक जाता है। यदि न रुके तो यह कई बार थोड़ी थोड़ी देर में इसको खिलाना चाहिए।

बुढ़ापे को दूर करने के लिए—सूखे हुए आँवलों को पानी में खूब महीन पीस डाले और उसको सिर से लेकर समस्त शरीर में लगावे, और कुछ समय के उपरान्त ठंडे पानी से नहा डाले। इससे शरीर में झुर्रियाँ नहीं पड़तीं और न बाल सफ़ेद होते हैं। अधिक दिनों तक इसका उपयोग करने से बदन में पड़ी हुई झुर्रियाँ जाती रहती हैं और सफ़ेद बाल काले होजाते हैं।

आँखों की गर्मी दूर करने के लिए—सूखे हुए आँवले और थोड़े से तिलों को लेकर शाम को पानी में भिगो दे और प्रातः काल उनको पीसकर आँखों में लगावे और थोड़ी देर में स्नान कर डाले। इससे नेत्रों की जलन मिट जाती है और हर समय उनमें ठण्डक रहती है। अधिक दिनों तक उपयोग करने से आँखों की ज्योति बढ़ती है।

दूसरी विधि—आँवला, हर्र, बहेड़ा बराबर-बराबर लेकर सायंकाल उनको पानी में भिगो दे और प्रातःकाल उठते ही

पहले आँखों को उसके पानी से खूब छींटे मार मारकर धोवे। इससे आँखों की जलन तथा गर्मी शान्त हो जाती है। त्रिफला का चूर्ण घी में मिलाकर खाने से भी आँखों की अनेक खराबियाँ नष्ट होती हैं और उनकी शक्ति बढ़ती है।

पित्त दूर करने के लिए—सूखे हुए आँवलों को पीसकर और उस चूर्ण में घी तथा शक्कर मिलाकर खाने से पित्त शान्त होता है, चित्त प्रसन्न होता है और बदन में स्फूर्ति उत्पन्न होती है।

मुख सूखने पर—आँवलों और अंगूरों को पीसकर और उनकी गोलियाँ बनाकर मुख में रखने से मुख का सूखना बन्द हो जाता है। और मुख से लेकर तालू तक शीतलता उत्पन्न होजाती है।

ज्वर के बाद अरुचि होने पर—सूखे आँवले और अंगूर पीसकर शक्कर मिलाकर उनका कल्क बनाले, उसके खाने से अरुचि का नाश होता है। मुख शुद्ध होता है और स्वाद अच्छा होजाता है।

मूत्रकृच्छ्र अथवा गर्मी में—आँवलों के रस में गन्ने का रस मिलाकर पीने से लाभ होता है।

नाक से खून गिरने पर—सूखे हुए आँवलों को घी में तल कर पीस डाले और उसके बाद उसको मस्तक पर लेप करने से नाक से गिरता हुआ खून तुरन्त बन्द होता है।

योनि में दाह होने पर—आँवलों के रस में शक्कर या मिश्री मिला कर पिलाने से योनि की दाह शान्त होती है।

प्रमेह में—पाव भर आवलों के रस में मट्ठा मिलाकर पिलाने से लाभ होता है। लगातार सेवन करने से प्रमेह अच्छा होता है।

शरीर की कान्ति बढ़ाने के लिए—सूखे हुए आँवलों और सफेद तिलों को पीसकर शरीर में नित्य मालिश करे और उसके कुछ देर में गर्म पानी के साथ स्नान कर डाले, कुछ दिनों तक इसका उपयोग करने से शरीर की शोभा बढ़ती है और कान्ति उत्पन्न होती है। —

बदन में तेज उत्पन्न करने के लिए—आँवलों और असगंध का चूर्ण बराबर बराबर लेकर घी और शहद के साथ खाने से बड़ा लाभ होता है और लगातार इसका सेवन करने से बदन में तेज उत्पन्न होता है।

मस्तक की पीड़ा में—आँवलों का चूर्ण घी और शक्कर के साथ प्रातःकाल खाने से और ऊपर से गाय का दूध पी लेने से किसी प्रकार की मस्तक की पीड़ा शान्त होती है।

पित्त जनित शूल पर—सूखे आँवलों का चूर्ण करके शहद के साथ खिलाने से आराम होता है।

मूर्च्छा पर—आँवलों का रस निकाल कर उसमें घी मिला कर पिलाने से मूर्च्छा जाती रहती है।

रक्त पित्त पर—सूखे आंवलों का चूर्ण शक्कर मिलाकर घी के साथ खिलाना चाहिए अथवा आँवलों का मुरब्बा खिलाना चाहिए। इससे रक्तपित्त शान्त होता है।

रक्तातिसार पर—आँवलों के रस में शहद, घी और दूध मिलाकर खिलाना चाहिए। रक्तातिसार दूर होता है।

अम्लपित्त पर—एक तोला सूखे आँवलों को लेकर रात के समय पानी में भिगोदे। प्रातःकाल उसमें तीन माशा सोंठ और एक माशा जीरा मिलाकर महीन पीस डाले। इसके बाद उसकी गोलियाँ बनाले और उसकी एक गोली, दो तोला मिश्री के साथ खाकर ऊपर से थोड़ा-सा दूध पीले।

बालकों के अतिसार पर—सूखे आँवले, चित्रक, छोटी हर्र,

पीपल और संचल नमक का चूर्ण करके प्रातःकाल और रात को सोते समय गर्म पानी के साथ, बालक की अवस्था के अनुसार खिलाना चाहिए, इससे उसका अतिसार अच्छा हो जायगा।

पित्त के विकारों पर—कलई के बर्तन में एक तोला सूखा आँवला रात को भिगो दे। प्रातःकाल उसे पीसकर गाय के दूध के साथ पिलाना चाहिए।

पाण्डु रोग पर—सूखे आँवलों, हल्दी और गेरू को महीन-महीन पीसकर जिससे वह काजल की भाँति होजाय, इसके बाद उसका अंजन करने से पाण्डुरोग नष्ट होता है।

तीसरा अध्याय

शार्क-फल

कुम्हड़ा

घरों के बाहर, कुम्हड़ा सर्वत्र बोया जाता है, इसकी बेल होती है। और बेल में ही इसके फल लगते हैं जो बहुत बड़े बड़े होते हैं इसके फलों का रंग नीला होता है। जब यह पक जाता है, तब इसके ऊपर श्वेत रंग की धूल-सी जम जाती है।

गुण—

कुम्हड़े को कुछ लोग पेठा भी कहते हैं। यह जीर्ण शरीर को सबल बनाता है। वीर्य को उत्पन्न करता है। खाने में स्वादिष्ठ होता है। अरुचि को दूर करता है। शरीर में बल बढ़ाता है। पित्त का नाश करता है।

कुम्हड़ा, पित्त का नाश करता है। रक्त पित्त के रोगों में लाभ पहुँचाता है। तृषा का निवारण करता है। वात पित्त को शान्त करता है। बस्ति का शोधन करता है। स्वादुपाकी किन्तु भारी होता है।

कुम्हड़ा शरीर को पुष्ट करता है, वीर्य को बढ़ाता है और धातु को गाढ़ा करता है। प्रकृति में शीतल, भारी और रूखा होता है। हृदय को शक्ति पहुँचाता है। कफ उत्पन्न करता है।

यह मूत्राघात के रोग को लाभ करता है। प्रमेह को शान्त करता है। मूत्रकृच्छ्र और पथरी को दूर करता है। तृषा के द्वारा उत्पन्न हुए कष्ट को दूर करता है। शुक्र के प्रत्येक विकार में यह अत्यन्त उपयोगी है।

कच्चा कुम्हड़ा, पित्त का नाश करने के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। मध्यम अवस्था का कुम्हड़ा कफ को शान्त करता है। पका हुआ कुम्हड़ा हलका, गर्म और क्षार होता है। इससे पाचन शक्ति उद्दीप्त होती है। यह त्रिदोष-नाशक होता है। हृदय के रोगियों को विशेष रूप से उपयोगी है। कुछ शीतल, हलका और स्वादिष्ठ होता है।

कच्चा कुम्हड़ा—अत्यन्त शीतल, दोषकारक, और पित्त उत्पन्न करने वाला है।

उपयोग—

कुम्हड़े या पेठे का उपयोग अनेक प्रकार से किया जाता है, उसकी तरकारी बनाई जाती है, पेठे के द्वारा बरियाँ बनाई जाती हैं। इसका मुरब्बा अत्यन्त स्वादिष्ठ और शक्तिवर्धक होता है। पेठे की जो मिठाई बनती है, वह स्वादिष्ठ होने के साथ साथ शरीर को शीतलता पहुँचाने वाली होती है, इसी-लिए लोग, गर्मी के दिनों में पेठे की मिठाई खाकर सुबह के समय पानी पिया करते हैं। कुम्हड़ा बड़ा उपयोगी होता है।

काशीफल

काशीफल, रामकोला, सीताफल, लाल पेठा, और गोल कद्दू आदि इसके अनेक नाम हैं। इसके पेड़ की भी बेल होती है। इसका फल बड़ा और कच्ची अवस्था में हरा होता है किन्तु पक जाने पर हल्का लाल वर्ण हो जाता है।

गुण—

काशीफल—पाचन-शक्ति को निबल करता है। पित्त को उत्पन्न करता है। कफ का नाश करता है, और वात को बढ़ाता है। खाने में स्वादिष्ट होता है।

काशीफल—यह खाने में हल्का किन्तु मल को अवरुद्ध करता है। प्रकृति में शीतल होता है। रक्त-पित्त का नाश करता है। कफ और वात को शान्त करता है। क्षारयुक्त किन्तु भारी होता है।

उपयोग—

इसकी तरकारी खाने में बड़ी स्वादिष्ट होती है। कच्ची रसोई और पक्की रसोई, दोनों में इसका उपयोग किया जाता है। तरकारी के अतिरिक्त इसका रायता भी बनाया जाता है जो मट्ठे या दही के साथ बनने के कारण बड़ा ज़ायकेदार हो जाता है। खाने के शौक़ीन लोग, इसकी पकौड़ी भी बनाते हैं जो बड़ी रुचिपूर्ण होती है।

पके हुए काशीफल का हलुवा बनाया जाता है। यह शरीर के लिए स्वास्थ्य वर्द्धक और ज़ायकेदार होता है। पहले उसको दूध के साथ उबालते हैं जब यह गल जाता है और दूध पच जाता है तो फिर घी के साथ भूनकर शक्कर मिला देते हैं। यह हलुवा बड़ा स्वादिष्ट होता है।

लौकी

लौकी का पेड़ भी बेलदार होता है। लौकी सर्वत्र पैदा होती है। गृहस्थ लोग अपने घरों में इसको बो देते हैं जिससे उसकी बेल पैदा होकर दीवारों, छप्परों और छतों पर चढ़ जाती है और उससे बहुत से इसके फल होते हैं जो उनकी तरकारी के काम में आते हैं, इसकी दो किस्में होती हैं मीठी और कड़ुवी।

गुण—

मीठी लौकी—पित्त और कफ़ का नाश करती है। हृदय को लाभकारी है। वीर्य की वृद्धि करती है, खाने में रुचिकारक होती है। शरीर को पुष्ट करती है।

मीठी लौकी—खाने में मधुर और स्निग्ध होती है। पित्त का नाश करती है। शरीर में बल तथा स्वास्थ्य उत्पन्न करती है। यह अत्यन्त पाचक और पथ्य होती है।

कड़ुवी लौकी—खाने में कड़ुवी और तीक्ष्ण होती है। श्वास के रोग में लाभ करती है। वात को शान्त करती है। खाँसी को आराम पहुँचाती है। किसी प्रकार की सूजन, फोड़ा और विष तथा शूल को शान्त करती है। प्रकृति में शीतल और हृदय के लिए उपकारी है।

उपयोग—

लौकी का उपयोग तरकारी या रायता बनाने में होता है। यह हल्की, पाचक और दोषों से रहित होती है, इसलिए निर्बल या किसी बीमार आदमी को लौकी का साग या उसकी तरकारी दी जाती है।

ककड़ी

ककड़ी कई प्रकार की होती है किन्तु उनमें दो प्रधान हैं, मीठी और कड़ुवी। इसके सिवा उसके कई भेद होते हैं। सभी प्रकार की ककड़ियों में मीठी ककड़ी जो गर्मी की ऋतु में पैदा होती है सब से उत्तम होती है। कड़ुवी ककड़ी भी खाने के काम में आती है किन्तु उसके बीज कड़ुवे होने के कारण नहीं खाये जाते।

गुण—

कच्ची ककड़ी—शीतल और रूखी होती है। मल को रोकती है, खाने में मधुर और भारी होती है, पित्त को दूर करती है, अत्यन्त स्वादिष्ठ होती है। मूत्र रोग का नाश करती है और सन्ताप तथा मूर्च्छा को शान्त करती है।

पक्की ककड़ी—गर्म और अग्निवर्द्धक होती है। पित्त को उत्तेजना देती है। वमन को दूर करती है, तृषा को शान्त करती है और दकान्ति को मिटाती है। खाने में स्वादिष्ठ होती है।

ककड़ी—मधुर और पित्त की नाशक होती है। खाने से तृप्ति होती है। अधिक खाने से वात को उत्पन्न करती है। मल को रोकती है। यात्री और भारी होती है। वात ज्वर उत्पन्न करती है। कफ को बढ़ाती है। ताप को नाश करती है। पित्त, मूर्च्छा और मूत्रकृच्छ् रोग को दूर करती है।

कोमल ककड़ी—हल्की और खाने में सुरुचिपूर्ण होती है। बार-बार मूत्र उत्पन्न करती है। अत्यन्त शीतल होती है। रक्तपित्त, मूत्रकृच्छ् और रुधिर के विकारों को दूर करती है।

तोड़ने के बाद पकी हुई ककड़ी—जो ककड़ी, उसके पेड़ से तोड़कर रख ली जाती है और रखी हुई पक जाती है, वह गर्म तथा पित्त उत्पन्न करने वाली होती है। कफ और वात को नष्ट करती है।

जंगली ककड़ी—गर्म और खाने में तिक्त होती है। पाक में कटु किन्तु कफ और कृमि को नाश करती है।

खीरा ककड़ी—खाने में शीतल और मधुर होती है, रुचि उत्पन्न करती है। कफ को बढ़ाती है, पित्त को शान्त करती है। दाह और शोष को दूर करती है।

सभी प्रकार की ककड़ी—भारी कठिनाई से पचने वाली होती है। वात-रक्त को बढ़ाती है और मन्दाग्नि को उत्पन्न करती है। जो ककड़ियाँ वर्षा और शरदृऋतु में उत्पन्न होती हैं, उनके खाने से स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। हेमन्त ऋतु में जो ककड़ी उत्पन्न होती है, वह रुचिकारक और लाभकारी होती है वह पित्त का नाश करती है और खाने के योग्य होती है। जो ककड़ी भलीभाँति पक जाती है, वह खाने में मधुर और कफनाशक होती है।

उपयोग—

ककड़ी, कच्ची और पक्की, सभी प्रकार खाई जाती है। अन्यान्य शाक फलों की भाँति उसको पकाकर खाने की आवश्यकता नहीं होती, बिना पकाये भी बड़ी रुचि और स्वाद के साथ खाई जाती है। कच्ची ककड़ी के साथ नमक और कालीमिर्च का उपयोग करने में और भी अधिक उपयोगिता उत्पन्न हो जाती है। इसके सिवा, ककड़ी की तरकारी तथा उसका रायता भी बनाया जाता है जो खाने में मधुर रुचिपूर्ण होता है।

खीरा

शाक-फलों में ककड़ी की भाँति यह एक दूसरा फल है, खीरा, खीरा और बालमखीरा आदि इसके कई एक नाम हैं। अपनी ऋतु में यह बहुत अधिक पैदा होता है और ककड़ी की भाँति उपयोग में लाया जाता है।

गुण—

ताज़ा खीरा—हलका और खाने में स्वादिष्ट होता है। इसकी प्रकृति शीतल होती है। तृषा को यह दूर करता है। दाह को मिटाता है और रक्त पित्त को दूर करता है।

पका हुआ खीरा—किञ्चित खट्टा होता है, कुछ गर्म होता है और पित्त को बढ़ाता है। कफ और वात का नाश करता है।

खीरा—साधारणतया खीरा खाने में मधुर होता है, प्रकृति में शीतल और रुचिकारक होता है। इसके खाने से मूत्र अधिक आता है। श्रम और पित्त को शान्त करता है। दाह और वेदना को मिटाता है और वमन को दूर करता है।

उपयोग—

कच्चा और पक्का, दोनों प्रकार का खीरा खाया जाता है ककड़ी की भाँति बिना पकाये हुए खीरा भी खाने के उपयोग में आता है। नमक और कालीमिर्च के साथ खीरा खाने से अधिक रुचिकारक हो जाने के साथ-साथ, यह निर्दोष हो जाता है।

कच्चा खीरा खाने में उसका छिलका निकालने की आवश्यकता नहीं होती। वह स्वयं मुलायम होता है, परन्तु पका हुआ खीरा खाने के पहले उसका छिलका निकाल डाला जाता

है, इसलिए कि यह कठोर हो जाता है। कच्चे खीरे का रंग बिल्कुल हरा और पक जाने पर उसका रंग मटमैला हो जाता है। इसकी तरकारी भी बनाई जाती है किन्तु बिना पकाये हुए ही यह अधिक खाया जाता है।

खरबूज़ा

यह खेतों में बोया जाता है। खरबूज़ा जब कच्चा होता है तो उसका रंग हरा होता है, पक जाने पर उसका छिलका बड़ा सुहावना और मटमैला हो जाता है। पके हुए खरबूज़े की सुगन्ध बड़ी अच्छी होती है। खाने में रुचिकारक होता है।

गुण—

खरबूज़ा—बल को बढ़ाता है। मूत्र अधिक लाता है। कोठे को शुद्ध करता है और मल को साफ करता है। यह भारी और स्निग्ध होता है। प्रकृति में शीतल और वीर्य को बढ़ाने वाला होता है। पित्त और वात को नष्ट करता है। मूत्रकृच्छ्र रोग को उत्पन्न करता है।

कच्चा खरबूज़ा—खाने में कड़ुआ और कुछ मधुर होता है। स्वाद में किसी प्रकार खट्टा होता है।

पका खरबूज़ा—अमृत के समान स्वादिष्ठ होता है। खाने से तृप्ति होती है। शरीर को पुष्ट करता है। दाह को दूर करता है। श्रम को मिटाता है। मूत्र की वृद्धि करता है। पित्त और उन्माद का नाश करता है। कफ को उत्तेजित करता है और वीर्य को बढ़ाता है।

भलीभाँति पका हुआ खरबूज़ा—स्वास्थ्य को बढ़ाता है शरीर को पुष्ट करता है। बल को बढ़ाता है। खाने में स्वादिष्ठ होता है। प्रकृति में शीतल और भारी होता है। पित्त और वात को शान्त करता है। स्निग्ध और उदर के रोगों को मिटाता है। इसकी सुगन्धि बड़ी मनोहर होती है।

तरबूज़

तरबूज़ के खेत प्रायः नदी के किनारे और रेतीली मिट्टी में होते हैं। तरबूज़ दो प्रकार का होता है, एक काले बीजों का होता है और दूसरा लाल बीजों का। जिन तरबूज़ों के बीज काले होते हैं, उनका गूदा गुलाबी और पीले रंग का होता है। जिनके बीज लाल होते हैं, उनका गूदा, लाल, गुलाबी और पीले आदि सभी रंग का होता है।

हमारे देश में पौष और माघ के दिनों में तरबूज बोया जाता है। फागुन और चैत में, उसमें फूल आते हैं और बैसाख में उसका फल फलता तथा बढ़ता है, जेठ में पककर वह खाने के योग्य हो जाता है। किसी किसी देश में तरबूज़ प्रत्येक ऋतु में पैदा होते हैं और वे इतने बड़े होते हैं कि उनकी तौल एक एक मन तक की होती है।

गुण—

कच्चा तरबूज़—मल को रोकता है। पित्त और शुक्र को मिटाता है। इसकी प्रकृति शीतल और भारी होती है। बल को बढ़ाता है, मधुर और तृप्तिकारक होता है। शरीर को पुष्ट करता है। कफ को उत्तेजित करता है और नेत्रों को हानि पहुँचाता है।

पक्का तरबूज़—गर्म और क्षारयुक्त होता है। पित्त को बढ़ाता है, कफ और वात का नाश करता है। खाने में स्वादिष्ट तथा मीठा होता है।

तरबूज़—साधारणतया मधुर और शीतल होता है, पित्त का नाश करता है, दाह का [illegible] है।

तोरई

तोरई अधिकतर तरकारी के काम आती है। इसकी कई एक किस्में होती हैं। तोरई, घियातोरई, मीठी तोरई और कड़ुवी तोरई आदि। घियातोरई को नेनुवा भी कहते हैं।

गुण—

तोरई—स्निग्ध और मधुर होती है। कफ और पित्त का नाश करती है। कोई-कोई तोरई किञ्चित वादी होती है। खाने में पथ्य और रुचिकारक होती है। इससे बल बढ़ता है और वीर्य की वृद्धि होती है।

तोरई—प्रकृति में शीतल किन्तु मधुर होती है। किञ्चित कफ पैदा करती है। कुछ वादी होती है। पित्त का नाश करती है। खाने में पाचक होती है। खाँसी को फ़ायदा करती है। ज्वर में उपयोगी होती है, कृमि का नाश करती है।

घियातोरई—स्निग्ध और सारक होती है। पित्त को शान्त करती है, वात को मिटाती है। रक्त पित्त को दूर करती है।

घियातोरई—खाने में मधुर और स्निग्धि होती है। वात का बढ़ाती है और पुष्प होती है। कृमि उत्पन्न करती है। घाव को भरती है।

कड़ुवी तोरई—इसको कहीं-कहीं पर जंगली तोरई भी कहा जाता है। यह भेदक और कड़ुवी होती है। इसकी प्रकृति तीक्ष्ण और शीतल है। खाने में स्निग्ध होती है। हृदय को लाभ पहुँचाती है। अग्नि को तेज़ करती है। खाँसी को फ़ायदा करती है। अरुचि को मिटाती है। प्रमेह की बीमारी में उपयोगी है।

परवल

परवल की बेल होती है, उसी में इसके फल लगते हैं। हरे और कच्चे परवल नीले रंग के होते हैं। पकने पर ये लाल हो जाते हैं। इसकी बेल प्रायः जंगलों में अधिक पैदा होती है। इसकी दो किस्में होती हैं, एक मीठा परवल होता है और दूसरा कड़ुवा।

गुण—

परवल—खाने में अत्यन्त पाचक होता है। हृदय को हितकारी है। हलका और वृष्य होता है। अग्नि को उद्दीप्त करता है। किञ्चित गर्म और स्निग्ध होता है। खाँसी को दूर करता है। रुधिर के विकारों को मिटाता है। ज्वर में लाभ करता है। त्रिदोष का संहार करता है और कृमि का नाश करता है।

परवल—खाने से बल की वृद्धि होती है। यह खाने में स्वादिष्ट होता है। मल को साफ़ करता है पथ्य, पाचक और रुचिकारक होता है। शरीर को पुष्ट करता है। वात को शान्त करता है पित्त का दमन करता है। ज्वर को मिटाता है। शोष और त्रिदोष का नाश करता है।

कड़ुवे परवल—खाने में कड़ुवे और तिक्त होते हैं। इनकी प्रकृति कुछ उष्ण और दस्तावर भी होती है। पित्त को दूर करने में उपयोगी होते हैं। कफ और कण्डू को मिटाते हैं। कुष्ठ तथा रुधिर के विकारों को शान्त करते हैं। ज्वर में फ़ायदा करते हैं। दाह को मिटाते हैं। नेत्र-रोग में लाभकारी हैं। विष को शान्त करते हैं।

सिंघाड़ा

सिंघाड़े की बेल बड़े-बड़े तालाबों में हुआ करती है। इसका पत्ता तिकोना होता है। सिंघाड़े के ऊपर उसके छिलके में बड़े-बड़े कांटे होते हैं। सिंघाड़ा हमारे देश में बहुत पैदा होता है।

गुण—

सिंघाड़ा—प्रकृति में अत्यन्त शीतल और खाने में स्वादिष्ट होता है। इसके खाने से वीर्य की वृद्धि होती है। यह कपेला और मल रोधक होता है। शुक्र को बढ़ाता है वात की वृद्धि करता है। कफ को उत्पेरित करता है। रक्त-पित्त और दाह को शान्त करता है।

सिंघाड़ा—खाने में हल्का और पुष्टतम होता है। त्रिदोष को नष्ट करता है। ताप का निवारण करता है। श्रम को नाश करता है। रुचि को बढ़ाता है। पुरुषेन्द्रिय को दृढ़ करता है।

सिंघाड़ा—वात और कफ को बढ़ाता है। कपेला, मधुर और शीतल होता है। खाने से तृप्ति होती है। पित्त का नाश करता है। खाने में स्वादिष्ट होता है। दाह को शान्त करता है। पिपास को मिटाता है। प्रमेह को नाश करता है। रुधिर के विकारों को शुद्ध करता है। भ्रम, सूजन और सन्ताप को मिटाता है।

उपयोग—

सिंघाड़े को आग में पानी के साथ पका कर खाया जाता है। पक जाने पर उसका रूप [illegible] सीधा हो जाता है।

मूली

मूली के पेड़ के दो हिस्से होते हैं, जड़ और पेड़ी। उसकी जड़, ज़मीन में होती है और मूली के पेड़ का शेष हिस्सा ऊपर होता है। उसकी जड़ ही मूली कहलाती है। इसकी जड़ अर्थात् मूली और पत्तियाँ अर्थात् डालियाँ, दोनों ही खाने और तरकारी के काम आती हैं।

गुण—

मूली—प्रकृति में तीक्ष्ण और कदुष्ण होती है। अग्नि को उद्दीप्त करती है। बवासीर की बीमारी में विशेष उपयोगी है। गुल्म और हृदय के रोग को लाभ पहुँचाती है। वात का नाश करती है। खाने में रुचिकारक और भारी होती है।

बड़ी मूली—किञ्चित् गर्म और चरपरी होती है। खाने में स्वादिष्ट किन्तु कडुवी होती है। कफ और वात का नाश करती है। कृमि का संहार करती है, ग्राही और भारी होती है। प्रकृति में रूखी और त्रिदोष उत्पन्न करती है किन्तु उसी मूली को तेल में सिद्ध कर लेने से त्रिदोष को नाश करने वाली हो जाती है।

छोटी मूली—खाने में रुचिकारक होती है। हल्की और पाचक होती है। त्रिदोष का नाश करती है, स्वर को शुद्ध करती है। ज्वर और श्वास की बीमारी में फायदा करती है। नासिका के रोगों और कण्ठ की बीमारियों में उपयोगी होती है। नेत्र की बीमारी में लाभ करती है।

कच्ची मूली—भारी और विष्टम्भकारी होती है, खाने में तीक्ष्ण और त्रिदोष उत्पन्न करती है किन्तु इसी को घृत में पका

नि वात का नाश करती है, पित्त का दमन करती है। को बढ़ाती है।

सूखी मूली—त्रिदोष का नाश करती है। शोथ का निवा करती है। विष का नाश करती है। हलकी और पाचक होती है।

सब प्रकार की मूली—मूली साधारणतया कड़वी और चरपरी होती है। किञ्चित् गर्म और रुचिकारक होती है। न में हलकी तथा पाचक होती है। अग्नि को तेज़ करती है। दय को लाभ पहुँचाती है। प्रकृति में मधुर और सारक होती है। शरीर में बल पैदा करती है। मूत्रदोष, बवासीर की बीमारी में फायदा करती है, गुल्म, क्षय, श्वास, खाँसी को दूर करती है। नेत्र के रोगों को मिटाती है। नाभि की पीड़ा का नाश करती है। कफ, वात को शान्त करती है। कण्ठ के रोगों में औषधि का काम करती है। दाद, ख़ुजली और पीनस के रोगों को मिटाती है।

पुरानी मूली—बीच के लिए अहितकारी है, शोथ और दाह पैदा करती है, पित्त को बढ़ाती है और रुधिर के विकारों को उत्पन्न करती है।

उपयोग—

स्वाद और लाभ की दृष्टि से मूली बहुत उपयोगी शाक फल है। कच्ची मूली से लेकर पक्की तक अनेक प्रकार से उसे खाया जाता है। कितनी ही तरह की उसकी तरकारी बनाई जाती है जो स्वादिष्ट, खाने में दोष-रहित और लाभ कारक होती है।

मूली की पकौड़ियाँ बनाई जाती हैं ...
स्वाद का परिचय देती हैं। इसके पर...

गाजर

गाजर, जंगली गाजर और गोल मूली आदि इसके एक नाम हैं। हमारे देश में गाजर की खेती होती है। बहुत-सी गाजर पैदा होती है। अनाज की भाँति इसको खा तृप्ति होती है। जो लोग इसकी खेती करते हैं, वे इसको क और पकी पेट भर भरकर खाते हैं।

गाजर दो प्रकार की होती है। छोटी और बड़ी। छो गाजर जो शहरों में बिका करती है, खाने में अधिक स्वादि और मीठी होती है। बड़ी गाजर छोटी गाजर की अपेक्षा क मीठी होती है। गाजर को छोटे और बड़े सभी लोग बड़े चा से खाते हैं।

गुण—

गाजर—खाने में मधुर और तीक्ष्ण होती है। किंचित ग ी है। अग्नि को तेज़ करती है, मल को रोकती है। रक्त में काम करती है। बवासीर का नाश करती है। क और बात को दूर करती है। संग्रहणी में फ़ायदा करती है।

गाजर—खाने में मधुर और रुचिकारक होती है। कफ़ क नाश करती है। शूल में फ़ायदा करती है। दाह को मिटाती है पित्त और तृषा को शान्त करती है।

गाजर—खाने में चरपरी और हृदय को हितकारी है दुर्गन्ध का नाश करती है और गुल्म में फ़ायदा करती है अग्नि को बढ़ाती है। खाने में स्वादिष्ट होती है।

उपयोग—

गाजर कच्ची और पकी तो खाई ही जाती है, उसक

मुरब्बा और अचार भी बनाया जाता है जो खाने में अत्यन्त स्वादिष्ट और लाभकारी होता है।

शक्कर और दूध तथा घी के साथ गाजर का हलुआ बनता है। जिसके खाने से शरीर में बल की वृद्धि होती है। रक्त बढ़ता है और मुख पर कान्ति पैदा होती है। जो लोग की खेती करते हैं वे लोग गाजर को उबालकर गायों, और बैलों को खिलाते हैं जिससे वे खूब तगड़े और म होजाते हैं।